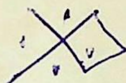
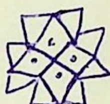
सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली-७



सिन्दूर दान





त्रिभुवनपति सिंह

© सन्मार्ग प्रकाशन

प्रथम संस्करण : १९७०

प्रकाशक : सन्मार्ग प्रकाशन,
१६ यू० बी० बैंग्लो रोड, दिल्ली-७

मूल्य : सात रुपये

मुद्रक : शुक्ला प्रिंटिंग एजेन्सी द्वारा हरिहर प्रेस, दिल्ली-६

१

प्रेमशंकर की चौबीसवीं वर्षगांठ मनायी जा रही थी। उस अवसर पर बनारस शहर के प्रायः सभी प्रतिष्ठित व्यक्ति उपस्थित थे। उसके पिता दीवान गौरीशंकर ने समारोह को सफल बनाने में कोई भी कसर उठा न रखी थी। नृत्य-संगीत का सुन्दर आयोजन किया गया था। नगर की प्रसिद्ध गणिकाओं के मधुर स्वर से दिशाएँ गूंज रही थीं। महफिल में बैठे हुए सभी लोगों का ध्यान उनके नृत्य की ओर लगा था। उसी समय सहसा दीवान गौरीशंकर को अपने मित्र प्रेमनाथ का स्मरण हो आया। उन्होंने संकेत से प्रेमशंकर को बुलाकर पूछा—'प्रेमनाथ जी नहीं आये क्या!'

इधर-उधर देख कर प्रेमशंकर ने उत्तर दिया—'वे नजर तो नहीं आ रहे हैं।"

उनकी अनुपस्थिति दीवान गौरीशंकर को बहुत बुरी तरह से खटकने लगी। प्रेमशंकर को आदेश देते हुए उन्होंने कहा—'अपनी कार लेकर अभी लक्सा जाओ और प्रेमनाथ से कहना कि हम लोगों से कौन-सा अपराध हो गया कि इस शुभ अवसर पर आप के दर्शन नहीं हुए।'

प्रेमशंकर ने गैरेज से अपनी गाड़ी निकाली और प्रेमनाथ के घर की ओर चल पड़ा। चेतगंज से लक्सा पहुँचने में अधिक देर नहीं लगी। रात का समय था, रास्ता साफ मिला। वह आठ-दस मिनट में ही वहाँ पहुँच गया। परन्तु प्रेमनाथ के मकान का फाटक बन्द था। नौकर-चाकरों की आवाज भी प्रेमशंकर को सुनाई नहीं पड़ी। उसने दो-चार बार हार्न बजाया। प्रेमनाथ उस समय भोजन करके सोने जा रहे थे। उन्होंने कंचना को पुकार कर कहा—'बेटी, नीचे झाँक कर देखो तो कौन आदमी है?'

कंचना ने दो तल्ले से नीचे की ओर झाँक कर देखा। एक मोटर खड़ी थी और उसके समीप एक हृष्ट-पुष्ट युवक रेशमी कुर्ता और पल्ले की टोपी पहने

ऊपर की ओर देख रहा था। कंचना उल्टे पाँव अपने पिता के पास लौट आई और कहने लगी—'कोई युवक मोटर लगा कर खड़ा है। मैं उसे पहचान नहीं पा रही हूँ।'

प्रेमनाथ ने हँसते हुए कहा—'अरी पगली, पूछो न कि वह कौन आदमी है ?'

कंचना ने पुनः नीचे की ओर झाँककर पूछा—'आप कौन हैं ? आपका परिचय ?'

उसकी आवाज पर प्रेमशंकर ने अपनी आँखें पुनः नीचे से ऊपर की ओर उठाईं।

कंचना का मुखड़ा विद्युत के प्रकाश में उसे आकाश में पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान प्रतीत हुआ और उसकी वाणी भी कोयल-सी मधुर मालूम हुई। उसकी ओर से कोई उत्तर न पाकर कंचना ने पुनः पूछा—'आप कौन हैं ? यहाँ खड़े होने का प्रयोजन !'

प्रेमशंकर ने उत्तर दिया—'मैं प्रेमनाथ जी से मिलने आया हूँ।'

कंचना ने कहा—'ऊपर चले आइये।'

'परन्तु फाटक तो बन्द है ?' प्रेमशंकर ने उत्तर दिया।

कंचना ने नौकर को पुकार कर कहा—'फाटक खोल दो।'

फाटक खुलते ही प्रेमशंकर सीढ़ियों को पार करता हुआ नीचे से दो तल्ले पर आ गया। चौखट से बाहर अपने जूते निकाल कर प्रेमशंकर ने प्रेमनाथ के कमरे में प्रवेश किया। कमरा बहुत सुन्दर ढंग से सजा हुआ था। नेताओं और देवताओं के चित्र टंगे थे। फूलों के गुच्छे भी मेज पर रखे थे। वहीं एक कुर्सी पर कंचना बैठी थी। प्रेमशंकर की आँखों में वह अप्सरा-सी प्रतीत हुई। दोनों की आँखें लड़ीं, पर शिष्टाचार दिखलाने के लिए प्रेमशंकर ने अपनी आँखें नीची कर लीं। बगल में ही प्रेमनाथ एक पलंग पर लेटे हुए थे। उन्होंने उससे पूछा—'कहो प्रेमशंकर किधर आए थे ?'

प्रेमशंकर ने उन्हें नमस्ते करते हुए कहा—'आज मेरी वर्षगाँठ मनाई जा रही है। पिताजी ने आपको समारोह में सम्मिलित होने के लिये निमन्त्रित किया था, लेकिन आपने पधारने की कृपा नहीं की।'

प्रेमनाथ—'क्या कहूँ प्रेमशंकर, इस जीवन में सुख और शान्ति नहीं है

जिसके पास पैसे नहीं हैं, वह भी रोता है और जिसके पास अपार धन-राशि है वह भी रोता है। सर्वत्र हाय-हाय लगी हुई है। इतनी बड़ी विशाल सम्पत्ति रहने पर भी मैं हाय-हाय करता रहता हूँ। मालूम होता है कि शेष जिन्दगी इसी तरह कटेगी।'

प्रेमशंकर ने हँसते हुए कहा—'धन से किसी को सन्तोष हुआ है। जितना ही धन बढ़ता जाता है, उतना ही असंतोष भी बढ़ता जाता है।'

प्रेमनाथ—'तुम्हारा कहना ठीक है बेटा! धन, पुत्र और स्त्री से किसी को सन्तोष नहीं हुआ है। अगर इनसे सन्तोष हो जाय तो जीवन का हाय-हाय मिट जाय और आत्मा को सुख-शान्ति मिले। हमारे ऋषि-मुनियों के कथनानुसार संतोष में ही सुख है। गीता, रामायण, महाभारत सब में सन्तोष में ही सुख कहा है। आवश्यकता से अधिक धन रखना धार्मिक-ग्रन्थों में पाप कहा गया है। कबीर ने कहा है—साईं इतना दीजिये, जा मे कुटुम्ब समाय, मैं भी भूखा ना रहूँ, साधु न भूखा जाय। कबीर का यह सदुपदेश अगर हृदय में स्थान पा जाय तो जीवन का हाहाकार मिट जाय। शोषण मिट जाय और सुख-शान्ति का साम्राज्य स्थापित हो जाय। उस स्थिति में न कोई गरीब रह जाय और न धनिक रह जाय। समाजवादी व्यवस्था पर समाज का निर्माण स्वतः हो जाय। मैं तो······।'

बीच में ही प्रेमशंकर बोल उठा—'आप ही के समान मेरे पिताजी भी महापुरुषों के सिद्धान्तों का विवेचन करते रहते हैं। परन्तु उस पर चलता कौन है! मैं उनसे कहता हूँ आप बूढ़े हो चले, जमींदारी का प्रबन्ध मेरे हाथों दे दीजिए और आप भगवान के भजन में लग जाइये। पर माया-मोह उन्हें सिंहासन से हटने नहीं देता है।'

प्रेमनाथ—'तुम्हारा कहना ठीक है प्रेमशंकर। कबीर, तुलसी और सूर के पद्यों को चाहे जितनी बार पढ़ा जाय, पर माया-मोह से आच्छादित आत्मा पर उनका कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। जब तक आन्तरिक ज्ञान नहीं होगा तब तक मनुष्य संसार में इसी तरह चक्कर काटता रहेगा।

प्रेमशंकर ने मुस्कराते हुए कहा—'आप लोगों से कुछ नहीं होगा।'

प्रेमनाथ भी उसकी बातों पर हँस पड़े। उन्होंने कहा—'देखो, जो मैं तुमसे

कहना चाहता था, वह तो कहा ही नहीं। कल बारह बजे दिन में तुम्हारा निमन्त्रण-पत्र मुझे मिला। मेरे मैनेजर लखन बाबू ने उसे पढ़कर सुनाया भी पर काम में अधिक व्यस्त रहने के कारण मैंने उस पर ध्यान नहीं दिया और यह बात मेरे मस्तिष्क से बिल्कुल विस्मृत हो गई।'

प्रेमशंकर—'तो उसे क्या हुआ ? अब चलिये।'

दीवार-घड़ी की ओर देखते हुए प्रेमनाथ ने कहा—'सदा बारह हो गए और दिन-भर के थके-माँदे रहने के कारण नींद भी सता रही है।'

प्रेमशंकर ने जोर देते हुए कहा—'पिताजी आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं और आप नींद का बहना बना रहे हैं।'

यह सुनकर कंचना हँस पड़ी। प्रेमशंकर की आँखें सहसा उसकी ओर चली गईं। कंचना का हँसता हुआ मुखड़ा उसे अति कमनीय मालूम हुआ। उसकी ठोड़ी पर काला तिल उसके सौन्दर्य में चार चाँद लगा रहा था। उसकी आँखें उसकी रूप-सुधा पान करने में तल्लीन हो गईं।

इसी बीच प्रेमनाथ बोल उठे—'बेटी, प्रेमशंकर का परिचय तो मैंने तुम को दिया ही नहीं।

कंचना ने कोई उत्तर नहीं दिया, पर उसकी आँखों से प्रकट हो रहा था कि वह प्रेमशंकर के सम्बन्ध में जानने को उत्सुक है।

प्रेमनाथ ने कहा—'दीवान गौरीशंकर का नाम तो तुमने सुना ही होगा। यह उन्हीं का पुत्र है। इसका नाम प्रेमशंकर है। दीवान साहब के पूर्वज तो बड़े धनाढ्य थे, परन्तु इज्जत-प्रतिष्ठा बचाते-बचाते सारा धन चला गया। फिर भी पन्द्रह-बीस लाख की जमींदारी रह गई है।'

कंचना—'दीवान साहब तो कई बार अपने यहाँ आये भी हैं। मैं उन्हें अच्छी तरह जानती हूँ। लेकिन दीवान की उपाधि उन्हें कैसे मिली, मैं नहीं जानती हूँ।'

प्रेमनाथ—'इनके पूर्वज महाराजा चेतसिंह के यहाँ सिपाही थे। अंग्रेजों के साथ जब इनका युद्ध हुआ तब उन्होंने महाराजा को धोखा दिया और दुर्ग में जाने का रास्ता बतला दिया। जब अँग्रेजों की विजय हुई तब महाराजा के राजभवन से लूट की सम्पत्ति में से स्वर्ण और रत्न इनके पूर्वज को मिले तथा डेढ़ लाख की जमींदारी भी मिली।'

कंचना—'तब तो इनके पूर्वज ने अपने लिए बहुत बड़ा यश उपार्जित किया ?'

यह सुनकर प्रेमशंकर लज्जित हो गया।

प्रेमनाथ ने प्रेमशंकर को कंचना का परिचय देते हुए कहा—'प्रेमशंकर, यह मेरी पुत्री कंचना है। बात बनाने और हँसने में यह बहादुर है और कार्य करने में आलसी।'

यह सुन कर कंचना पुनः हँस पड़ी। प्रेमशंकर ने उसकी ओर देखा। वह आकर्षण की मूर्ति सहज में ही उसके हृदय को आकर्षित कर रही थी। कंचना ने दोनों हाथ जोड़कर उसे नमस्ते किया। प्रेमशंकर ने भी उसका अभिवादन स्वीकार करते हुए—'नमस्ते' कहा। और साथ ही उससे जल्द तैयार हो जाने का आग्रह किया।

प्रेमनाथ ने भी कहा—'हाँ बेटी, जल्द तैयार हो जाओ। आध घण्टे में ही हम लोग वापस आ जायेंगे।'

कंचना दूसरे कमरे में गई और दस-बारह मिनट में ही दूसरी साड़ी बदलकर लौट आई।

प्रेमशंकर ने कहा—'हाँ, अब चलिए।'

आगे-आगे प्रेमनाथ चले। उनके पीछे प्रेमशंकर था, उसके पीछे कंचना थी। प्रेमशंकर अभी पाँच सात सीढ़ी पीछे ही था कि प्रेमनाथ नीचे चले आये। अकस्मात तीसरी सीढ़ी पर आकर कंचना के पैर फिसल गए। अगर प्रेमशंकर का सहारा वह नहीं लेती तो सम्भव था कि उसके पैर टूट जाते और विद्युत-से चमकते हुए दाँतों से उसे हाथ धोना पड़ता। अपने दोनों हाथों से उसने प्रेमशंकर को पकड़ लिया और प्रेमशंकर ने भी अपने बाहुपाश में उसे बाँध लिया। वह थी तो आकस्मिक घटना परन्तु उस घटना ने दोनों के लिये प्रेम का दरवाजा खोल दिया। प्रेमशंकर और कंचना दोनों को यह आलिंगन अति मधुर मालूम हुआ। प्रेमशंकर उसे छोड़ना नहीं चहाता था, परन्तु कंचना ने उसके बाहुपाश से निकलने का प्रयास करते हुए कहा—'पिताजी देख लेंगे, छोड़िये।'

दरवाजे से प्रेमनाथ ने आवाज दी—'कंचना, कहाँ रह गईं ?'

कंचना ने हँसते हुए उत्तर दिया—'पिताजी, पैर फिसल गये। अगर यह नहीं होते तो मेरी क्या दशा होती मैं कह नहीं सकती हूँ।'

प्रेमनाथ ने चिन्ता प्रकट करते हुए कहा—'भाग्य कहो कि यह लड़का आगे था, नहीं तो रंग-में-भंग हो जाता।'

फिर दोनों बाप-बेटी मोटर में बैठ गये और प्रेमशंकर मोटर चलाने लगा। जिस समय प्रेमशंकर अपने दरवाजे पर पहुँचा उस समय घड़ी में एक बज रहा था और दीवान साहब वहीं खड़े बड़ी उत्सुकता के साथ प्रेमनाथ की प्रतीक्षा कर रहे थे। प्रेमनाथ को देखते ही वे हँस पड़े और कहने लगे—'आपके बिना सारा जलसा फीका पड़ गया। आपको समय पर आना चाहिए था। कुमारी कंचना को भी अपने साथ लेते आये, अच्छा किया।'

गाड़ी से उतरते समय कंचना के मुख से एकाएक 'आह' शब्द निकल आया। इस पर कुछ चिन्तित स्वर में प्रेमनाथ ने पूछा—'बेटी, दर्द मालूम हो रहा है क्या ?'

कंचना ने ऐसे स्वर में उत्तर दिया मानो उसे असह्य पीड़ा मालूम हो रही है। उसने कहा—'पिताजी, मालूम होता है कि दायें पैर की उँगलियाँ मुचक गई हैं।'

प्रेमनाथ ने दीवान साहब से पूछा—'अभी कोई डाक्टर मिलेगा क्या ?

दीवान साहब ने उत्तर देने के पूर्व ही प्रेमशंकर से कहा—'साधारण बात के लिए आप इतने चिन्तित हो गये। अगर उँगलियाँ मुचक गई हैं तो उपचार मैं कर देता हूँ। प्राथमिक चिकित्सा की शिक्षा मुझे स्कूल में ही मिली थी। आप महफिल में बैठिये। मैं सब ठीक कर देता हूँ।'

इच्छा नहीं रहने पर भी प्रेमनाथ दीवान गौरीशंकर के साथ जाकर महफिल में बैठ गये। प्रेमशंकर कंचना को साथ लेकर अपने अध्ययन-कक्ष में चला गया और आराम कुर्सी पर उसे लेटा कर पैर की उँगलियों को खींचते हुए उसने प्रश्न किया—'कहो दर्द कहाँ है ?'

कंचना ने हँसते हुए कहा—'अरे बाबा, छोड़ो तो। प्राण गये।'

और वह प्रेमशंकर के हाथ से अपने पैर को छुड़ाने का प्रयास करने लगी। इस प्रयास में उसका आँचल उसके कन्धे से नीचे खिसक गया और उसकी दोनों चोटियाँ काली नागिन की-सी भाँति डोलने लगीं। प्रेमशंकर को उसके मुख से 'आह' 'वाह' सुनने में बड़ा आनन्द मालूम हो रहा था। इसलिए उसने उसकी उँगलियों को और जोर से दबा दिया। इस पर कंचना ने मुँह बना कर कहा—

'प्राथमिक चिकित्सा का तो आपको अच्छा ज्ञान है। मुझे पीड़ा मालूम हो रही है और आप को हँसी आ रही है।'

प्रेमशंकर ने उसका पैर छोड़ उसके दोनों हाथ पकड़ लिए। इस पर दोनों की आँखें लड़ पड़ीं। कंचना ने देखा कि प्रेमशंकर की आँखों में वासना नाच रही है और प्रेमशंकर ने देखा कि कंचना की मृगी-सी आँखों में मादकता छा गई है।'

कंचना ने मुस्कराते हुए पूछा—'आप क्या देख रहे हैं?'

प्रेमशंकर ने उत्तर दिया—'तुम्हारे मदभरे इन नयनों को, जिनमें मेरे मन और हृदय उलझे हुए हैं। मेरी आँखें चाह रही हैं कि तुम इसी प्रकार बैठी रहो और ये तुम्हारी रूप-सुधा पान करती रहें।'

प्रेमशंकर के उत्तर को सुन कर कंचना मुस्करा उठी। उसके लाल अधरों में अद्भुत आकर्षण प्रतीत हुआ। प्रेमशंकर के हाथ उसकी ओर बढ़ना ही चाहते थे कि दरवाजे पर किसी की पदध्वनि सुनाई पड़ी। वह उस ओर देखने लगा। इतने ही में कमरे में प्रेमनाथ ने प्रवेश किया। उन्हें देखते कंचना मुँह बना कर कहने लगी—'पिताजी, बहुत जोरों से दर्द है। यह पीड़ा मुझसे नहीं सही जा रही है।'

इतना सुनते ही प्रेमनाथ के प्राण सूख गये। उन्होंने कहा—'अभी कोई डाक्टर-वैद्य भी नहीं मिलेगा। इस अर्द्ध-रात्रि में क्या किया जाय?' अगर हल्दी-चूना मिले तो उससे उपचार हो सकता है।'

प्रेमशंकर—'मैं इसका प्रबन्ध कर देता हूँ। आप चलिये, बैठिये।'

प्रेमनाथ महफिल में जाकर बैठ गए और प्रेमशंकर दस मिनटों में ही हल्दी-चूना गर्म करके ले आया। उसकी अँगुलियों पर चढ़ाते हुए उसने पूछा—'कहो दर्द कैसा है?'

कंचना ने हँसते हुए कहा—'आप भी पागल हो गये क्या? हल्दी-चूना से कहीं दिल का दर्द दूर होता है।'

उसकी बातों पर प्रेमशंकर हँस पड़ा।

इसी बीच प्रेमनाथ पुनः आ धमके। उन्होंने पूछा—'कहो बेटी अब दर्द कैसा है?'

'अब कुछ आराम है, पिताजी' कंचना ने उत्तर दिया।

'तुम्हारे इन शब्दों से मेरे प्राण लौटे हैं।' प्रेमनाथ ने कहा।

फिर उन्होंने प्रेमशंकर से कहा—'इसे हमारे घर पर पहुँचा दो। मुझे जाने में देर है। दीवान साहब छोड़ नहीं रहे हैं।'

प्रेमशंकर—'पहुँचा देता हूँ।'

वह गाड़ी ले आया और कंचना को उस पर बैठाकर लवसा की ओरचला। उसका एक हाथ स्टेयरिंग पर था और दूसरा कंचना के कंधे पर। बातचीत आरम्भ होने पर प्रेमशंकर ने कहा, 'कंचना, अगर हम दोनों दाम्पत्य जीवन के सूत्र में बँध जाते तो कितना अच्छा होता।'

कंचना—'यह तो मेरी भी हार्दिक इच्छा है, लेकिन यह इच्छा पिताजी की आज्ञा से ही पूरी हो सकती है।'

प्रेमशंकर—'पर आज के युग में लड़के-लड़कियाँ अपने भावी जीवन के निर्माता स्वयं होते हैं, अभिभावक नहीं।'

कंचना—'अच्छा, मैं इस पर सोचूँगी।'

प्रेमशंकर—'अगले रविवार को मेरे घर पर आओ। हम लोग अपने भावी जीवन का एक पथ निश्चित करें।'

कंचना—'हाँ, मिलूँगी।'

तब तक मोटर कंचना के घर पर पहुँच गई। दरबान फाटक पर बैठा हुआ दोनों पिता-पुत्री की प्रतीक्षा कर रहा था। मोटर से केवल कंचना को उतरते देखकर दरबान ने पूछा—'बाबू जी कहाँ रह गये।'

कंचना—'फाटक खोलो, बाबूजी की बड़ी चिन्ता हो आयी।'

दरबान ने फाटक खोल दिया। प्रेमशंकर को साथ लेकर कंचना दो-तल्ले पर चली गई। विद्युत का स्वीच दबा कर ज्यों ही वह कमरे में प्रवेश करने लगी त्यों ही दरबान ने पीछे से आवाज दी—'फाटक बन्द कर देता हूँ।'

उसकी ओर देखकर कंचना ने कहा—'यहाँ कहाँ दौड़े आ गये?'

दरबान—'तो क्या मैं सारी रात बैठा ही रहूँ?'

प्रेमशंकर ने कंचना से कहा—'मैं चलता हूँ।'

कंचना—'हाँ चलिये। नमस्ते।'

कंचना के झल्लाये हुए स्वर को सुन कर दरबान ने अपने मन में कहा—'यह लड़की कुल में दाग लगा कर रहेगी। मालिक ने इसे उचित से अधिक

स्वतन्त्रता दे रखी है। भला पराये पुरुष के साथ आधी रात में इस एकान्त कमरे में इसे आने की क्या आवश्यकता थी। मैं मालिक को सारी बातें कह देता, किन्तु उन्हें मेरी बातों पर विश्वास नहीं होगा।'

प्रेमशंकर के जाने के बाद दरबान ने फाटक बन्द किया। पर ज्योंही वह सोने चला त्योंही प्रेमनाथ ने फाटक पर धक्का मारा। दरबान ने अपने मन में कहा—'इस बाप-बेटी के कारण आज सारी रात मैं जगा ही रह गया।' फिर उसने फाटक खोला और प्रेमनाथ के अन्दर आने पर दरवाजा बन्द किया। प्रेमनाथ वहाँ से सीधे कंचना के कमरे में चले गये। उनकी पदध्वनि सुनकर कंचना ने चादर से अपना मुँह ढक लिया। जब प्रेमनाथ ने पूछा—'बेटी, कैसी तबीयत है?' तब कंचना ने चादर के भीतर से ही मुस्कराते हुए उत्तर दिया—'पिता जी, अब कुछ अच्छी हूँ।'

प्रेमनाथ—'बेटी, तुम्हें जब थोड़ी भी पीड़ा होती है तब मेरा मरण हो जाता है। सब संयोग होता है। यह कष्ट तुम्हें मिला हुआ था, अन्यथा मेरे साथ तुम्हें जाने की क्या आवश्यकता थी?'

कंचना—'हाँ, पिताजी, सब संयोग होता है। कहाँ हम लोग सोने चले थे और कहाँ से वे आ गये। पर हैं वे चतुर आदमी। मरहम पट्टी का उन्हें अच्छा ज्ञान है।'

प्रेमनाथ—'बड़े घर का लड़का है। अपने खानदान का असर तो होता ही है। वह कितना अच्छा है। अपनी गाड़ी से स्वयं तुम्हें यहाँ पहुँचा गया।'

कंचना—'इसके लिए तो मैं उनकी ऋणी हूँ।'

प्रेमनाथ—'रात बहुत कम शेष रह गई है। सवेरे दुकान पर जाना है। मैं सोने चला।'

प्रेमनाथ के जाने के बाद कंचना ने बत्ती बुझा दी और अपनी पलकें बन्द कर सुखद स्वप्न देखती हुई सो गई।

२

वक्सर के समीप ही माधोपुर गाँव में दीनदयाल उपाध्याय का मकान था। वे भले आदमी थे। इसलिए उनकी अपनी बस्ती और पड़ोस के गाँवों में पूछ थी। ग्रामीणों का कोई भी झगड़ा उनकी स्वीकृति के बिना कोर्ट-कचहरी में नहीं जाता था। जो उनकी बात नहीं मानता था, उसे पीछे पश्चात्ताप करना पड़ता था।

एक बार एक ठाकुर का मामला उनके सामने आया। वह ठाकुर बहुत ही क्रोधी थे और सदा अपनी ही शान में रहते थे। उनका कहना था कि उनके पूर्वज पश्चिम से आकर इस गाँव में बसे थे। यहाँ आने पर उन्होंने काफी भू-भाग पर अपना आधिपत्य स्थापित कर अपने को राजा घोषित कर दिया था, पर ठाकुर के भाग्य में राज्य का भोग नहीं लिखा था। उनका राज्य अंग्रेजी राज्य में मिला लिया गया ; पर उससे क्या हुआ ? ठाकुर का राज्य भले ही चला गया, पर उनकी ठाकुरशाही तो नहीं गयी। उनके सामने किसी को तन कर चलने का साहस नहीं होता था।

हाँ, मामला यह था कि ठाकुर जयपाल सिंह के आम के बाग में प्रवेश कर एक चरवाहे ने उनसे बिना पूछे एक गिरा हुआ आम उठा लिया था। इस पर ठाकुर साहब ने उसकी हड्डी-पसली तोड़ दी। उसके माता-पिता रोते-चिल्लाते उसे उठाकर दीनदयाल उपाध्याय के यहाँ ले आये। दीनदयाल उपाध्याय ने दोपहर को गाँव में पीपल के पेड़ के नीचे पंचायत बुलायी। युगों से खड़े उस पीपल के वृक्ष ने कितने मुकदमों के फैसले देखे थे। सत्य का साक्षी बन कर वह पीपल गाँव के देवता के रूप में पूजा जाता था। गाँववाले पोखर में स्नान कर नित्य उस पवित्र वृक्ष की जड़ पर जल चढ़ाते थे और वासुदेव कहकर उसके समक्ष नतमस्तक होते थे। कोई भी व्यक्ति डाली काटने को कौन कहे उसकी पत्ती तक तोड़ने का साहस नहीं करता था। वह कब का वृक्ष था, किसी को ज्ञात नहीं था। किंवदन्ती है कि वह एक साधु का लगाया हुआ है, पर निश्चित समय का पता किसी को नहीं था। बड़े-बड़े बुड्ढों का कहना था कि जब वे लड़के थे तब भी वह वृक्ष वैसा ही था। पक्षियों का कलरव दिन-रात उस पर होता रहता था और उनके घोंसलों

की उन पर भरमार थी।

दीनदयाल उपाध्याय ने ठाकुर साहब से कहा—'वास्तव में आपने अन्याय किया है। एक आम के लिये किसी के प्राण लेना अच्छा नहीं। अगर यह जीवित भी रहेगा तब भी बेकाम होकर रहेगा और आपके नाम पर आँसू बहाता रहेगा। खैर, जो बात होने वाली थी वह तो घट कर रह गई। अब उसके लिये चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं। यह बेचारा अदालत में जाकर आपके विरुद्ध कब तक ठहरेगा। इसलिये इसकी मरहम पट्टी के लिये दण्ड में एक सौ रुपये दे दीजिए।'

दण्ड का नाम सुनते ही ठाकुर जयपालसिंह का खून खौल उठा। गर्जते हुए उन्होंने कहा—'उपाध्याय जी, जयपाल किसी को दण्ड नहीं देता है। वह दण्ड लेता है। आज तक मैंने आपका जो सम्मान किया था, वह ब्राह्मण जान कर, कोई मुखिया के रूप में नहीं। मुखिया तो छोटी जाति में होता है, क्षत्रियों का नहीं। क्षत्रियों को तो भगवान ने स्वयं मुखिया बनाकर भेजा है। यद्यपि शास्त्र-पुराण ने ब्राह्मणों को श्रेष्ठ कहा है तथापि दण्ड देने का अधिकार क्षत्रियों को ही दिया है। आप मुझे दण्ड नहीं दे सकते हैं, मैं आपको दण्ड दे सकता हूँ।'

उपाध्यायजी के सम्बन्ध में ठाकुर के मुख से इन शब्दों को सुन कर पंचों को क्रोध हो आया। उनमें से एक ने कहा—'वह जमाना चला गया जब कि ठाकुरों का अत्याचार लोग सह लेते थे और उनको अपना सरताज समझते थे। आज अंग्रेजी सरकार के सामने चारों वर्ण समान हैं। आप अपनी जाति के नाम पर हम लोगों को कुचल नहीं सकते हैं।' इस पर ठाकुर जयपाल सिंह की त्योरियाँ चढ़ गईं। अंगार के समान उनकी आँखें देखकर दीनदयाल उपाध्याय ने कहा—'आपकी इन लाल आँखों को देखकर हम लोग गाँव छोड़-कर भाग नहीं जायेंगे। आपको दण्ड-स्वरूप सौ रुपये देने होंगे।'

पुनः दण्ड का नाम सुन कर ठाकुर आपे से बाहर हो गये। उन्होंने लाठी उठायी और दीनदयाल उपाध्याय के सर पर दे मारी। बेचारे उपाध्याय जी तो खून से लथपथ होकर वहीं गिर गये। उन्हें गिरते देखकर सभी पंच नौ दो ग्यारह हो गये। पंचों का फैसला सुनने के लिये जो लोग वहाँ एकत्रित हुए थे वे भी भाग चले। वहाँ केवल एक व्यक्ति रह गया था। वह था ठाकुर

का पोता प्रताप। प्रताप बनारस में अपने पिता ठाकुर धनुषधारी सिंह के साथ रहता था और वहीं हिन्दू स्कूल में पढ़ता था। उसकी अवस्था सोलह साल से अधिक की नहीं होगी। उसने ठाकुर जयपाल सिंह की लाठी को, जो दूसरी बार उपाध्याय जी पर पड़ने जा रही थी, पकड़ते हुए कहा—'पितामह, यह बहुत बड़ा अन्याय हो रहा है। उपाध्यायजी ने तो कोई अनुचित बात नहीं कही। लेकिन आपने धन के मद में उसको कोई महत्त्व नहीं दिया और इनका सर फोड़ दिया। दूसरी लाठी में तो आप इनके प्राण ही ले लेंगे। आप घर चलिये। मैं इनकी सेवा करता हूँ।'

मरणासन्न अवस्था में उपाध्याय जी को देखकर ठाकुर जयपाल सिंह के होश उड़ गये। उन्होंने अपना रास्ता लिया। प्रताप ने पोखर से पानी लेकर उपाध्याय जी के मुख में डाला और उनका खून धोया। कुछ होश होने पर अपना सर प्रताप की जाँघ पर पाकर उपाध्याय जी ने सन्तोष की साँस ली और धीमे स्वर में कहा—"प्रताप, तुहारा कल्याण हो। कभी-कभी कोयले की खान में भी हीरा पाया जाता है। ठाकुर जयपाल सिंह के वंश में ऐसा कमल ? आखिर कमल भी तो कीचड़ से ही पैदा होता है।'

प्रताप बड़े गौर से उनकी बातें सुन रहा था। उन्होंने कहा—'प्रताप···।' लेकिन इसके आगे उनके मुख से शब्द नहीं निकले। उनकी ओंठें पटपटाती हुई स्थिर हो गयीं और आँखें भी सदा के लिए बन्द हो गयीं। प्रताप किंकर्त्तव्यविमूढ़ होकर उपाध्याय जी के मृतक शरीर का संरक्षक बन कर बैठा रहा।

इधर गाँव में हाहाकार मच गया और चौकीदार दौड़ता हुआ थाना पहुँचा। उस समय दारोगा रघुनाथ चौबे अपने माथे पर हाथ धर कर सोच रहे थे—'न जाने आज किस मनहूस का मुख देखकर उठा कि कहीं से एक पैसे की भी आय नहीं हुई। यह कैसा इलाका है जहाँ न खून-खराबी होती है और न चोरी-डकैती होती है। जिस पुलिस कर्मचारी का भाग्य जल जाता है वही यहाँ आता है। एक दारोगा को एक हजार रुपये की भी अगर मासिक बचत नहीं हुई तो वह किसलिये नौकरी करेगा।'

चौकीदार ने झुक कर उन्हें सलाम किया और कहा—'हुजूर······।'

दारोगा जी चौंक उठे। मानो उनकी निद्रा भंग हुई। उन्होंने भौं तानते हुए कहा—'हुजूर, हुजूर, क्या कहने ग्राया है। क्या हुजूर की हड्डी-पसली चबायेगा। जाग्रो, घोड़े के लिए घास ले ग्राग्रो।'

पर चौकीदार ज्यों-का-त्यों खड़ा रहा। दारोगाजी ने उससे पूछा—'खड़ा क्यों है ?'

चौकीदार—'हुजूर,······।'

दारोगा जी ने पुनः उसे कुछ ग्रागे कहने का ग्रवसर नहीं दिया ग्रौर उस पर बिगड़ते हुए कहने लगे—'हुजूर, हुजूर, क्या हुजूर। हुजूर का बच्चा, साला। मुझे चिढ़ाने ग्राया है। जाग्रो घोड़े के लिये घास ले ग्राग्रो, नहीं तो हड्डी-पसली तोड़ दूँगा।'

हड्डी-पसली तोड़े जाने की बात सुनकर बेचारा चौकीदार काँप उठा। उसने ग्रपने मन में कहा—'हमारे गाँव में एक ग्रादमी की हड्डी-पसली टूटी तो यह घटना घटी ग्रौर मेरी हड्डी-पसली टूटेगी तो क्या गुजरेगी ?'

लेकिन वह ज्यों-का-त्यों खड़ा रहा। दारोगा जी ने इसे ग्रपना तिरस्कार समझा। उनके क्रोध की सीमा न रही। वे कुर्सी से उछल पड़े ग्रौर चौकीदार को दो तमाचा मार बैठे। बेचारा चौकीदार ग्राँखें पोंछते हुए साईस के पास पहुँचा ग्रौर उससे खुड़पी टोकरी लेकर घास छीलने चला गया।

दारोगा जी ग्रब भी क्रोध व मुद्रा में बैठे थे। मुन्शी जब कागजात पर उनका हस्ताक्षर लेने ग्राया तब वे बिना पूछे बोल उठे—'यहाँ के चौकीदार बहुत बदमाश होते हैं। देखिये ग्रभी माधोपुर का चौकीदार मेरी ग्रवज्ञा कर रहा था।'

मुन्शी—'ग्रब ये चौकीदार दफेदार समझते हैं कि इनसे बेगार लिया जाता है। सरकारी काम के ग्रतिरिक्त ग्रौर काम नहीं करना चाहते हैं।'

दारोगा जी—'मैं वह दारोगा नहीं हूँ जो नौकरी के लिये डरते रहते हैं। रघुनाथ चौबे को हजारों ऐसी नौकरियाँ मिलेंगी। मैं शैतान के बच्चे को जीवित चबा जाऊँगा।'

इधर पुलिस के ग्राने में देर होते देख कर ठाकुर जयपालसिंह ने दीनदयाल उपाध्याय की लाश उठा ली ग्रौर माधोपुर से उत्तर श्मशान में जला-

कर गंगा में उनका अवशेष प्रवाहित कर दिया। पीपल के पेड़ के नीचे भी खून के दागों को पानी से धुलवा डाला। खून का कोई प्रमाण नहीं रह गया। इसके बाद उन्होंने प्रताप को बनारस भेज दिया और स्वयं गाँव में डटे रहे।

जब संध्या हो गई तब चौकीदार घास लेकर लौटा और साइस को सारा सामान देकर मुन्शी के पास पहुँचा। मुन्शी ने मुस्कराते हुए कहा—'अरे, तुमने दारोगा जी की अवज्ञा की है। वे बहुत ही क्रोधित हो उठे हैं। कह रहे थे कि मैं उसकी नौकरी ले लूँगा।'

चौकीदार—'हुजूर, वे मेरी नौकरी की चिन्ता नहीं करें, अपनी नौकरी देखें। कृपया डायरी लिख लीजिये। मैं चलूँ।'

मुन्शी—'कैसी डायरी।'

चौकीदार – 'मुन्शी जी, ठाकुर जयपाल सिंह ने दीनदयाल उपाध्याय को जान से मार दिया।'

मुन्शी—'यह किस समय की घटना है।'

चौकीदार—'लगभग बारह बजे दिन की।'

मुन्शी—'रे शैतान, तुमने पहले क्यों न रिपोर्ट दी ?'

चौकीदार—'बाबू मैं तो एक ही बजे आया। पर दारोगा जी ने मेरी एक बात न सुनी। उन्होंने मुझे मारा भी और घास लेने को भेज दिया।'

मुन्शी—'इलाके में खून हो गया, परन्तु थाने को पता नहीं।'

दारोगा जी बगल के कमरे में बैठे चाय पान कर रहे थे। खून की बात सुनकर वह चौंक पड़े। प्याली मेज पर रख दौड़ते हुए मुन्शी के पास पहुँचे और उत्सुकतापूर्वक पूछा--'कहाँ खून हो गया है ?'

मुन्शी— 'माधोपुर गाँव में।'

दारोगा जी ने चौकीदार की ओर देख कर पूछा—'तुमने मुझसे नाम नहीं लिया।'

चौकीदार—'हुजूर, मैं तो यही कहने के लिए आपके पास आया था। पर आपने मेरा एक शब्द भी नहीं सुना, और विनती करने पर मुझे मार भी बैठे।'

अब दारोगा जी को काटो तो शरीर में खून नहीं। वह अपने साथ जमादार, चार सिपाही और चौकीदार को साथ लेकर माधोपुर पहुँचे। कुछ रात बीत चली थी। किसी के दरवाजे पर एक बत्ती तक नहीं जल रही थी। गाँव

में सन्नाटा छाया हुआ था और पग-पग पर भय मालूम हो रहा था। ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो दीनदयाल उपाध्याय की आत्मा मँडरा रही है। कहीं कोई आदमी नहीं मिल रहा था, जिससे दारोगा कुछ पूछ-ताछ करे। चौकीदार के साथ वह दीनदयाल उपाध्याय के मकान पर पहुँचे। उस दरवाजे पर एक टिमटिमाता हुआ मिट्टी का एक दिया जल रहा था। उसकी रोशनी में दीनदयाल उपाध्याय का भतीजा राजा उपाध्याय बैठा हुआ कुछ सोच रहा था और उसकी स्त्री रो रही थी। दीनदयाल उपाध्याय की अपनी कोई सन्तान नहीं थी। उनकी धर्मपत्नी कब की स्वर्गलोक को प्रस्थान कर गई थी। राजा उपाध्याय इलाहाबाद में एक म्युनिसिपल स्कूल में अध्यापक था। अपने चाचा का पत्र पाकर एक खेत खरीदने के लिये वह इलाहाबाद से अपने गाँव आया था। पर आज उनके सामने दूसरी ही तस्वीर उपस्थित थी। उसकी बुद्धि कोई काम नहीं कर रही थी। ठाकुर जयपाल सिंह भय से उसे कोई भी गवाह नहीं मिल रहा था।

दारोगा ने राजा उपाध्याय से पूछा—'अगर तुम्हें और कोई गवाह नहीं मिल रहा है तो कम-से-कम तुम तो मेरे सामने और अदालत में कह सकते हो कि मेरे सामने ठाकुर जयपाल सिंह ने दीनदयाल उपाध्याय का सर फोड़ दिया, जिससे उनकी मृत्यु हो गई।'

राजा उपाध्याय—'कह क्यों नहीं सकता हूँ ? परन्तु ठाकुर साहब मुझे पुनः इस गाँव में लौटने नहीं देंगे।'

दारोगा—'तुमको कहना होगा कि मेरे चाचा की हत्या ठाकुर साहब ने की है।'

कुछ देर मौन रहने के बाद राजा उपाध्याय ने कहा—'अच्छा बोलूंगा।'

दारोगा—'चलो उस स्थान को देखें जहाँ उपाध्याय जी मारे गये हैं उनकी लाश तो वहीं पड़ी होगी।'

राजा उपाध्याय—'लाश तो ठाकुर साहब ने जला दी और अवशेष गं में प्रवाहित कर दिया।

दारोगा ने चौंककर पूछा—'लाश जला दी गई ?'

राजा उपाध्याय—'हाँ, लाश जला दी गई।'

दारोगा—'तब तो, मेरी नौकरी भी गई।'

फिर वह अपने आदमियों के साथ ठाकुर जयपाल सिंह के मकान पर पहुँचा। वहाँ भी सन्नाटा छाया हुआ था और बत्ती के अभाव में अन्धेरा-ही-अन्धेरा था। उनके मकान का दरवाजा भी बन्द था और बाहर भी दो बुल डाग बैठे थे। ज्योंही दारोगा जी उनके समीप पहुँचे त्योंही दोनों ने उन पर आक्रमण बोल दिये और कई जगह नोच लिया। चौकीदार ने दूर से ही आवाज दी—'भागिये, नहीं तो जान चली जायेगी।'

दारोगा जी अपने सैन्य-समेत पीछे हटे। पर कुत्तों ने उनकी जान नहीं छोड़ी। एकाएक जमादार को सूझ आयी कि पिस्तौल उसके पास है। झट उसने पिस्तौल निकाली और एक कुत्ते को वहीं लिटा दिया। दूसरा कुत्ता पीछे हट गया। पर उसका भूकना जारी था। दारोगा ने आवाज दी—'ठाकुर साहब हैं?'

पर कोई उत्तर नहीं मिला। दारोगा के शरीर से खून निकल रहा था। पर जयपाल सिंह के पकड़ने की चिन्ता में उन्हें कुछ नहीं मालूम हो रहा था। उन्होंने दो सिपाहियों को फाटक के ऊपर से अन्दर भेजने का प्रयास किया। पर भीतर भी दो बुल डाग छलाँग मारते हुए भूक रहे थे। दोनों सिपाही फाटक से ही यह कहते हुए लौट पड़े कि ठाकुर साहब ने किलाबन्दी कर रखी है। दारोगा ने कहा—'सारी रात यहीं बैठा जाय, सवेरे देखा जायगा।'

ठाकुर साहब चुपचाप अपने दरवाजे पर बैठे हुए सारी बातें सुन रहे थे। ठाकुर साहब उठ कर अन्दर गये और पत्नी को बुला कर उन्होंने धीरे से कहा—'मैं बनारस जा रहा हूँ। पर यह बात किसी को मालूम नहीं होनी चाहिये।'

फिर नौकरों को बुलाकर उन्होंने कहा—'दारोगा लाख सर पटक कर मर जाय, पर तुम लोग कभी यह स्वीकार मत करना कि ठाकुर साहब ने उपाध्याय जी की हत्या की है और हम लोगों ने उनकी लाश जलायी है। अगर किसी ने ऐसा कहा तो समझ ले, कि यमलोक से उसके लिये निमन्त्रण आ गया है।

नौकरों ने एक स्वर से कहा—'सरकार हम लोग आपके दास हैं यह कभी भी सम्भव नहीं है कि हम आपका भेद खोलेंगे।

इस पर ठाकुर साहब ने सुख की साँस ली और गली के रास्ते से बनारस के लिए प्रस्थान किया। पर ज्यों ही वे गाँव के बाहर आये त्यों ही राजा उपाध्याय से उनकी भेंट हो गयी। राजा उपाध्याय की बाँह पकड़ कर उन्होंने कहा—'शैतान, अगर तुमने मुझे अपने चाचा का हत्यारा प्रमाणित करने की चेष्टा की तो समझ लो कि तुम्हारी भी लाश वहीं जलाई जायेगी जहाँ तुम्हारे चाचा जले हैं।'

ये बातें सुनकर राजा उपाध्याय काँप उठा। उसने कहा—'ठाकुर साहब, जो होना था वह तो हो गया। अब बात बढ़ाने से कोई लाभ नहीं। आप निश्चिन्त रहें। मैं आपके विरुद्ध एक भी शब्द नहीं बोलूँगा।"

ठाकुर साहब—'अभी तुम कहाँ घूम रहे हो ?'

राजा उपाध्याय—'दारोगा को कुत्ते ने काट लिया है। उसी ने रुई और टिंगचर के लिये मुझे भेजा है। लेकिन इस अर्द्धरात्रि में कौन दे।'

ठाकुर साहब—'तुम अध्यापक हुए, पर तुम्हें बुद्धि नहीं हुई। दारोगा के लिए तुम्हें परेशान होने की आवश्यकता। तुम जाकर अपने घर में सो जाओ। नहीं तो ये राक्षस तुमको रात-भर दौड़ा कर मार देंगे।'

राजा उपाध्याय—'हाँ ठाकुर साहब, मैं जाता हूँ सोने। नींद भी आ रही है और वह घर जाकर सो गया।

सूर्योदय तक दारोगा राजा उपाध्याय की प्रतीक्षा करता रहा, पर वह नहीं आया। इससे वह आगबबूला हो उठा। उसने राजा उपाध्याय को बुलाकर गाली-गलौज की और अपनी रिपोर्ट दे दी कि ठाकुर जयपाल सिंह ने दीनदयाल उपाध्याय की हत्या की है पर ठाकुर के भय से कोई बोल नहीं रहा है।'

इधर जब ठाकुर जयपाल सिंह बनारस में अपने पुत्र धनुषधारी सिंह के मकान पर पहुँचे तब धनुषधारी सिंह उन्हें देखते ही जल उठे। इंगलैण्ड में शिक्षा-दीक्षा पाने पर भी धनुषधारी सिंह भारतीय संस्कृति के पुजारी थे। अपने पिता को ब्रह्महत्या का दोषी समझकर उन्होंने उन्हें प्रणाम तक नहीं किया और उनसे कहा—'एक ग्राम के लिए आपने इतना बड़ा काण्ड कर दिया। दीनदयाल उपाध्याय एक सज्जन व्यक्ति थे। उस आदमी को मारकर आपने कौन-सा लाभ उठाया। सरकार को आप धोखा दे सकते हैं, लेकिन अपनी आत्मा को धोखा नहीं दे सकते हैं।'

अपने पुत्र की बातों पर ठाकुर जयपाल सिंह तिलमिला उठे। सत्तर वर्ष की अपनी इस अवस्था में भी वे किसी की परवाह नहीं करते थे। धनुषधारी सिंह पर उनकी भौंहें सहज में ही तन गईं। उन्होंने क्रोध-भरे शब्दों में कहा—'तुम अपनी वकालत रखो। मुझे तुमसे कोई आवश्यकता नहीं है। मुझे अपने प्राणों का थोड़ा भी मोह नहीं है। मैंने दीनदयाल उपध्याय की हत्या की है। इसके लिये अगर न्याय मुझे प्राण-दण्ड देगा तो हँसते-हँसते मैं उसे स्वीकार कर लूँगा। पर तुम्हारा अपमान मैं सहन नहीं कर सकता हूँ।' और वे चल पड़े। वे फाटक भी नहीं पार कर पाए थे कि प्रताप ने आकर उनके पैर पकड़ लिये और कहा—'पिताजी ने न तो आपका अपमान किया है और न तो कोई अनुचित बात कही है। आपने जो गलत काम किया है, उसका उन्होंने प्रतिरोध किया है। फिर भी आपको हम लोग दण्ड कैसे पाने देंगे। अभी अपने लोगों के सामने कैसी भयंकर स्थिति आ गई है, क्या इसका अनुमान आप नहीं कर सकते हैं। चलिये, बैठकर विचार-विमर्श किया जाय कि इस समस्या का समाधान किस प्रकार निकाला जाय।'

ठाकुर जयपाल सिंह लौट पड़े और बरामदे में मौन होकर एक कुर्सी पर बैठ गये। प्रताप ने उनके स्नान और भोजन का प्रबन्ध किया। इनसे उनके निश्चिन्त होने पर ठाकुर धनुषधारी सिंह ने कहा—'पिताजी, आपकी खोज में पुलिस तो यहाँ अवश्य आवेगी, इसलिये आपके ठहरने की व्यवस्था मैं अन्यत्र कर देता हूँ। इसके बाद जैसी स्थिति उत्पन्न होगी, वैसा काम किया जायेगा।'

ठाकुर जयपाल सिंह अब भी मौन थे।

ठाकुर धनुषधारी सिंह ने प्रताप को श्यामाचरण को बुलाने के लिए भेजा। प्रताप गया और पौन घंटे में ही उनको अपने साथ लेकर वापस आ गया।

श्यामाचरण मध्यम वर्ग के व्यक्ति थे। बनारस में ही शृंगार-प्रसाधन की उनकी एक छोटी-सी दुकान थी। परन्तु उसी से उनकी अच्छी आय थी। जिससे वे अपने परिवार वालों का अच्छी तरह पालन-पोषण कर लेते थे। अपनी उसी आय से उन्होंने पुत्र को पढ़ने के लिए विदेश भेजा था और अपनी पुत्री प्रेमा को कन्या महाविद्यालय में पढ़ा रहे थे। ठाकुर धनुषधारी सिंह से उनका परिचय दुकान पर ही सामानों की खरीद-बिक्री में हुआ। उनके कई मामलों में

ठाकुर साहब ने बिना कुछ लिए पैरवी भी कर दी थी। इससे दोनों में मित्रता भी हो गई थी।

श्यामाचरण ने बड़े आदर के साथ ठाकुर साहब को नमस्ते करते हुए कहा –'आदेश।'

ठाकुर साहब उन्हें एकान्त कमरे में ले गये **और** सारी स्थिति से उन्होंने अवगत कराया और साथ ही उन्होंने उनसे यह भी अनुरोध किया कि दो-तीन सप्ताह के लिए वे ठाकुर जयपाल सिंह को अपने यहाँ स्थान दें। उसके बाद समयानुसार कोई व्यवस्था की जायगी।'

एक अभियुक्त को अपने यहाँ शरण देने की बात सुनकर श्यामाचरण सिहर उठे। पर संकोचवश वे 'न' नहीं कह सके। उन्होंने कहा—'कोई हर्ज नहीं। वे मेरे घर पर ठहर सकते हैं। परन्तु आप इसका ध्यान रखियेगा कि मैं किसी संकट में नहीं फँसूँ।'

ठाकुर धनुषधारी सिंह—'अपने लिए मैं आपको संकट में नहीं डालूंगा, आप निश्चिन्त रहें।'

श्यामाचरण के साथ ठाकुर जयपाल सिंह उनके घर पर चले गए। श्यामा-चरण ने ठाकुर साहब के रहने और भोजन की सुन्दर व्यवस्था कर दी। उसे देखते हुए ठाकुर साहब को अपने घर का अभाव नहीं खटक सका। फिर भी पुलिस का भय उनको दिन-रात सताता रहता था। उनको चिन्ता से मुक्त रखने के खयाल से प्रातः और संध्याकाल में प्रताप उनके साथ रहा करता था। और जब प्रेमा को अवकाश रहता था तब वह भी उनके पास जाकर बैठ जाती थी। वह प्राचीन राजाओं के शौर्य्य और वीरता की कहानियाँ उनके मुख से सुना करती थी। उनके समीप आने-जाने से वह प्रताप के सम्पर्क में आ गई। दोनों की अवस्था में कोई विशेष अन्तर नहीं था। प्रेमा प्रताप से एक डेढ़ साल बड़ी रही होगी। प्रताप हिन्दू विश्वविद्यालय में प्रथम वर्ष में था और प्रेमा दूसरे वर्ष में थी। प्रेमा और प्रताप दोनों अपने-अपने शैशव की सीमा पार कर यौवन के साम्राज्य में पैर रख रहे थे। प्रेमा परी-सी सुन्दर थी और रूप के समान गुण भी उसने पाया था। उसके आकर्षक **सौन्दर्य** की ओर सहज में ही हृदय आकर्षित हो जाता था। और प्रताप? प्रताप का दोहरा शरीर, गौर वर्ण

तथा कमनीयता लिए उसका प्रसन्न मुखड़ा प्रेमा को अति प्रिय मालूम हुआ ।

इन दोनों सौन्दर्य की मूर्तियों को देखकर ठाकुर जयपाल सिंह अपने मन में सोचा करते थे— अगर जाति का बन्धन नहीं रहता तो मैं इन दोनों का विवाह कर देता ।

संध्या के समय जब प्रताप ठाकुर जयपाल सिंह को जलपान कराकर लौटने लगता था तब उसके साथ प्रेमा भी उसके मकान पर आती थी । उन दोनों को साथ देखकर ठाकुर धनुषधारी सिंह अपने मन में कहा करते थे—'दोनों युवा हो चले । फिर भी साथ आने-जाने, घूमने-फिरने और खाने-पीने में इन्हें संकोच नहीं मालूम होता है । आखिर उम्र के दृष्टिकोण से इनकी उम्र कितने दिनों की है । उम्र के अनुसार ही तो बुद्धि होती है ।'

प्रेमा जब उनको नमस्ते कहकर एक ओर खड़ी हो जाती थी तब वे उसे बड़े प्रेम के साथ बैठाते थे और नौकर से अंगूर या अनार का रस मँगवाकर उसे पीने को देते थे । कभी-कभी वे दोनों को साथ लेकर सारनाथ भी चले जाते थे । वकील साहब के इस प्रेम से प्रेमा उनके परिवार के समीप आ गई । जब तक वह वकील साहब के घर एक बार नहीं जाती थी तब तक उसे चैन नहीं मिलता था और जिस दिन वह प्रताप से नहीं मिलती थी उस दिन वह विकल हो उठती थी । धीरे-धीरे वह प्रताप की ओर आकर्षित होती गई और प्रताप भी उसकी मोहिनी सूरत पर लट्टू होता जा रहा था । फिर भी दोनों अपने कुल की प्रतिष्ठा और अपनी मान-मर्यादा का ध्यान रख रहे थे ।

३

प्रेमशंकर अपने उद्यान में संध्या के समय कंचना के साथ बैठा था । आकाश में चन्द्रमा विहंस रहा था और दूध के समान चाँदनी धरती पर छिटक रही थी । नाना प्रकार के फूलों की सुगन्ध से वायुमण्डल सुगन्धमय हो रहा था । उस मधुर वातावरण में प्रेमशंकर और कंचना दोनों अपने भावी संसार को बसाने

के सम्बन्ध में विचार-विमर्श कर रहे थे तथा उसकी रूपरेखा खींच रहे थे। जब काल्पनिक संसार विहंसता हुआ उनके सामने प्रस्तुत हुआ तब दोनों प्रफुल्लित हो उठे।

कंचना ने पूछा—'प्रेमशंकर, हम लोगों का यह गुप्त प्रेम कब तक चलता रहेगा? जब एक दिन यह रहस्य प्रकट होगा तब हम लोग दूसरों के लिए उपहास के पात्र बन जायेंगे। इसलिये लोक-लज्जा से बचने के लिए हम लोग दाम्पत्य-जीवन के सूत्र में बंध जायें तो क्या अच्छा होता।'

उसके प्रस्ताव का समर्थन करते हुए प्रेमशंकर ने कहा—'प्रिये, तुम्हारा कहना बिल्कुल ठीक है। परन्तु इस विवाह में मेरे पिताजी बाधक होंगे। वे कभी नहीं चाहेंगे कि हम दोनों प्रणय-सूत्र में बंध जायें। पिताजी की जिन्दगी ही कितने दिनों की है। उनकी मृत्यु के उपरान्त हम दोनों संसार के समक्ष आदर्श दम्पती के रूप में उपस्थित होंगे।'

कंचना ने इठलाते हुए कहा—'प्रियतम, दीवान साहब की मृत्यु की प्रतीक्षा के लिए मेरा विवाह कब तक रुका रहेगा। मेरे पिताजी मेरे विवाह के लिए चिन्तित हो रहे हैं। एक दिन वे लखनलाल से बातें कर रहे थे कि कंचना अठारह वर्ष की हो चली। अब इसका विवाह हो जाना चाहिये। योग्य वर की तलाश कीजिये। तुम्हीं सोचो, अगर उन्होंने मेरी शादी दूसरी जगह कर दी तो तुमको हाथ मलकर पछताना होगा और मेरा तो बसा-बसाया संसार उजड़ जायेगा।'

प्रेमशंकर—'क्या तुम्हारे पिता तुम्हारा विवाह मेरे साथ करने को तैयार होंगे?'

कंचना—'वे कभी नहीं चाहेंगे कि हम दोनों प्रणय-सूत्र में बँध जायें।'

प्रेमशंकर—'तब तो दोनों ओर से एक ही बाधा है।'

कंचना—'बाधा कुछ नहीं है। सिविल मैरेज का दरवाजा खुला हुआ है।'

प्रेमशंकर – 'तुम तो मेरे लिए बहुत बड़े बलिदान करने को तैयार हो। लेकिन मेरी समझ में नहीं आता है कि मैं क्या करूँ?'

कंचना—'समझ में कैसे आवेगा। तुम मेरी रूप-सुधा के प्यासे हो, इसे छक-छक कर पीना चाहते हो और मेरे छलकते हुए यौवन का उपभोग करना चाहते हो। इसलिए प्रेम का प्रदर्शन करना चाहते हो और जब तुम्हारे हृदय की प्यास अच्छी तरह बुझ जायेगी तब फिर कंचना को कौन पूछता है। मुझे

तो ऐसी आशंका होती है कि कहीं आज का काल्पनिक संसार कल्पना में ही न रह जाय और एक दिन इसका स्मरण कर मुझे पश्चात्ताप करना पड़े ।'

प्रेमशंकर ने हँसते हुए कहा—'प्रिये, ऐसी अशुभ कल्पना मत करो। मैं प्रेम का निर्वाह करना चाहता हूँ। अपने बसाये हुए संसार को उजाड़ना नहीं चाहता हूँ। संसार को कोई भी शक्ति हम दोनों को इस प्रेम संसार से विलग नहीं कर सकती है। कंचना, विश्वास रखो कि हम लोगों का यह प्रेम-संसार अमर रहेगा। यह कभी नहीं उजड़ेगा। इसकी मोहकता दिन-प्रतिदिन बढ़ती जायेगी। मुझे एक सप्ताह का समय दो। इस अवधि में पिताजी से तुम्हारे साथ विवाह करने की स्वीकृति ले लेनी है। अगर उनकी स्वीकृति नहीं मिली तो मैं दूसरा रास्ता निकालूँगा।'

उसी समय सूखे हुए पत्ते किसी के पैर पड़ने से मरमरा उठे। उस ओर दोनों के ध्यान गये। बड़े गौर से देखने के बाद प्रेमशंकर ने कहा—'मालूम होता है कि कोई स्त्री आ रही है।' कंचना ने उसका समर्थन करते हुए कहा—'हाँ, धवल वस्त्र पहने हुई कोई स्त्री आ रही है।'

और, वह लज्जा, संकोच और भय के कारण पास के फूलों के कुँज में जाकर बैठ गई। उसके बाद ही किशोरी वहाँ आ पहुँची। उसे देखते ही प्रेमशंकर ने हँसकर कहा—'अरी, मैंने तो सोचा था कि कोई दूसरा व्यक्ति है, पर तुम हो।'

किशोरी ने भी हँसते हुए कहा—'क्या तुम डर गये थे ?'

प्रेमशंकर—'हाँ, कुछ ऐसी ही बात थी।'

किशोरी—'तुम क्या सोच रहे थे ?'

प्रेमशंकर—'यही तुम्हारे ही सम्बन्ध में।'

किशोरी—'अब तो तुम्हारी कल्पना साकार हो गई।'

किशोरी उस बाग के माली की लड़की थी। वह भी कंचना की ही अवस्था की थी। कंचना के साथ ही उसने एडमिशन की परीक्षा पास की थी। पर अर्थाभाव के कारण वह आगे नहीं पढ़ सकी।

यौवन किशोरी का शृंगार बनकर मुस्करा रहा था और किशोरी उसे पाकर मतवाली-सी बन गई थी। दोनों के इस मधुर-मिलन ने उस तरुणी को आकर्षक बना दिया था। उसमें भी जब वह पुष्पों का शृंगार कर निकलती थी तो वह इन्द्र कानन की अप्सरा-सी प्रतीत होती थी।

प्रेमशंकर ने उसकी ओर सतृष्ण नजरों से देखते हुए कहा—'आज तो तुम देवकन्या-सी लग रही हो ।'

अपने रूप की प्रशंसा सुनकर किशोरी मुस्करा उठी । अपने हाथ का पुष्पहार प्रेमशंकर के गले में डालते हुए उसने कहा —'अपने देव के लिये मैंने यह माला तैयार की थी । आज इसे उसके गले में डालकर मैंने अपने जीवन की साध पूरी की है । आज मैं अपने प्राणनाथ से वचन चाहती हूँ कि वे मुझे अपने चरणों की दासी के रूप में स्वीकार करेंगे ।'

उसकी बातें सुनकर कंचना सहम उठी । उसका हृदय भावी अनिष्ट की आशंका से काँप उठा । उसने अपने मन में कहा—'यह किशोरी से भी प्रेम करता है । इसका कौन ठीक ? यह हरेक कली के पराग का स्वाद लेना चाहता है ।'

किशोरी की मोहिनी सूरत पर प्रेमशंकर न्योछावर हो रहा था । उसका हाथ अपने हाथ में लेते हुए उसने कहा —'प्रियतमा, क्या तुम मेरे कुल की वधू बनना चाहती हो ?'

किशोरी—'जिस दिन मैंने अपना सर्वस्व तुम्हारे हाथों में समर्पित कर दिया उसी दिन दीवान साहब की मैं कुलवधू बन गई । मेरे कोमल हृदय को तुमने अपने सुकुमार हाथों में लिया है, अब उसे अपने पैरों तले मत कुचलो । प्रकृति विहंस रही है, चन्द्र मुस्करा रहा है और वायु पुष्पों से सौरभ लेकर लुटा रहा है । इस मधुवेला में तुमने मेरा पाणिग्रहण किया है । बस कह दो, मेरा तुम्हारा प्रणय-सम्बन्ध स्थायी हो गया ।'

उत्तर देने के समय प्रेमशंकर की आँखें किशोरी की आँखों से लड़ गयीं । आँखों ने आँखों की भाषा पढ़ ली और किशोरी ने अपना चन्द्रानन उसके मुखड़े की ओर बढ़ा दिया । यह दृश्य देखकर कंचना ने अपने मन में कहा—'प्रेमशंकर अविश्वसनीय पुरुष है । धन के मद में इसका होश ठीक नहीं है ।'

फिर किशोरी बोल उठी—'तुम मुझे स्वीकार करते हो ?'

प्रेमशंकर—'अब भी क्या इसका उत्तर शेष है ? जब हम लोग आज प्रेम-सूत्र में बंध गये तो सदा के लिए बंध गये ।'

किशोरी – 'प्रकृति को साक्षी बनाओ ।'

उसकी बातों पर कंचना जली जा रही थी और क्रोध से अपना होंठ चबा

रही थी। वह अपने मन में कह रही थी—'यह छोकरी दीवान साहब की पुत्रवधू बनना चाहती है और मेरी सौत बनकर मेरे पतिदेव के साथ एक ही सेज पर सोना चाहती है। मैं इसे जीवित ही निगल जाती तो अच्छा होता।'

प्रेमशंकर ने उत्तर दिया—'हाँ किशोरी, प्रकृति को साक्षी देकर मैं कहता हूँ कि अपनी अर्द्धांगिनी के रूप में मैंने तुमको स्वीकार किया। तुमसे मेरे कुल की शोभा बढ़ेगी। जैसे कुम्हार के घर में निर्मित होकर भी मिट्टी का दिया राजभवन को अपनी ज्योति से प्रकाशित करता है वैसे ही तुम भी मेरे कुल में प्रवेश कर उसकी मर्यादा को बढ़ा सकती हो। मैंने तुम्हें स्वीकार किया, लेकिन पिताजी के जीवनकाल में तुमको अपने भवन में ले जाने में मैं असमर्थ हूँ।'

किशोरी—'तो क्या मुझे दीवान साहब के लिये मृत्यु की प्रतीक्षा करनी होगी?'

प्रेमशंकर—'हाँ, तब दूसरा रास्ता कौन है?'

किशोरी—'तुम्हारी बातों से मेरी आशाओं पर पानी फिर गया।'

प्रेमशंकर—'निराशा की तो इसमें कोई बात ही नहीं। अगर पिताजी के लिए तुम मृत्यु बुलाओ तो इस उद्यान के समान ही हम लोगों का प्रेम-संसार सदा हरा-भरा और फलता-फूलता रहेगा।'

प्रेमशंकर के मुख से इन बातों को सुनकर किशोरी दंग रह गई। उसने कहा—'मैं उनके लिये मृत्यु का आह्वान कैसे कर सकती हूँ।'

प्रेमशंकर—'तुम घबरा क्यों गई? तुम्हारे यहाँ से दूध तो उनके लिए जाता ही है। उसमें विष मिला देना।'

इस पर किशोरी काँप उठी। उसने कहा—'नारी का हृदय कोमल होता है। मुझसे इतना बड़ा जघन्य कार्य नहीं हो सकता।'

प्रेमशंकर ने हँसकर कहा—'अरी पगली, नारी तो इतना बड़ा दुस्साहस का कार्य कर डालती है जो पुरुष नहीं कर पाता है।'

किशोरी—'वह नारी नहीं होगी, होगी कोई दानवी।'

प्रेमशंकर—'ठीक है तुम जाओ।'

किशोरी घबरा कर उठ पड़ी। पर ज्योंही चलने के लिये उसके पग बढ़े त्योंही कंचना को खाँसी आ गई। किशोरी के पग रुक गये और वह आशंका-भरी दृष्टि से कुंज की ओर देखने लगी। उसका दिल दहल उठा।

उसने अपने मन में कहा—'मेरे प्रेम का रहस्य छिपा नहीं रहा। तीसरा आदमी भी इससे अवगत हो गया।'

वह किंकर्त्तव्यविमूढ़ होकर वहीं खड़ी रही।

प्रेमशंकर ने उससे कहा—'जाती क्यों नहीं हो ?'

उसके इस प्रश्न पर किशोरी का सन्देह और भी बढ़ गया। उसे निश्चय हो गया कि अवश्य उसने किसी लड़की को फूल के कुञ्ज में छिपा रखा है। उससे प्रेम की बातें कर तीसरे व्यक्ति को भी यह गुप्त रहस्य बतला दिया। प्रेमशंकर के लाख मना करने पर भी वह फूलों की झाड़ी की ओर बढ़ चली। कंचना के सामने अब प्रकट होने के अतिरिक्त कोई चारा नहीं रहा। वह मुस्कराती हुई कुञ्ज से निकल पड़ी और किशोरी की ठोढ़ी पकड़ कर कहने लगी—'किशोरी, प्रेमशंकर के साथ तुम प्रेम का सौदा कर रही हो ?'

किशोरी ने निस्संकोच भाव से उत्तर दिया—'हाँ बहन, जिस गली में तुम घूम रही हो, उसी गली में मैं भी घूम रही हूँ। परंतु प्रेम की गली बड़ी संकरी होती है। इसमें तीन प्राणियों का अगल-बगल से एक साथ चलना कठिन होता है। इसलिए सम्भल कर पग उठाना। तुमने सुना होगा प्रेमशंकर का प्रस्ताव। भला दीवान साहब को विष देने का दुस्साहस मैं करूँ ?'

कंचना—'अरी पगली, इसके लिये कोई बन्दूक या पिस्तौल चलानी है। केवल किसी तरह उन्हें विष दे देना है। इसके बाद तुम्हारा पथ निष्कंटक बन जायेगा।'

'कौन जाने मेरा पथ निष्कंटक होगा या तुम्हारा,' इतना कहकर किशोरी चली गई।

प्रेमशंकर चिन्तित हो उठा और उदासीन भाव से कंचना की ओर देखने लगा। इतने ही में पास के ट्रेजरी आफिस के पहरेदार ने नौ की घण्टी लगाई। इस पर चौंक कर कंचना ने कहा—'काफी देर हो गई। अब चलना चाहिये। पिताजी की तो नहीं, मैनेजर साहब की दृष्टि मुझ पर गड़ी रहती है।

प्रेमशंकर—'क्या वे तुमको किसी दूसरी भावना से देखते हैं ?'

कंचना—'अरे नहीं, वे हमारे घूमने-फिरने और बोल-चाल पर प्रतिबन्ध लगाना चाहते हैं। पर मैं उनके नियन्त्रण में रहने को तैयार नहीं हूँ।'

प्रेमशंकर—'उसे कह दो कि मैं बारहवीं सदी की बालिका नहीं हूँ और न

सोलहवीं सदी की रमणी हूँ, वल्कि बीसवीं सदी की नारी हूँ। इस युग की महिलायें पुरुषों के नियन्त्रण में नहीं रह सकती हैं। वे अपना हित स्वयं देखकर पग बढ़ाती हैं।'

इसी बात-चीत में एक घंटे का समय और लग गया। जब दस की घण्टी पड़ी तब चौंक कर कंचना ने कहा—'अरे बाबा, दस बज गये और मैं यहीं हूँ।'

प्रेमशंकर का मकान बाग के समीप ही था। वह उसमें प्रवेश कर गया। किन्तु कंचना को दूर जाना था। गर्मी की रात थी। इसलिये चहल-पहल बनी हुई थी। कंचना सड़कों और गलियों को पार करती हुई लक्सा पहुँची। उसका महल्ला शान्त हो चला था, फिर भी घरों में बत्तियाँ जल रही थीं, जिनकी रोशनी खिड़कियों से बाहर आ म्युनिसिपेलिटी की बत्तियों के प्रकाश में मिलकर उस प्रकार विलीन हो जाती थी जिस प्रकार मोक्ष की प्राप्ति होने पर आत्मा परमात्मा में विलीन हो जाती है। कंचना के मकान में भी बत्ती जल रही थी, परंतु फाटक बन्द था। वह बहुत ही चिन्ता में पड़ गई और सोचने लगी—'फाटक में धक्का देने या दरबान को पुकारने पर अवश्य पिताजी या मैनेजर साहब जग जायेंगे और मुझे बातें सुननी पड़ेंगी।

पर बिना आवाज दिये या फाटक में धक्का मारे अन्दर प्रवेश करने का कोई चारा नहीं था। उसने धीरे से नौकर को पुकारा। पर नौकर सो गये थे। केवल लखन बाबू जगे हुए थे। वे अपने हिसाब-किताब में तल्लीन थे। कंचना की आवाज पर वे क्रोध से तिलमिला उठे। हाथ की कलम दस्ती पर रख कर दो तल्ले से वे नीचे आये और फाटक खोल दिया। उसके अन्दर प्रवेश करने पर उन्होंने पुनः फाटक बन्द कर दिया। वहाँ से दोनों साथ ऊपर आये। जब कंचना अपने कमरे में प्रवेश करने लगी तब उन्होंने उसे पुकार कर पूछा—'तुम अभी कहाँ से आ रही हो? देखो घड़ी में ग्यारह बज रहे हैं। तुम्हारी चाल मुझे पसन्द नहीं आती है। मेरा क्या बिगड़ेगा? बिगड़ेगा तुम्हारे पिता का और दाग लगेगा तुम्हारे कुल-खानदान में। उससे मुझे क्या, मुझसे नहीं देखा जाता है। इसलिए बोलता हूँ।'

उनकी बातों से प्रेमनाथ की नींद भंग हो गई। उन्होंने पूछा—'क्या है मैनेजर साहब?'

लखनलाल—'यही कंचना को कहता हूँ कि आधी-आधी रात तक फरार मत रहा करो।'

प्रेमनाथ—'गयी होगी नाटक नाच देखने। फिर भी जमाने को देखते हुए इस समय तक बाहर रहना अच्छा नहीं है।'

पिता का समर्थन पाकर कंचना मन-ही-मन मुस्करा उठी। फिर हाथ-मुँह धो उसने भोजन किया और पलंग पर जाकर लेट गई। सुखद स्वप्न देखते-देखते उसे नींद आ गई।

४

पुलिस परेशान थी। ठाकुर जयपाल सिंह के भय से कोई भी ऐसा आदमी नहीं मिल रहा था जो यह कहे कि ठाकुर साहब ने दीनदयाल उपाध्याय की हत्या की है। स्वयं राजा उपाध्याय पुलिस के डराने-धमकाने पर भी ठाकुर साहब के विरुद्ध जाने को तैयार नहीं था। इसके साथ ही एक और कठिनाई थी कि ठाकुर साहब का पता पुलिस को नहीं चल रहा था। जहाँ-जहाँ ठाकुर साहब का सम्बन्ध पड़ता था, सर्वत्र पुलिस ने उनकी तलाश की, पर 'ना' छोड़ कर कहीं भी 'हाँ' का उत्तर नहीं मिला। छः महीने तक बनारस में ठाकुर धनुषधारी सिंह के मकान के इर्द-गिर्द पुलिस सादी पोशाक में चक्कर काटती रही, पर ठाकुर जयपाल सिंह की छाया भी उसे देखने को नहीं मिली।

एक दिन जब प्रेमा ठाकुर धनुषधारी सिंह के मकान से निकल रही थी तब गुप्तचर विभाग के एक कर्मचारी ने उसका पीछा किया। परन्तु कुछ दूर जाने पर प्रेमा एक सिनेमा हाल में प्रवेश कर गयी। उस कर्मचारी ने भी झखमार कर सिनेमा का टिकट लिया और सिनेमा हाल में जाकर प्रेमा के समीप ही बैठ गया। चित्र नृत्य-संगीत से भरा था। अतएव उसे देखने में वह पुलिस कर्मचारी इतना तल्लीन हो गया कि वह वहाँ जाने का अपना उद्देश्य भूल ही गया। इधर प्रेमा को सन्देह हुआ कि वह पुरुष किस नियत

से ठाकुर साहब के मकान से ही उसका पीछा करता हुआ आ रहा है। अवश्य दाल में कुछ काला है। अतएव वह धीरे से उठ कर बाहर निकल आयी और गलियों से होकर अपने मकान में पहुँच गई। उस समय ठाकुर साहब चिन्तित मुद्रा में बैठे अपने क्रोध पर पश्चात्ताप कर रहे थे। प्रेमा के आते ही उनका ध्यान भंग हुआ। उन्होंने उसके मुखड़े पर कुछ उत्सुकता देखकर पूछा—'बेटी कोई नई बात है क्या ?'

प्रेमा ने उत्तर दिया—'दादा जी, सम्भवत: पुलिस का एक आदमी मेरा पीछा कर रहा था। परन्तु मैं उसे चकमा देकर निकल आई हूँ।'

ठाकुर जयपाल सिंह—'हाँ बेटी, मेरी तलाश में पुलिस ने चारों ओर अपने जाल बिछा दिये हैं और यह सम्भव नहीं जान पड़ता है कि पुलिस की नजरों से अधिक दिनों तक मैं बचा रहूँ। अब यहाँ से दूसरी जगह जाने में ही मेरे लिये कल्याण है।'

दूसरी जगह जाने की बात सुन कर प्रेमा की आँखों में आँसू छलछला आये। उसने कातर स्वर में कहा—'दादा जी, अगर आप चले जायेंगे तो मैं कैसे रहूँगी ?'

ठाकुर जयपाल सिंह ने हँसते हुए कहा—'मुकदमा खत्म होने पर मैं पुन: तुमसे मिलूंगा और इतना ही नहीं मैं अपने परिवार का तुम्हें शृंगार बनाऊँगा।'

ठाकुर साहब की इन बातों से प्रेमा को एक बहुत बड़ी आशा हो आई। दृग के आँसू को पोछते हुए उसने कहा—'दादा, मुझे भूल मत जाना।'

ठाकुर जयपाल सिंह—'मुझसे तुमको जो वात्सल्य-स्नेह प्राप्त हुआ है, उससे तुमको कोई भी वंचित नहीं कर सकता है। जो मैं बोलता हूँ, वह निश्चित रूप से होकर रहता है। तुम्हारा और प्रताप का प्रणयसूत्र में बँध जाना मेरे लिये कम हर्ष का विषय नहीं होगा।'

उनकी बातें सुनकर लज्जा से प्रेमा ने अपना सर नीचे झुका लिया।

इधर जब इंटरवल हुआ तो प्रेमा को न देखकर वह पुलिस कर्मचारी सन्न रह गया। उसने अपने मन में कहा—'एक सुराग जो लगने वाला था। वह भी इस सत्यानाशी चित्र के कारण नहीं लग सका। अवश्य उस लड़की ने मेरी चाल समझ ली, अन्यथा वह नहीं जाती। परन्तु इतना तो निश्चित है कि

उस लड़की की जानकारी में ठाकुर साहब रह रहे हैं।

वह हताश और खिन्न-मन से सिनेमा-हाल के बाहर चला आया और चारों ओर उसकी खोज की, पर वह कहीं नजर नहीं आई। वह अपने निवास-स्थान को लौट गया और रात-भर अपने भाग्य को कोसता रहा। उसने अपने मन में कहा—'अगर मैं ठाकुर को पकड़ पाता तो अवश्य असिस्टेण्ट सब-इन्सपेक्टर से इन्सपेक्टर हो गया होता। पर भाग्य जो न करे।'

उस दिन से वह ठाकुर धनुषधारी सिंह के मकान पर सजग रहने लगा। आने-जाने वालों की ओर वह बहुत ही सावधानी से देखता था। परन्तु प्रेमा का दर्शन उसे पुनः नहीं हुआ। हाँ, शनिवार के दिन दोपहर को जब प्रेमा कालेज से अपनी दो-तीन सहेलियों के साथ लौट रही थी तब एकाएक उसकी नजर प्रेमा पर गई और वह प्रसन्न हो उठा। उस समय वह बाजार से कपड़ा लाने जा रहा था। वह मन-ही-मन अपने भाग्य की सराहना करते हुए कहने लगा—'आखिर ठाकुर साहब की गिरफ्तारी मेरे ही हाथ से लिखी हुई है।'

वह लौट पड़ा और प्रेमा के पीछे-पीछे चलने लगा। प्रेमा ने भी उसे देखा, और पहचान लिया। कुछ रूखे शब्दों में उससे पूछा—'महाशय, आप कौन हैं और क्यों हम लोगों का पीछा कर रहे हैं?'

उत्तर में उस पुलिस कर्मचारी ने कहा—'आपसे मुझे क्या प्रयोजन? मैं तो बाजार आया हूँ। आप अपने पथ पर हैं और मैं अपने पथ पर हूँ।'

प्रेमा—'खैर, अगर आपने मेरा साथ नहीं छोड़ा तो आपका कुशल नहीं है।'

प्रेमा की बातें सुनकर दो-चार पथिक खड़े हो गये और उस व्यक्ति की भर्त्सना करते हुए कहने लगे—'दूसरों की बहू-बेटियों का पीछा करना आजकल एक फैशन-सा हो गया है। इधर लड़कियों का शिक्षण-संस्थाओं में जाना या स्वतन्त्रतापूर्वक घूमना दुश्वार हो गया है।'

वह पुलिस कर्मचारी कोई भी प्रतिवाद किये बिना दूसरी गली से निकल गया। उसने अपने मन में कहा—'जब भाग्य मनुष्य का साथ नहीं देता है तब बुद्धि कोई काम नहीं करती है। अवश्य ठाकुर साहब से यह लड़की सम्बन्धित है। उसने मुझे पहचान लिया है। अगर ऐसा नहीं होता तो वह और पुरुषों पर न बिगड़ कर मुझ पर ही क्यों आपे से बाहर हो जाती।'

प्रेमा जब अपने मकान पर पहुँची तब ठाकुर साहब को न देखकर वह घबरा गई। उसने पूछा—'ठाकुर साहब कहाँ हैं ?'

उसकी माँ कुन्ती ने उत्तर दिया—'बेटी, पुलिस को ठाकुर साहब का पता लग गया था। ठाकुर साहब के अपने घर से जाने के दस मिनट बाद ही पुलिस ने इस मकान पर छापा मारा। परन्तु उन्हें न पाकर वह निराश होकर लौट गई।'

प्रेमा—'पुलिस को कैसे पता चला कि वे यहाँ छिपे हुए हैं ?'

कुन्ती--'पुलिस का दूसरा काम क्या है ? जब यह खूँखार व्यक्ति को पकड़ लेती है तब ठाकुर साहब किस खेत की मूली हैं। आज सवेरे प्रताप के साथ पुलिस का एक आदमी यहाँ आ धमका था और वह ठाकुर साहब को देख गया था। पर ठाकुर भी बहुत चालाक हैं। आखिर राज खानदान के आदमी ठहरे। उस व्यक्ति को देख उन्हें पुलिस का सन्देह हुआ। लगभग ग्यारह बजे मुझे बुलाकर उन्होंने कहा कि आज उनका मन उद्विग्न-सा हो रहा है। यहाँ रहने में उन्हें भय मालूम हो रहा है। अतएव वे चल पड़े। मैंने रोका भी पर वे माने नहीं, चले गये। ज्योंही वे सड़क की दूसरी ओर पहुँचे त्योंही पुलिस का एक दल यहाँ आ पहुँचा। वे फुटपाथ पर खड़े-खड़े पुलिस का तमाशा देख रहे थे और जब पुलिस लौटने लगी तब वे सामने के जलपान-गृह में प्रवेश कर गये। पीछे प्रताप आया और उन्हें मोटर में बिठाकर ले गया।'

अब ठाकुर साहब किस स्थिति में रहेंगे ?' कह कर प्रेमा रो पड़ी।

उसकी आँखों के आँसू को पोंछते हुए कुन्ती ने कहा—'तुम क्यों रोती हो ?' अगर ठाकुर साहब पकड़े जायेंगे तो उन्हें कुछ नहीं होने वाला है। आजकल मुकदमे की जीत और हार तो रुपये पर होती है। रुपया खर्च करो और चोरी, डकैती, खून और भयानक-से-भयानक अपराध से बच जाओ। पुलिस घूसखोर होती है। कोर्ट में घूस चलता है। जहाँ देखो, वहीं घूस का बाजार गर्म रहता है। जब चाँदी के चन्द टुकड़ों पर पुलिस अफसर और न्यायाधीश गिर जाते हैं तब ठाकुर साहब के लिए इस मुकदमे से निकल जाना कौन-सी बड़ी बात है। जब सरकार को कोई गवाह नहीं मिलता है तब वह ठाकुर साहब को फाँसी या कालापानी की सजा कैसे दे सकती है। सबसे बढ़कर तो बात यह है कि ठाकुर धनुषधारी सिंह ऐसे सुप्रसिद्ध वकील जिसके पुत्र हैं, उन्हें

निर्दोष घोषित होकर मुक्त होने में कोई सन्देह है क्या ?'

प्रेमा—'ठाकुर धनुषधारी सिंह अच्छे वकील हैं।'

कुन्ती—'तुम जानती नहीं हो ? बनारस के इने-गिने वकीलों में उनकी गिनती होती है। तुम्हारे पिता कह रहे थे कि वकालत से उन्होंने अच्छी सम्पत्ति अर्जित की है। घर के तो वे अच्छे जमींदार हैं और यहाँ भी एक लाख रुपये की लागत से उन्होंने मकान बनवाया है। मकान कितना सुन्दर है। आधुनिक ढंग का है। ठाकुर साहब के यहाँ से जाने का मुझे दुःख है। थोड़े ही दिनों में वे हमारे परिवार में मिल-जुल गये थे। भगवान करे वे मुकदमा से मुक्त हो जाएँ और हम लोग उनका अभिनन्दन करें।'

प्रेमा—'देखो, क्या होता है ?'

इधर प्रताप ने ठाकुर जयपाल सिंह को ट्रेन में चढ़ा कर इलाहाबाद के लिये टिकट दिया और एक पत्र भी। यहाँ पहुँचकर ठाकुर साहब ने उस पत्र के अनुसार अपने पुत्र के मित्र की तलाश की और उन्हीं के साथ रहने लगे। वे भी एक अच्छे वकील थे। उनके क्लर्क का नाम था विजय। विजय की अवस्था बीस साल से अधिक की नहीं रही होगी। वह पढ़ा-लिखा भी अधिक नहीं था। फिर भी वह काफी तेज था और चलता-पुर्जा आदमी था। उसके बनाये हुए मसवदे को देखकर वकील साहब दंग रह जाते थे। यही कारण था कि वकील साहब उसे बहुत चाहते थे। ठाकुर साहब के आने पर उनकी देखभाल करने की उसकी एक और ड्यूटी बन गई। एक दिन बहुत अनुरोध करके वह ठाकुर साहब को अपने मकान पर ले गया। उसका छोटा-सा मकान बहुत सुन्दर था। उस मकान में केवल चार कमरे थे। उनमें दो तो उसने स्वयं ले रखे थे और दो म्युनिसिपल स्कूल के अध्यापक को दे दिये। उस अध्यापक के सम्बन्ध में ठाकुर साहब विजय से पूछ ही रहे थे कि बाहर से वह अध्यापक आ पहुँचा और अपने सर से गाँधी टोपी उतारते हुए उसने ठाकुर से प्रश्न किया-'क्या ठाकुर साहब आजकल आप यहीं हैं ?'

उसे देखते ही ठाकुर साहब सन्न रह गये। काटो तो शरीर में खून नहीं। फिर भी वे बड़े धैर्यवान और साहसी व्यक्ति थे। उन्होंने मुस्कराते हुए पूछा—'हाँ, राजा उपाध्याय, मैं आजकल यहीं हूँ। क्रोध में मनुष्य को अनुचित-उचित का ध्यान नहीं रहता है। परन्तु पीछे उसे पश्चात्ताप करना पड़ता है। दीन

दयाल उपाध्याय ऐसे सज्जन व्यक्ति की हत्या का पाप मुझे शान्ति से नहीं रहने देता है। मृत्यु से खेलने वाला यह ठाकुर आज मृत्यु के भय से भागता फिरता है। परन्तु इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है, क्योंकि पाप ने मृत्यु या न्याय का सामना करने का साहस मुझमें नहीं रहने दिया है। उपाध्याय जी की जिन्दगी ही कितने दिनों की शेष रह गई थी। नाहक उनको मारकर मैंने अपने ऊपर कलंक लिया। सत्तर वर्ष के वे हो चले थे, बहुत रहते तो दो-चार वर्ष और जीवित रहते। जो काम प्रकृति करने वाली थी, उस काम को मैंने कर दिया और मेरी भी जिन्दगी कितने दिनों की रह गई है। दो-चार वर्ष हमको भी रहना है। मेरी भी अवस्था तो काफी हो गई है। दोनों तरह से मृत्यु मेरे सामने मुँह बाये खड़ी है। इसलिए अब मेरा फरार रहना उचित नहीं है?'

ठाकुर साहब और राजा उपाध्याय की बातचीत से विजय को यह समझने में देर नहीं लगी कि राजा उपाध्याय के चाचा की हत्या ठाकुर साहब ने की है। पुलिस के भय से वे भागते फिरते हैं। ठाकुर साहब हत्यारा है। यह सोच कर वह काँप उठा।

ठाकुर साहब ने राजा उपाध्याय से पूछा—'और तुम कुशल से तो हो न?'

एक दीर्घ साँस लेकर राजा उपाध्याय ने कहा—'मैं नहीं कह सकता ठाकुर साहब कि यह सम्वत् मेरे लिए कैसा बुरा दिन लेकर आया। उधर मेरे चाचा की हत्या आपने कर दी और इधर मेरी पत्नी मर गई।'

ठाकुर ने इसके लिये दुःख प्रकट करते हुए कहा—'सब समय का फेर है। क्या करोगे, धैर्य धारण करो। दुःख-सुख तो आता ही रहता है। अगर इच्छा हो तो दूसरी शादी कर लो।'

राजा उपाध्याय—'मुझ अधेड़ से कौन लड़की शादी करेगी। आप को भी इस दुर्दिन में अच्छा मजाक सूझा।'

उसकी बातों पर दुःख प्रकट करते हुए ठाकुर साहब ने कहा—'अरे उपाध्याय, तुम मुझको ऐसा आत्मविहीन क्यों समझते हो। मुझमें मानवता शेष नहीं है, ऐसा खयाल मत करो। अगर मैं इन कठिनाइयों में नहीं रहता तो अवश्य तुम्हारी शादी करवा देता। लेकिन तुम एक उपाय करो। अखबारों में शादी-विवाह के विज्ञापन निकलते रहते हैं। विधवा आश्रम और अनाथालयों में तुम्हारे योग्य बहुत स्त्रियाँ मिल जायेंगी। जरा इस पर ध्यान रखना।'

राजा उपाध्याय—'देखूंगा । अगर प्रबन्ध हो जायेगा तो कर लूंगा ।'

ठाकुर साहब जब उठकर चलने लगे तब उन्होंने राजा उपाध्याय से कहा – 'देखना, पुलिस को मेरा सुराग मत देना ।'

राजा उपाध्याय—'ठाकुर साहब, मैं इतना विश्वासघाती नहीं हूँ कि आपके फरार की बात ढोल पीट-पीट कर करता फिरूँ । अगर ऐसी बात रहती तो बक्सर के दारोगा चौबेजी को मैं बतला देता कि हत्यारा कौन है और किस पर मुकदमा चलेगा । आप मेरी ओर से निश्चिन्त रहिये ।'

ठाकुर साहब ने उसका समर्थन करते हुए कहा— 'हाँ उपाध्याय, तुम्हारा यह कहना ठीक है । तुमने पुलिस को मेरे सम्बन्ध में बिल्कुल अन्धकार में रखा ।'

यद्यपि उपाध्याय ने ठाकुर साहब को पूरा आश्वासन दिया था । पर ठाकुर साहब को उसके आश्वासन पर भी विश्वास नहीं हुआ और रात में उन्हें नींद नहीं आई । उनकी आत्मा कह रही थी कि उन्होंने एक निरपराध व्यक्ति की हत्या की है । इससे उन्होंने अपना लोक और परलोक दोनों नष्ट कर डाला है । थोड़ी समझ से काम लेने पर इतना बड़ा भयानक काण्ड नहीं होता । एक निर्दोष ब्राह्मण की हत्या करने से क्षत्रियत्व का परिचय नहीं मिल सकता है । ईश्वर और सरकार दोनों की दृष्टि में वे अपराधी हैं । मनुष्य को अपने कर्म का फल अवश्य भोगना होगा । अगर सत्य पर वे पर्दा डालेंगे तो सरकार के दण्ड से बच सकते हैं, किन्तु ईश्वरीय दण्ड से नहीं बच सकते । इसी चिन्ता में उनकी सारी रात व्यतीत हो गई । सवेरे उठकर त्रिवेणी में उन्होंने स्नान किया और संगम पर ही ब्राह्मणों, संन्यासियों को भोजन कराया तथा उन्हें दान-दक्षिणा देकर अपने निवास-स्थान पर लौटे । वकील साहब उस समय कोर्ट जाने की तैयारी कर रहे थे । उन्होंने बड़े सम्मान के साथ कहा—'चाचा, भोजन तैयार है, ठंडा हो जाएगा ।'

ठाकुर साहब ने उन्हें धन्यवाद देते हुए कहा--'बेटा, तुम्हारे घर में रहने से मुझे पूरा विश्राम मिला और तुमने मुझे यह अनुभव नहीं होने दिया कि मैं अपने घर पर नहीं हूं । मैं अभी भोजन करने के बाद चला जाऊँगा । तुम सपरिवार प्रसन्न रहो, मेरी यही कामना है ।'

वकील साहब--'ऐसा क्यों ?'

ठाकुर साहब—'निर्दोष मानव की हत्या का जो पाप मेरे सर पर सवार

है, वह मुझे चैन नहीं लेने देता है। चित्त सदा व्यग्र रहता है और मुझे शान्ति नहीं मिल रही है।'

'एक अपराधी को अपने घर में स्थान देना न्याय की दृष्टि से अपराध है।' यह सोचकर वकील साहब ने कहा—'अच्छा आप जा सकते हैं। हम लोगों की सेवा में जो कुछ कमी रह गई हो, कृपया उस पर ध्यान न देकर क्षमा करेंगे।'

ठाकुर साहब ने हँसते हुए कहा—'नहीं बेटा, किसी प्रकार की त्रुटि नहीं हुई। बहुत आराम के साथ मैं यहाँ रहा। अफसोस है कि विजय से मेरी भेंट नहीं हुई। मेरा आशीर्वाद उसे कह देना।'

वकील साहब ने 'अच्छा' कहकर उनके चरण-स्पर्श किये और कोर्ट में चले गये। इधर ठाकुर साहब ने भोजन किया और नौकरों को मिठाई खाने के लिए दस रुपये देकर बनारस के लिए चल पड़े।

उस दिन क्लास में लड़कों को पढ़ाने में राजा उपाध्याय का मन नहीं लग रहा था। उसका चित्त उद्विग्न हो रहा था। उसकी दशा पर प्रधानाध्यापक ने पूछा—'आज आपको अधिक चिन्तित और व्याकुल देखता हूँ। कोई विशेष कारण है क्या?'

एकान्त में प्रधानाध्यापक को ले जाकर राजा उपाध्याय ने कहा—'मेरे चाचा के हत्यारे ठाकुर जयपाल सिंह आजकल यहीं आये हुए हैं। इस सम्बन्ध में मैं क्या करूँ? समझ में नहीं आ रहा है।'

प्रधानाध्यापक—'पुलिस को सूचना क्यों नहीं दे देते हैं?'

राजा उपाध्याय—'मैंने ठाकुर साहब को वचन दे दिया है कि उनके आगमन की खबर मैं पुलिस को नहीं दूंगा।'

प्रधानाध्यापक—'आप भी मूर्ख ही रह गए। हाथ में आये हुए शत्रु को कभी नहीं छोड़ना चाहिए। अगर आप इस हत्यारे को नहीं पकड़वाते हैं तो स्वर्गलोक में आपके चाचा की आत्मा को कष्ट होगा और साथ ही न्याय के साथ आप धोखा करते हैं।'

राजा उपाध्याय—'तो पुलिस को मैं सूचित कर दूँ।'

प्रधानाध्यापक—'अवश्य, ऐसा अवसर पुनः आपको नहीं मिलेगा।'

राजा उपाध्याय तत्काल कोतवाली में गया और ठाकुर साहब के सम्बन्ध

में सूचना दे दी। पुलिस ने तत्काल वकील साहब का घर घेर लिया। पर सिंह घोर जंगल में चला गया था। शिकारी को हताश होकर लौटना पड़ा।

५

प्रेमा को देखते ही प्रताप सहसा मुस्करा उठा। उस मुस्कराहट के उत्तर में प्रेमा के अधरों पर भी मुस्कान की रेखाएँ दौड़ गईं। दोनों की आँखें एक-दूसरे के मुखड़ा देखने में अपने को भूल गईं। प्रताप के मुखड़े में ओज था और मालूम होता था कि उस सुकुमार के रूप पर मोहित होकर वीरता भी उसके साथ रह गई है। प्रेमा ने अपने मन में विचारा—'ऐसा तेजस्वी पुरुष जिस नारी को मिलेगा, वह अवश्य अपने भाग्य का उदय समझेगी। भगवान अगर मुझे इसके चरणों की दासी बना देता तो मेरा जन्म सार्थक हो जाता। ठाकुर साहब ने तो आश्वासन दिया है, पर भविष्य के गर्भ में क्या छिपा हुआ है, कौन कह सकता है। जब प्रताप के विवाह का प्रश्न उठेगा तब ठाकुर साहब को अपने वचन का स्मरण रहेगा ही कौन कह सकता है। अभी तो वे फरार अवस्था में हैं, इसलिए अपनी रक्षा के लिए कुछ भी बोल सकते हैं। परन्तु आश्वासन का मूल्य तो तब समझा जाएगा जब कि सारी विपदाओं को पार कर वे सुख की साँस लेंगे और प्रताप के साथ मेरे विवाह करने की घोषणा करेंगे।

और, प्रेमा का कमनीय मुखड़ा, शारीरिक बनावट, चंचल नयन और मृदुल हास ने प्रताप के मन को मोहित कर लिया। चकोर की भाँति वह उसके चन्द्रानन को देखने लगा। प्रेमा समझ गई कि प्रताप का मन उसकी सुन्दरता पर मचल उठा है। उसने हँसते हुए पूछा—'प्रताप, तुम मेरी ओर क्या देख रहे हो?'

प्रताप—'देख रहा हूँ तुम्हारे सौन्दर्य को और मन-ही-मन बधाई देता हूँ उस शिल्पी को, जिसने इस सलोनी मूर्ति के निर्माण में अपनी सारी निपुणता लगा दी है। तुम्हारा यह दिव्य-रूप सहज में ही मेरे हृदय को लुभा रहा है।'

आज प्रथम बार प्रताप के मुख से अपनी सुन्दरता की चर्चा सुनकर प्रेमा प्रसन्न हो उठी। फिर भी उसने मुस्कराते हुए पूछा – 'क्या तुम्हारा हृदय मेरे प्रति आकर्षित हो रहा है।'

उसका प्रश्न सुनकर प्रताप कुछ लज्जित-सा हो गया। किन्तु जब प्रेमा के मृगी-से नेत्र उसके समक्ष नाच उठे तब उसने अपना सारा संकोच त्याग कर कहा – 'प्रेमा, तुम्हारी मोहिनी सूरत ने मेरे मन को अपने वश में कर लिया है। अगर हम लोग दाम्पत्य-जीवन के सूत्र में बँध जाते तो कितना अच्छा होता।'

प्रेमा – 'हो तो बहुत सुन्दर। लेकिन रूढीवादी परम्परा को तोड़ने की हिम्मत किस में है ? क्या तुम अन्तर्जातीय विवाह करने का साहस कर सकते हो ?'

प्रताप--'हाँ प्रेमा, तुम्हारा कहना सही है। अन्तर्जातीय विवाह अभी समाज में प्रचलित नहीं हुआ है। फिर भी मैं प्रयास करूँगा कि हम दोनों का प्रेम निभ जाए और इसके लिए हम दोनों प्रणय-सूत्र में बँध जाएँ।'

प्रेमा—'ठाकुर साहब ने भी तो मुझसे कहा था कि प्रेमा, मैं तुमको अपने परिवार का शृंगार बनाऊँगा। इससे आशा बँध जाती है कि हम दोनों का विवाह होगा। पर भविष्य का निर्माता तो कोई और है।'

प्रताप—'देखो बाबा का क्या होता है ? वे इलाहाबाद से भी चल पड़े हैं। पर कहाँ है, नहीं कहा जा सकता। पिताजी भी बड़े चिन्तित हैं।'

प्रेमा—'अगर हम लोगों का भाग्य अच्छा होगा तो वे अवश्य निर्दोष घोषित होकर मुक्त हो जायेंगे।'

प्रताप—'हमारा तो विश्वास है कि वे अवश्य मुक्त होंगे और हम दोनों का पाणिग्रहण अवश्य सम्पन्न होगा।'

इस पर प्रेमा मुस्करा उठी। उस समय अनार के दाने के समान उसके सुन्दर दाँत विद्युत से चमक उठे।

प्रताप ने अपने मन में कहा—'इसके दाँत भी कितने सुन्दर हैं ? श्वेत मोती के समान इनमें चमक और सुन्दरता है और उसकी दोनों वेणियाँ काली नागिन की भाँति दोनों कंधों से होकर दोनों पार्श्व में लटक रही हैं। मालूम होता है कि चन्द्रमा की रक्षा का भार विधाता ने इन काली नागिनों पर छोड़ा है।

इस समय इसका मुखड़ा और भी कमनीय मालूम हो रहा है।'

इसी बीच उसका ध्यान भंग करते हुए प्रेमा ने कहा—'तुम्हारी आँखें कहाँ हैं, और मन कहाँ है ?'

प्रताप—'मैं यही सोच रहा हूँ कि नारी में कितनी प्रगति आ गई है। सूरदास ने कहा है—तापर एक मणिधार नाग। अगर वे आज होते तो एक न कहकर दो मणिधर नाग कहते। कहाँ नारी के माथे पर एक वेणी रहती थी और अब दो रहने लगीं। कहो पहले के युग में और आज के युग में कितना अन्तर है ?'

प्रेमा—'तुम बिल्कुल गलत कहते हो। नारी अभी प्राचीन युग से बहुत पीछे है और अभी उस युग तक पहुँचने में इसे सदियाँ लग जायेंगी।

प्रताप—'यह कैसे ?'

प्रेमा—'देखो ऋग्वेद के एक सूक्त में आया है जिसमें नारी के माथे पर चार वेणियों की चर्चा है। मोहेंजोन्द्रो की खुदाई में एक नारी की मूर्ति मिली है। उसकी भी चार वेणियाँ हैं। कहो, अभी हम लोग कितने पीछे हैं। किन्तु संतोष है कि हम प्रगति के पथ पर हैं।'

प्रताप—'तुम तो इतिहास के पन्ने उलटने लगीं। तुम्हारे कहने का आशय कि आज की नारी अपने शृंगार में प्राचीनकाल की नारियों से बहुत पीछे है।'

प्रेमा—मैं ऋग्वेद का उल्लेख कर गई और तुम आशय ही खोज रहे हो।' और वह हँस पड़ी।

प्रताप—'अच्छा, मैंने अपनी पराजय स्वीकार कर ली।'

प्रेमा—'यह हार तुम्हारे सब दिनों की है, कहकर प्रेमा चली गई।

६

कंचना अपने कमरे में कुछ गम्भीर मुद्रा में बैठी थी। वह प्रेमशंकर के साथ अपने भावी जीवन व्यतीत करने के सम्बन्ध में सोच रही थी। वह किसी

निर्णय पर पहुँच नहीं पाई थी कि एकाएक खिड़की से प्रेमा ने उसका ध्यान भंग करते हुए कहा—'क्या सोच रही हो बहन ?'

कंचना मन-ही-मन झल्ला उठी। फिर भी उठकर उसने किवाड़ खोल दिया। अन्दर प्रवेश कर प्रेमा कंचना के बिस्तर पर बैठ गई। कंचना ने पूछा—'कहाँ से आ रही हो ?'

प्रेमा—'आ तो रही हूँ घर से ही। किन्तु रास्ते में किशोरी मिल गई थी, इसीलिये कुछ देर हो गई।'

किशोरी का नाम सुनकर कंचना चौंक उठी। उसने पूछा—'क्या किशोरी कुछ कह रही थी ?'

'नहीं, वह कुछ कह तो नहीं रही थी' कहकर प्रेमा हँस पड़ी।

कंचना को अब सन्देह नहीं रहा कि किशोरी ने अवश्य उसके सम्बन्ध में उससे कुछ कहा है। प्रेमा ने देखा कि कंचना का मुख सूख गया है और कंचना ने प्रेमा के अधरों पर मुस्कान देखकर पूछा—'तुम्हारी व्यंग की मुस्कराहट से मुझे भय मालूम हो रहा है।'

प्रेमा—'इसमें भय की कौन-सी बात है ? जब तुम मुस्कराती हो तो मुझे भय नहीं मालूम होता है और मेरी मुस्कराहट पर तुमको भय मालूम होता है।'

कंचना—'हम दोनों की मुस्कराहट में अन्तर है। मैं प्रसन्नचित्त से मुस्कराती हूँ और तुम व्यंग-भाव से मुस्कराती हो।'

प्रेमा—'बहन, जो कुछ तुम बोलती हो उसमें तुम्हारे हृदय की भावना काम कर रही है।'

कंचना—'वही बात तो मैं कह रही हूँ। तुम्हारी मुस्कराहट में अवश्य कुछ रहस्य छिपा हुआ है।'

प्रेमा—'तुम स्वयं रहस्यमयी हो इसलिए तुम्हें सर्वत्र रहस्य ही नजर आता है।

इस पर कंचना का सन्देह और भी बढ़ गया। उसने खीझकर कहा—'स्पष्ट क्यों नहीं बोलती हो ? पहेली क्यों बुझा रही हो ?'

उत्तर देने के समय प्रेमा पुनः हँस पड़ी। कंचना ने कहा—'अजीब बात है। कहना हो तो कहो नहीं तो इस प्रसंग को छोड़ो।'

प्रेमा—'बहन, इसमें पहेली बुझाने की कोई बात नहीं है। किशोरी से मुझे

पता चला है कि तुम प्रेमशंकर से प्रेम करती हो।'

उसकी बातों पर कंचना के मुख का भाव बदल गया। वह उसकी बातों पर सन्न रह गई। उसने कहा—'प्रेमा, किशोरी ने मुझ पर बहुत बड़ा कलंक लगाया।'

प्रेमा—'बहन, अफवाह में अवश्य कुछ-न-कुछ सत्य का अंश रहता है। सत्य पर पर्दा नहीं डाला जा सकता है। प्रेमशंकर से किशोरी और तुम दोनों प्रेम करती हो। इस स्थिति में इसका पर्दाफाश होना निश्चित है।'

कंचना अब उसका विरोध नहीं कर सकी और वह उदास हो गई।

प्रेमा ने हँसते हुए कहा, 'बहन, खिन्न क्यों हो गई ?'

कंचना -- 'प्रेमा, यह बात किसी और से मत कहना।'

प्रेमा – 'मुझे क्या प्रयोजन है कि मैं ढोल पीटती फिरूँ। मैं क्यों चाहूँगी कि तुम्हारा उपहास हो। लेकिन एक दिन अवश्य यह रहस्य प्रकट होकर रहेगा। तुम प्रेम करती हो प्रेमशंकर से जो बनारस का बदनाम व्यक्ति है। उसकी दृष्टि में नारी के सतीत्व का कोई मूल्य नहीं है। एक रईस के पुत्र होने के नाते उसके सारे दुष्कर्मों पर पर्दा पड़ा हुआ है। उसके विरुद्ध न तो पुलिस कुछ कार्यवाही करती है और न समाज कुछ बोलता है। क्या तुमको पता नहीं कि प्रेमशंकर ने कितनी सुन्दरियों का सौन्दर्य लूटा है। उनकी रूप-सुधा का पान कर दूध की मक्खियों के समान उनका परित्याग कर दिया। उससे उत्पन्न कितने शिशु प्राण रहते माँ गंगा की गोद में सदा के लिये सो गए और उनकी माताएँ आँसू के घूँट पीकर रह गयीं। फिर भी अपने माँ-बाप और स्वजनों के सम्मुख तो उन्हें लज्जित होना ही पड़ा। क्या तुम सोचती हो कि तुम्हारी यह दशा नहीं होगी ? क्या तुम सोचती हो कि प्रेमशंकर अन्य सुन्दरियों के समान तुम्हारा रसपान कर तुमको विलग नहीं करेगा ? वह किशोरी से भी प्रेम करता है और तुमसे भी करता है। ऐसा प्रेम तुमने कहीं देखा है ? कहीं एक म्यान में दो तलवारें रहती हैं ? वह तो तुम्हारे साथ खिलवाड़ कर रहा है और अपनी इच्छा की पूर्ति होते ही तुम दोनों को विलग कर देगा।'

कंचना – 'किसी के प्रति इतनी घृणित धारणा नहीं बना लेनी चाहिये। मैं नहीं समझती हूँ कि प्रेमशंकर इतना गिरा हुआ व्यक्ति है, जो मेरे साथ अन्याय करेगा। हम दोनों का प्रेम सच्चा है। और, जो तुम किशोरी की बात करती

हो, वह तो तुम्हारी भ्रान्ति है। किशोरी तो उसके मनबहलाव का एक साधन है। मेरे समक्ष प्रेमशंकर की दृष्टि में किशोरी का कोई मूल्य नहीं है। यह मैं मानती हूँ कि किशोरी कोई कम रूपवती नहीं है। परन्तु मेरे सामने उसकी कान्ति फीकी पड़ जाती है। प्रेमशंकर स्वयं अपने मुख से ऐसा कह रहा था।

प्रेमा—'यही तुम्हारी भ्रान्ति है। रूप के कीड़े ऐसे ही होते हैं। तुम्हारे सामने वह किशोरी की निन्दा करेगा और किशोरी के सामने तुम्हारी। अपनी वासना की तृप्ति और मन की प्यास बुझाने के लिए वह अपनी धूर्तता का उपयोग कर तुम दोनों को अपने जाल में फँसाये रहेगा। वह न तो किशोरी से प्रेम करता है और न तुमसे। वह प्रेम का उपासक नहीं है। वह उपासक है तुम्हारे रूप और यौवन का। जिस दिन तुम्हारा यह यौवन ढल जायेगा और तुम सूखे प्रसून के समान मुरझा जाओगी उस दिन प्रेमशंकर तुम्हारी ओर देखेगा भी नहीं। इसलिये सावधानी से पग उठाओ। अगर ऐसा नहीं करोगी तो भविष्य में तुम्हें आँसू बहाने होंगे और तुम्हारे पाप का प्रायश्चित्त न केवल तुमको बल्कि तुम्हारे पिता को भी करना होगा।'

कंचना—'जो कुछ हो। जिस प्रेम पथ पर मैं आ गई हूँ, उससे पीछे मुड़ना मेरे लिए सम्भव नहीं है।'

प्रेमा—'ठीक है, बढ़ती जाओ। लेकिन देखना आगे बढ़ने पर कहीं खाई में मत गिरना।'

कंचना को उसकी बातों पर क्रोध आ गया। उसने रूखे शब्दों में कहा—'यह बहुत बुरी बात है कि किसी के सुख और सौभाग्य को देखकर तुमको जलन होती है।'

प्रेमा—'मैं क्यों तुम्हारा सुख और सौभाग्य देखकर जलूँगी। क्या मैं प्रेमशंकर से प्रेम करना चाहती हूँ? भगवान तुम्हारे लिए सुन्दर दिन बनाए। यही मेरी कामना है।'

कंचना—'अच्छी कामना है तुम्हारी। मुझको चली हो शिक्षा देने और अपने को दूध का धोया बनाती हो। कई दिन तो मैंने स्वयं तुम्हें वकील साहब के पुत्र प्रताप के साथ गंगा तट और पार्कों में देखा है।'

प्रेमा—'देखा होगा। परन्तु इसमें कोई रहस्य नहीं है। मैं उससे प्रेम करती हूँ। पर हम दोनों ने अपने कुल की मान-मर्यादा का उल्लंघन नहीं किया है।

तुम्हारे समान हम दोनों प्रेम-सूत्र में नहीं बंधे हैं। हाँ, मित्र के रूप में अवश्य रहते हैं। अगर दोनों कुल की स्वीकृति होगी तो हम दोनों दाम्पत्य जीवन के सूत्र में भी बंध सकते हैं।'

कंचना —'चुप रह। दिन-रात उसके साथ शहर में घूमती हो और मान-मर्यादा की सीमा का उल्लंधन नहीं करती हो। आई हो, मुझको ही शिक्षा देने।'

'हाँ, घूमती अवश्य हूँ। परन्तु तुम्हारे समान अपना मुखड़ा किसी पुरुष के अधरों के सामने नहीं ले जाती हूँ।' यह कहती हुई प्रेमा वहाँ से चल पड़ी। वह कमरे से निकलकर ज्योंही बरामदे में आई त्योंही प्रेमनाथ मिल गये। वह उन्हें नमस्ते कहकर उनकी बगल से निकलना ही चाहती थी कि प्रेमनाथ पूछ बैठे—'बेटी, कैसे आई थी और क्यों चल पड़ी ?'

प्रेमनाथ की आवाज सुनकर कंचना का हृदय काँप उठा। वह अपने मन में कहने लगी—'कहीं प्रेमा मेरा भेद पिताजी के समक्ष न खोल दे।'

प्रेमा ने कहा -'चाचाजी, आई थी यों ही आप लोगों के दर्शन के लिए। बहुत देर से बैठी हुई थी। अब जाती हूँ।'

प्रेमनाथ—'जाओ सुखी रहो।'

प्रेमा ने पुनः उन्हें नमस्ते किया और सीढ़ियों को पार करती हुई नीचे चली आई।

इधर प्रेमनाथ ने आरामकुर्सी पर बैठते हुए कहा—'सुना है कंचना तुमने कुछ···।'

इस पर कंचना का दिल दहल उठा। उसने भयमिश्रित शब्दों में कहा—'क्या पिताजी ?'

प्रेमनाथ —'प्रेमा का विवाह प्रेमशंकर के साथ होने जा रहा है।'

यह सुनकर कंचना चौंक उठी और आश्चर्य के साथ पूछा—'क्या प्रेमा का विवाह प्रेमशंकर के साथ होने जा रहा है ?'

प्रेमनाथ—'हाँ, प्रेमा का विवाह प्रेमशंकर के साथ होने जा रहा है। क्या प्रेमा ने इस सम्बन्ध में तुम्हें कुछ कहा नहीं ?'

प्रेमनाथ की बातों ने कंचना के हृदय पर वज्र के समान आघात किया। वह विकल हो उठी। उसके मुख-मण्डल पर गम्भीर चिन्ता की रेखायें दौड़ गयीं।

प्रेमनाथ ने भी देखा कि कंचना का मुख म्लान हो गया है। अपने पिता से अपने हृदय को छिपाने के लिए वह दूसरे कमरे में जाकर बैठ गई और अपनी चिन्ता-ज्वाला को अश्रुधारा से शान्त करने लगी। इसके साथ ही वह मन-ही-मन प्रेमा को कोसती हुई कहने लगी—'आई थी मुझे उपदेश देने। मेरा संसार उजाड़कर अपना संसार बसाना चाहती है। उसकी सहानुभूति के शब्दों में कैसे प्रपंच छिपे हैं। वह मेरे प्रेम में बाधक होना चाहती है। परन्तु उसे खयाल रखना चाहिए कि मैं उसका स्वार्थ सिद्ध नहीं होने दूँगी। प्रेमशंकर की छाया में भी उसे नहीं आने दूँगी।'

इसी बीच प्रेमनाथ की आवाज पर वह आँचल से आँसू पोंछती हुई उनके सम्मुख आ खड़ी हुई। प्रेमनाथ ने कहा—'आज दीवान गौरीशंकर ने मुझे नौका-विहार के लिये आमन्त्रित किया है। दस बजे रात में जाना होगा। क्या तुम भी चलोगी?'

कंचना—'नहीं पिताजी, मैं नहीं जाऊँगी।'

प्रेमनाथ ने हँसते हुए कहा—'हाँ बेटी, घर में ही रहना। मैं अभी दुकान जाता हूँ। हिसाब-किताब देखकर लौटता हूँ।'

कंचना—'जाइए।'

प्रेमनाथ दुकान की ओर गये और इधर कंचना घायल मृगी के सदृश छट-पटाती हुई प्रेमशंकर के पास पहुँची। उसे देखते ही प्रेमशंकर मुस्करा उठा। पर कंचना के अधरों पर न तो मुस्कराहट थी और न उसका बदन हरा था, बल्कि उसका कमल मुख मुरझाया हुआ था। प्रेमशंकर को समझने में देर नहीं लगी कि कंचना को कोई हार्दिक आघात पहुँचा है। उसने हँसते हुए पूछा—'तुम्हारी सूरत आज रोनी-सी क्यों हो रही है।'

उत्तर देने के समय कंचना की आँखों में आँसू छलछला आए। उसने कहा—'मैंने स्वप्न में भी ऐसी कल्पना नहीं की थी कि तुम मुझको धोखा दोगे। बलिदान के बकरे को जैसे दूब और अक्षत दिखलाकर बलिदान किया जाता है उसी प्रकार तुमने मेरी आंखों के समक्ष सुन्दर भविष्य का खाका खींचकर मेरा सर्वनाश कर डाला।'

प्रेमशंकर ने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा—'यह तुम क्या बोल रही हो? मैंने तुम्हारा क्या अनहित किया है? बिना प्रमाण के ऐसा दोषारोपण करना ठीक

नहीं है ।'

खिन्न भाव से कंचना ने कहा—'मैंने सुना है कि श्यामाचरण की पुत्री प्रेमा से तुम विवाह करने जा रहे हो ?'

'नहीं तो ।' आश्चर्य प्रकट करते हुए प्रेमशंकर ने कहा । श्यामाचरण को तो मैं जानता हूँ किन्तु प्रेमा की छाया भी मैंने नहीं देखी है । मैं जानता भी नहीं हूँ कि वह काली है या गोरी ? तुमको किसने कहा कि मैं उसका पाणिग्रहण करने जा रहा हूँ । तुम्हारे सिवा किसी भी सुन्दरी का स्थान मेरे हृदय में नहीं है । तुमको किसने ऐसा कहा ?'

कंचना—'पिताजी अभी कह रहे थे ।'

प्रेमशंकर—'यह सम्भव है कि श्यामचरण और मेरे पिताजी के बीच ऐसी वार्ता हुई हो । परन्तु मुझे इसकी थोड़ी भी जानकारी नहीं है । अगर उनमें बात भी हुई हो तो भी तुम्हारा कुछ बिगड़ने को नहीं है । मैं तो प्रेमा से विवाह करूँगा नहीं ।'

कंचना—'यही तो मैं कहती थी कि प्रेमशंकर मुझे ठुकराकर प्रेमा को नहीं अपनायेगा ।'

प्रेमशंकर—'मेरे प्रति तुम थोड़ी भी शंका मत करो ।'

कंचना—'किन्तु तुम किशोरी को प्यार करते हो ।'

प्रेमशंकर—'तुम क्या कहती हो ? मैं किशोरी को प्यार करता हूँ । किशोरी केवल मेरे मनबहलावे का साधन है । तुममें और किशोरी में पूरा अन्तर है । तुम आकाश का चाँद हो और किशोरी भूतल का जुगनू है । तुम्हारे सामने उसकी कौन पूछ ?'

कंचना—'यही तो मैं कहती हूँ । परन्तु प्रेमा यह मानने को तैयार नहीं है ।'

प्रेमशंकर—'हम दोनों के प्रेम का रहस्य उसे कैसे मालूम हुआ ?'

कंचना—'उसे किशोरी ने कहा ।'

इतना सुनते ही प्रेमशंकर क्रोध से तिलमिला उठा । उसने कहा—'इस रहस्य को प्रकट करने के अपराध में उसे भयानक दण्ड भोगना होगा । उसकी सारी जिन्दगी आँसू की लड़ियाँ पिरोती बीतेगी । उसने न तो अपनी मान-मर्यादा का खयाल रखा और न हम लोगों का ।'

कंचना—'किशोरी बहुत ही फूहर लड़की है। प्रेमा ने जब उसकी चर्चा की तब मैं दंग रह गई।

प्रेमशंकर—'प्रेमा से तुम दोनों का परिचय कब से है?'

कंचना—'हम तीनों साथ पढ़ती थीं।'

प्रेमशंकर—'तब तो पुराना परिचय है।'

कंचना—'आज पिताजी दीवान साहब के साथ नौका-विहार में शामिल होंगे।'

प्रेमशंकर—'कहो तो मैं तुम्हारे लिए अलग प्रवन्ध कर दूं।'

कंचना—'नहीं, मैंने पिताजी को कहा है कि मैं नौका-विहार में सम्मिलित नहीं होऊँगी।'

प्रेमशंकर—'ठीक है। रहने दो।'

कंचना—'बहुत देर हुई। अब मैं चलती हूँ।'

और, वह नमस्ते कहकर चली गई।

उसके जाने के बाद ही उस कमरे में किशोरी ने प्रवेश किया। उसके प्रसन्न मुखड़े को देखकर प्रेमशंकर मुस्करा उठा।

किशोरी ने हँसते हुए पूछा—'क्यों मुस्करा रहे हो?'

प्रेमशंकर—'तुम्हारे चन्द्रानन को देखकर मेरा मन खिल उठता है। तुम्हारे सौन्दर्य के समक्ष कंचना की कान्ति मन्द पड़ जाती है। तुम्हारी सुन्दरता प्रकृति की देन है और उसका रूप बनावटी है।'

इसी बीच वहाँ दीवान गौरीशंकर आ पहुँचे। उन्हें देखते ही वे सन्न रह गए। किशोरी ने लज्जा से अपना सर नीचे झुका लिया। दीवान साहब कुछ बोले नहीं। उल्टे पाँव लौट गये और बरामदे में चिन्तामग्न होकर बैठ गए। वे अपने मन में सोच रहे थे—'पूत-सपूत हो तो अच्छा और अगर वह कपूत निकल गया तो उससे निर्वंश अच्छा। पूत दीपक है, जिससे प्रकाश फैलता है और कपूत उसकी कालिमा है जिससे दिशायें काली हो जाती हैं। प्रेमशंकर के कारण मेरा खानदान बदनाम हो गया। चारों ओर इसकी निन्दा सुनी जाती है। भला यह किशोरी से प्रेम करता है? इस गरीब लड़की का यह जीवन बर्बाद कर रहा है। यह भोली-भाली किशोरी इस धूर्त के बहकावे में आ गई। इसने अपने भविष्य का कुछ भी खयाल नहीं किया। कंचना के सम्बन्ध में भी

शिकायत सुनी जा रही है। वह तो चतुर लड़की है। वह इसके फंदे में कैसे फँस गई ? धूर्त पुरुषों के लिये कुछ भी असम्भव नहीं है। उनके जाल में स्त्रियों के फँसने में कुछ भी देर नहीं लगती है। पुरुष नारी के सामने प्रेम की बीन बजाता है और नारी उसे देखकर मुग्ध हो जाती है। वह उसमें प्रवेश करते ही दलदल में फँस जाती है, उससे उसका निकलना असम्भव हो जाता है। कंचना और किशोरी की भी यही हालत होगी। भला क्या सोचकर श्यामचरण अपनी पुत्री का विवाह इस अभागे के साथ करना चाहते हैं। इस चरित्रहीन के साथ उस बेचारी का भी जीवन बर्बाद हो जाएगा। यद्यपि वात निश्चित हो चुकी है तथापि कल सवेरे मैं उसे खत्म कर दूँगा। मैं स्पष्ट शब्दों में श्यामाचरण को कह दूँगा कि इस आवारा लड़के के साथ विवाह कर आप अपनी पुत्री का भविष्य अन्धकारमय मत बनावें।'

किशोरी ने किवाड़ की आड़ से झाँककर देखा। दीवान चिन्तामग्न होकर वैठे थे। उसने लौटकर प्रेमशंकर को कहा—'दीवान साहब किसी गम्भीर चिंता में पड़े हैं।'

प्रेमशंकर ने मुस्कराते हुए कहा—'तुम चुपचाप चली जाओ। अगर वे तुमको पुकारें भी तो घूमकर उन्हे मत देखना। अपना रास्ता लेना।'

किशोरी ने वैसा ही किया। दवे-पाँव वह दीवान साहब की बगल से निकल गई। परन्तु बरामदे से उतरकर जब वह आँगन में पहुँची तव दीवान साहब की नजर उस पर पड़ी। उन्होंने उसे पुकारा; पर उसने उनकी ओर देखा तक नहीं। वे उसे पुकारते रह गए और वह नौ दो ग्यारह हो गई। इससे दीवान साहब को क्रोध आ गया। उन्होंने प्रेमशंकर को पुकारकर पूछा—'यह छोकरी तुम्हारे पास किसलिए आई थी ?'

प्रेमशंकर ने तत्काल उत्तर दिया—'किशोरी यह पूछने आई थी कि नौका-विहार के लिए कितने फूल और कितनी मालाओं की आवश्यकता होगी ?'

दीवान साहब—'आज तुमने नौका-विहार की योजना बनाई है ?'

प्रेमशंकर—'नहीं, मेरी योजना नहीं है। आपकी योजना है। मैंने सुना है कि आज आप अपने मित्रों के साथ नौका-विहार करेंगे।'

दीवान साहब—'मेरी योजना किशोरी को और तुमको कैसे मालूम हुई ?'

अब प्रेमशंकर को निकलने का कोई रास्ता नहीं रहा। वह छत की ओर देखने लगा। दीवान साहब ने पुनः कड़े शब्दों में कहा—'तुम्हारा जन्म अगर हमारे कुल में नहीं होता तो अति उत्तम होता। उससे मेरी आत्मा को शाँति मिलती। तुम्हारी निंदा सुनकर मेरा हृदय रो उठता है। तुम तो कामी कुत्ते बन गए। अरे मूर्ख, अगर तुमको अपनी प्रतिष्ठा का खयाल नहीं है तो कम-से-कम कुल की मान-मर्यादा पर तो ध्यान रखो। अगर आज से कभी भी मैंने तुम्हारी निन्दा सुनी तो तुम्हें घर से निकाले बिना नहीं रहूँगा।'

प्रेमशंकर अपने पिता के मुख से अपनी भर्त्सना सुनता रहा, पर उसने कोई उत्तर नहीं दिया। दीवान साहब क्रोध से काँपते हुए उठकर अपने उद्यान की ओर चले गए। उस समय कमल फूलों की क्यारियों में घूम रहा था। झुककर उसने दीवान साहब को सलाम किया और उनके बैठने के लिए चम्पा फूल के वृक्ष की छाया में एक आसन बिछा दिया। उस पर बैठते हुए दीवान साहब ने उससे पूछा—'कमल, तुम्हारी किशोरी कहाँ है?'

दीवान साहब के मुख से किशोरी का नाम सुनकर कमल का कलेजा काँप उठा। उसने अपने मन में कहा—'दीवान साहब क्यों किशोरी का स्मरण कर रहे हैं। क्या उसके लुभावने रूप को देखकर इनका भी मन मचल उठा है।'

कमल को चुपचाप देखकर दीवान साहब ने गरजते हुए कहा—'अरे बोलते क्यों नहीं? कहाँ गई तुम्हारी छोकरी?'

कमल ने हाथ जोड़कर कहा—'बाबूजी, वह घर में होगी। देखता हूँ।' और वह अपने मकान की ओर चला। उसका मकान बाग के समीप ही था जिसे दीवान साहब के पूर्वजों ने कमल के पूर्वजों के लिये बनवा दिया था।

दरवाजे में प्रवेश करते ही कमल ने पूछा—'किशोरी कहाँ है?'

घर से निकल कर किशोरी ने कहा—'क्या है पिताजी?'

कमल ने देखा कि किशोरी का चेहरा सूखा हुआ है और भय से उसका शरीर काँप रहा है।

कमल ने उससे पूछा—'तुम घबराई हुई क्यों मालूम दे रही हो? दीवान साहब तुमको बुला रहे हैं।'

दीवान साहब का नाम सुनते ही किशोरी के नेत्र सजल हो उठे। उसने कहा—'पिताजी, मैं दीवान साहब के सामने नहीं जाऊँगी।'

कमल—'क्या तुम डर रही हो ? मेरे सामने संसार की कोई भी शक्ति ऐसी नहीं है जो तुम पर नजर उठाने का साहस करे। अगर किसी ने ऐसा दुस्साहस किया तो मैं उसकी आँखें निकाल लूँगा। आखिर जीवित रहकर मैं क्या करूँगा। जबकि मेरी आँखों के समक्ष मेरी इज्जत लुट जायेगी। अगर दीवान साहब की नियत खराब होगी तो मैं अपने हाथों से उनके प्राण ले लूँगा। तुम निर्भय होकर मेरे साथ चलो।'

किशोरी – 'नहीं पिताजी, मुझे उनके सामने मत ले जाइये। मैं जानती हूँ कि वे मुझ पर मोहित नहीं हैं किन्तु ·····।'

कमल—'किन्तु, परन्तु मैं कुछ नहीं जानता हूँ। मेरे साथ चलने में तुमको भय क्यों मालूम हो रहा है ?'

किशोरी ने इस पर रोते हुए कहा—'पिताजी, भय और साहस की कोई बात नहीं है। फिर भी ऐसा रहस्य है कि दीवान साहब के समक्ष जाने में मेरी आत्मा रोकती है।'

'अरी, तुम आत्मा-परमात्मा के सम्बन्ध में सोचने लगी।' कहते हुए कमल ने उसकी बाँह धर कर खींचा। इस पर वह चिल्लाने लगी। उसका रुदन सुन-कर दीवान साहब स्वयं बाग से उठकर कमल के आँगन में पहुँच गये। उन्हें देखते ही किशोरी की माँ ने अपना घूँघट गिरा लिया और कमल ने किशोरी की बाँह छोड़ दी।

किशोरी की सारी देह काँप रही थी और उसकी आँखों से गंगा-यमुना प्रवाहित हो रही थी। दीवान साहब ने किशोरी को धैर्य बँधाते हुए कहा—'बेटी, मैं तो तुमको कुछ कहता नहीं हूँ कि तुम इतना अधीर होकर रो रही हो। चुप हो जाओ।'

कमल ने अपने आँगोछे से किशोरी के आँसू पोंछते हुए कहा—'अरी पगली, तुम रोती क्यों हो ? दीवान साहब तो कुछ कह नहीं रहे हैं। पर इन आश्वा-सनों का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ रहा था और वह अधीर होकर रोती ही जा रही थी। उसकी दशा पर दीवान साहब का बड़ी दया आई। उन्होंने कहा--'बेटी, मैं तुमसे कुछ कह नहीं रहा हूँ केवल इतना ही जानना चाहता हूँ कि आज मैंने नौका-विहार का जो आयोजन किया है वह तुमको कैसे मालूम हुआ ?'

हिचकियाँ लेते हुए किशोरी ने कहा--'दीवान साहब, नौका-विहार की चर्चा प्रेमशंकर कर रहे थे। शायद इसकी सूचना उन्हें कंचना ने दी थी।'

दीवान साहब 'क्या कंचना वहाँ आई थी ?'

किशोरी --'हाँ, मेरे जाने के पूर्व वह वहाँ आई थी।'

दीवान साहब माथे पर हाथ धर कर बैठ गये और कमल ने आश्चर्यचकित होकर पूछा—'क्या बाबूजी, अभी यह प्रेमशंकर के पास से आ रही है।'

दीवान साहब—'हाँ, अभी तो यह उसी के पास से आ रही है। दोनों एकान्त में बैठे क्या बातें कर रहे थे, मैं नहीं जानता। पूछने पर प्रेमशंकर ने मुझसे कहा कि किशोरी नौका-विहार के लिए फूलपत्ती के सम्बन्ध में पूछने आई थी। इसमें कौन-सा रहस्य है, मुझे अब पता चला।'

दीवान साहब की बातों पर कमल की आँखें लाल हो गईं और क्रोध से उसका चेहरा तमतमा उठा। दाँत पीसकर वह किशोरी से पूछने लगा—'अरी शैतान लड़की, तुम प्रेमशंकर के पास क्यों गई थी ? क्या तुम मेरी पगड़ी में कालिख लगाने पर तुली हुई हो ! स्वप्न में भी मैंने तुमसे ऐसी कल्पना नहीं की थी। अजकल तुम दिन-रात गायब रहा करती हो। मैं क्या जानता था कि तुम प्रेम का सौदा करती फिरती हो।'

उसकी बातों पर जब किशोरी ने आँखें उठाकर उसकी ओर देखा तो क्रोध से काँपते हुए कमल ने उसके केश पकड़ कर उसे धरती पर गिरा दिया। किशोरी इस पर और भी अधीर होकर रोने लगी, दीवान साहब ने कमल का हाथ पकड़ लिया और बाग में जाकर बैठ गये। अपने माथे का पसीना पोंछते हुए कमल ने कहा—'बाबूजी, इस लड़की ने मेरा मस्तक नीचे कर दिया।'

दीवान साहब—'तुम भी पागल हो गए। इसमें किशोरी का क्या दोष है। दोष तो उस अधम प्रेमशंकर का है जिसने इस भोली-भाली लड़की को अपने जाल में फँसा लिया। अब क्रोध करने या हो-हल्ला करने से कुछ लाभ होने को नहीं है। इससे अपना ही उपहास होगा। हाँ, भविष्य के लिए सावधान रहने की की आवश्यकता है। किशोरी पर नियन्त्रण रखो।'

कमल—'बाबूजी, अब इसे मैं घर से बाहर पैर नहीं रखने दूंगा और इसकी शादी भी मैं शीघ्र ही कर दूंगा।'

दीवान साहब—'हाँ, लडकी अब युवावस्था में पहुँच गयी। इसे अपने घर

रखना ठीक नहीं है। इसका विवाह करने में ही तुम्हारा कल्याण है।'

कमल—'बाबूजी, आपका कहना ठीक है। अगर मुझे अपनी पगड़ी की सफेदी रखनी है तो जल्द से जल्द इसका विवाह कर दूँ, अन्यथा मेरे पुरखे नरक चले जायेंगे।'

दीवान साहब—'कमल, आज नौका-विहार की इच्छा थी। इसके लिये प्रेमनाथ को मैंने निमंत्रित भी किया है। इस स्थिति में उसे रद्द कैसे किया जा सकता है। हाँ, नृत्य-संगीत का आयोजन छोड़ दो। केवल प्रेमनाथ, तुम और मैं रहेंगे। कुछ फूल-पत्ती का भी नाव सजाने के लिए प्रबन्ध कर लेना।'

कमल—'अच्छा बाबूजी।

दीवान साहब—'मोहना और मधवा को कह दो कि वे मेरी नाव ठीक कर लें।'

कमल—'मोहना कलकत्ता से आ गया बाबूजी ?'

दीवान साहब—'हाँ, हाँ, दोनों आ गए। उनको आये हुए तो आज चार दिन हो गए।'

कमल—'अभी जाकर सरकार की आज्ञा उन्हें सुनाता हूँ।'

७

सरकार ने रघुनाथ चौबे पर मुकदमा चलाया कि उन्होंने चौकीदार की बातें क्यों न सुनीं और तत्काल माधोपुर गाँव में जाकर दीनदयाल उपाध्याय की लाश क्यों न जब्त की ? उनकी असावधानी से लाभ उठा कर ठाकुर जयपाल सिंह ने उपाध्याय जी की लाश जला दी और स्वयं फरार हो गये।

रघुनाथ चौबे ने अपने ऊपर लगाये गये अभियोग से इन्कार किया, लेकिन मुन्शी ने सरकार के पक्ष में साक्षी दी, जिससे उनके अपराध प्रमाणित हुए। न्यायालय ने उन्हें एक वर्ष की सख्त सजा और दो हजार रुपये जुर्माना किया। जुर्माने की रकम देने के लिए उनकी पत्नी के आभूषण बिक गये।

जेल की घड़ी बड़ी सुस्त चलती है। एक वर्ष रघुनाथ चौबे के लिए एक युग के समान बन गया। वे नित्य प्रातः उठकर तारीख और महीने की गिनती किया करते थे। जेल का जीवन उन्हें बहुत ही असह्य मालूम हो रहा था। उनके साथी थे—चोर, बदमाश, डकैत, गुण्डे और पाकेटमार। उनमें बहुत ऐसे थे जो चौबेजी के द्वारा गिरफ्तार किये गये थे और जेल की सजा काट रहे थे। जेल-अधिकारी भी उनके साथ दया या सहानुभूति नहीं दिखलाते थे। रात में वे जब सोने जाते थे तब उन्हें अपने अतीत के दिन याद आ जाते थे। उनकी आँखों के सामने उनकी शान-शौकत का जीवन मुस्कराता हुआ आकर खड़ा हो जाता था। आह! कितना सुन्दर जीवन था वह। सवेरे से शाम तक लोगों की भीड़ उनके यहाँ लगी रहती थी। बड़े-से-बड़े आदमी उनके सामने खड़े रहते थे और नजराने में नोटों के पुलिन्दे मेज पर रख देते थे। जिसके साथ वे मीठे शब्दों में बातें करते थे, वह अपने भाग्य का उदय समझता था और जिसकी ओर वे भौं टेढ़ी करके देखते थे वह अपने लिये दुर्भाग्य समझता था। उनकी क्रोधाग्नि में कितने घर जल गये और बहुतों के मुस्कराते हुए जीवन बर्बाद हो गये। कितने निर्दोष व्यक्तियों को उन्होंने फाँसी दिलवायी, जेल भेजवा दिया और कालापानी की सजा दिलवायी और उनकी दया से या पैसे की करामात से बहुत अपराधी जेल, कालापानी और फाँसी की सजा से बच गये। पर वे दिन अब कहाँ गये? स्वप्न तुल्य हो गये। इन बातों का स्मरण आते ही उनके नेत्र सजल हो उठते थे। उसी समय मुन्शी का स्मरण आते ही उनकी आँखें अंगार बन जाती थीं। मुन्शी की ही वजह से उन्हें जेल की अन्धेरी कोठरी में सड़ना पड़ रहा है। अगर मुन्शी ने चौकीदार का समर्थन नहीं किया होता तो उन्हें कभी भी जेल की सजा नहीं होती। उन्हें उस रात का भी स्मरण आया जब कि मुन्शी की अनुपस्थिति में उन्होंने उसके घर में प्रवेश किया था और उसकी षोड़शी पत्नी के साथ बलात्कार किया था। वह बेचारी फक-फक करके रो रही थी, परन्तु लज्जा के कारण चिल्ला न सकी। दूसरे दिन जब उसका पति आया तब उसने रो-रो कर अपने सतीत्व लूटे जाने की कहानी कह सुनायी। जिस पर उसका पति आग-बबूला हो उठा और उसी समय उसने प्रतिज्ञा की थी कि वह अवश्य प्रतिशोध लेगा। उसकी प्रतिज्ञा सुनकर चौबेजी के

रोंगटे खड़े हो गये। उन्होंने सोचा कि मुन्शी उनके घर में प्रवेश कर जोर-जुल्म करेगा। किंतु मुन्शी इतना गिरा हुआ व्यक्ति नहीं था कि वह उनकी पत्नी या पुत्री से लज्जाजनक प्रतिशोध लेता। दूसरों की बहू-बेटी को वह माँ-बहन समझता था और उनके साथ सद्व्यवहार करता था। जब उसे अवसर मिला तब उसने सत्य का ही सहारा लेकर उनसे प्रतिशोध लिया। चौकीदार के पक्ष में गवाही देकर उसने उन्हें जेल भेजवा दिया और सरकारी नौकरी भी ले ली। आखिर पाप का परिणाम यही होता है।

रात की घड़ियाँ वे प्रायः इन्हीं सुख और दुःख का स्मरण कर बिताते थे और सवेरे उठकर जेल के काम-धन्धों में लग जाते। उस समय वे यह भूल जाते थे कि किसी दिन वे दारोगा थे।

इन्हींविषादमय घड़ियों में उनकी सजा की अवधि समाप्त हुई। जिस समय जेल के फाटक के बाहर उन्होंने पैर दिये उस समय उनके हर्ष की सीमा नहीं रही। उन्हें ऐसा लगा मानो पिंजड़े का पंछी आज खुले आकाश में स्वच्छन्दतापूर्वक विचरण कर रहा है। उन्होंने सोचा कि जेल के फाटक पर उनके स्वागतार्थ उनके भाई-भतीजे और अन्य सगे-सम्बंधी होंगे, पर वहाँ उन्हें अपनी पत्नी के अतिरिक्त कोई नजर नहीं आया। अपनी पत्नी की दशा पर उनकी आँखों में आँसू आ गये। उसकी देह पर न तो जार्जेट या रेशमी साड़ी थी और न सोने के आभूषण थे। वह खिन्न और उदास मुद्रा में खड़ी थी। चौबेजी को देखते ही वह रो पड़ी। दोनों वहाँ से शहर में आये और होटल में कुछ खा-पीकर बनारस के लिये प्रस्थान किया। बनारस से कुछ ही दूर पर एक गाँव में उनका घर था।

जिस समय वे अपने गाँव में पहुंचे उस समय उन्हें देखने के लिये लोगों की भीड़ लग गई। उनकी दशा पर कुछ लोग सहानुभूति प्रदर्शित कर रहे थे और कुछ लोग मन-ही-मन कह रहे थे कि आखिर इनका भी दर्प भंग हुआ।

समाज के नियम के अनुसार जेल जाने के प्रायश्चित्त में रघुनाथ चौबे को सर के बाल मुड़वाने पड़े और ब्राह्मणों तथा संन्यासियों को भोजन खिलाना पड़ा।

घर वालों का व्यवहार रघुनाथ चौबे के साथ अच्छा नहीं रहा। अब तो वे बेकार थे। उनके द्वारा घर में जो लक्ष्मी का स्रोत लगा हुआ था वह बन्द हो गया था और कोठा-सोफा बनाने की जो कल्पना थी, वह खत्म हो गई।

अपनी नौकरी के समय वह जो-कुछ बचा पाये थे वह सब अपने भाई को दिया था और भाई ने उससे जो जमीन खरीदी वह अपने लड़के के नाम से। इसलिये जब उसने रघुनाथ चौबे को अपने से अलग किया तो पैतृक सम्पत्ति जो कुछ थी, उसी में से आधा उन्हें दिया और नई खरीद में कुछ भी नहीं दिया। इस स्थिति में उनका जीवन बहुत ही दुःखमय व्यतीत होने लगा। निर्धनता से मुकाबिला करना पड़ गया। एक दिन उन्होंने अपनी स्त्री से कहा—'प्रिये, एक दिन हम लोग दस सेर दूध जला कर दो सेर बनाते थे तब खाते थे और फल-फूल तथा मिष्टानों की हमारे घर में भरमार रहती थी। परंतु आज सूखी रोटी भी मिलनी कठिन हो गई है। बच्चों का और तुम्हारा दुःख मुझसे नहीं देखा जाता है इसलिये मैं नौकरी की तलाश में बनारस जा रहा हूँ।'

बनारस पहुँचने पर रघुनाथ चौबे ने नौकरी की तलाश आरम्भ की। पर उन्हें अपनी इच्छा के अनुसार नौकरी मिल नहीं रही थी। सेठ-साहूकार की नौकरी उन्हें पसन्द नहीं आती थी। उन्होंने बनारस राज्य में भी जाकर अपने भाग्य की परीक्षा की, पर एक बदनाम व्यक्ति को राज्याधिकारियों ने नौकरी नहीं दी। अब घर लौटने के अलावा उनके सामने कोई चारा नहीं रह गया। वे निराश होकर संध्या को मणिकर्णिका घाट पर बैठे थे और अपने जीवन के सम्बंध में सोच रहे थे। उनसे कुछ दूरी पर दो आदमी बैठे थे। उनके सामने एक विधवा स्त्री हाथ पसारे खड़ी थी। उनमें से एक ने उससे पूछा—'भीख क्यों माँगती हो? अगर घर में बैठकर काम में लगी रहती तो ये दिन नहीं देखने पड़ते।'

उस स्त्री ने रुँधे कंठ से उत्तर दिया—'बाबूजी, अपनी नादानी जो न करे। भाग्य ने जब सर का सिन्दूर छीन लिया तब उसने मेरी बुद्धि भी हर ली। एक तो मेरी यह अवस्था ही अल्हड़पन और ,पागलपन की है और दूसरे में मेरे देवर ने इस पर प्रेम का रंग चढ़ाकर और भी बौरी बना दी। जब मेरे गर्भ में शिशु आ गया तो सास और ननद मेरी भर्त्सना करने लगीं और कहने लगीं कि इस पापिनी ने हमारे घर में पैर देते ही हमारा सर्वनाश कर डाला। पहले अपने पति को चबा गई और अब हमारी प्रतिष्ठा भी मिट्टी में मिला दी। किस पुरुष के साथ प्रेम करके इसने हमारे सात पुरखों को नरक में डाल दिया।

'जब मुझसे नहीं रहा गया तब मैंने देवर का नाम बतला दिया। पर देवर ने उस जघन्य कार्य का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेने से इन्कार किया। इस पर घर वालों ने पापिनी, चुड़ैल, डाइन आदि उपाधियों से विभूषित कर मुझे घर से निकाल दिया। आज आप जिस स्थिति में मुझे देख रहे हैं यह उसी का परिणाम है।'

दोनों सज्जनों को उसकी दशा पर दया आयी। उनमें से एक ने अपनी जेब से एक पैसा निकाल उसके हाथ में रख दिया। वह उन्हें आशीर्वाद देती हुई चली गई।

उसके जाने के बाद दोनों आपस में बातें करने लगे। एक ने कहा—'हिन्दू-समाज का दिन-प्रतिदिन इन्हीं कारणों से ह्रास हो रहा है। यह समाज अपने ही अंग को काट कर फेंकना जानता है और दूसरे इससे लाभ उठाना जानते हैं। अगर विधवा-विवाह प्रचलित हो जाय और अनाथ महिलाओं के लिए कोई सुव्यवस्था की जाय तो हमारा अंग छिन्न-भिन्न होने से बच सकता है।'

दूसरे ने कहा—'हाँ, अपनी नादानी से आज हिन्दू समाज अपने को खत्म कर रहा है। बाल-विवाह को इसने अपनाया, पर विधवा-विवाह पर इसने प्रतिबन्ध लगाया। इसका भयानक परिणाम समाज के सामने है, पर इसे होश नहीं आ रहा है। इस स्त्री की दशा पर मुझे बड़ी दया आयी है। पर इसके समान समाज में एक नहीं हजारों महिलाएँ हैं, जो इस दशा में गलियों में भटकती फिरती हैं। इनके लिए एक अनाथालय बनवाने का मेरा विचार है।'

दूसरे ने कहा—'मैं इसमें सहयोग देने को तैयार हूँ।'

प्रथम—'मेरा निज का मकान कचौड़ी गली में है। उसे मैं दे दूंगा।'

दूसरा--'मैं वर्तमान व्यवस्था के लिए पचास हजार रुपए दे दूंगा।'

प्रथम—'पर वहाँ के लिए एक मैनेजर की आवश्यकता है। इसकी व्यवस्था करनी होगी।'

मैनेजर का नाम सुनते ही रघुनाथ चौबे अपने स्थान से उठकर उनके समीप पहुँच गए। दोनों की बातें रुक गईं। वे उनकी ओर देखने लगे। रघुनाथ चौबे ने उन्हें नमस्ते करते हुए कहा—'अगर आप लोग चाहें तो आपके इस पुनीत कार्य में मैं सहयोग दे सकता हूँ।'

परिचय पूछने पर रघुनाथ चौबे ने कहा—'मेरा मकान तो इस शहर के

पास ही एक गाँव में है, मैं पहले पुलिस में सब-इन्सपेक्टर था, परन्तु अब नहीं रहा। मैंने देखा कि पुलिस के काम में रहकर ईमानदारी से काम नहीं हो सकता है, इसलिए मैंने अपने पद से त्यागपत्र दे दिया। अब मेरी इच्छा सार्वजनिक सेवा करने की है।'

उनमें एक व्यक्ति ने कहा—'आप लम्बी दुनिया देख चुके हैं। आपसे यह काम हो सकता है।'

दूसरे ने भी इसका समर्थन करते हुए कहा—'हाँ, इनसे काम हो सकता है।'

रघुनाथ चौबे के परिचय पूछने पर उनमें से एक ने कहा--'मेरा नाम गोविन्दराम है और दूसरे ने कहा कि मेरा नाम कालीचरण है। हम दोनों का कलकत्ता, बम्बई और कानपुर में व्यापार होता है। हम लोगों के पास काफी सम्पत्ति है। आखिर इतनी बड़ी सम्पत्ति रखकर क्या होगा? इसका उपयोग अगर जनता के लिए हो तो आत्मा को सुख और शान्ति मिल सकती है। अगर धन को संचय करके रखा जाता है तो उसका उपयोग शैतान करता है। इसलिए अपनी आवश्यकता से अधिक धन अपने पास नहीं रखना चाहिए।'

इस पर रघुनाथ चौबे ने उनका समर्थन करते हुए कहा--'आपका विचार बहुत ही सुन्दर है। मैं नहीं समझता था कि आप लोगों के समान त्यागी पुरुष भी इस वसुन्धरा पर हैं। अगर आप ऐसे मानव नहीं होते तो यह संसार नहीं चलता। पुलिस की नौकरी में मुझे बहुत से लोगों के सम्पर्क में रहना पड़ा। आप लोगों के समान शायद ही कोई व्यक्ति मुझे मिला हो। वास्तव में धन की शोभा सार्वजनिक कल्याण के लिए व्यय करने में ही है।'

गोविन्दराम और कालीचरण दोनों रघुनाथ चौबे से बहुत प्रभावित हुए। कालीचरण उन्हें अपने मकान पर ले गए। उनका भोजन और शयन वहीं हुआ। दूसरे दिन प्रातःकाल कालीचरण रघुनाथ चौबे के साथ गोविन्दराम के घर पर पहुँचे। वहाँ से तीनों कचौड़ी गली गए। वहीं गोविन्दराम का दोतल्ला मकान था। उसे देखते ही चौबेजी ने कहा—'हाँ, यह मकान अनाथालय के लिए बहुत ही सुन्दर होगा।'

कालीचरण ने कहा—'मकान काफी लम्बा-चौड़ा है। इसमें जगह का अभाव नहीं है। उसी दिन नियमानुसार मकान की रजिस्ट्री हुई और अनाथा-

लय सम्बन्धी सभी कार्य सम्पन्न हुए। महीने के अन्दर ही उसका उद्घाटन-समारोह हुआ, जिसमें देश के विभिन्न भागों के समाज-सेवियों ने भाग लिया। उसके बाद अनाथालय के सारे प्रबन्ध गोविन्दराम और कालीचरण ने रघुनाथ चौबे के हाथ में सौंप दिये और स्वयं अलग हो गए। महीने के अन्त में चौबे जी उनके पास पहुँचते थे और हिसाब-किताब समझा देते थे।

धीरे-धीरे उस अनाथालय में अनाथ महिलाओं और बच्चों की संख्या बढ़ने लगी।

८

कंचना से मिलने के बाद जब प्रेमा अपने घर पहुँची तब उसकी भाभी विमला ने मुस्कराते हुए कहा—'पिताजी ने तुम्हारे लिए बहुत ही सुन्दर वर की खोज की है। कल प्रातःकाल बात पक्की हो जाएगी।'

यह सुनकर प्रेमा भी मुस्करा उठी और अपने अध्ययन-कक्ष में जाकर बैठ गई। पर विमला ने उसकी जान नहीं छोड़ी। वह भी पीछे हँसती हुई वहाँ जा धमकी और कहने लगी—'अब मेरी ननद ससुराल जाएगी और नई दुनिया बसा कर हम लोगों को भूल जाएगी।'

प्रेमा ने कहा, 'जाओ मेरे सामने से। जब भी इनके मुख से सुनते हैं तब नई दुनिया बसाने की बात। शायद तुम्हारे मस्तिष्क में अब भी नई दुनिया बसाने का विचार उत्पन्न हो रहा है।'

विमला—'हाँ, प्रेमा, जब शादी हो जाएगी तब देखना कि तुम्हारा मस्तिष्क क्या सोचता है।'

प्रेमा मुस्करा कर रह गई।

विमला ने पुनः कहा—'सुना है तुमने, किसके साथ तुम्हारा विवाह हो रहा है?'

प्रेमा ने कोई उत्तर नहीं दिया। पर वह उत्सुकतापूर्ण दृष्टि से विमला की ओर देखती रही। विमला उसका प्रश्नसूचक भाव समझ गई और कहने

गील—'मेरी ग्रोर क्या देख रही हो ? जब तक मेरे पैरों पर नहीं पड़ोगी तब तक मैं तुम्हारे प्राणनाथ का नाम नहीं बतलाऊँगी ।'

प्रेमा--'हट मेरे सामने से। मुझे कौन-सी गरज पड़ी है कि मैं तुम्हारे पैरों पड़ूँगी ।'

विमला—'गरज तो ऐसी पड़ी है कि अपने भावी पति का नाम सुनने के लिए तुम्हारे हृदय में तूफान मचा हुआ है। पर संकोचवश कुछ नहीं बोल रही हो। तुम्हारी आँखों की भाषा मैं अच्छी तरह समझ रही हूँ ।'

प्रेमा ने हँसते हुए कहा--'कहती हूँ, जाग्रो मेरे सामने से। मुझे पढ़ने दो, नहीं तो माँ को पुकारती हूँ ।'

विमला—'अच्छा, मुझे मिठाई खिलाओ तो मैं तुम्हारे भावी पति का नाम बतला देती हूँ ।'

प्रेमा ने हँसते हुए अलमारी से सन्देश से भरी हुई तश्तरी उसके सामने रख दी।

एक ही बार दो सन्देश अपने मुँह में डालते हुए विमला ने कहा--'कहो अपने भावी पति के सम्बन्ध में जानने के लिए तुमने कैसे मेरी अभ्यर्थना की। अच्छा, मैं नाम सुना देती हूँ ।'

प्रेमा उत्सुकतापूर्वक उसकी ग्रोर देखती रही।

विमला ने कहा--'शहर के बड़े रईस दीवान गौरीशंकर के सुपुत्र प्रेमशंकर के साथ तुम्हारा विवाह होने जा रहा है। वर को तो मैंने नहीं देखा है, लेकिन पिताजी कह रहे थे कि वह बहुत ही सुन्दर है ।'

प्रेमा यह सुनकर आश्चर्यचकित रह गई। उसके मुँह से सहसा निकल पड़ा--'प्रेमशंकर के साथ ?'

विमला ने देखा कि प्रेमा का चेहरा फक हो गया है। उसने पूछा--'क्या तुम प्रेमशंकर के साथ विवाह करना नहीं चाहती ?'

प्रेमा मौन थी और एकटक वह अपनी भाभी की ग्रोर देख रही थी। उसके खिन्न मुखड़े से विमला को यह समझने में देर नहीं लगी कि वह प्रेमशंकर के साथ विवाह करना नहीं चाहती है। उसने कहा—'अभी बिगड़ा क्या है ? अभी तो शादी की बात भी पक्की नहीं हुई है। माँजी से पिताजी को कहला देती हूँ कि प्रेमा प्रेमशंकर के साथ विवाह करना नहीं चाहती है। यही बात

है न?'

अपने हृदय का भाव प्रकट करने में प्रेमा को संकोच हो रहा था। परन्तु उसने देखा कि संकोच से काम नहीं चलेगा। अतएव उसे बाध्य होकर अपना मुख खोलना पड़ा। बोलने के समय उसकी आँखें मेज पर झुकी हुई थीं। उसने कहा—'भाभी, प्रेमशंकर शहर का बदनाम व्यक्ति है। क्या उसकी चरित्रहीनता के सम्बन्ध में आपने कुछ सुना नहीं है। उस लम्पट के साथ पिताजी ने कैसे मेरी शादी करने का निश्चय किया है?'

विमला ने मुस्कराते हुए कहा—'तुमको कैसे पता है कि वह लम्पट और चरित्रहीन व्यक्ति है? क्या तुम्हें कभी उसने कुछ कहा है?'

प्रेमा ने झुँझलाते हुए उत्तर दिया—'कैसे पता है? क्या सभी बातें अनुभव के आधार पर कही जाती हैं? उसके सम्बन्ध में जैसा मैंने सुना है, वैसा मैंने कहा है? तुम जानती हो वह कंचना और किशोरी दोनों से प्रेम करता है। और आश्चर्य तो यह है कि उन दोनों को इसका पता है फिर भी वे उस पर मर रही हैं और उसके लिए पागल हो गई हैं।'

विमला ने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा—'कंचना प्रेमशंकर से प्रेम करती है? बाप रे बाप! क्या जमाना हो गया? देखने में वह कितनी भोली-भाली है और उसका यह कार्य! किशोरी कौन है?'

प्रेमा द्वारा उसका परिचय जानने पर विमला ने कहा—'प्रेमशंकर तो अच्छा शिकारी है। मैं अभी पिताजी को कहला देती हूँ कि उसके साथ वे तुम्हारा विवाह न करें।'

उन दोनों में बातें हो ही रही थीं कि कुन्ती वहाँ आ गई और आते ही उसने पूछा—'कौन-सा विषय तुम दोनों का छिड़ा हुआ है? ननद-भौजाई की बातें तो बड़ी सरल होती हैं। नाहक में बाधा देने के लिए मैं आ गई।'

विमला—'नहीं माँजी, कोई विशेष बात नहीं है। यहाँ शादी-विवाह की बात चल रही थी, प्रेमा की शादी प्रेमशंकर के साथ निश्चित हुई है न? इसे विश्वास नहीं होता है।'

कुन्ती—'हाँ-हाँ, प्रेमशंकर के साथ इसका विवाह निश्चित हो गया है। कल दो-तीन बजे दीवान गौरी शंकर इसे देखने के लिए आयेंगे। इसलिए इसके श्रृंगार का भार तुम्हारे ऊपर मैं सौंपती हूँ। अगर उनके आने पर तुम

साड़ी, चोली, पाउडर, लिपिस्टिक आदि खोजने लगोगी तो दीवान समझ जाएँगे कि यह परिवार धनी है, परन्तु सुसभ्य नहीं है । प्रेमा परी के समान सुन्दर तो स्वयं है, पर सजावट से इसका सौन्दर्य निखर उठेगा । दीवान साहब भी समझेंगे कि हाँ उनके कुल में स्वर्ग की अप्सरा आ गई है ।'

परन्तु विमला ने कोई उत्तर नहीं दिया और प्रेमा उदासीन भाव से उसकी ओर देख रही थी । इस पर कुन्ती को आश्चर्य हुआ । उसने कहा—'विवाह की बात से प्रसन्नता होनी चाहिए, लेकिन तुम दोनों की रोनी सूरत देखकर मुझे संदेह हो रहा है कि तुम्हारे सामने कोई रुकावट तो नहीं आई ?'

विमला ने प्रेमा का रुख पाकर कहा—'माँजी, जिस वर के हाथ में आप अपनी कन्या सौंपना चाहती हैं, वह आपकी पुत्री को पसन्द नहीं है ।'

आश्चर्यचकित होकर कुन्ती ने कहा—'क्यों ? प्रेमशंकर के साथ प्रेमा विवाह करना नहीं चाहती है, उससे उत्तम घर-वर कहाँ मिलेगा ?'

विमला—'इसका कहना है कि प्रेमशंकर का चरित्र अच्छा नहीं है । इसीलिए यह उसके साथ विवाह नहीं करेगी ।'

कुन्ती—'किसका चरित्र कैसा है, नहीं कहा जा सकता है ? किन्तु जब यह उसके साथ विवाह करना नहीं चाहती है तब यह शादी कैसे हो सकती है ? इसके पिता के बाजार से वापस आने पर मैं सारी बात उनसे कहूँगी । जब यह स्वयं उसके साथ विवाह करना नहीं चाहती है तो इसमें कोई जोर-जबरदस्ती नहीं है । अनेक घर-वर हैं । यह स्वयं बतलावे कि किसके साथ विवाह करना चाहती है ?'

विमला—'अच्छा, मैं इससे पूछकर आपको बतलाऊँगी ।'

इसी बीच बरामदे से आवाज सुनाई पड़ी—'कहाँ गई प्रेमा की माँ ?'

कुन्ती ने कहा—'लो, वे आ गए ।' और वह कमरे से बाहर निकल गई । उसके सामने सामान रखते हुए श्यामाचरण ने कहा—'दीवान साहब पाँच आदमियों के साथ आवेंगे । इसलिए सामान पूरा ले आया हूँ । व्यवस्था सुन्दर होनी चाहिए । उनका ऐसा सुन्दर स्वागत होना चाहिए जैसा कि अभी तक उनका कहीं नहीं हुआ हो ।'

कुन्ती—'खाक स्वागत होगा । प्रेमा प्रेमशंकर के साथ विवाह नहीं करना चाहती है ।'

श्यामाचरण—'क्यों ?'

कुन्ती—'प्रेमा का कहना है कि प्रेमशंकर चरित्रभ्रष्ट व्यक्ति है।'

श्यामाचरण—'ऐसी कोई बात नहीं है। अभी वह नवयुवक है। शादी-विवाह हुआ नहीं है, इसलिये सम्भव है उसकी कुछ शिकायतें सुनी हों। परन्तु शादी-विवाह के बाद ऐसी स्थिति नहीं रहेगी, मेरा ऐसा खयाल है।'

कुन्ती—'किन्तु प्रेमा समझे तब तो।'

श्यामाचरण—'यह हिन्दुस्तान है। विलायत नहीं है, जहाँ शादी-विवाह के मामलों में लड़कियों की इच्छा ही सब कुछ करती है। इस देश में सन्तान पर माता-पिता का अधिकार होता है और उन्हीं की इच्छा के अनुसार शादी-विवाह का निर्णय होता है। हम लोग इसका विवाह प्रेमशंकर के साथ इसके हित की दृष्टि से ही कर रहे हैं। निस्सन्देह इसमें इसका भाग्य काम कर रहा है कि प्रेमशंकर के समान सुन्दर घर-वर इसे मिल रहा है। इसे आपत्ति नहीं करनी चाहिए।'

विमला खिड़की पर खड़ी होकर अपने ससुर की सारी बातें सुन रही थी। उसने प्रेमा की ओर प्रश्नसूचक दृष्टि से देखा। प्रेमा ने कहा—'पिताजी के सामने मेरी एक बात न चलेगी। वे कैसे जिद्दी हैं, तुमको अच्छी तरह इसका पता है। फिर भी तुम मेरी अस्वीकृति उनके पास पहुँचा दो।'

विमला ने मुँह बनाकर कहा—'पिताजी जिद्दी हैं कि तुम जिद्दी हो? मेरी समझ से प्रेमशंकर के साथ तुम्हारा विवाह बुरा नहीं होगा। जिसके पास लाखों की सम्पत्ति है, उसे ठुकराना अच्छा नहीं होगा। अगर तुम्हारे पास कला होगी तो कुमार्ग पर जाने से उसे बचा सकती हो। अपने मोहक रूप का प्रदर्शन इस प्रकार उसके सामने करना कि उसकी दृष्टि में तुमसे बढ़कर कोई भी नारी सुन्दर नहीं जँचे और वह तुम पर जान देने के लिए सदा तैयार रहे।'

उसकी बातों पर प्रेमा ने कहा—'भाभी, भाग्य भी कोई चीज है। यहाँ पिताजी के निर्णय से कंचन खाक में मिलने जा रहा है।'

फिर उसकी आँखों से दो श्वेत मोती गिर पड़े, जिन्हें उसने अपने आँचल में सम्भाल लिया।

६

ठाकुर जयपाल सिंह बनारस रेलवे स्टेशन पर उतर गए। फाटक से बाहर आते ही उन्हें ऐसा मालूम हुआ मानो मृत्यु मुँह बाये उनके सामने खड़ी है। भयभीत हो उठे; फिर भी अपने मन में हँसते हुए उन्होंने कहा—'संसार में कोई भी व्यक्ति अमर नहीं रहा। क्या मैं ही मृत्यु से बच जाऊँगा? भागना बेकार है।'

इन्हीं विचारों में लीन होकर वे आगे बढ़ते जा रहे थे। इसी बीच ताँगे-वाले ने कहा--'बाबूजी कहाँ जाएँगे?'

ठाकुर साहब पुनः सोचने लगे कि वे कहाँ जाएँ? कोर्ट में चलें या अपने पुत्र के निवास-स्थान पर जाएँ। ताँगेवाले ने पुनः कहा, 'बाबू, कचहरी चलेंगे?'

ठाकुर साहब ताँगे पर जाकर बैठ गये स्टेशन से कोर्ट पहुँचने पर ठाकुर साहब ने ताँगेवाले के हाथ में एक एकन्नी पकड़ा दी और मजिस्ट्रेट के इजलास की राह पकड़ी। उन्होंने इधर-उधर नजरें दौड़ाईं, पर उनके पुत्र कहीं नजर नहीं आए। वे इजलास में घुस गए। उस समय मजिस्ट्रेट एक चोर के मामले पर विचार कर रहा था।

मजिस्ट्रेट चोर से पूछ रहा था--'तुमने चोरी की?'

चोर ने उत्तर दिया--'हाँ हुजूर, मैंने चोरी की।'

मजिस्ट्रेट--'तुमने चोरी क्यों की?'

चोर--'साहब, पापी पेट जो न करे।'

मजिस्ट्रेट--'भगवान ने तुम्हें इतना हृष्ट-पुष्ट शरीर दिया है और हाथ-पैर दिए हैं, फिर भी तुम चोरी करते हो।'

चोर--'सरकार, भगवान ने देह भी दी है और काम करने की शक्ति भी दी है, लेकिन परिश्रम से मैं जो मजदूरी पाता हूँ, उसमें अपने परिवार वालों का भरण-पोषण नहीं कर पाता हूँ। इसलिए चोरी करनी पड़ती है।'

मजिस्ट्रेट--'लेकिन चोरी करना भयानक अपराध है। तुमने कानून का उल्लंघन किया है, इसलिए तुमको एक वर्ष की सजा दी जाती है।'

दण्ड की घोषणा होते ही सिपाही ने उसे कटघरे से उतार लिया।

उसके हटते ही ठाकुर जयपाल सिंह कटघरे में जाकर खड़े हो गये। मजिस्ट्रेट

ने उस वृद्ध सिंह को देखकर पूछा--'आपके आने का प्रयोजन ?'

ठाकुर जयपाल सिंह--'मजिस्ट्रेट साहब, मुझ पर दीनदयाल उपाध्याय की हत्या का अभियोग है। मैं डेढ़ वर्ष से फरार हूँ। अन्त में मैंने सरकार के समक्ष आत्म-समर्पण करना अच्छा समझा और सरकार के समक्ष उपस्थित हूँ।'

मजिस्ट्रेट--'आप किस जिले के रहने वाले हैं ?'

ठाकुर साहब--'बिहार के शाहाबाद जिले का रहने वाला हूँ।'

मजिस्ट्रेट—'आपको तो शाहाबाद ही भेजा जायेगा। आपके मामले पर वहीं विचार होगा।'

फिर मजिस्ट्रेट का आदेश पाकर सिपाही ने ठाकुर साहब के हाथ में हथकड़ी लगाई और कमर में रस्सी। उस समय ठाकुर साहब ने उस हथकड़ी से मौत को अच्छा समझा और मन-ही-मन पश्चात्ताप प्रकट करते हुए कहा—'मनुष्य को अपने कर्म का फल अवश्य मिलता है। मानवीय न्याय की दृष्टि से वह भले ही बच जाय, पर ईश्वरीय न्याय से वह नहीं बच सकता है।'

ज्योंही इजलास से वे बाहर आये त्योंही ठाकुर धनुषधारी सिंह की दृष्टि उन पर पड़ी। वे दौड़कर उनके पास गये और उनकी दशा पर उनकी आँखों में आँसू भर आये। रुँधे कंठ से उन्होंने पूछा—'पिताजी, इलाहाबाद छोड़ने के बाद आप छः महीने तक कहाँ रहे ?'

ठाकुर जयपाल सिंह—'यही फरार की अवस्था में तीर्थ-स्थानों का भ्रमण करता रहा। मैंने देखा कि आखिर यह स्थिति कब तक जारी रखी जाय ? मुझे भी कष्ट हो रहा है और तुम लोगों को तथा सगे-सम्बन्धियों को भी कष्ट हो रहा है। मेरे कारण सबको परेशानी उठानी पड़ रही है। इसलिए आज स्वयं मैंने मजिस्ट्रेट साहब के समक्ष अपने को उपस्थित कर दिया।'

ठाकुर धनुषधारी सिंह के कुछ कहने के पूर्व ही सिपाहियों के पग आगे बढ़ गये और कमर में बँधे हुए रस्से के साथ ठाकुर जयपाल सिंह को भी आगे बढ़ने के लिए बाध्य होना पड़ा। ठाकुर धनुषधारी सिंह उन्हें सजल नेत्रों से देखते रह गये और सिपाही उन्हें लेकर कोर्ट के अहाते से बाहर हो गये। जब सड़कों से उन्हें लेकर सिपाही जा रहे थे तब राह चलने वाले एक-दो मिनट उन्हें अवश्य देख लेते थे और कहते थे—'इस वृद्ध पुरुष ने कौन-सा

अपराध किया है कि इसके हाथों में हथकड़ी लगी हुई है और पुलिस घसीटती हुई लेती जा रही है।'

ठाकुर साहब को उनके प्रश्नों का उत्तर देने का समय नहीं था। उनके मुँह पर भी ताला लगा हुआ था। सिपाहियों के हाथ में पशु के समान वे आगे बढ़ते जा रहे थे। इसी बीच अचानक प्रेमा की दृष्टि उन पर पड़ी। वह उनके पास पहुँची। उसके साथ और तीन-चार लड़कियाँ थीं, जो कालेज से लौट रही थीं। प्रेमा ने उन्हें नमस्कार किया। पर तनिक विह्वल हो जाने के कारण वह कुछ बोल नहीं सकी। ठाकुर साहब ने देखा कि प्रेमा अब रो देगी। इसलिए उसे सांत्वना देते हुए उन्होंने कहा--'बेटी, इसके लिए घबराने की आवश्यकता नहीं है। यह तो एक दिन होना ही था। आखिर न्याय और शासन से कब तक अपने को छिपाये रखता। अब भगवान की मर्जी। तुम्हारे परिवार के सभी लोग अच्छे तो हैं ?'

ठाकुर साहब के पैर रुकते ही सिपाही भी खड़े हो गये और सौन्दर्य की उन मूर्तियों को बड़े गौर से देखने लगे।

प्रेमा ने कहा—'दादाजी, आपकी कृपा से सभी अच्छे हैं। परन्तु एक बात……।' पर शर्म के कारण वह आगे कुछ बोल नहीं सकी।

ठाकुर साहब ने उत्सुकता के साथ पूछा—'वह क्या ?'

प्रेमा ने अपनी सहेलियों की ओर देखा। उसकी एक सहेली ने कहा—'ठाकुर साहब, इसके पिताजी दीवान गौरीशंकर के पुत्र प्रेमशंकर के साथ इसका विवाह करना चाहते हैं।'

ठाकुर साहब—'जब यह नहीं चाहती है तब प्रेमशंकर के साथ इसका विवाह कैसे होगा ? इसका विवाह प्रताप से होगा। अब इसके लिये मुझे मृत्यु के मुख से पीछे हटना होगा।'

उनकी बातों पर सिपाही मुस्करा उठे और आगे बढ़ गये। प्रेमा के साथ ही अन्य लड़कियों ने भी ठाकुर साहब को नमस्कार किया। प्रेमा दुखित हृदय के साथ घर लौटी। उसके उदास मुखड़े को देखकर कुन्ती ने पूछा—'बेटी, आज तुम बहुत खिन्न नजर आ रही हो ?'

प्रेमा ने उत्तर दिया—'माँ, ठाकुर साहब गिरफ्तार हो गये।'

कुन्ती ने उत्सुकतापूर्वक पूछा—'कौन ठाकुर साहब ? क्या ठाकुर जयपाल

सिंह गिरफ्तार हो गये ?'

प्रेमा—'हाँ माँ, ठाकुर जयपाल सिंह गिरफ्तार हो गये। वे स्वयं मजिस्ट्रेट के यहाँ उपस्थित हुए थे। रास्ते में मैंने उन्हें देखा, पुलिस ले जा रही थी। उनका मुख मलिन नहीं था और चेहरे पर कोई विषाद नहीं था। पर मुझे देखकर उनका गला भर आया था।'

कुन्ती—'देखो क्या होता है ? इस बुढ़ापे में उनको भी दुःख लिखा हुआ था। पर वे मुक्त हो जाएँगे, क्योंकि उनके पुत्र एक नामी वकील हैं।'

'देखो, भविष्य के गर्भ में क्या छिपा हुआ है ?' इतना कहकर प्रेमा रोने लगी।

कुन्ती—'मेरी समझ में यह बात नहीं आ रही है कि आखिर ठाकुर साहब के लिए तुम्हारे हृदय में इतनी ममता क्यों है ?'

विमला ने मुस्कराते हुए कहा—'वे बेचारी के ससुर लगते हैं।'

कुन्ती ने उसकी ओर भौंह टेढ़ी करके कहा—'ऐसा मजाक मैं पसन्द नहीं करती हूँ। लोग सुनेंगे तो क्या कहेंगे ? इसका शादी-विवाह भी रुक जायेगा।'

विमला ने भी कुछ रूखे शब्दों में कहा—'मैं झूठ थोड़े कहती हूँ। प्रेमशंकर के साथ विवाह करने से इसने क्यों इन्कार किया है यह रहस्य अब छिपा हुआ नहीं है कि प्रताप के साथ इसे प्रेम हो गया है।'

कुन्ती—'हाँ, कुछ बात तो ऐसी जरूर है। अगर ऐसा नहीं होता तो यह इतनी निर्लज्जता नहीं धारण करती। मैं देखती हूँ कि यह सदा प्रताप के साथ घूमने-फिरने जाया करती है। अगर यह प्रताप के साथ विवाह करेगी तो हमारे वंश की कितनी निन्दा होगी। इसे सोचना चाहिये कि ठाकुर जयपाल सिंह क्षत्रिय होकर अपने पोते की शादी अपने से नीच कुल में कैसे करेंगे ? क्षत्रिय तो अपनी जाति में भी विवाह-शादी ऊँच-नीच कुल, खानदान और पूर्वजों के प्राचीन निवास पर विचार करके करते हैं। इस स्थिति में मुझे विश्वास नहीं होता है कि ठाकुर साहब प्रताप का विवाह इसके साथ करने को तैयार होंगे। ऐसे विवाह से केवल मेरा ही वंश बदनाम नहीं होगा, बल्कि स्वयं ठाकुर साहब के निर्मल कुल में भी दाग लग जायेगा।'

इसके बाद वह उठकर बाहर चली गई।

प्रेमा ने विमला की ओर देखा। विमला ने हँस दिया। इस पर प्रेमा को

क्रोध आ गया। उसने कहा—'भाभी, मैं तो तुमको बुद्धिमती समझती थी, किन्तु तुम तो बिल्कुल फूहर औरत हो। व्यर्थ की बातें बोलने से तुम्हारा कौन-सा नाम हुआ ? और न हुआ तो मेरे साथ-साथ प्रताप को भी तुमने माँ की नजरों में गिरा दिया।'

विमला—'मैंने झूठ क्या कहा ? और स्थिति स्पष्ट कर तुम्हारे मार्ग को साफ कर दिया।'

प्रेमा—'महाराज युधिष्ठिर की तुम अवतार हो। सदा सत्य बोला करती हो। मेरा मार्ग इन्होंने साफ कर दिया है।'

इस पर विमला और ठहाका मारकर हँसने और कहने लगी—कहीं, तुमने अपना मार्ग स्वयं साफ न कर दिया हो।'

१०

चाँदनी रात थी। गंगा की निर्मल धारा में नावें चल रही थीं। उस समय केवल दीवान गौरीशंकर ही नौका-विहार के लिए कहीं निकले थे, काशी नगरी के और भी रईस तथा चलती तबीयत के नौजवान भी नौका-विहार के लिए निकल पड़े थे। सभी नावों पर अच्छी सजावटें थीं। गाने-बजाने का सुन्दर आयोजन था। कंठ-कोकिलाओं के, जिन्हें समाज ने 'वेश्या' की उपाधि से विभूषित कर रखा है, मधुर संगीत सुनाई दे रहे थे। सारङ्गी, तबला और अन्य बाजों की मधुर ध्वनि से दिशाएँ गूँज रही थीं। परन्तु दीवान गौरीशंकर की नाव में साधारण सजावट थी। उस पर न तो नर्तकी थी और न ही संगीत की कोई व्यवस्था। नाविक के अतिरिक्त जिसका नाम मोहना था, उस नाव पर केवल तीन ही व्यक्ति थे। दीवान गौरीशंकर, प्रेमनाथ और कमल। उनकी नाव से कुछ दूरी पर मधवा अकेले ही दूसरी नाव पर था। वह बहुत मस्त होकर गा रहा था।

बेचारा कमल दीवान साहब और प्रेमनाथ से कुछ दूर मोहना की बगल

में खिन्न और उदास मन से बैठा था और उसके डाँड़ चलाने की कला को बड़े ध्यान से देख रहा था। दीवान साहब और प्रेमनाथ में जो कुछ बातें हो रही थीं, उस पर कमल ने कुछ भी ध्यान नहीं दिया। हाँ, कभी-कभी उसके कानों में प्रेमशंकर की शिकायतें सुनाई पड़ती थीं।

दीवान साहब आज दोपहर की घटना से बड़े खिन्न थे। प्रकृति का मोहक दृश्य उनके हृदय को शान्ति प्रदान नहीं कर सका और शीतल समीर उनके मस्तिष्क को शीतल नहीं कर सका। गंगा का कलकल गान और उसमें उठने वाली तरंगें भी उनके हृदय की पीड़ा नहीं मिटा सकीं। वह प्रेमनाथ से कह रहे थे—'मित्र, मैंने स्वप्न में भी कल्पना नहीं की थी कि प्रेमशंकर दुश्चरित्र निकलेगा और मेरे वंश में दाग लगाएगा। एक सुपुत्र से वंश को सुयश की प्राप्ति होती है और एक कुपुत्र से वंश बदनाम होता है। प्रेमशंकर के कारण मेरा कुल कलंकित हो गया। आज किशोरी के साथ उसकी प्रेम-क्रीड़ा देखकर मैं दंग रह गया। दाँतों तले मुझे स्वयं अपनी अंगुली काटनी पड़ी। यह भी मुझे पीछे सुनने को मिला कि उसके पूर्व कंचना भी वहीं थी।' कंचना का नाम सुनते ही प्रेमनाथ चौंक पड़े। काटो तो उनके शरीर में खून नहीं। उन्होंने कहा—'यह आप क्या बोल रहे हैं दीवान साहब।'

दीवान गौरीशंकर—'मैं कोई झूठ थोड़े कह रहा हूँ। आपकी इज्जत मैं अपनी इज्जत समझता हूँ। कंचना के प्रति मेरे हृदय में अच्छी धारणा थी, पर आज की घटनाओं को देख व सुनकर मेरा विचार बदल गया। निश्चित रूप से वह प्रेमशंकर के जाल में फँसी हुई है।'

प्रेमनाथ—'आपकी बातों को काटने का मुझे साहस नहीं हो रहा है। आप असत्य क्यों बोलेंगे? शर्म से तो मैं मर रहा हूँ। कंचना को तो मैं अपने प्राणों से बढ़कर मानता आया हूँ। पर अभी अगर वह मेरे सामने होती तो गंगा की इस मध्य धारा में उसे फेंक कर मैं अपना क्रोध शान्त करता। उसके चरित्र पर मुझे कभी भी संदेह नहीं हुआ। इसलिये मैंने उसकी स्वतन्त्रता में कभी भी बाधा नहीं पहुँचायी। इसके लिये लखनजी मुझ पर रंज रहा करते हैं। उनके द्वारा आपत्ति प्रकट करने पर मैं उन्हें कहा करता हूँ कि आप संकीर्ण विचार के आदमी हैं। आप सदा लड़कियों को सन्देह की दृष्टि से देखा करते हैं। परन्तु आज मुझे अपनी भूल पर पश्चात्ताप करना

पड़ रहा है। बात इसमें ऐसी है कि माँ पुत्री पर नियन्त्रण रखती है। आज उसकी माँ के मरे पाँच-सात साल हो गये। इसे कोई रास्ता सिखलाने वाला नहीं रह गया। मेरे भी कोई दूसरी सन्तान नहीं। इसलिए मैंने अपना सारा स्नेह उसी पर उँड़ेल दिया है। इसके लिए आमोद-प्रमोद का सारा साधन मैंने एकत्रित कर दिया है। मेरा यह सदा ध्यान रहा कि उसे किसी बात का कष्ट न हो और यह नहीं अखरे कि इसकी माँ इस संसार में नहीं है। अपनी मृत्यु के समय उसकी माँ कह गयी थी कि कंचना को डाँट-डपट मत कीजियेगा और सयानी होने पर सुन्दर घर-वर खोज कर उसकी शादी कर दीजियेगा। मैंने भी रोते-रोते यही प्रतिज्ञा की, जिसका निर्वाह अभी तक कर रहा हूँ। कई आदमियों ने मुझे दूसरी शादी करने की सलाह दी, परन्तु मैंने यह सोच कर दूसरा विवाह नहीं किया कि सौतेली माँ से उसे नहीं पटेगी और वह उसे कष्ट देगी। सम्भव है कि नव-वधू का पक्ष लेकर मैं उसको डाँट-डपट करता। परन्तु आज सब बेकार हुआ। मेरे स्नेह और त्याग का कोई महत्त्व नहीं निकला। आज उसकी काली करतूत सुनकर मुझे इस गंगा में कूद जाने की इच्छा होती है।'

दीवान गौरीशंकर—'गंगा में कूदने या आत्म-हत्या करने से कुछ लाभ होने को नहीं है। आखिर यह भी तो एक पाप है। एक पाप को छिपाने के लिए दूसरा पाप करना उचित नहीं है। अगर आप आत्म-हत्या कर लेते हैं तो लोग सुनकर यही कहेंगे कि अपनी दुश्चरित्र पुत्री के कारण प्रेमनाथ को आत्म-हत्या करनी पड़ी। इससे आपकी और भी बदनामी होगी और आपके नहीं रहने पर कंचना को और भी खुलकर खेलने का मौका मिलेगा। आपके लिए यही उचित है कि आप उसे स्वच्छन्द रूप से पक्षी के समान विचरने नहीं दें। और, सबसे अच्छा तो यह होगा कि उसका विवाह कर दीजिए, जिससे आपके माथे की बला टल जाय। मेरा विश्वास है कि विवाह हो जाने पर उसकी सारी उच्छृंखलताएँ नष्ट हो जाएँगी।'

प्रेमनाथ—'हाँ, आत्महत्या करने या कंचना के प्राण लेने से कोई लाभ होने को नहीं है। वास्तव में पाप से पाप नहीं छिप सकता है। मेरे न रहने पर कंचना को और भी स्वाधीनता मिल जायेगी और उस हालत में वह जो कुछ करेगी, उससे स्वर्ग में भी मेरी आत्मा को कष्ट पहुँचेगा। पर मेरी समझ में नहीं आ रहा है कि आखिर कंचना ने कुमार्ग पर पैर कैसे रखा?'

दीवान गौरीशंकर—यौवन नर या नारी के शरीर में आँधी के रूप में प्रवेश करता है। उस समय उस तूफान में उसकी बुद्धि स्थिर नहीं रहती है। कंचना की भी यही हालत हुई है। यौवन की तरंग में वह प्रवाहित हो गई और इस तरंग या तूफान में उसे मिल गया प्रेमशंकर। आप विश्वास रखिये कि नारी तब तक दुराचारिणी नहीं बन सकती है जब तक कि पुरुष उसे दुराचारिणी होने के लिए बाध्य नहीं करता है। नारी लोक-लज्जा बहुत निबाहती है, पर पुरुष एक बार उसका घूँघट उठाकर उसकी आँखों का पानी सदा के लिए गिरा देता है। फिर वह तितली के समान इस डाली से उस डाली पर विचरने लगती है। इसका कारण है कि जब पैर एक बार फिसलता है तब वह रुकता नहीं है और वहीं जाकर रुकता है जहाँ पतन का अन्तिम गड्ढा होता है। और सुनिये, जिसका चरित्र एक बार गिर जाता है, वह पुनः सम्भालने का प्रयास भी नहीं करता है जैसे—श्वेत वसन को मनुष्य तब तक सावधानी से रखता है जब तक उसमें दाग नहीं लगता है। अगर उसमें दाग लग जाता है तो उसे उसकी स्वच्छता की चिन्ता नहीं रहती है और वह जहाँ इच्छा होती वहीं उठता-बैठता है। यही स्थिति मनुष्य के चरित्र की है। कंचना प्रकृति के नियम से अपने को अपवाद नहीं रख सकी। प्रेमशंकर के सम्पर्क में आकर उसने अपने निर्मल चरित्र को सदा के लिए कलंकित कर लिया। उसने यह नहीं सोचा कि जिसे वह प्रेम कह रही है वही चरित्रहीनता है। ऐसे प्रेम को मैं उन्माद कह सकता हूँ। जो मस्तिष्क में एक रोग के रूप में प्रवेश करता है। वह वासना को जागृत करने वाला होता है। भला वासना की कहीं तृप्ति होती है? जल की तृष्णा बुझ जाती है पर काम की तृष्णा नहीं बुझती है, बल्कि वह बहुत बढ़ती जाती है। प्रज्ज्वलित अग्नि को शान्त करने के लिए अगर उसमें आहुति दी जाय तो वह मूर्खतापूर्ण कार्य होगा। उसी प्रकार कामाग्नि को नर-नारी का संयोग बुझा नहीं सकता है, बल्कि उसे और भी उत्तेजित करेगा। कंचना और प्रेमशंकर के साथ भी प्रकृति यही कार्य कर रही है।'

प्रेमनाथ—'हाँ दीवान साहब, आपका कहना बिल्कुल ठीक है। कंचना को उचित से अधिक स्वाधीनता देकर मैंने स्वयं अपने को उपहास का पात्र बनाया है। इसमें उसका कोई दोष नहीं है।'

दीवान गौरीशंकर—'प्रेमनाथ जी, नारी कुल की मान-मर्यादा है। इसलिए

उसकी रक्षा करना परिवार के हरेक सदस्य का कर्त्तव्य होता है। चोरों से जैसे धन की रक्षा की जाती है, उसी प्रकार चरित्रहीन व्यक्तियों से नारी की रक्षा करनी चाहिए। पुरुष का मन नारी के सौन्दर्य और यौवन को देखकर मचल उठता है और वह कल-बल-छल से उसे नष्ट कर देता है। इसके लिए नारी को आजीवन पश्चात्ताप करना पड़ता है। चरित्र नारी के लिए अमूल्य रत्न है, जिसे खोकर वह सदा रोती रहती है। और पुरुष अगर एक बार भी अपना चरित्र गिरा देता है तो सदा के लिए निर्लज्ज बन जाता है। उसे पुनः अपने चरित्र की चिन्ता नहीं रहती है। कंचना और प्रेमशंकर ने अपने जीवन में अपने चरित्र को कोई महत्त्व नहीं दिया, इसलिए अच्छी शिक्षा उन्हें बुरी मालूम होती है। कभी-कभी प्रेमशंकर को युवतियों से घिरा पाता हूँ और कभी-कभी शराब के नशे में नाचते-गाते पाता हूँ। इससे मुझे हार्दिक दुःख होता है, मन को क्लेश पहुँचता है और आत्मा को पीड़ा मालूम होती है। अगर ऐसा पुत्र मुझे नहीं होता तो यह कष्ट नहीं पहुँचता और सदा प्रसन्न रहता।'

प्रेमनाथ—'अगर आपकी राय हो तो कंचना की शादी प्रेमनाथ से कर दी ज.य। इससे हम दोनों की प्रतिष्ठा बच जायेगी।'

दीवान गौरीशंकर—'जो प्रतिष्ठा खत्म हो चुकी है, उसकी क्या रक्षा हो सकती है। अगर आप दोनों का विवाह कर भी देंगे तो भी दोनों सदा अतृप्त रहेंगे और एक-दूसरे पर विश्वास नहीं करेंगे। इससे उनके सामने तलाक की समस्या उपस्थित होगी। इसलिए भूल कर भी आप ऐसी बात मत सोचिये। मैं तो श्यामाचरण को भी कहूँगा कि वे अपनी पुत्री का विवाह प्रेमशंकर के साथ नहीं करें। अगर उन्होंने मेरी बात नहीं मानी तो एक दिन उन्हें भी अपने सर पर हाथ रख कर रोना होगा।'

प्रेमनाथ—'तो क्या आप प्रेमशंकर को अविवाहित रखना चाहते हैं?'

दीवान गौरीशंकर—'जिस पुरुष ने सैकड़ों बालाओं का अधरामृत पान किया, उसे आप अविवाहित कहते हैं?'

प्रेमनाथ—'अभी आपका मन अशान्त है। इसलिए प्रेमशंकर के प्रति ऐसी धारणा है किन्तु हृदय के शान्त होने पर उसके प्रति आपकी यह धारणा नहीं रहेगी।'

दीवान गौरीशंकर—'आपका गलत दृष्टिकोण है। मैं क्रोध में आकर नहीं

बोल रहा हूँ। मैं जो कुछ बोल रहा हूँ वह शान्त हृदय से। मेरी इन आँखों में मेरे वंश का भविष्य अन्धकारमय प्रतीत हो रहा है। मैं देख रहा हूँ कि इसी से मेरे वंश की इतिश्री है। मेरी मृत्यु के बाद मेरे पूर्वजों के संचित सारे धन को यह बर्बाद कर देगा। सुरा और सुन्दरी की पूजा में मेरे घर की सम्पत्ति बर्बाद हो जायेगी।'

प्रेमनाथ—'हाँ, कुपुत्र को पाकर वंश की यही गति होती है।'

जिस समय दीवान गौरीशंकर और प्रेमनाथ अपने ज्ञान के पन्ने उलट रहे थे और अपनी-अपनी सन्तान के चरित्र पर आँसू बहा रहे थे, उस समय मोहना कुछ और सोच रहा था। वह सोच रहा था—'यही दीवान साहब हैं, जिन्होंने अपने महल के सामने मेरे बाप-दादे की झोंपड़ी नहीं रहने दी और इनके पूर्वजों ने जो एक एकड़ जमीन दी थी वह भी इन्होंने ले ली। यह वही दीवान साहब हैं जो अपने सामने मुझे जूते नहीं पहनने देते हैं। अरे बाप रे! एक दिन इन्होंने किशोरी के साथ जब मुझे हँसते हुए देख लिया तो आगबबूला हो उठे, जैसे किशोरी इन्हीं की बेटी हो। आज अच्छा अवसर हाथ लगा है। काशी से बहुत दूर चला आया हूँ। अभी इसी गंगा में इन्हें विसर्जित कर देता हूँ और इनके साथ इन दोनों बूढ़ों को भी सदा के लिए स्वर्ग भेज देता हूँ, जिससे सब की राहों का कंटक दूर हो जायेगा। किशोरी और कंचना स्वच्छन्द होकर घूमेंगी और उनका प्रेम रस हम सबों को चखने का अवसर मिलेगा। सन्ध्या के समय प्रेमशंकर ने भी तो मुझसे यही कहा था कि कोई भी माँ का ऐसा लाल हो तो जो इस बूढ़े को स्वर्गलोक भेज कर मेरा पथ निष्कण्टक बना देता। उसके कहने का आशय यही था कि आज इन्हें गंगा माँ को मैं समर्पित कर दूँ। आज मैं सारा प्रतिशोध इनसे ले रहा हूँ।'

यह सोचते-सोचते उसने नाव के एक किनारे को अपने पैरों से दबा दिया। नाव में पानी आने लगा। दीवान साहब उसे गालियाँ देते हुए कहने लगे—'अरे मोहना, हमें डुबावेगा क्या?'

मोहना—'अब प्रश्न का समय नहीं रह गया। आप डूब रहे हैं।'

तीनों व्यक्तियों के हो-हल्ला के बीच नाव माँ गंगा के गर्भ में विलीन हो गई। मोहना तैर कर मधवा की नाव पर आ गया। मधवा ने उसे धन्यवाद देते हुए कहा—'भैया, तुम्हारी वजह से हम लोगों की सारी योजनाएँ सफल

रहीं। इसके लिये प्रेमशंकर हम लोगों को अवश्य उपहार देंगे। कंचना तो उन्हें मिलेगी और किशोरी हम लोगों के हाथ लगेगी।'

गंगा की तीव्र धारा में दीवान गौरीशंकर और कमल कहाँ गये, किसी को पता नहीं चला। पर प्रेमनाथ ऊब-डूब करते हुए एक नाव के समीप पहुँच गये। नाविक ने उनका हाथ धर कर ऊपर खींच लिया। इससे उनके प्राणों की रक्षा हो गई।

भोर में मोहना ने जब आकर प्रेमशंकर को सूचित किया कि नाव उसने डुबा दी और तीनों बूढ़े सदा के लिए माँ गंगा की गोद में सो गये तब प्रेमशंकर को बड़ी प्रसन्नता हुई। पर तत्काल ही उसके चेहरे का रंग बदल गया। वह कुछ चिन्ताग्रस्त हो गया, और उसके मुख से निकल पड़ा—'दो दिन की जिन्दगी में बिगड़ जाता सब खेल है।'

दूसरे दिन जब प्रेमनाथ प्रेमशंकर के सामने आये तब वह आश्चर्यचकित रह गया और पूछा—'मेरे पिताजी कहाँ हैं?'

उत्तर में प्रेमनाथ ने कहा—'तुम्हारे पिताजी तुम्हारा गुणगान करते हुए सदा के लिए संसार से चल बसे। इस दुर्घटना में प्रकृति का हाथ नहीं था, मोहना का हाथ था। सम्भव है कि उसने तुम्हारी पूर्व-रचित योजना पूरी की हो।'

यह सुन कर प्रेमशंकर काँप उठा। उसके मुख से आवाज नहीं निकली। वह मौन होकर बैठा रहा।

प्रेमनाथ के जाने के बाद उसने मोहना को बुलवाया और प्रेमनाथ के काल के गाल से लौटने की बात उसे सुनाई। इस पर मोहना को काटो तो शरीर में खून नहीं। वह घबरा उठा। मघवा भी वहीं खड़ा था, उसने प्रेमशंकर को राय दी कि 'अगर प्रेमनाथ जी पर यह अभियोग लगाया जाय कि उन्होंने जान बूझ कर नाव डुबा दी जिससे दो प्राणियों की मृत्यु हुई तो अवश्य उन्हें प्राण-दण्ड मिलेगा और कंचना के साथ उनका सारा ऐश्वर्य भी आपको मिल जायेगा। साक्षी देने के लिये तो मैं तैयार ही हूँ।'

प्रेमशंकर ने हँसते हुए उसकी पीठ ठोक दी और समय की सूझ के लिए उसे धन्यवाद दिया। फिर वहाँ से उठकर वह थाना गया और नाव डुबाने के अभियोग में प्रेमनाथ को गिरफ्तार करवा दिया।

पिता की गिरफ्तारी पर कंचना को दुःख पहुँचा। वह अपना क्रोध प्रकट करने के लिए प्रेमशंकर के पास पहुँची। वहाँ किशोरी प्रेमशंकर की बगल में बैठी अपने पिता की मृत्यु पर रो रही थी। कंचना को देखते ही वह कहने लगी—'तुम्हारे पिता कैसे निर्दयी हैं कि उन्हें दो बूढ़ों को डुबाने में थोड़ी भी दया नहीं आई।'

कंचना ने भौं टेढ़ी करके कहा—'चुप रह। मेरे पिता ने नाव कैसे डुबायी। यह सब मोहना का काम है।'

प्रेमशंकर—'कंचना, क्रोध मत कर। समझ से काम लो। यह सारा काण्ड तुम्हीं को लेकर हुआ है।'

कंचना—'वह क्या ?'

प्रेमशंकर—'हम दोनों के प्रेम की खबर तुम्हारे पिता को लग गयी थी। उन्होंने इसके लिये मेरे पिताजी को उलाहना दिया। इस पर उन दोनों में कुछ कहा-सुनी हो गयी। इस पर क्रोध में आकर प्रेमनाथ जी ने नाव डुबा दी, जिससे पिताजी और कमल सदा के लिए गंगा मैया के गर्भ में विलीन हो गये। उनकी लाशें भी कहीं नहीं मिलीं। अगर मिली होतीं तो अखबारों में अवश्य यह समाचार पढ़ने को मिलता।'

इस भयानक काण्ड की पृष्ठभूमि में अपने को पाकर कंचना मर्माहत हो उठी।

११

शाहाबाद न्यायालय में ठाकुर जयपाल सिंह के मामले पर विचार होने लगा। राजा उपाध्याय भी इलाहाबाद से आ पहुँचा और शेर को पिंजड़े में देख कर वह निर्भीकतापूर्वक साखी-गवाह जुटाने लगा। रघुनाथ चौबे को भी बनारस से बुलाया गया। वे भी तत्परता से ठाकुर साहब को दोषी प्रमाणित करने का प्रयास करने लगे। उन्हें आशा थी कि अब भी उन्हें नौकरी मिल

जाएगी।’ पर उन्हें कोई सफलता नहीं मिली। ठाकुर साहब के विरुद्ध कोई भी आदमी न्यायालय में जाकर यह कहने को तैयार नहीं हुआ कि ठाकुर साहब ने दीनदयाल उपाध्याय की हत्या की है।

एक दिन जब जेल में प्रताप ठाकुर जयपाल सिंह से मिलने गया तब ठाकुर जयपाल सिंह ने उससे कहा—‘प्रताप, सरकार को मेरे विरुद्ध एक भी गवाह नहीं मिल रहा है। इससे मैं निर्दोष मुक्त हो जाऊँगा। पर मैं ऐसा नहीं चाहता हूँ। न्यायाधीश की आँखों में मैं धूल झोंक सकता हूँ परन्तु परमात्मा की आँखों में धूल नहीं झोंक सकता। उस न्यायी भगवान से कुछ भी छिपा हुआ नहीं रहता है। राजहंस के समान वह दूध का दूध और पानी का पानी विलग कर देता है। मनुष्य को अपने कर्मों का फल अवश्य भोगना पड़ता है। भगवान गौतम बुद्ध ने कहा है कि कर्म छाया के समान मनुष्य का साथ नहीं छोड़ता है। गीता में भी भगवान कृष्ण ने कर्म को प्रधानता दी है और रामायण में भी गोस्वामी तुलसीदास ने कर्म को ही श्रेष्ठ कहा है। इसलिए एक निर्दोष व्यक्ति की हत्या का दण्ड इस लोक में नहीं तो परलोक में मुझे अवश्य भोगना पड़ेगा। मैं न्यायालय में स्वीकार कर लूँगा कि दीनदयाल उपाध्याय की हत्या मैंने की है। मुझे फाँसी की सजा होगी और अपने कर्म का फल मिल जाएगा। इससे मेरी आत्मा को प्रसन्नता होगी। अगले जन्म में दण्ड भोगने का भय नहीं रह जाएगा। खैर जाने दो इन बातों को। तुम तो मैट्रिक पास हो गये और कालेज में पढ़ भी रहे हो। उम्र भी सतरह वर्ष हो गई। इसलिए कुछ समझ भी हो गई है। अतः मेरे आदेश का पालन करना। प्रेमा को मैंने वचन दे दिया था कि तुम्हारा विवाह प्रताप के साथ कर दूँगा। पर तुम दोनों के विवाह देखने से पूर्व ही मैं संसार से कूच करने जा रहा हूँ। धनुषधारी यद्यपि बैरिस्टर हैं उसने पश्चिमी दुनिया देखी है और आधुनिक सभ्यता से अपरिचित नहीं है तथापि वह संकीर्ण विचार का आदमी है। वह कभी नहीं चाहेगा कि एक क्षत्रिय कुल का बालक अपने से नीच वर्ण की लड़की से विवाह करे। वह प्रेमा का पाणिग्रहण करने से तुमको रोकेगा। पर एक साहसी युवक के समान तुम आगे आना और प्रेमा का पाणिग्रहण कर लेना।’

प्रताप नतमस्तक होकर उनकी बातें सुन रहा था, पर उत्तर नहीं दे रहा ा। ठाकुर साहब कहते जा रहे थे—‘प्रताप, क्षत्रियों को नीचे वर्ण की सुन्दर

और सुसभ्य लड़की से विवाह करना चाहिए। इसमें उपहास की कोई बात नहीं है। प्रेमा का कुल भी कोई घटिया नहीं है। वह सुन्दर और सुशील लड़की है और पढ़ती-लिखती भी है। इसलिए उसके साथ विवाह करने में तुम आपत्ति मत करना। अगर प्रेमा स्वयं तुमसे विवाह करने से इन्कार करे तो कोई हर्ज नहीं। मेरा उत्तरदायित्व खत्म हो जायेगा और तुम्हारे ऊपर भी मेरी आज्ञा पालन करने का बोझ नहीं रह जाएगा।'

प्रताप ने अपनी आँखों में आँसू भर कर कहा—'दादा जी, आप न्यायालय में यह स्वीकार मत कीजिए कि आपने उपाध्याय जी की हत्या की है। जो होना था वह तो होकर रहा। अब प्रायश्चित्त में मृत्यु के मुख में जाना अच्छा नहीं है। प्रायश्चित्त तो सच्चे हृदय के पश्चात्ताप से होता है। उस पश्चात्ताप को देखकर ईश्वर भी उसे क्षमा प्रदान कर देते हैं। राम ने कहा है—कोटि विप्र वध लागहिं जाहू, आय शरण न तजऊँ व ताहू। मेरे खयाल से आप उनकी शरण में जा चुके हैं। उन्होंने आपको क्षमा प्रदान कर दी है। आप न्यायाधीश के समक्ष स्पष्ट शब्दों में कह दें कि दीनदयाल उपाध्याय की हत्या मैंने नहीं की है। आप के विरुद्ध कोई गवाही देने के लिये तैयार भी नहीं हो रहा है। इस स्थिति में आप अवश्य निर्दोष घोषित होकर मुक्त हो जायेंगे।'

ठाकुर जयपाल सिंह ने हँसते हुए कहा—'एक आम के लिये मैंने एक निर्दोष चमार की हड्डी-पसली तोड़ दी और उचित बात कहने के लिए एक निर्दोष ब्राह्मण की हत्या कर दी। फिर अपने प्राणों के मोह के कारण मैं सत्य पर पर्दा डालूँ, यह मुझसे नहीं हो सकता है। सत्य पर पर्दा डाल कर कोई ईश्वर की शरण में नहीं जा सकता है। महात्माओं ने सत्य को ही ईश्वर माना है। सत्य ही के कारण हरिश्चन्द्र, दधीचि, दशरथ, राम आदि ने कष्ट झेले, पर सत्य का उन्होंने परित्याग नहीं किया। मुझे अपने प्राणों का थोड़ा भी मोह नहीं। आज नहीं तो कल तो मरना ही है तो फिर मृत्यु से भय क्यों किया जाय ? तुम्हारे सामने मेरी मृत्यु हो जाय तो इससे बढ़कर मेरे लिए आत्म-सन्तोष का विषय क्या हो सकता है। अधिक ममता दिखलाकर पुनः संसार में मुझे लौटने को बाध्य मत करो।'

इसी बीच जेल के सिपाही ने वहाँ आकर कहा—'ठाकुर साहब, अब वार्ता खत्म कीजिए। अगर कोई अफसर आ जायेगा तो मुझे बातें सुननी पड़ेंगी।

मेरी रोजी-रोटी पर भी खतरा आ सकता है।'

ठाकुर साहब—'सिपाही, मैं नहीं चाहता कि मेरे लिए तुम संकट में फंसो और तुम्हारी रोजी-रोटी पर खतरा उपस्थित हो।'

प्रताप ने अपनी जेब से पाँच रुपये का एक नोट निकाल कर सिपाही को दिया और ठाकुर साहब को नमस्कार कर प्रस्थान किया। ठाकुर साहब भी खिड़की से हट कर अपने वार्ड में चले गये।

घर लौटने पर प्रताप ने अपने पिता धनुषधारी सिंह से ठाकुर जयपाल सिंह के निर्णय को कह सुनाया। ठाकुर धनुषधारी सिंह ने कहा—'पिता जी बड़े जिद्दी हैं। एक बार वे जो निश्चय कर लेते हैं उस पर अटल रहते हैं। अगर उन्होंने अपने को अपराधी स्वीकार कर लिया तो अवश्य वे दण्ड के भागी बनेंगे।'

प्रताप की बातों पर उनके परिवार के सभी सदस्य चिन्तित हो उठे। दूसरे दिन ग्यारह बजे दिन में उनके मुकदमे की सुनवाई हुई। सरकार को कोई गवाह न मिला। राजा उपाध्याय और रघुनाथ चौबे कोई प्रमाण उपस्थित नहीं कर सके। अपना अपराध स्वीकार करने पर भी न्यायाधीश ने ठाकुर जयपाल सिंह को यह कहकर मुक्त कर दिया कि उनकी नियत दीनदयाल उपाध्याय की हत्या करने की नहीं थी।

फैसले की घोषणा होते ही उनके परिवार वालों को अपार हर्ष हुआ। न्यायालय से बाहर आकर ठाकुर धनुषधारी सिंह ने गरीबों को दान दिया।

१२

संध्या हो चुकी थी। विद्युत् का प्रकाश काशी नगरी में फैल चुका था। प्रेमशंकर के मकान में भी बिजली के अण्डे जगमगा रहे थे। उस समय प्रेमशंकर एक सुसज्जित कमरे में बैठा हुआ कंचना और किशोरी के साथ आमोद-प्रमोद में अपना समय व्यतीत कर रहा था। किशोरी यह बात भूल गई थी कि उसका पिता गंगा में डूबकर मर गया है और कंचना ने भी अपने हृदय से यह बात निकाल दी थी कि उसके निरपराध पिता को प्रेमशंकर ने जेल भेजवा दिया है

ग्रौर साथ ही वे जीवन ग्रौर मृत्यु के प्रश्न में बहुत बुरी तरह से उलझे हुए हैं।

प्रेमशंकर के साथ कंचना ग्रौर किशोरी ने भी स्वतन्त्र राज्य पाया था। उनका ग्रपना संसार था। किशोरी ने ग्रपनी विधवा माँ को स्पष्ट शब्दों में कह दिया था कि उसने ग्रपनी दुनिया बसा ली है। वह उसके कार्यों में ग्रब हस्तक्षेप नहीं करे ग्रौर उसके सुखी जीवन में किसी प्रकार की ग्रड़चन पैदा नहीं करे। कंचना को निष्कण्टक राज्य मिला था। उसकी माँ उसके बचपन में ही स्वर्ग सिधार चुकी थी ग्रौर पिता जेल में थे। लखन ज़ी की बातें मानने को वह तैयार नहीं थी।

एक दिन लखनजी ने प्रेमशंकर के पास जाने से जब उसे रोका तब उसने स्पष्ट शब्दों में कहा—'मैं ग्रापकी नौकरानी नहीं हूँ कि ग्राप मुझ पर इस प्रकार की निगरानी रखेंगे या शासन करेंगे। ग्रापके नियन्त्रण में ग्रापकी सन्तान रह सकती है मैं नहीं रह सकती हूँ। एक ग्रनुचर ग्रपने स्वामी की पुत्री पर शासन करे ग्राज ही मैंने देखा ग्रौर सुना है।'

उसकी बातों पर लखन जी को क्रोध ग्रा गया। पर प्रेमनाथ की ग्रनुपस्थिति में उन्होंने उसे कुछ भी कहना ग्रच्छा नहीं समझा। वे चुप रह गए। उनकी लाल ग्राँखों के सामने ही कंचना के पैर ग्रागे बढ़ गये ग्रौर सीढ़ियाँ उतर कर वह ग्रदृश्य हो गई। उसके बाद वह ग्रपने मकान में नहीं लौटी ग्रौर प्रेमशंकर के साथ रहने लगी।

इधर जब लखनजी प्रेमनाथ से मिलने के लिए जेल पहुँचते थे तब प्रेमनाथ सदा कंचना के सम्बन्ध में पूछ-ताछ करते थे। उत्तर में लखन जी इतना ही कहते थे कि वह ग्रच्छी है। फिर प्रेमनाथ जब यह पूछते थे कि महीनों बीत गये, पर वह मुझसे मिलने नहीं ग्राई तब लखन जी उनके प्रश्न के उत्तर में इतना ही कहकर चुप हो जाते थे कि युवा लड़की है जेल पर कहाँ ग्रावे। लखन जी उन्हें ऐसा उत्तर इसलिए देते थे कि सच्ची बात बतला देने से उन्हें ग्रौर भी क्लेश पहुँचेगा।

एक दिन प्रेमनाथ ने लखन जी से कहा—'जैसे हो वैसे मुझे बचाने की कोशिश कीजिए, ग्रन्यथा बिना ग्रपराध मैं फांसी चढ़ जाऊँगा।'

लखन जी ने उन्हें धैर्य बंधाते हुए कहा—'मैं ग्रापकी प्राण रक्षा के लिए कोई भी कसर न रखूँगा। ग्रभी मैं नगर के बैरिस्टर ठाकुर धनुषधारी सिंह के

पास जा रहा हूँ। उनसे अनुरोध करूँगा कि वे आपकी ओर से पैरवी करें।'

प्रेमनाथ—'वे तो नामी बैरिस्टर हैं।'

लखन जी— 'अभी उन्होंने अपने खूनी पिता को फाँसी के तख्ते से नीचे उतार लिया है। मेरा विश्वास है कि वे आपको मुक्त कराने में समर्थ होंगे।'

प्रेमनाथ—'वे जो माँग करें वह आप आँख मूँद कर उन्हें दे दें। आखिर यह विशाल सम्पत्ति मेरे पास किस लिए रहेगी।'

वास्तव में ठाकुर धनुषधारी सिंह बहुत बड़े नामी और प्रभावशाली वकील थे। अपनी वक्तृत्व-शक्ति और तर्क के सामने वे किसी वकील को नहीं ठहरने देते थे। इसलिए हाकिमों के यहाँ उनकी इज्जत थी। उनके मुअक्किलों की संख्या की कमी नहीं थी। दिन-रात उनके यहाँ भीड़ लगी रहती थी। जिस प्रकार वे विद्या-बुद्धि में बढ़े थे उसी प्रकार उनकी काया भी विशाल थी। उनके विशाल-काय शरीर, कड़ी-कड़ी मूँछें और विशाल नेत्र देखकर किसी को भी उनके सामने जाने में भय मालूम होता था। परन्तु जब उनसे बातें होने लगती थीं तब उनकी मधुर वाणी सुनकर तथा मृदुल स्वभाव देखकर उनके पास से हटने की इच्छा नहीं होती थी। वे दयालु भी थे। गरीबों से बिना एक पैसा लिए उनके मामलों में पैरवी कर देते थे।

जिस समय लखन जी ठाकुर धनुषधारी सिंह के यहाँ पहुँचे, उस समय वे संध्या करने को बैठे थे। अतएव लखन जी को उनकी लाइब्रेरी में बैठकर उनकी प्रतीक्षा करनी पड़ी। लगभग पौन घण्टे के बाद ठाकुर साहब संध्या कर के उठे। लखन जी ने उनका अभिवादन करते हुए कहा—'ठाकुर साहब, दीवान गौरीशंकर को उनके पुत्र प्रेमशंकर की योजना के अनुसार स्वयं उनके नौकर मोहना और मधवा ने गंगा में डुबो दिया। किन्तु प्रेमशंकर इसका कारण हमारे स्वामी प्रेमनाथ जी को बतलाता है। उसने उन पर झूठा अभियोग लगाकर उन्हें गिरफ्तार भी करा दिया है। अगले सप्ताह मामले की सुनवायी होगी। इसलिए मैं आपसे अनुरोध करने आया हूँ कि आप उनकी ओर से पैरवी कर दीजिये।'

ठाकुर साहब ने अपने मन में सोचा कि प्रेमनाथ धनाढ्य व्यक्ति हैं। उनसे मन-चाहा धन प्राप्त किया जा सकता है। उन्होंने लखन जी से कहा—'यह तो हत्या ही का अभियोग है। मैं उन्हें बचा तो लूँगा। लेकिन आपको व्यय काफी

उठाना पड़ेगा।'

लखन जी—'जो खर्च पड़े, मैं देने को तैयार हूँ। आखिर इतनी विशाल सम्पत्ति रहेगी किस लिए। जब प्रेमनाथ जी ही नहीं रहेंगे तब इस का उपभोग कौन करेगा ? क्या कंचना के यार-दोस्तों के लिये वे धन छोड़ जाएँगे ?'

ठाकुर साहब—'क्या कंचना दुश्चरित्र लड़की है ?'

लखन जी—'ठाकुर साहब, उसके सम्बन्ध में कुछ मत पूछिये। इतना बड़ा जो काण्ड हुआ है वह उसी को लेकर हुआ है। आप प्रेमनाथ जी को मुक्त करा दीजिये। मेरा उत्तरदायित्व खत्म हो जायेगा। उसके बाद दोनों बाप-बेटी अपना समझते रहें।'

ठाकुर साहब ने प्रताप को पुकारा। प्रताप ने अपने हाथ की पुस्तक मेज पर रख दी और उनके सामने आकर खड़ा हो गया। ठाकुर साहब ने कहा —'चेतगंज चले जाओ और दीवान गौरीशंकर के पुत्र प्रेमशंकर को बुलाकर अभी ले आओ। उससे कहना कि पिताजी ने आपको स्मरण किया है।'

प्रताप ने सफेद कमीज पहन ली और हाथ में हाकी का डंडा ले लिया। वह दौड़ता हुआ चला गया। आध घण्टे की राह उसने पन्द्रह मिनट में ही समाप्त कर दी। जिस समय वह प्रेमशंकर के घर पर पहुँचा उस समय वह कंचना के साथ शतरंज खेल रहा था और किशोरी कंचना की जीत कराने के प्रयास में लगी थी। प्रताप के आते ही गोटियाँ जहाँ की तहाँ रुक गयीं और तीनों उसकी ओर देखने लगे। प्रताप वहीं बेंच पर बैठ गया। प्रेमशंकर ने पूछा—'कहिए आप कौन हैं और कैसे आये हैं ?

कंचना—'यह तो ठाकुर धनुषधारी सिंह का पुत्र प्रताप है। ठाकुर साहब के साथ एक बार मेरे घर पर किसी समारोह में आया था।'

प्रताप ने उसकी ओर देखा अवश्य पर वह पहचान नहीं पाया कि वह कौन है और उसने उसका परिचय भी नहीं पूछा। उसने प्रेमशंकर से कहा कि पिताजी ने आपको स्मरण किया है और अच्छा होता कि आप मेरे साथ चलते।'

प्रेमशंकर—'कोई आवश्यक कार्य है ?'

प्रताप—'मालूम तो ऐसा ही होता है, अन्यथा वे मुझे नहीं भेजते।'

जिस समय प्रताप और प्रेमशंकर में बातें हो रही थीं उस समय कंचना ने किशोरी से धीरे से कहा—'इसका कैसा सुन्दर स्वास्थ्य है। इसके मुख-मण्डल

पर ओज विराज रहा है। जानती हो, प्रेमा इस पर प्राण देती है।'

किशोरी—'यह है भी वैसा ही।' और वह मुस्करा उठी।

प्रेमशंकर ने प्रताप से पूछा—'आप कुछ जलपान करेंगे ?'

प्रताप--'नहीं, नहीं, मैं जलपान नहीं करूँगा। आप जल्द चलें।'

फिटिंग तैयार हो गयी। प्रेमशंकर के साथ प्रताप भी उसी पर जाकर बैठ गया। जिस समय फिटिंग ठाकुर साहब के दरवाजे पर पहुँची उस समय बैरिस्टर साहब कुछ आवश्यक कागजात देख रहे थे। प्रेमशंकर उन्हें नमस्ते करते हुए सामने की कुर्सी पर बैठ गया। हाथ के कागजात मेज पर रखते हुए उन्होंने प्रेमशंकर की ओर देखकर पूछा—'मैंने सुना है कि दीवान साहब को तुमने गंगाजी में डुबवा दिया है ?'

यह सुनकर प्रेमशंकर घबरा उठा। उसने कहा—'मैं अपने पिता की हत्या करवाऊँगा।'

ठाकुर साहब—'अरे, कंचन और कामिनी के लिए मनुष्य क्या नहीं करता है और तुमको तो कंचना के साथ कंचन भी मिल रहा है। फिर ऐसा निर्दयतापूर्ण कार्य क्यों न करोगे ? दीवान साहब तुम्हारी राह में रोड़ा थे, उन्हें तुमने साफ कर दिया। अब विलासितापूर्ण जीवन में अपने को बर्बाद कर दोगे। खैर जो करना है वह करो, उसके लिए मैं कौन बोलने वाला होता हूँ। लेकिन अगर तुमने इस काण्ड में प्रेमनाथ का नाम शामिल किया या उन्हें दोषी ठहराने का प्रयास किया तो तुम्हारे साथ तुम्हारे दोनों अनुचर मोहना और मधवा भी फाँसी चढ़ेंगे या कालापानी जाएँगे।' कुछ देर मौन रहने के बाद प्रेमशंकर ने उनसे पूछा—'तब क्या किया जाय ?'

ठाकुर साहब—'करोगे क्या ? यह तो खून का मामला है, इसे तो तुम वापस कर भी नहीं सकते हो। गवाह तुमको मिलेंगे नहीं। उल्टे तुम्हारे ऊपर मामला चलेगा। इसलिए सबूत जुटाने का प्रयास मत करना। मुकदमा योंही खत्म हो जायेगा।'

ठाकुर साहब से विदा लेकर जब वह अपने घर पहुँचा तब उसका मुख सूखा हुआ था और वह अधिक चिन्तित मालूम हो रहा था। कंचना ने उससे पूछा—'क्या बातें हुई हैं, उन्होंने क्यों बुलाया था ?'

प्रेमशंकर—ठाकुर साहब बहुत बड़े जालिम वकील हैं। वे कहते हैं कि

अगर प्रेमनाथ को तुमने अपने पिता की हत्या में अपराधी बताया तो मैं तुम्हीं को फाँसी दिलवा दूँगा या कालापानी भेजवा दूँगा।'

किशोरी—'हाँ, वे तुम्हीं को दण्ड दिलवा देंगे। बड़े नामी बैरिस्टर हैं। ऐसा मुमदमा तो उनके लिए चटनी है।'

कंचना—'पिताजी के मुक्त होने पर मेरा क्या होगा ? मैं तो कहीं की न रहूँगी।'

किशोरी—'जहाँ भी रहो, लेकिन ठाकुर साहब के प्रकोप से ये बेचारे बच नहीं सकेंगे।'

प्रेमशंकर गम्भीर चिन्ता में पड़ गया।

१३

पहले तो किशोरी और कंचना में अच्छी पटी, परन्तु बाद में जैसे-जैसे दिन व्यतीत होते गये वैसे-वैसे दोनों में अनबन बढ़ती गई। प्रेमशंकर को अपने वश में रखने के लिये दोनों सदा अपने को आकर्षक बनाकर रखती थीं। प्रेमशंकर इस प्रतिद्वन्द्विता को अच्छी तरह समझता था। इसलिए उनमें से एकान्त में जो उसके सामने रहती थी उसी की वह प्रशंसा करता था। लेकिन किशोरी भी यह बात अच्छी तरह समझती थी कि वह उससे बढ़कर कंचना को प्यार करता है। पर वह कर क्या सकती थी। उसका पिता कमल आज संसार में नहीं रहा और अपनी माँ से वह सदा के लिये विलग होकर आई थी। यद्यपि वह शहर में रहती थी तथापि उसके जाति-भाइयों में बन्धन था। किशोरी को उसके समाज वाले घृणा की दृष्टि से देखते थे। जहाँ वह प्रेमशंकर के साथ नगर के सैर-सपाटे में निकलती थी, वहाँ उस पर उँगलियाँ उठने लगती थीं। उसे देखते ही लोग काना-फूसी करने लगते थे कि इस छोकड़ी ने कितना बड़ा अनर्थ किया है, फिर भी इसे न शर्म है न चिन्ता। पिता की हत्या करा कर वेश्या के समान इस रईस के साथ बाजार का चक्कर काट रही है। इसकी

आँखों का पानी मर गया। जिस नारी ने अपने सतीत्व की परवाह नहीं की, उसे अपने माता-पिता और सास-ससुर तथा पति की मर्यादा को अपने पैरों तले कुचलने में कितनी देर लगेगी। किशोरी अपने समाज का परित्याग कर प्रेमशंकर के साथ राज-भोग करने लगी है। पर यह नहीं जानती है कि दीवान साहब के पुत्र का अपनी प्रेमिकाओं के साथ वही सम्बन्ध रहता है, जो अली-कली का होता है। जिस दिन पुष्प मुर्झा जाएगा उस दिन इस भौंरे को उससे अपना सम्बन्ध-विच्छेद करने में देर नहीं लगेगी। उस दिन अपने को दूध की मक्खी की स्थिति में पाकर इसे पश्चात्ताप होगा।

और, इसी को कैसे कहा जाय? प्रेमनाथ जी की पुत्री भी तो प्रेमशंकर की बगल में बैठकर मोटर में घूमती रहती है। घर-घर एक ही बात है। जैसा छोटा घर वैसा बड़ा घर। कंचना और किशोरी दोनों ही आज एक ही स्थिति में हैं। दोनों ने अपने पूर्वजों की पगड़ियों को अपने पैरों से रौंद डाला है। मालूम होता है कि यौवन के उन्माद ने दोनों की बुद्धि स्थिर नहीं रहने दी है। इन्हें धरती और आसमान कुछ नहीं सूझ रहा है। पर इन्हें सूझेगा और बहुत जल्द सूझेगा। वह दिन दूर नहीं है जब कि आकाश से तीर लगे हुए घायल पक्षी के समान छटपटाती हुई दोनों आकर धरती पर गिरेंगी और रो-रोकर अपनी कहानियाँ दूसरों को सुनाएँगी। हमें तो आश्चर्य होता है कि इन्होंने प्रेमशंकर पर विश्वास कैसे कर लिया? इन्होंने यह नहीं सोचा कि जो अपना मुँह काला कर चुका है, वह दूसरों के मुँह की लाली कैसे रहने देगा। प्रेमशंकर को तो न लोक का भय है और न परलोक का। वह कहता है कि मनुष्य के जीवन का उद्देश्य आराम से रहना है। इच्छा-तृप्ति के लिये सुन्दरी और सुरा चाहिए। इनके बिना जीवन शून्य है। परलोक की बात गलत है और अन्त-रिक्ष में क्या होता है कौन जानता है? मृत्यु के बाद का क्या कोई कहने आता है कि वह किस स्थिति में है। उसकी आत्मा का अस्तित्व कायम है या नहीं? कल्पना के ही आधार पर स्वर्ग बना हुआ है और नरक का भी आधार वही है। पाप और पुण्य के अनुसार अपने कर्मों को भोगने के लिए कल्पित आत्माएँ इन्हीं में जाती हैं। प्रत्यक्ष को छोड़कर अप्रत्यक्ष के लिये कौन मरे? जिससे मन की तृप्ति हो वही सुख है। परलोक के सुख के लिये जो सामने के सुख का परित्याग करे, उससे बढ़ कर अज्ञानी दूसरा नहीं है।

प्रेमशंकर की निन्दा न केवल छोटे समाज में होती थी, बल्कि बड़े समाज में भी होती थी। प्रायः उसके परिचित यही कहा करते थे कि प्रेमशंकर ने अपने वंश को दाग लगा दिया और साथ-ही-साथ उसके वंश की इतिश्री भी इसी को लेकर होगी। पर इस निन्दा का प्रेमशंकर पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता था। सावन-भादों की सरिता के समान वह अपने पथ पर अग्रसर होता जा रहा था। वह कभी-कभी कंचना और किशोरी की आँखों से बच कर दाल मण्डी का चक्कर भी लगा आया करता था। जिस समय वह रूप के बाजार में पहुँचता था उस समय एक-से-एक सुन्दर वेश्याएँ उसके स्वागत में आगे आती थीं और सौन्दर्य का क्रय-विक्रय गिन्नी और मोहरों से होने लगता था।

एक रात को जब वह चकला से लौटा तब मद के नशा में वह बेहोश था और उसके मुख से दुर्गन्ध आ रही थी। कंचना ने उससे पूछा—'क्या तुम दाल मण्डी से सुरा और सुन्दरी का आनन्द लेकर लौट रहे हो ?'

प्रेमशंकर ने क्रोध-भरे शब्दों में उत्तर दिया—'मैं कहीं से आ रहा हूँ, तुम कौन पूछने वाली हो ? क्या तुम मेरी माँ हो या बहन हो या धर्मपत्नी हो जो मुझ पर इतना कड़ा नियन्त्रण रखना चाहती हो ? दाल मण्डी की वेश्या में और तुम में कौन-सा अन्तर है ? हाँ, इतना अन्तर अवश्य है कि वे सैकड़ों पुरुषों के मन को संतुष्ट करती हैं और तुम मेरे उपभोग का साधन बनी बैठी हो।'

यह सुनकर किशोरी मुस्करा उठी। प्रेमशंकर ने उसकी आँखों से आँखें लड़ाते हुए कहा—'कहो प्रिये, क्या मैं झूठ कहता हूँ ? इससे मेरा कौन-सा सम्बन्ध ? हम दोनों के मन मिले, हम दोनों साथ रहे और जिस दिन अन्तर पड़ेगा उस दिन हम दोनों दो पथ पर। अगर मैं इसके शासन में रहूँ तो मेरी गिनती भेड़-बकरों में होगी।

'कंचना, तुम कृतघ्न मत बनो। तुम्हें स्मरण रखना चाहिए कि तुम्हारे कारण बनारस के बड़े रईस दीवान गौरीशंकर का प्राणान्त हुआ। उसी के साथ किशोरी का बाप भी उसकी सेवा के लिये चला गया। इतना ही नहीं तुम्हारे पिता प्रेमनाथ की क्या हालत हो रही है ? वह बूढ़ा मौत की घड़ी गिन रहा है। वह निर्लज्ज अपने प्राणों को रख कर क्या करेगा ? उसकी मौत तो उसी दिन

हो गई, जिस दिन उसकी लाड़ली मेरी प्रेमिका बन गई। अगर सरकार ने उसे मुक्त भी कर दिया तो उसे इस संसार में नहीं रहना चाहिए, क्योंकि उसकी उच्छृंखल पुत्री पराये पुरुष के लिये अपना शरीर अर्पित कर चुकी है।'

उसकी बातों पर कंचना की त्यौरियाँ चढ़ गईं। उसने भी क्रोधपूर्ण शब्दों में कहा—'जीभ सम्भाल कर बोलो, नहीं तो मैं तुम्हारा सारा नशा उतार दूँगी।'

यह सुनकर प्रमशंकर उठ खड़ा हुआ और कहने लगा—'क्या तुम मेरी जीभ उखाड़ लोगी? अच्छा उखाड़ो, मैं तुम्हारी शक्ति देखना चाहता हूँ।'

किशोरी ने प्रेमशंकर का हाथ धर कर पलंग पर सुला दिया। परन्तु जब तक उसे नींद नहीं आई तब तक वह बड़बड़ाता रहा—'इन वनिताओं के कारण मेरा जीवन कितना सुखमय है? एक क्रोध करती है तो दूसरी प्यार करती है। एक अगर भृकुटि टेढ़ी कर मुझे देखती है तो दूसरी अपने नयनों में प्रेम भर कर मुझ पर उँड़ेल देती है। एक की जबान अगर पैनी छुरी बन कर मेरे दिल पर जख्म करती है तो दूसरी अपने सुकुमार करों से उस पर मरहम-पट्टी करती है। वाह रे मेरा भाग्य! ऐसा स्वर्गीय सुख किसको मिलेगा? पिता के सुरधाम चले जाने पर आज मैं स्वच्छन्द राज्य का उपभोग करता हूँ। अगर वह बूढ़ा आज जीवित रहता तो क्या इन परियों का मैं सौन्दर्य लूट पाता? एक दिन उसने किशोरी के साथ मुझे देख लिया तो आगबबूला हो उठा और मुझसे नहीं निबट सका तो इस कोमलांगिनी किशोरी पर अपना क्रोध प्रकट किया और न हुआ तो इसके बाप ने इसकी मरम्मत की। इसी अबला के अभिशाप से दोनों गंगा में डूब गये। और बेचारे प्रेमनाथ! प्रेमनाथ के प्राण तो उनकी लाडली के कारण जा रहे हैं। ठाकुर धनुषधारी सिंह ने मुझे बुला कर उलटा-सीधा समझाया और कहा कि अगर मेरे कथनानुसार तुम बयान नहीं दोगे तो तुम्हीं को फाँसी होगी। शायद उनकी समझ में यह राजा विक्रमादित्य या राजा भोज का राज्य है, जब दूध-का-दूध और पानी-का-पानी होता था। यहाँ तो रुपये खर्च करो और भयंकर-से-भयंकर अपराध से बच जाओ। देखता हूँ कि वे मोहना और मधवा को कैसे फाँसी दिलवा देते हैं। ठाकुर साहब की बोली से तो मालूम होता है कि आज भी राजपूतों का राज्य कायम है। रस्सी जल गई, पर ऐंठन नहीं गई। इनका राज्य चला गया, पर इनका रुआब

नहीं गया। उस विशालकाय मनुष्य को देखकर मुझे भय मालूम होता है। उसके डर से मैंने स्वीकार कर लिया कि आप जो कुछ कहेंगे उसी के अनुसार मैं कार्य करूँगा। अगर प्रेमनाथ जेल से मुक्त हो जायेंगे तो वह मेरी प्रेमिका को मुझसे छीन कर ले जाएँगे और किसी निष्ठुर के हाथ में इसे सौंप देंगे। मैं—।'

इसी बीच किशोरी ने आकर उसके मुख पर हाथ रखा और धीरे से कहा—'सिपाही नीचे चक्कर काट रहे हैं और तुम अब तक बोल रहे हो। अगर उन्होंने तुम्हारी बातें सुन लीं तो तुम गिरफ्तार हो जाओगे।'

प्रेमशंकर ने आँखें खोलीं और मुस्कराते हुए उसके अधरों को चूम कर सो गया।

रात अधिक बीत गई थी। किशोरी भी सो गई। परन्तु कंचना को नींद नहीं आ रही थी। प्रेमशंकर की बातों से उसके कोमल हृदय पर बहुत बड़ा आघात पहुँचा था। उसकी बातों से कंचना को अब अपना भविष्य दृष्टिगोचर हो रहा था। अब वह अपने घर लौटने का विचार कर रही थी। पर भय और लज्जा के कारण उसके पैर आगे बढ़ने को तैयार नहीं थे। इसी उधेड़बुन में उसकी रात कट गई।

१४

बनारस के न्यायालय से प्रेमनाथ निर्दोष घोषित होकर मुक्त हो गये। उनके मुक्त कराने में ठाकुर धनुषधारी सिंह ने अपनी तर्क-शक्ति का अच्छा परिचय दिया। उन्होंने नाव-दुर्घटना के लिये मोहना और मधवा को दोषी बतलाया, पर दोनों कोर्ट में उपस्थित नहीं थे। पुलिस के वारण्ट निकलते ही वे फरार हो गए।

न्यायालय से बाहर आने पर प्रेमनाथ ने ठाकुर धनुषधारी सिंह के प्रति कृतज्ञता प्रकट की और सन्ध्या के समय भगवान की पूजा में आने के लिए उन्होंने ठाकुर साहब को आमन्त्रित किया।

प्रेमनाथ के घर आने पर नौकर-चाकर फूले नहीं समाये। सबने उनका स्वागत किया। पर कंचना को न देखकर उन्हें विस्मय हुआ। लखन जी ने सब को आदेश दे रखा था कि उत्सव सम्पन्न होने के पूर्व प्रेमनाथ जी को कंचना के सम्बन्ध में सूचना नहीं दी जाय। इसीलिए उनके सभी नौकरों ने एक ही उत्तर दिया कि वह गई होंगी कहीं घूमने फिरने।

उत्सव बहुत अच्छा रहा। नगर के बहुत से प्रतिष्ठित और प्रमुख व्यक्तियों ने निमन्त्रण पाकर उसमें भाग लिया था। अतिथियों को विदा देने के बाद प्रेमनाथ ने बड़ी उत्सुकता के साथ लखन जी से अपनी पुत्री कंचना के सम्बन्ध में पूछ-ताछ की। अब अधिक देर तक लखन जी ने उस विषय को रहस्यमय बना कर रखना अच्छा नहीं समझा। उन्होंने कहा—'नाव-दुर्घटना और आपकी गिरफ्तारी का प्रमुख कारण कंचना है। कंचना और प्रेमशंकर में बहुत पहले से प्रेम-सम्बन्ध चला आ रहा है। परन्तु इन दोनों के प्रेम-पथ में दीवान साहब रोड़ा थे और आप कंटक थे। इसीलिए प्रेमशंकर ने एक तीर में दो शिकार मारे। जब आप जेल गए तब कंचना के लिये मानो स्वराज्य मिल गया। वह दिन-रात प्रेमशंकर के घर पर पड़ी रहती थी। इस पर मैंने कड़ाई की। पर वह मेरे नियन्त्रण में रहने को तैयार नहीं थी। सदा की भाँति जब वह एक दिन प्रेमशंकर के पास जा रही थी तब मैंने वर्जित किया। पर उसने मेरी बात नहीं मानी और मुझे कुछ भला-बुरा कह कर चली गई। उस दिन से आज तक वह नहीं लौटी। कभी-कभी प्रेमशंकर के साथ बाजार में सैर करती हुई वह नजर आ जाती थी। पर उस स्थिति में मैं उससे क्या कहूँ।'

लखन जी की बातें सुनते प्रेमनाथ को मालूम हुआ मानो उसके पैरों के तले की धरती खिसक रही है और आँखों के सामने दीवारें और छत घूम रही है। पाँच-सात मिनट के बाद वे मूर्च्छित होकर गिर गये। पर शीघ्र ही उपचार कर उन्हें होश में लाया गया। वे रात-भर विलाप करते रहे और लखन जी उन्हें धैर्य बंधाते रहे।

दूसरे दिन प्रातःकाल लगभग आठ बजे लखन जी कंचना को बुलाने के लिए प्रेमशंकर के घर पर पहुँचे। उस समय कंचना किशोरी से बातें कर रही थी। वह कह रही थी, 'पिताजी जेल से मुक्त होकर आ गए। उनके सामने जाने में मुझे संकोच हो रहा है। इधर प्रेमशंकर का प्रेम भी मेरे प्रति दिन

प्रतिदिन कृष्ण पक्ष के चन्द्रमा के समान क्षीण होता जा रहा है।'

प्रेमशंकर अभी तक अर्द्ध-निद्रा में बिस्तर पर पड़ा था। कंचना की बातें उसके कानों में पहुँच रही थीं। जब उससे नहीं रहा गया तब वह बिस्तर से उठकर कंचना के शृंगार-कक्ष में आ गया। उसे देखते ही कंचना चुप हो गई। प्रेमशंकर ने उससे पूछा—'तुम क्या बोल रही थीं ?'

पर कंचना ने कोई उत्तर नहीं दिया। किशोरी ने मुस्कराकर अपना मुँह फेर लिया। प्रेमशंकर क्रोध में आकर कहने लगा—'मेरी ही रोटी पर पल रही हो और मेरी ही निन्दा करती हो। तुम्हारे समान कुलटा के लिए मेरे घर में स्थान नहीं है। मेरे घर से अभी निकलो और देखो किसी दूसरे यार का घर।'

कंचना उसकी ओर भौं तान कर देखने लगी। प्रेमशंकर ने कहा—'अगर इस प्रकार तुमने मुझे देखा तो मैं तुम्हारी आँखें निकाल लूँगा।'

कंचना—'तुमको दस बोतलों का नशा सदा बना रहता है।'

नशे की बातें सुनकर प्रेमशंकर उसे मारने दौड़ा। पर किशोरी ने उसकी बाँह पकड़ ली। प्रेमशंकर ने कहा—'इसके लिये मैंने कैसा जघन्य कार्य किया फिर भी यह कृतज्ञता मानने के लिए तैयार नहीं है और कहती है कि मैं अपने पिताजी से मिलना चाहती हूँ। पिता के मुख में कालिख पोत कर फिर भी यह उसके कटे पर नमक छिड़कने के लिये जाना चाहती है।'

कंचना—'मैं अवश्य जाऊँगी।'

किशोरी से अपनी बाँह छुड़ाकर कंचना की गर्दन पकड़ कर उसने सीढ़ियों से उसे नीचे धकेल दिया और कहा—'जाओ, इस घर में तुम्हारे लिए स्थान नहीं है।'

कंचना गिरती-पड़ती नीचे आई। उसे चोट भी लगी थी। उसकी आँखों से आँसू गिर रहे थे। सामने लखन जी को देखकर उसे आश्चर्य हुआ। वह नत-मस्तक होकर खड़ी हो गई। लखन जी ने कहा—'रोती क्यों हो ? चलो मेरे साथ।'

अपने आँचल से आँसू पोंछती हुई कंचना लखन जी के साथ मोटर में बैठ गई। किशोरी ने ऊपर से झाँक कर प्रेमशंकर से कहा—'कंचना जा रही है।'

प्रेमशंकर—'जाने दो उसे। उसका मन दस जगह बंटा हुआ है। तुम्हारी राह का रोड़ा गया। अब तुम निष्कण्टक राज्य भोगो। हम दोनों की छोटी-

सी दुनिया बड़ी अच्छी रहेगी ।'

उसकी बातों पर किशोरी प्रसन्न हो उठी ।

इधर कंचना जब प्रेमनाथ के पास पहुँची तब वह उनके पैरों पर गिर कर रोने लगी । प्रेमनाथ ने उससे पूछा—'तुम अपना घर छोड़कर प्रेमशंकर के साथ क्यों रहने लगीं ?'

कंचना ने सर उठाया । लखन जी वहाँ नहीं थे । वह बाहर चले गये थे । और दूसरा भी वहाँ कोई नहीं था । उसने उनके प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा—'पिताजी, आपकी जेल-यात्रा के बाद मैंने देखा कि लखन जी की नीयत में परिवर्तन आ गया है । वे कुत्सित भावना से मेरी ओर देखते थे । एक दिन एकान्त में उन्होंने मेरी बाँह पकड़ ली । पर किसी प्रकार बहाना बना कर मैंने उनसे मुक्ति पायी और घूमने-फिरने के लिये बाहर चली गई । बाजार में प्रेमशंकर से भेंट हो गई । मैं उसके साथ उसके घर चली गई । मैं तो प्रेमशंकर को धन्यवाद दूंगी, जिसने आपका शत्रु होते हुए भी अपने यहाँ मुझे शरण दी । और अपनी सगी बहन के समान मुझे रखा । कभी भी बुरी भावना से उसने मेरी ओर नहीं देखा ।'

कंचना के मुख से इन बातों को सुनकर प्रेमनाथ को लखन जी के प्रति क्रोध आ गया । उन्होंने उसी समय लखन जी को पुकार कर कहा—'मेरी अनुपस्थिति में आपने इसके सतीत्व लूटने का प्रयत्न किया । इसे आप अपनी लड़की कहते थे और इसी के सतीत्व पर आक्रमण भी करना चाहते थे । आप ऐसे पतित हैं मैंने कभी इसकी कल्पना भी नहीं की थी ।'

लखन जी—'यह आप क्या बोल रहे हैं ?'

प्रेमनाथ—'देखिये, अपने पापों पर पर्दा डालने का प्रयास मत कीजिए । यह लड़की झूठ नहीं बोल रही है । आप ही सोचिये, कोई भी स्त्री किसी भी पुरुष पर ऐसा अभियोग लगाकर स्वयं अपने को गिराना नहीं चाहेगी ।'

लखन जी ने अपनी लाख सफाई दी, परन्तु प्रेमनाथ को विश्वास नहीं हुआ । उन्होंने कहा—'लखन जी, मनुष्य बूढ़ा हो जाता है, उसकी इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती हैं पर उसका मन तो न बूढ़ा होता है और न वह शिथिल होता है । प्रकृति के इस नियम से आप भी अलग नहीं हैं । कंचना के रूप आप मोहित हो गये । आप अपने पर नियन्त्रण नहीं रख सके और इसके छलकते हुए यौवन

का रसास्वादन करना चाहा। प्रेमशंकर मेरे प्राणों का शत्रु है, किन्तु आप मेरी इज्जत के शत्रु हैं। अच्छा हो कि आपका और मेरा सम्बन्ध अभी से विच्छिन्न हो जाय, क्योंकि साँप को आस्तीन में नहीं रखा जा सकता है।'

लखन जी—'महाशय, मैं निर्दोष हूँ। नौकरी छूटने की मुझे परवाह नहीं है। पर इस लाँछना के लिए मुझे अतिशय हार्दिक वेदना हुई है। इस आचरणहीन लड़की के कहने पर आप मुझे कलंकित कर हटा रहे हैं, यह अच्छा नहीं कर रहे हैं।'

प्रेमनाथ—'आप इस भोली-भाली लड़की को आचरणहीन कहकर मेरी आँखों पर पट्टी बाँध रहे हैं और मुँह पर ताला लगा रहे हैं, पर आप यह नहीं सोचते हैं कि आपकी काली करतूत से मेरे हृदय पर जो घाव लगा है, वह मरहम-पट्टी से नहीं भर सकता है। आप जैसी सफाई देते हैं, वैसी सफाई तो हरेक पुरुष ऐसा अभियोग लगने पर देता है। आपकी बातों पर मैं कभी भी विश्वास नहीं कर सकता। मैं तो आपसे आग्रह करूँगा कि आप अभी यहाँ से चले जाइए।'

लखन जी ने अपना बिस्तर बाँधा और अपने गाँव की राह पकड़ी। प्रेमनाथ के नौकर यह दृश्य देखकर विस्मित रह गये। वे आपस में कहने लगे—'दुराचारिणी लड़की के कहने पर इन्होंने ऐसे सज्जन पुरुष के साथ ऐसा घृणित व्यवहार किया है। जिसने इन्हें फाँसी के तख्ते से नीचे उतार लिया है उसके उपकार का यह······। यह सम्भव है कि लखन जी ने कभी अपने जीवन में चौथ का चाँद देखा होगा।

नौकरों की बात प्रेमनाथ के कानों में पहुँची। क्रोध शान्त होने पर उन्होंने भी महसूस किया कि लखन जी ऐसे अपने हितचिन्तक को कलंकित करना उनके लिए अच्छा नहीं हुआ है। उन्हें हटाकर उन्होंने अपनी कृतघ्नता का परिचय दिया है। उस दिन से वे दुखित रहने लगे।

कंचना की अब स्वाधीनता जाती रही। अपने पिता के कड़े शासन में रहने के कारण अब पहले के समान तितली बनकर वह उड़ नहीं सकती थी। इधर आकर वह अस्वस्थ भी रहने लगी। उसका मुख पीला पड़ता जा रहा था और कभी-कभी उल्टियाँ भी हो जाती थीं। इस पर नौकरानी को सन्देह हुआ।

एक दिन एकान्त पाकर उसने प्रेमनाथ को कहा—'मालूम होता है कि कंचना के पैर भारी हैं।'

इतना सुनते ही प्रेमनाथ का माथा ठनका। उन्होंने उसी समय लेडी डाक्टर को बुलाया और उससे कंचना की परीक्षा करवाई। अच्छी तरह देखने के बाद लेडी डाक्टर ने घोषणा की कि इसे लड़का होने वाला है।

प्रेमनाथ ने सौ-सौ रुपये के पाँच नोट उसके हाथ में देते हुए कहा—'महोदया, आशा करता हूँ कि आप इस रहस्य को छिपाए रखेंगी।'

लेडी डाक्टर—'मुझे क्या आवश्यकता पड़ी है कि यह समाचार संसार को सुनाती फिरूँ? ऐसे तो कितने केस मेरे हाथ में हैं। अगर इनका भंडा-फोड़ करती फिरूँ तो मेरा जीविका ही नष्ट हो जाएगी।'

प्रेमनाथ ने कर जोड़कर कहा—'ऐसा ही चाहिये।'

लेडी डाक्टर के जाने के बाद कंचना ने नौकरानी से कहा—'यह मुँहजली क्या बोलेगी, कभी पुरुष के बिना लड़का हुआ है?'

नौकरानी ने इस पर हाथ चमकाते हुए कहा—'पाँच मास तक प्रेमशंकर के साथ रही हो और कहती हो कि पुरुष के बिना कहीं लड़का हुआ है? कुछ दिनों के बाद संसार देखेगा कि पुरुष के बिना कैसे लड़का होता है?

उसकी बातों पर कंचना झुँझला उठी।

लेडी डाक्टर की घोषणा के बाद से प्रेमनाथ चिन्तित और खिन्न रहने लगे। कंचना की काली करतूत का स्मरण कर उनका हृदय काँप उठा। वे प्रायः सोचा करते थे कि कंचना के लड़का हो जाने पर वे कहीं भी मुख दिखलाने योग्य नहीं रह जाएँगे। लोग उन्हें देखकर तालियाँ बजाकर हँसेंगे और जहाँ बैठेंगे वहीं यह विषय उठाकर उनका उपहास करेंगे। इन बातों को सोचकर वे कंचना का चेहरा तक नहीं देखना चाहते थे। अपने सामने उसे देखकर उनका सारा शरीर जल उठता था। एक दिन उन्होंने उससे कहा भी—'कंचना, तुमने मेरे स्वच्छ कुल में ऐसा दाग लगा दिया जो कभी छूटने का नहीं है। तुमने निर्दोष लखन जी को यहाँ से निकलवा दिया, पर तुम्हारा पाप छिप नहीं सका। आखिर पाप की गठरी तुम कब तक छिपाकर रखोगी? तुमको मेरे सामने आने में शर्म आनी चाहिए। अगर तुम्हारे प्राण इस प्रकार नहीं निकलते हैं तो कम-से-कम पतित-पावनी माँ गंगा की शरण जाकर उसके

आँचल में छिप जाओ, जिससे तुम्हारी और मेरी बची-खुची मर्यादा तो बची रह जाय ? पिता की बातों का उत्तर कंचना के पास नहीं था। मन-ही-मन अपनी करतूत पर वह रो रही थी। उसकी आत्मा स्वयं उसे कोसते हुए कह रही थी—'जो दूसरे को कलंकित करता है वह स्वयं कलंकित होता है। देर-सवेर उसे अपने पापों का अवश्य प्रायश्चित्त करना पड़ता है। यह मानव-स्वभाव है कि वह अपनी रक्षा के लिए दूसरों को संकट में डाल देता है। पर इससे उसकी रक्षा नहीं हो सकती है। दूसरों को विपत्ति में डालने से अपनी आत्मा सुखी और शान्त नहीं रह सकती है। उसे अपने कर्मों का फल अवश्य भोगना पड़ता है। वास्तव में तुमने अपने पूर्वजों के मुख में कालिख पोत दी है। क्षणिक सुख के लिए तुमने बहुत बड़ा जघन्य कार्य किया है। तुमने अपने भविष्य पर विचार नहीं किया। तुमने जो संसार बसाया उसकी नींव प्रेमशंकर की वासना पर आधारित थी। इसलिए वह संसार तब तक कायम रहा जब तक कि प्रेमशंकर की इच्छा की पूर्ति नहीं हुई। उसके मन की प्यास बुझते ही तुम्हारे संसार की नींव हिल उठी और दीवारें गिर गयीं। अब तुम उस खंडहर में बैठकर विलाप कर रही हो। पर यह अरण्य-रोदन सुनता कौन है ? नौकर-चाकर भी तुम पर हँस रहे हैं। पिता तुम्हें देखकर जल उठते हैं।'

कंचना को अपनी आत्मा की इस पुकार पर बड़ी ग्लानि हुई। अपने पिता और परिचित व्यक्तियों की आँखों से ओझल हो जाने ही में उसने अपना कल्याण समझा। लेकिन उसके सामने समस्या थी कि उनकी आँखों से ओझल होकर वह कहाँ जाय ? फिर उसे स्मरण आया कि उसके पिता ने माँ गंगा की शरण में जाने का जो मार्ग दिखलाया है वह उत्तम है। अब वह उस पथ को छोड़कर अन्यत्र नहीं भटकेगी।

कंचना दिन-भर इसी चिन्ता में पड़ी रही। संध्या को वह अपने कमरे से बाहर आई। नौकर-चाकर सब अपने काम में व्यस्त थे। प्रेमनाथ दुकान से नहीं लौटे थे। उसने अपने सारे आभूषण उतार कर अपने पिता के बिस्तर पर रख दिए और मृत्यु का आलिंगन करने के लिए वह गंगाजी की ओर चल पड़ी। ज्यों-ज्यों उसके पैर आगे को बढ़ रहे थे त्यों-त्यों वह अपने को मृत्यु के समीप पा रही थी। संसार से विदा होने के लिए वह बहुत ही उत्सुक थी। वह बहुत ही तीव्र गति से चल रही थी। पर जब वह गंगा-तट से थोड़ी दूरी

पर थी तब सामने से आती हुई एक युवती ने उसका हाथ पकड़ लिया और प्रश्न किया—'बहन, कहाँ जा रही हो ?' कंचना चौंक उठी और बड़े गौर से उस युवती की ओर देखकर बोल उठी—'किशोरी, तुम कहाँ से आ गईं मेरे पथ में रोड़ा बनकर ? छोड़ दो, मुझे देर हो रही है। इस संसार से चले जाने ही में मेरा कल्याण है।'

किशोरी—'क्या तुम गंगा में डूबने जा रही हो ?'

कंचना—'हाँ बहन, इस संसार में मेरा कौन है, जिसके आश्रय में रहकर मैं अपना जीवन व्यतीत करूँ। अशरण की शरण तो माँ गंगा ही है।'

किशोरी—'किन्तु आत्मा-हत्या तो और भी जघन्य पाप है। इस पाप से तो कभी भी मुक्ति नहीं मिलती है।'

कंचना—'नहीं मिले, पर तत्काल हृदय का सन्ताप तो मिट जाएगा। मेरा पितृ-कुल कलंक से तो बच जायेगा और संसार यह नहीं जान सकेगा कि कंचना अपने उदर में एक शिशु को लेकर संसार से कूच कर गई है।'

किशोरी—'ऐसी बात है बहन ?'

कंचना—'क्या कहूँ किशोरी, दूसरों से कहने में तो मुझे शर्म आती है, परन्तु तुमसे कौन-सा भेद छिपा हुआ है। प्रेमशंकर ने मुझे कहीं का नहीं रखा। अगर मेरे गर्भ में संतान नहीं होती तो मैं अपना पाप औरों की दृष्टि में छिपा सकती थी। परन्तु अब तो मेरे पाप की एक निशानी प्रकट होकर संसार के सामने मेरा पर्दाफाश करना चाहती है। इससे अच्छा है कि पाप प्रकट होने के पूर्व ही मैं स्वयं इस पाप को लेकर मानव-समाज की आँखों से अदृश्य हो जाऊँ।'

कंचना की बातों पर उसके वर्तमान से अपने भविष्य की तुलना कर किशोरी काँप उठी। उसने कहा—'कंचना, अगर मैं भी तुम्हारी दशा में पहुँच जाऊँ तो मैं क्या करूँगी ?'

कंचना—'भविष्य के गर्भ में क्या छिपा हुआ है कौन कह सकता है ? किन्तु उदाहरण स्वरूप में तुम्हारे सामने मैं खड़ी हूँ। मेरी अन्तिम गति आत्म-हत्या ही है।'

आत्म-हत्या की बात सुन किशोरी का सारा शरीर माघ की ठंडी हवा के स्पर्श के समान काँप उठा। उसने कहा—'अरी बहन, मुझसे आत्महत्या नहीं होगी। मृत्यु का आलिंगन करना संसार की हरेक वस्तु से भयानक है। और

तुम क्या सोचती हो कि आत्महत्या करने से मृत्यु तुरन्त हो जाती है। मुझे अच्छी तरह स्मरण है कि मेरी माँ से झगड़ा होने पर मेरी चाची ने फाँसी लगा ली थी। आध घण्टे तक वह छटपटाती रहीं। जब लोग उसकी गर्दन से रस्सी खोलने गए तब देखा कि वह अन्तिम साँस ले रही है। धरती पर उतरते ही उसके प्राणपखेरू उड़ गए। इसी प्रकार मेरी मौसी ने किरासन तेल अपने शरीर पर उँड़ेल कर आग लगा ली। जब वह जलने लगी तब बाप-बाप चिल्लाने लगी। लोग दौड़े, किन्तु वह पूर्ण रूप से झुलस चुकी थी। आग बुझाने पर भी उसे असह्य कष्ट था। समूची देह में फफोले उठे थे। पन्द्रह दिनों तक अस्पताल में रह कर वह मृत्यु-लोक को सिधार गई। तुमको स्मरण होगा हम ही लोगों के साथ में एक पतली-पतली-सी किसी वकील की लड़की पढ़ती थी। उसे अपने शिक्षक से प्रेम हो गया। पर जब यह बात उसके माता-पिता को मालूम हुई तब उसने ग्लानि और भय से अपने मकान की छत से कूद कर अपने प्राण दे दिए। मेरे कहने का आशय कि मृत्यु कोई सरल भी नहीं है और प्राण सहज में ही नहीं निकलते हैं। बड़ी कठिनाई से इस शरीर से आत्मा का सम्बन्ध-विच्छेद होता है। अभी तो तुम क्रोध या लज्जावश गंगा में डूबने जा रही हो किन्तु दो-चार घूँट पानी पीने के बाद तुमको मालूम होगा कि मृत्यु कैसी भयानक होती है। उस समय मृत्यु से त्राण पाने के लिए तुम स्वयं प्रयास करोगी और तुम्हारे हाथ-पैर अगाध जल में अपने लिए सहारा खोजते फिरेंगे। घण्टों तक ऊब-डूब करने के बाद कहीं तुम मौत को प्राप्त होगी। मृत्यु की कल्पना कर मेरा शरीर सिहर उठता है।'

किशोरी की बात सुनकर कंचना भयभीत हो उठी। उसे ऐसा लगा मानो मृत्यु मुँह बाये उसकी ओर दौड़ रही है और वह माँ गंगा का आँचल छोड़कर किशोरी का आँचल पकड़ना चाहती है। उसने बहुत ही कातर स्वर में पूछा—'किशोरी, तब मुझे क्या करना चाहिए?'

प्रश्न करने के समय उसके अधर काँप रहे थे और आँखों के समक्ष अंधेरा छाता जा रहा था। किशोरी ने उसे धैर्य बँधाते हुए कहा—'बहन पाप-से-पाप नहीं छिपता है। आत्महत्या करके तुम्हें अपने पापों पर पर्दा नहीं डाल सकती हो। फिर भी तुम्हारी प्रतिष्ठा बची रहे, इसके लिए तो तुम्हें कुछ करना है। चलो मन्दिर पर प्रेमशंकर बैठा हुआ है। उससे पूछा जाय कि आखिर तुम्हारी

कोख की संतान का पिता तो वही है। अतः इस सम्बन्ध में उसका भी तो कुछ कर्त्तव्य होता है।'

कंचना—'नहीं किशोरी, उस अधम के समक्ष मैं नहीं जा सकती हूँ। मेरा सर्वनाश करके वह किनारा कर गया?'

किशोरी—'ऐसा मत कहो। अभी भी-तुम्हारे प्रति उसके हृदय में प्रेम है। तुम्हारी याद करके वह रो उठता है।'

कंचना—'नहीं बहन, हठ मत करो। उसके समीप मुझे मत ले चलो।'

किशोरी—'चलने में कोई हर्ज नहीं है।'

दोनों में 'ना' 'नू' हो ही रहा था कि स्वयं वहाँ प्रेमशंकर पहुँच गया और कंचना का हाथ धर कर कहने लगा—'प्रिये तुम कहाँ जा रही हो।'

कंचना ने तो कोई उत्तर नहीं दिया। किन्तु किशोरी ने उसे बतला दिया कि कंचना के पैर भारी हैं। इसलिये शर्म से यह गंगा में डूबने जा रही है?'

इस पर प्रेमशंकर ने कहा—'प्रिये, इसमें शर्म की कौन बात है। तुम्हारी संतान के पिता होने का उत्तरदायित्व मैं अपने ऊपर लेता हूँ। जिस दिन तुमने मेरा घर छोड़ा, वास्तव में मैं नशे में था। होश आने पर मुझे अपने कार्य पर पश्चात्ताप हुआ। मैं अपना भाग्य समझता हूँ कि तुमसे अचानक भेंट हो गई। चलो मेरे घर पर। अब क्या मुझे दूसरी शादी करनी है। तुम्हीं दोनों मेरी धर्मपत्नियाँ हो और तुम्हीं दोनों की सन्तान मेरी सम्पत्ति की अधिकारिणी होगी। उसकी बातों पर कंचना की आँखों में सावन-भादों की घटाएँ उमड़ पड़ीं। अपने रूमाल से उसके आँसू पोंछते हुए प्रेमशंकर ने कहा—'कंचना, बीती बातों को भूल जाओ और मेरे साथ चलो।'

रास्ते में प्रेमनाथ का मकान पड़ता था। इसलिए दूसरी राह से तीनों प्रमशंकर के मकान पर पहुँचे। लगभग चार महीने के बाद कंचना का वहाँ आगमन हुआ था। वहाँ पग देते ही अतीत की सारी स्मृतियाँ उसके मस्तिष्क में जाग उठीं। उसे उदास और खिन्न देखकर किशोरी ने कहा—'कंचना, पूर्व की घटनाओं के स्मरण करने से कुछ लाभ होने का नहीं है। संसार का यही क्रम है। अब यहाँ आनन्दपूर्वक रहो।'

कंचना—'हाँ रहना तो है ही। इस विषय में इच्छा और अनिच्छा का तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता है। परन्तु अब सावधानी यह रखनी है कि मेरे यहाँ

पुनः आने की खबर मेरे सगे-सम्बन्धियों के कानों में नहीं पड़े, अन्यथा मैं उपहास की पात्र बन जाऊँगी।'

प्रेमशंकर ने हँसकर कहा—'इस विषय की दूसरों से चर्चा करने की क्या आवश्यकता है। लेकिन इसमें शर्म या भय करने की कोई बात नहीं है, क्योंकि तुम मेरी जायज पत्नी हो।'

कंचना—'तुम्हारी उदारता के लिए धन्यवाद।'

इधर दुकान से लौटने पर कंचना को न देखकर प्रेमनाथ चिन्तित हो उठे। नौकर-नौकरानियों से पूछने पर उन्हें पता चला कि कंचना सफेद साड़ी पहनकर ऊपर से नीचे उतरी थी, पर मालूम नहीं कि वह किधर गई। फिर जब उन्होंने अपने कमरे में प्रवेश किया तो देखा कि कंचना के सारे आभूषण उसके विस्तर पर रखे थे। यह देखकर वे सन्न रह गए। लगभग डेढ़ घण्टे तक मौन होकर वे बैठे रहे और कंचना के भाग्य पर सोचते रहे। उन्होंने अपने मन में कहा कि मालूम होता है कि मेरे आदेशानुसार कंचना ने गंगा में जाकर जलसमाधी ले ली। अच्छा ही हुआ, क्योंकि कलंकित जीवन से मृत्यु को प्राप्त होना श्रेष्ठ है। बर्बर युग में शादी-विवाह की कोई व्यवस्था नहीं थी। उस काल में स्त्री-पुरुष स्वच्छ विहार करते थे। कोई किसी पर हँसने वाला नहीं था। परन्तु आज की सभ्यता के युग में जब कि शादी-विवाह की व्यवस्था हो गई है, कोई इस प्रकार के स्वच्छन्द विहार को कैसे पसन्द कर सकता है? आज के सभ्य-मानव समाज ने इसे अनैतिक सम्बन्ध की संज्ञा दी है और जो समाज के इस नियम का उल्लंघन करते हैं वे व्यभिचारी के नाम से पुकारे जाते हैं और समाज उन्हें उपेक्षित भाव से देखता है। स्त्री या पुरुष कोई भी एक बार समाज की दृष्टि में गिर जाने पर वे पुनः सम्मान का स्थान नहीं प्राप्त कर सकता है। फिर भी पुरुष जो अपने को सबल कहता है, समाज में अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा प्राप्त कर लेता है। परन्तु नारी जो अबला कही जाती है, अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा लाख प्रयत्न करने पर भी नहीं प्राप्त कर सकती है। प्रतिष्ठा कोई बाजार का हीरा, मोती, सोना-चाँदी नहीं है, जो खोकर भी प्राप्त की जा सकती है। मान-मर्यादा मनुष्य के जीवन की अमूल्य निधि है, जो एक बार खोकर पुनः प्राप्त नहीं हो सकती है। इसे खोकर मनुष्य का जीवन कलंकित व कलुषित हो जाता है। मनुष्य के जीवन में व्यक्ति का जितना बड़ा महत्त्व है उतना बड़ा

महत्त्व ऐश्वर्य और वैभव का नहीं है। चरित्र का स्थान सबसे ऊँचा माना गया है। उसमें स्त्री के लिए चरित्र ही सब कुछ है। स्त्री अपने चरित्र को कलंकित कर देती है। कंचना मर गई, दुनिया से चली गई। अपनी निन्दा तो वह सुनने नहीं आएगी। परन्तु उसके नाम पर जो कलंक लग गया है वह तो दूर होने का नहीं है। मेरे पूर्वजों को परलोक में इससे शान्ति नहीं मिलेगी।'

इसी बीच नौकर ने आकर उनका ध्यान भंग करते हुए कहा—'बाबू जी, भोजन तैयार है।'

'चलो आता हूँ।' कहकर वे पुनः चिन्तामग्न हो गए। वे सोचने लगे—मैंने सोचा था कि एक सुयोग्य वर के साथ कंचना का विवाह कर उसके नाम से सारी सम्पत्ति लिख दूं और स्वयं तपस्या करने के लिए बद्रीनाथ चला जाऊँ। परन्तु यहाँ तो दूसरी ही तपस्या हो गई। अब कूकुर की भाँति मुझे अपनी इस विशाल सम्पत्ति की रखवाली करनी होगी। कंचना ही मेरे जीवन की एकमात्र अवलम्ब थी, वह भी खत्म हो गई। मेरा संसार उजड़ चुका है। फिर भी इस उजड़े हुए संसार के कण-कण में मेरे लिए माया का बाजार बसा हुआ है। एक-एक दमड़ी में मेरी आत्मा लिप्त है। मेरे सामने यह एक कठिन प्रश्न है कि इस धन का उपयोग कौन करेगा? हमारे बाप-दादों ने कितनी कठिनाइयों से यह धन एकत्रित किया और मैंने भी इसकी वृद्धि के लिए कोई कसर उठा न रखी। धार्मिक भावनाओं को रखते हुए भी मैंने अपने ग्राहकों को धोखा दिया। शपथ खाकर उनके पैसे ऐंठ लिए। पर आज इस धन का उपयोग करने वाला कोई नहीं रहा। जब सिकन्दर अपने साथ धन नहीं ले गया तब क्या मैं ले जाऊँगा? संसार में न कोई कुछ लेकर आता है और न कुछ लेकर जाता है। सारी सम्पत्ति यहीं रह जाती है और मनुष्य हाय-हाय करता हुआ संसार से कूच कर जाता है। संसार में मनुष्य की कृति ही अमर रह जाती है। उसी से वह अमरत्व को प्राप्त करता है।'

इसी बीच नौकरानी ने उनसे कहा—'बाबूजी, आप किस चिन्ता में पड़े हुए हैं? इसे भूल जाइए और अपने काम-धन्धे में अपना मन लगाइए। कंचना ने जो किया, वह किसी ने नहीं किया। उसने आपकी नाक काट ली। नीच-ऊँच में पैर देते हुए उसने न तो अपने कुल की प्रतिष्ठा का खयाल किया और न अपनेभविष्य की ओर देखा। उसने यह नहीं सोचा कि उसके कुकर्मों का प्राय-

श्चित्त न केवल उसको करना पड़ेगा बल्कि उसके पिता को भी करना होगा। नारी वंश की मर्यादा है। इस मर्यादा में दाग लग जाने से सारा वंश कलंकित हो जाता है। नारी कुल की ग्राभूषण है जिसे उतारते ही कुल श्रीहीन हो जाता है। उसका सारा ग्राकर्षण जाता रहता है। कंचना ग्रपनी मान-मर्यादा ग्रौर सतीत्व को खोकर कहीं की नहीं रही ग्रौर ग्रापके मुख में कालिख पोत कर चली गई।'

प्रेमनाथ—'हाँ, तुम्हारा कहना बिल्कुल ठीक है। मैं समाज में मुख दिखलाने लायक नहीं रह गया।'

१५

ठाकुर जयपाल सिंह जब जेल से छूटकर ग्राये तब राजा उपाध्याय ने उनके भय से गाँव छोड़ दिया। उसके पास जो डेढ़-दो एकड़ जमीन थी, उसे बेच दी ग्रौर लोटा-थाली जो कुछ सामान था उसे बाँधकर वह इलाहाबाद चलता बना।

जब वह ग्रपने गाँव से सम्बन्ध-विच्छेद कर सदा के लिए जा रहा था तब ठाकुर जयपाल सिंह ने उसे रोका भी ग्रौर पूछा—'उपाध्याय, तुम क्यों माधोपुर छोड़कर जा रहे हो?' मेरा भय मत करो। ग्रब यह जयपाल सिंह वह जयपाल सिंह नहीं है जिसका नाम सुनकर लोग काँप उठते थे ग्रौर चमार दूसाध सामने से जूता, खड़ाऊँ पहनकर चलने का दुस्साहस नहीं करते थे। दीनदयाल उपाध्याय की हत्या के बाद से मेरे मन में ग्रजीब-सा वैराग्य उत्पन्न हो गया है। मैं सोचता हूँ कि सबल हाथ गरीबों की रक्षा के लिए हों, न कि उनके विनाश के लिए। संसार में ऊँच-नीच कोई नहीं है, केवल यह मन की भावना है। सभी ईश्वर के बन्दे हैं। उसकी दृष्टि में सब समान हैं। इसलिए किसी के प्रति ग्रन्याय करना ग्रच्छा नहीं है। धनिक ग्रौर निर्धन ईश्वर के बनाए हुए नहीं हैं, बल्कि इसका निर्माता समाज है। इस समाज का शुद्धिकरण होना चाहिए।

'अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए मैं अपने जीवन का शेष भाग समाज की सेवा में लगा देना चाहता हूँ। मैं वैसा समाज चाहता हूँ जिसमें न कोई अभावग्रस्त हो और न जाति का भेद-भाव हो। जनता जनार्दन की सेवा ही ईश्वर की सेवा है। चि० धनुषधारी अपने परिवार को देखें, मैं तो अब दीन-हीन की सेवा में लगूंगा।'

ठाकुर जयपाल सिंह इतना तो कह गए पर राजा उपाध्याय के हृदय पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। ठाकुर साहब पर उसका विश्वास उसी प्रकार नहीं हुआ जैसे वृद्ध सिंह पर शशक का। राजा उपाध्याय ने अपने मन में सोचा कि जन्म-भर जिसकी हिंसा की वृत्ति रही है वह अगर अपना साधुवाद दिखलावे तो समझ जाना चाहिए कि वह अपना कोई विशेष स्वार्थ सिद्ध करना चाहता है। ऐसे ही व्यक्ति को हितोपदेश में बिड़ाल भक्त कहा गया है। ठाकुर साहब ने मेरे चाचा की हत्या की और अब मेरे प्राणों के ग्राहक बन गए हैं। भला इस बात को वे कैसे भूल सकते हैं कि इलाहाबाद में इन्हें पकड़वाने के लिए मैंने पुलिस को सूचना दी और शाहाबाद कोर्ट में इन्हें दोषी प्रमाणित करने के लिए मैंने कोई कसर उठा नहीं रखी। अपने इस शत्रु को यह भूखा शेर कब छोड़ने को है। ठाकुर जयपाल सिंह से भी बढ़कर क्या कोई जालिम होगा जो सैकड़ों घरों को फूंक कर ताप गए। कितने फूले-फले परिवारों को रुलाकर उनके आँसू ये पी गए। इनका सारा जीवन दूसरों को पीड़ा पहुँचाने में ही व्यतीत हुआ। पर आज ये मानव-सेवा की बातें कर रहे हैं और जनता जनार्दन में भगवान के दर्शन कर रहे हैं। अभी ये जेल से छूटे हैं और मृत्यु के मुख से निकले हैं इसलिए धर्म की बातें करते हैं। लेकिन एक-दो महीना बाद ये पुनः अपने पुराने मार्ग पर चले आएँगे और मेरे ऐसे गरीब ब्राह्मण को अपने प्रकोप का शिकार बनाये बिना नहीं रहेंगे। जब सरकार इनका कुछ न बिगाड़ सकी तो मैं क्या बिगाड़ सकता हूँ। व्यर्थ ही प्रधानाध्यापक की बातों में आकर इस खूँखार व्याघ्र को मैंने छेड़ा। यह इनकी कृपा है कि अभी तक इनकी आँखों के समक्ष मैं साँस ले रहा हूँ।'

ठाकुर जयपाल सिंह ने उसे गम्भीर मुद्रा में देखकर पूछा—'क्या सोच रहे हो उपाध्याय? यही सोचते हो न कि जमीन तो बेच ली, अब कहाँ रहूँगा। पर तुम्हारा यह सोचना बेकार है। जब तक ठाकुर इस संसार में जीवित है

तब तक तुम अपने निवास-स्थान के लिए चिन्ता मत करो। जिन लोगों ने तुम्हारी जमीन ली है वे मेरा नाम सुनकर तुम्हें घर बैठे वापस कर जाएँगे।'

ठाकुर साहब की इन बातों से राजा उपाध्याय और भी भयभीत हो उठा। उसने अपने मन में सोचा कि ठाकुर साहब ने अच्छी योजना बनाई है। अब ये अपने हाथ से मेरी हत्या करना नहीं चाहते हैं बल्कि खेत पर ही दूसरों के हाथ से मेरा प्राणान्त करवाना चाहते हैं। इसलिए इस गाँव को छोड़ने ही में मेरा कल्याण है।

ठाकुर साहब बड़ी उत्सुकता के साथ उसकी ओर देख रहे थे। उसे चिन्तित देखकर उन्होंने पूछा—'क्या उपाध्याय, गाँव छोड़ने का ही विचार है?'

राजा उपाध्याय ने कर जोड़कर कहा—'हाँ ठाकुर साहब, वर्षों से शहर में रह आया हूँ। इसलिए यहाँ मन नहीं लगेगा और मेरे लिए यहाँ मन लगने का साधन ही क्या है? वसुधा गई, पत्नी गई, चाचा भी परलोक गए, इसलिए मुझे भी यहाँ से चलना चाहिए। कृपया आशीर्वाद के साथ मुझे जाने दीजिए।'

ठाकुर साहब—'जब तुम स्वयं यहाँ नहीं रहना चाहते हो तो मेरा क्या दोष? जो धर्म था वह मैंने किया। आगे तुम्हारी मर्जी।'

ठाकुर साहब के मुख से इन बातों को सुनकर राजा उपाध्याय के प्राण लौटे। वह इलाहाबाद जाने के लिए उठ खड़ा हुआ। ठाकुर साहब ने उसे प्रणाम करते हुए कहा—'देखना उपाध्याय, जब तुम्हारे ऊपर कोई संकट आवे तो मेरा स्मरण करना।'

'अवश्य ठाकुर साहब' कहते हुए राजा उपाध्याय ने माधोपुर गाँव को अन्तिम नमस्कार किया।

उसके जाने के बाद ठाकुर साहब ने अफसोस प्रकट करते हुए कहा—'मेरे कारण यह ब्राह्मण-परिवार इस गाँव से उजड़ गया। हमारे पूर्वजों ने उपाध्याय के पूर्वजों को यहाँ बुलाकर बसाया था और उन्हें अपने गाँव की पुरोहिती दी थी। आज बेचारा राजा उपाध्याय मेरे प्रति कैसी धारणा अपने हृदय में धारण किए होगा। पर मैंने उसे गाँव नहीं छुड़ाया यह तो वह स्वीकार करेगा। अपनी इच्छा से उसने अपनी मातृभूमि का परित्याग किया है।'

वह इसी विषय को लेकर उलझन में पड़े हुए थे। इसी बीच उनका चरण-स्पर्श करते हुए प्रताप ने पूछा—'दादा जी, आज आप बहुत ही चिन्तित मालूम

पड़ रहे हैं ?'

ठाकुर साहब—'यही सोच रहा था कि मेरे कारण एक ब्राह्मण-परिवार सत्यानाश में पहुँच गया। मेरा सारा जीवन पराये उत्पीड़न में ही व्यतीत हुआ। किसी के कल्याण के लिए मैंने कुछ नहीं किया। अब मृत्यु के समीप पहुँच कर हाथ मलने ही से क्या होने वाला है।'

प्रताप—'दादाजी, जीवन क्या प्रत्येक क्षण मूल्यवान होता है। अपने जीवन की इस ढलती वेला में भी आप परोपकार के लिए जितने कार्य कर सकते हैं, उतने कार्य एक लम्बी आयु वाला व्यक्ति भी नहीं कर सकता है।'

ठाकुर साहब —'क्या करूँ, कुछ बतलाओ।'

प्रताप—'गाँवों में शिक्षा का अभाव है। इसलिए शिक्षा के प्रसार के लिए आप शिक्षण संस्थाएँ खुलवा सकते हैं। अनाथ महिलाओं और बच्चों के लिए आप अनाथालय खुलवा सकते हैं और मनुष्यों को सही रास्ते पर लाने के लिए उनके बीच ज्ञानियों द्वारा उपदेश दिलवा सकते हैं। धर्म का क्षेत्र विशाल है। आप किसी भी अंश को पकड़कर चल सकते हैं।' ठाकुर साहब ने मुस्कराते हुए कहा—'तुम्हारा कहना बिल्कुल ठीक है। आस-पास के गाँवों में प्राइमरी स्कूल खुलवा देता हूँ, और मेरी इच्छा है कि एक टेकनिकल स्कूल खोला जाय, जिससे छात्रों को रोजी-रोटी के लिए भटकना नहीं पड़े। अनाथालय की तो शहरों में आवश्यकता है। गाँवों में इसकी आवश्यकता नहीं है।'

प्रताप—'ठीक है, गाँवों में आप प्राइमरी स्कूलों की स्थापना की व्यवस्था कीजिए। इससे शिक्षा के प्रसार में काफी सहायता मिलेगी। यह आपका कहना ठीक है कि अनाथालय की आवश्यकता शहरों में है, ग्रामीण क्षेत्रों में नहीं। बनारस में हाल ही में एक अनाथालय खुला है उसके संस्थापक श्यामाचरण के भाई कान्तिचरण पिताजी से कह रहे थे कि रघुनाथ चौबे से अनाथालय की व्यवस्था ठीक ढंग से नहीं हो पा रही है। वहाँ कड़ी अव्यवस्था फैली हुई है। कुछ भ्रष्टाचार की शिकायतें भी सुनने को मिली हैं। चन्दे का हिसाब-किताब मिलता नहीं है।'

ठाकुर साहब—'कौन रघुनाथ चौबे, जो अपने थाने में दारोगा था ?'

प्रताप—'हाँ दादाजी, वही रघुनाथ चौबे, जो आपके मामले में बर्खास्त हुआ था।'

ठाकुर साहब—'तो क्या कान्तिचरण को अनाथालय की व्यवस्था के लिए आदमी चाहिए ?'

प्रताप—'हाँ, कान्तिचरण पिताजी से तो ऐसा ही कह रहे थे।'

ठाकुर साहब—'पहले स्कूलों के निर्माण में मेरी सहायता करो, बाद में अनाथालय के प्रश्न पर विचार किया जायेगा।'

प्रताप की तत्परता से माधोपुर के आस-पास के गाँवों में कई प्राइमरी स्कूल खुल गए। टेकनिकल स्कूल भी खुल गया। ठाकुर धनुषधारी सिंह का विचार था कि टेकनिकल स्कूल का नाम ठाकुर जयपाल सिंह के नाम पर रहे, जिससे उनकी कृति कायम रह जाय।'

लेकिन ठाकुर जयपाल सिंह को यह विचार पसन्द नहीं था। उन्होंने राय दी कि स्वर्गीय दीनदयाल उपाध्याय के नाम पर टेकनिकल स्कूल का नाम रहना चाहिए।' ठाकुर धनुषधारी सिंह ने हँसते हुए कहा—'आपने ब्रह्महत्या का सच्चा प्रायश्चित्त कर लिया।'

सभी स्कूल सुचारु रूप से चलने लगे। ठाकुर जयपाल सिंह नित्य सभी स्कूलों का निरीक्षण करते थे और शिक्षकों को समय पर वेतन देकर लगन के साथ उन्हें काम करने के लिए प्रोत्साहित करते थे। ठाकुर जयपाल सिंह की इस कृति ने उनके जीवन के सारे कलंकों को धो दिया। पहले लोग भय से उनका सम्मान करते थे, परन्तु अब प्रेम और श्रद्धा से उनका सम्मान करते थे। सब यही कहते थे कि मरने के पूर्व ठाकुर साहब ऐसे काम करते जा रहे हैं कि उनका नाम अमर रह जायेगा।

१६

पौष का महीना था और अर्द्ध-रात्रि का समय। कड़ाके का जाड़ा पड़ रहा था। किसी का साहस बिस्तर से उठने का नहीं हो रहा था। वास्तव में उस समय मकान से बाहर जाना मृत्यु का सामना करना था। सनसनाती हुई पछुवा

हवा के स्पर्श से सारा शरीर काँप उठता था और पैर-हाथ तो कुछ काम नहीं कर रहे थे। मालूम होता था कि उन पर बर्फ जम गया है। ठण्ढक के इस प्रकोप ने काशी नगरी को निर्जीव-सा बना दिया था। सर्वत्र शान्ति विराज रही थी। उसी समय प्रेमनाथ ने खिड़की खोलकर बाहर की ओर देखा। चारों ओर कुहासा फैला हुआ था। दो ही-चार मिनटों में वे ठंढक से सिसकने लगे। झट खिड़की बन्द कर वे बिस्तर पर आकर लेट गए। उन्होंने अपने मन में कहा—'इतना सुन्दर मेरा मकान है और बिस्तर तथा रजाई का इतना अच्छा प्रबन्ध है तो भी मुझे ठंड मालूम हो रही है। जिनके पास कपड़े नहीं हैं, उनकी क्या दशा होती होगी। उनकी रात कैसे कटती होगी ? निर्धनता के अभिशाप ने हमारे देश के अधिकाँश लोगों का जीवन बर्बाद कर दिया है। देश में काफी गरीबी जोरों में बढ़ती जा रही है परन्तु सरकार इसे रोक नहीं पा रही है। जो धनी हैं, वे धनी बनते जा रहे हैं और जो गरीब हैं वे गरीब बनते जा रहे हैं। दीनता एक बहुत बड़ा अभिशाप है। समाज में गरीबी बढ़ने का प्रमुख कारण कुछ व्यक्तियों द्वारा पूँजी पर एकाधिकार बना रखना है। थोड़े से लोग समाज की संपत्ति के स्वामी बन कर बैठे हैं। इससे अधिकांश लोग दीन-हीन बने हुए हैं। जब तक यह शोषण बन्द नहीं होगा तब तक समाज सुखी और सम्पन्न नहीं होगा। इसीलिए धार्मिक ग्रन्थों में कहा गया है कि दूसरों के परिश्रम पर जीना और आवश्यकता से अधिक धन संचय करना पाप है। गीता में भगवान कृष्ण ने कहा है कि यज्ञ का अवशेष जो बाँट कर नहीं खाता है वह पाप का भागी बन जाता है। इसी देश में नहीं हरेक देश में पूँजीवादी नीति गरीबी और बेकारी का प्रमुख कारण है।

सोचते-सोचते प्रेमनाथ को पुनः नींद आ गई। परन्तु जब उनकी दीवार-घड़ी ने चार की आवाज दी तब अचानक उनकी नींद टूट गई। उठकर उन्होंने कमरे की बत्ती जलाई और बाहर आए। पछुवा हवा की सनसनाहट से मकान से निकलने का साहस नहीं हो रहा था, फिर भी वे अपने नियम के बड़े पक्के थे। उस कठिन सर्दी की परवाह न कर हाथ में धोती, लोटा और दातून लेकर वे गंगाजी की ओर चले।

अभी भी चारों ओर कुहासा फैला हुआ था जिसमें विद्युत का प्रकाश भी मन्द पड़ गया था। उस दृश्य को देखकर मालूम होता था मानो अन्धकार का

महिमंडल पर साम्राज्य स्थापित हो गया है। सारी नगरी में अभी तक निस्तब्धता छाई हुई थी। उस अन्धकार में ठंडक का सामना करते हुए प्रेमनाथ तीव्र गति से जा रहे थे। अचानक उनकी दृष्टि एक महिला पर गई, जो उनके आगे-आगे दौड़ती हुई गंगा की ओर जा रही थी। उसकी गोद के शिशु के दो-चार बार रुदन की आवाज भी उनके कानों में पड़ी। इससे प्रेमनाथ सहज में समझ गए कि कोई दुराचारिणी स्त्री अपने पापों पर पर्दा डालने के लिए अपने जीवित शिशु को माँ गंगा को समर्पित करने जा रही है। उन्होंने आवाज दी—'कौन है? खड़ी हो जाओ।'

उनकी इस आवाज पर वह स्त्री और भी दौड़ने लगी। उसे पकड़ने के लिए प्रेमनाथ ने भी अपनी चाल तीव्र की, किन्तु अपनी वृद्धावस्था के कारण वे उसे नहीं पकड़ सके। फिर भी उन्होंने साहस नहीं छोड़ा और वे भी अपनी गति में तेजी लाते ही गए। लेकिन वे असफल रहे। उनके गंगा-घाट पर पहुँचने के पहले ही उस नारी ने अपने बच्चे को जोरों से घुमाकर गंगा की मध्य धारा में फेंक दिया।

बच्चा सदा के लिए माँ गंगा के गर्भ में विलीन हो गया। वह नारी वहीं पर किंकर्त्तव्य विमूढ़ होकर खड़ी रही। इस काँड से उसके हृदय पर एक धक्का-सा लगा। उसने अपने मन में कहा—'मैंने कैसा अनर्थ किया? कुछ माह पूर्व इस बच्चे को अपने गर्भ में छिपाए इसी गंगा में अपने प्राणों के विसर्जन के लिए मैं आई थी, परन्तु मृत्यु के भय से मैं पीछे लौट गई। परन्तु आज एक निरीह और अबोध बालक को, जिसे नौ महीने तक मैंने अपने गर्भ में रखा, अपना पाप छिपाने के लिए मृत्यु के मुख में सौंप दिया। हाय! कितना जघन्य कार्य मैंने किया है? मेरी आत्मा विह्वल और व्यग्र हो उठी है। शिशु-हत्या न कर अगर संसार का मैं उपहास सह लेती तो कितना अच्छा होता। पर मेरी निर्बल आत्मा में इतना बल कहाँ है? प्रेमशंकर के ही कारण मैंने यह दानवी कार्य किया है। पहले तो उसने कहा था कि तुम संसार की परवाह मत करो। मैं अपने को तुम्हारे शिशु का पिता घोषित करूँगा, किन्तु कल सवेरे जब इस बालक का जन्म हुआ तब उसने मुझे इस पुष्प को काल के मुख में फेंकने के लिए विवश किया। [illegible] निकली हूँ। दूसरों इच्छा पर चलने के लिए विवश हूँ। वह इन्हीं विचारों में निमग्न थी

उसे कोई ध्यान ही नहीं रहा कि वह कहाँ है ? इतने ही में प्रेमनाथ उसके सामने आकर खड़े हो गए और प्रश्न किया—'क्या यह बच्चा तुम्हारा था ? तुमने उसे गंगा में फेंक दिया ?'

उनके इस प्रश्न पर वह स्त्री चौंक उठी और अपने पिता को पहचान कर लज्जित हो गई। उसने कुछ उत्तर नहीं दिया। उसे मौन देखकर प्रेमनाथ ने उससे पुनः पूछा—'बोलती क्यों नहीं हो ? सांसारिक सुख लूटने में लज्जा मालूम नहीं हुई, अबोध शिशु को अगाध जल में फेंकने में लज्जा मालूम नहीं हुई और मुझे उत्तर देने में तुमको लज्जा मालूम हो रही है ?'

उस स्त्री ने काँपते हुए स्वर में कहा—'हाँ पिताजी, वह मेरी संतान थी, जिसे अपने पापों पर पर्दा डालने के लिए जीवित ही माँ गंगा को सौंप कर जा रही हूँ।'

कुहासे के कारण प्रेमनाथ उसे नहीं पहचान पाये थे। पर उसकी आवाज सुनते ही वे चौंक उठे और एकाएक उनके मुख से प्रश्न निकला—'कौन कंचना ?'

'हाँ पिताजी, मैं आप ही की पुत्री कंचना हूँ।' उस स्त्री ने उत्तर दिया।

प्रेमनाथ ने क्रोध-भरे शब्दों में कहा—'मैंने समझा था कि तुम सदा के लिए इस संसार से चली गईं। पर मैं तुमको अपने सामने जीवित पा रहा हूँ। मेरे मुख में कालिख पोतने के लिए तुम अभी तक जीवित हो। अपने कुकर्मों पर पर्दा डालने के लिए तुमने अबोध बच्चे की हत्या की है। इससे तो अच्छा होता कि तुम स्वयं डूब मरतीं। मैंने जो तुमको रास्ता बतलाया, उसका अनुकरण तुमने कहाँ किया।'

कंचना के मुख से कोई उत्तर नहीं निकला। वह नतमस्तक होकर खड़ी रही।

प्रेमनाथ ने पुनः कहा—'कंचना, साँप अपने अण्डे को खा जाते है और बिडाल अपने बच्चे को चबा जाते हैं, पर मानवी हृदय भी ऐसा जघन्य कार्य कर सकता है मुझे विश्वास नहीं था। क्या तुम माँ बनने लायक थीं। माँ के हृदय में ममता होती है, संतान के लिए अगाध प्रेम होता है और उस पर अपने प्राण न्योछावर करने को वह तैयार रहती है। परन्तु तुम तो वैसी माँ हो जिसके हृदय में न तो ममता है और न धर्म है, जो संतान उत्पन्न करना जानती है, पर उसकी रक्षा करना नहीं जानती। हाँ, उसे मौत के घाट उतारने

में तुम्हारे समान अधम माँ प्रवीण होती हैं।'

इसी बीच गंगा में मछली के कूदने से प्रेमनाथ की आँखें सहसा उस ओर गईं और इधर कंचना ने अपने पैर बढ़ाये। प्रेमनाथ ने न तो उसे रोका और न उससे पूछा कि वह कहाँ रहती है और कैसे उसकी जीविका चलती है। पिता की आँखों से ओझल होते ही कंचना ने और भी तेजी से अपने पैर बढ़ाए। आध घण्टे में ही वह प्रेमशंकर के मकान पर पहुँच गई। उस समय तक कुहासा फटने से अँधेरा कम रह गया था। किशोरी बरामदे में बैठकर उसकी राह देख रही थी। उसे देखते ही उसने प्रश्न किया—'बच्चे को गंगा में फेंक दिया।'

कंचना ने रुँधे कंठ से उत्तर दिया—'हाँ, उसे फेंक दिया।'

किशोरी—'किसी ने देखा नहीं?'

कंचना—'सत्य पर पर्दा नहीं डाला जा सकता है।' और वह रो पड़ी।

१७

ज्येष्ठ में दशहरा के मेले से प्रेमशंकर जिस समय लौट रहा था, उस समय श्यामाचरण अपने मकान के फाटक पर खड़े होकर मेला में आने-जाने वाले लोगों की भीड़ देख रहे थे। प्रेमशंकर पर नजर जाते ही उन्होंने हाथ के संकेत से उसे रोका। उसने सड़क की बाईं ओर अपनी गाड़ी खड़ी कर दी। उसके स्वागत के लिए श्यामाचरण स्वयं दौड़ पड़े और उसे साथ लेकर अपने बरामदे में आये। उन्होंने अपने हाथ से कुर्सी लाकर उसे बैठने के लिए दी। आसन ग्रहण करते ही उसके सामने पान की तश्तरी आ गई। मुँह में पान का बीड़ा डालकर वह बरामदे की सजावट देखने लगा। श्यामाचरण ने प्रेमा को पुकारा। उस समय प्रेमा भी मेला जाने की तैयारी में थी। इसलिए उसने अच्छी साड़ी, ब्लाउज पहन रखा था तथा स्नो और लिपिस्टिक लगाकर अपने मुखड़े को
कर्षक बना लिया था। कमरे से बाहर पैर रखते ही प्रेमशंकर को देखकर

वह कुछ लज्जित-सी हो गई। उसकी ओर से अपनी आँखें हटा कर उसने पूछा—'क्या है पिताजी ?'

प्रेमशंकर की ओर अँगुली से संकेत करते हुए श्यामाचरण ने कहा—'इन्हें पहचानती हो ?' प्रेमा ने कोई उत्तर नहीं दिया। श्यामाचरण ने कहा—'ये हैं स्वर्गीय दीवान गौरीशंकर के सुपुत्र प्रेमशंकर। दीवान उपाधि इनके वंश में बड़े पुत्र को लार्ड हेस्टिंग्स के समय से ही मिलती आ रही है। इसलिए नये वर्ष पर इन्हें वह उपाधि सरकार से मिल जाएगी। ये बड़े सज्जन और होनहार व्यक्ति हैं।' फिर प्रेमशंकर को सम्बोधित करते हुए उन्होंने प्रेमा की ओर लक्ष्य करके कहा—'यही मेरी पुत्री प्रेमा है।'

प्रेमा ने दोनों हाथ जोड़कर प्रेमशंकर को नमस्कार किया। प्रेमशंकर ने भी मुस्कराते हुए कहा—'नमस्ते'।

प्रेमशंकर प्रेमा का सौन्दर्य देखकर आश्चर्यचकित रह गया। वह उसकी दृष्टि में स्वर्ग-लोक की अप्सरा-सी प्रतीत हुई। उसकी शारीरिक बनावट ने उसके मन को मोह लिया। उस आकर्षक मूर्ति को देखकर वह उसी में खो गया। वह एकटक उसकी ओर तब तक देखता रहा जब तक कि श्यामाचरण ने यह कहकर उसका ध्यान भंग नहीं किया कि प्रेमशंकर जी इसी के साथ आपके विवाह की बात-चीत चल रही है।

'आपके पिताजी ने मुझे वचन दिया था, लेकिन बीच में ही दैवात् ऐसी घटना घट गई कि सारा कार्यक्रम ठप्प पड़ गया।'

प्रेमशंकर—'हाँ, वह तो भयानक दुर्घटना हुई। पर उसमें दैव का हाथ नहीं था, प्रेमनाथ जी का हाथ था। मैं तो उन्हें दण्ड दिलवाए बिना नहीं रहता, लेकिन ठाकुर धनुषधारी सिंह के कारण वे बच गए। इसके लिए उन्हें काफी रकम खर्च करनी पड़ी।'

श्यामाचरण—'ठाकुर साहब अपनी तर्क-शक्ति के अतिरिक्त अपनी राजपूती शान भी तो दिखलाते हैं।'

प्रेमशंकर ने हँसकर कहा—'हाँ, आपका कहना बिलकुल ठीक है।' उन्होंने मुझे भी भय दिखलाया और कहा कि उल्टे तुम्हीं को फाँसी होगी। भय से मैं कुछ कर नहीं सका और विजय की माला उन्होंने ले ली।'

श्यामाचरण—'जिस बात के लिए मैंने आपको रोका, उस पर तो कुछ

प्रकाश नहीं डाला ।

प्रेमशंकर—'वह क्या ?'

श्यामाचरण—'प्रेमा का आप पाणिग्रहण कीजिए । ऐसी सुन्दर वधू आपको नहीं मिलेगी ।'

यह सुनकर प्रेमा वहाँ से चल पड़ी ।

श्यामाचरण ने यह भी कहा—'प्रेमा का शील-स्वभाव बहुत अच्छा है । प्रेमनाथजी की पुत्री कंचना के समान यह उच्छृंखल नहीं है ।'

प्रेमशंकर—'हाँ, यह तो एक नजर में ही पता चल गया ।'

श्यामाचरण—'तब आपकी क्या राय है ? अगर आप स्वीकृति दें तो विवाह की तिथि निश्चित की जाय और कुटुम्बों तथा मित्रों को निमन्त्रित किया जाय ।'

प्रेमशंकर—'हाँ, विवाह तो मुझे करना है । अगर विवाह नहीं करूँ तो मेरा वंश यहीं खत्म हो जाएगा और मेरे पुरुखों को पानी कौन देगा ।'

श्यामाचरण—'अगर आपको विवाह करना है तो प्रेमा से ही कीजिए । यह देखने में जैसी सुन्दरी है, वैसा ही इसने सुन्दर हृदय पाया है । पत्नी मनुष्य के जीवन में अमूल्य रत्न है, अगर वही मन के अनुकूल नहीं मिली तो जीवन ही व्यर्थ समझिए । दाम्पत्य-जीवन सुखी रहने से स्वर्गीय सुख अनुभव होता है । विवाह बाजार का सौदा नहीं है, जिसकी खरीद-बिक्री बराबर होती रहे । यह वह सौदा है जो एक ही बार होना चाहिए और खूब सोच-विचार कर होना चाहिए । इसीलिए मैं कहता हूँ कि प्रेमा को आप अपनी अर्द्धांगिनी-रूप में स्वीकार कीजिए । इसके साथ आपका जीवन सुखी रहेगा ।'

प्रेमशंकर तो चाहता ही था कि उसे कोई नव-युवती सुन्दरी मिल जाए । फिर प्रेमा के सम्बन्ध में क्या पूछना ? प्रेमा को देखते वह अपने को भूल गया । उसने श्यामाचरण से कहा—'जब आपको पिताजी ने वचन दे दिया था तब उसे भंग कर उनकी आत्मा को दुःख पहुँचाने का मैं दुस्साहस कैसे कर सकता हूँ । इसलिए मैं अवश्य आपकी पुत्री का पाणिग्रहण करूँगा । आप विवाह की तिथि निश्चित कीजिए, जिससे मैं भी अपने सगे-सम्बन्धियों को आमन्त्रित करूँ ?'

उसकी स्वीकृति पर श्यामाचरण को अपार हर्ष हुआ । उन्होंने उसे धन्यवाद देते हुए कहा—'पुत्र हो तो ऐसा हो, जो अपने पूज्य पिता की बातों को अब भी

वही महत्व देता है। आपने मेरा बोझ हल्का कर दिया। घर बैठे मुझे प्रेमा के योग्य सुन्दर घर-वर दोनों मिल गए।'

उन्होंने कुन्ती को पुकारकर कहा—'देखो, तुम्हारी लड़की के लिए मैंने यह सुन्दर वर खोजा है। प्रेमा के पूर्व-जन्म के पुण्य का उदय समझो कि ऐसा सुन्दर वर और सम्पन्न घर मिल गया।'

प्रेमशंकर को देखकर कुन्ती प्रफुल्लित हो उठी। उसने मन-ही-मन कहा—'हाँ, यह वर मेरी प्रेमा के योग्य है। जोड़ी अच्छी लगेगी।'

श्यामाचरण—'इनके जलपान की व्यवस्था करो।'

'हाँ', करती हुई कुन्ती अन्दर चली गई और विमला से कहा—'तुम्हारा ननदोई बाहर दरवाजे पर बैठा हुआ है और तुम घर में सोई हो। खिड़की से झाँककर देखो तो वह कैसा सुन्दर है।'

विमला मुस्कराती हुई किवाड़ की आड़ में खड़ी होकर प्रेमशंकर की ओर देखने लगी। उसने अपने मन में कहा—'कैसा सुन्दर रूप इसने पाया है। ऐसा सुन्दर पुरुष तो मैंने आज तक नहीं देखा। अगर मैं कुमारी रहती तो इसी से विवाह कर लेती। परन्तु अफसोस कि मैं विवाहिता हूँ। भला ऐसे पुरुष के साथ प्रेमा विवाह नहीं करेगी तो किसके हाथ में अपने को समर्पित करेगी?'

इसी बीच विमला को खाँसी आ गई, जिससे सहसा प्रेमशंकर की दृष्टि उसकी ओर चली गई। उसने सोचा, चाँद के समान चमकता हुआ मुखड़ा इसने पाया है। यह तो प्रेमा से भी बढ़कर सुन्दर मालूम होती है इसकी माँग में सिन्दूर देखता हूँ। अगर यह कुमारी रहती तो मैं इसी से विवाह करता।'

विमला की आँखों से प्रेमशंकर की आँखें टकराईं। दोनों के अधरों पर सहसा इस प्रकार मुस्कराहट आ गई, मानो वे चिर-परिचित हों। आँखें आपस में बातें करने लगीं। इतने ही में पीछे से कुन्ती ने कहा—'क्या घन्टों से देख रही हो? क्या प्रेमा के बदले तुम्हीं इसी से शादी करोगी?'

उसकी बातों पर प्रेमशंकर मुस्करा उठा और विमला ने भी हँसते हुए कहा, 'क्या हर्ज है, दूसरी शादी कर लूँगी और आपकी प्रेमा मेरी जगह पर रह जायेगी।'

कुन्ती—'अच्छा, पहले जलपान की व्यवस्था करो, पीछे चली जाना।'

विमला ने इस पाँच मिनटों में ही सारी व्यवस्था कर ली और नौकरानी

से प्रेमशंकर को बुलाने को कहा। नौकरानी क्षण में ही प्रेमशंकर को साथ लेकर लौटी। विमला के सुसज्जित कमरे को देखकर उसका हृदय तरंगित होने लगा। आसन पर बैठते ही विमला ने उसके समक्ष नाना प्रकार की मिठाइयाँ रख दीं। प्रेमशंकर ने कहा—'भला इतनी मिठाइयाँ कौन खायेगा ?'

विमला—'आप खायेंगे, दूसरा कौन खाएगा। अगर आप नहीं खाएँगे तो अपने साथ जूठन लेते जाइएगा।'

उसकी बातों पर प्रेमशंकर मुस्करा उठा और धीरे-धीरे मिठाइयाँ अपने मुख में डालने लगा।

विमला ने कहा—'मालूम होता है कि अकेले आपसे मिठाइयाँ नहीं खाई जाती हैं।'

प्रेमशंकर—'हाँ, बात कुछ ऐसी ही है।'

विमला मुस्कराती हुई बाहर आई और प्रेमा का हाथ धर कर जबरदस्ती उसे अपने कमरे में ले गई। प्रेमशंकर के सामने उसे खड़ी कर उसने उससे कहा—'इन्हें अकेले नहीं खाया जाता है। तुम्हारा अभाव इन्हें अभी से खटक रहा है। इसलिए इनके साथ जलपान में शामिल होकर इनके मन को सन्तुष्ट करो।' और वह स्वयं बाहर चली गई।

प्रेमशंकर प्रेमा की ओर बड़े गौर से देखने लगा और प्रेमा भी एकटक उसकी ओर देखती रही। विमला खिड़की पर जाकर खड़ी थी। प्रेमशंकर ने प्रेमा से कहा—'आप भी खाइए।'

प्रेमा—'मुझे मिठइयाँ पसन्द नहीं आती हैं।'

'नहीं, आपको खाना होगा।' कहते हुए प्रेमशंकर ने प्रेमा का हाथ पकड़ लिया और कहने लगा—'कैसा कोमल कर है आपका। ऐसी सुकुमारी का पाणिग्रहण कौन ऐसा पुरुष होगा जो नहीं करना चाहेगा।'

झटका देकर उसके हाथ से अपना हाथ छुड़ाते हुए प्रेमा ने कहा—'आप कैसे निर्लज्ज हैं, शिष्टाचार नहीं जानते हैं तो कम-से-कम लज्जा भी आपके पास नहीं है। खिड़की पर भाभी खड़ी हैं और आप मेरी बाँह धर कर खींच रहे हैं।'

प्रेमशंकर ने मुस्कराते हुए खिड़की की ओर देखा और कहा—'आप भी खाइए।'

उसकी बातों पर विमला ने अपने मन में कहा – 'वास्तव में यह आदमी निर्लज्ज है। इसकी चरित्रहीनता की शिकायत प्रेमा झूठ नहीं करती थी।'

इतने ही में नौकर ने बाहर से आवाज दी —'प्रेम बाबू, ज्योतिषी जी आये हुए हैं। विवाह का दिन निश्चित करेंगे, जल्द आइये।'

प्रेमशंकर का हाथ रुक गया। एक घूंट पानी पीकर रूमाल से मुँह पोंछते हुए वह बाहर निकला।

विमला ने मुस्कराते हुए प्रेमा से पूछा—'कहो ननद, दूल्हा पसन्द है ?'

प्रेमा ने झुँझलाकर उत्तर दिया—'अगर तुमको पसन्द है तो तुम उसके साथ सगाई कर लो।' और वह अध्ययन-कक्ष में चली गई।

ज्योतिषी विवाह की तिथि निश्चित करने के लिए पंचाँग के पन्ने उलट रहे थे और श्यामाचरण तथा प्रेमशंकर बड़े गौर से उसकी ओर देख रहे थे। उसी समय वहाँ प्रताप के आने से सबका ध्यान भंग हुआ। प्रताप तीनों को 'नमस्ते' कह कर बैठ गया। ज्योतिषी ने पूछा—'यह तो ठाकुर धनुषधारी सिंह का पुत्र है ?'

श्यामाचरण—'हाँ ज्योतिषी जी, यह ठाकुर धनुषधारी सिंह का पुत्र है।'

ज्योतिषी—'ठाकुर साहब राज-खानदान के आदमी हैं। उनका व्यवहार बहुत सुन्दर होता है। यह लड़का भी बहुत सुशील मालूम होता है। इसका शान्त स्वभाव और सौम्य मूर्ति देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि यह ऋषिकुल का कोई ब्रह्मचारी है।'

श्यामाचरण ने यद्यपि ज्योतिषी की बातों का समर्थन किया तथापि वे मन-ही-मन प्रताप को देखकर जल उठे। उस समय उसका यहाँ आना उन्हें अच्छा नहीं लगा। इसीलिए उन्होंने प्रताप से बातें नहीं कीं। ज्योतिषी जी पुनः अपने पंचाँग के पन्ने उलटने में लग गए। प्रताप उठकर अन्दर चला गया। उसे देखते ही मन-ही-मन कुन्ती झुँझला उठी। पर वह कुछ बोल न सकी। प्रताप ने उससे पूछा—'प्रेमा कहाँ है ?'

कुन्ती ने कोई उत्तर नहीं दिया। प्रताप को उसकी क्रोधपूर्ण मुद्रा देखकर यह समझने में देर न लगी कि वह उसके लिए अप्रसन्नता का कारण बन गया है। उसका कदम रुक गया और वह उसी जगह से लौटना ही चाहता था कि विमला ने उसे [illegible] हुए कहा—'तुम्हारी दुल्हन अध्ययन-कक्ष में तुम्हारी

प्रतीक्षा कर रही है ।'

उसकी बातों पर प्रताप मुस्करा उठा । कुन्ती के रुख को देखते हुए प्रेमा के अध्ययन-कक्ष में उसे जाने का साहस नहीं हो रहा था, परन्तु प्रेमा के प्रेम ने उसके पास जाने के लिए उसे विवश किया । प्रेमा की उस सूरत को देखकर उसे आश्चर्य हुआ । उसके कन्धे पर हाथ धर कर उसने पूछा—'प्रेमा, रोती क्यों हो ?'

पर प्रेमा ने कोई उत्तर नहीं दिया और उसके अविरल आँसू अपनी गति में प्रवाहित होते जा रहे थे । प्रताप उसकी शय्या पर बैठ गया और पुन: अपने प्रश्न को दोहराया । प्रेमा अपना सर उसकी जाँघ पर रख कर और भी फूट-फूर कर रोने लगी । इसी बीच विमला ने वहाँ प्रवेश किया । प्रताप ने प्रेमा के रोने का कारण पूछा ।

विमला ने कहा--'तुम्हारा साथ छूटा जा रहा है । प्रेमशंकर के साथ इसका विवाह निश्चित हो गया है । तुमने देखा नहीं दरवाजे पर ज्योतिषी जी विवाह का लग्न देख रहे हैं ।'

यह सुनकर प्रताप सन्न रह गया और एकाएक उसके चेहरे पर उदासी आ गई । उसकी मुखाकृति से विमला समझ गई कि जो रोग प्रेमा को है वही रोग प्रताप को भी है । दोनों के हृदय में प्रेम की आग सुलग रही है । उस आग को प्रेमा अपने अश्रुजल से बुझाना चाहती है परन्तु वह उससे बुझ नहीं सकती है बल्कि और भी प्रज्ज्वलित होती जा रही है । और प्रताप पुरुष है, इसलिए वह अपने अश्रु को रोक सकता है, लेकिन उसके हृदय में जो आग सुलग रही है उसे वह नहीं रोक सकता हैं । इन दोनों की बीमारी की औषधि तो वैद्य के घर भी नहीं है ।'

अभी तक प्रेमा को विमला के आने की कोई सुधि नहीं थी । प्रताप ने उसे उठ जाने को कहा । प्रेमा ने जब आँखें खोलीं तब सामने अपनी भाभी को देख-कर वह लज्जित हो गई । विमला कमरे से निकल कर खिड़की पर जाकर खड़ी हो गई । प्रेमा ने प्रताप से पूछा--'कहाँ जा रहे हो ?'

प्रताप ने उत्तर दिया —'मेले जा रहा था । इच्छा हुई कि तुमको भी साथ में ले लूँ । इसीलिए यहाँ चला आया । पर यहाँ का दृश्य तो कुछ और देखता हूँ ।'

प्रेमा ने हिचकियाँ लेते हुए कहा—'मेरी इच्छा के विरुद्ध मेरे भविष्य का निर्माण हो रहा है।'

उसे सांत्वना देने के लिए प्रताप के पास शब्द नहीं थे।

विमला की दृष्टि में सौन्दर्य की दोनों मूर्तियाँ कामदेव और रति के समान प्रतीत हो रही थीं। उसने अपने मन में कहा—'क्या अच्छा होता कि इन दोनों की शादी हो जाती। पर समाज ऐसा विवाह नहीं होने देगा। ठाकुर साहब लाख बड़े आदमी हैं पर समाज के विरुद्ध जाने का उन्हें भी साहस नहीं हो सकता है। परी-सी खूबसूरत यह मेरी ननद अगर उनके घर में जाती तो वे अनुभव करते कि लक्ष्मी उनके घर में आ गई है। लेकिन कठिनाई यहीं तक तो शेष नहीं है। हमारा समाज भी तो ठाकुर के लड़के से अपनी लड़की की शादी करना नहीं चाहेगा। जाति के इस वन्धन को तोड़ने से दोनों घर संकट में पड़ जाएँगे।'

उसी समय विमला का ध्यान भंग करते हुए कुन्ती ने पूछा—'क्या प्रताप घर में बैठा है ?'

विमला—'हाँ, वह तो घर में बैठा है।'

कुन्ती—'उसे चले जाने को कहो।'

विमला—'रहने दीजिए, क्या हर्ज है ?'

दोनों की बातें प्रताप सुन रहा था। उसने प्रेमा से कहा—'मैं जाता हूँ।'

प्रेमा—मैं भी चलती हूँ ?'

दोनों घर से साथ निकले। उस दृश्य को देखकर प्रेमशंकर दंग रह गया। श्यामाचरण को भी यह अच्छा नहीं लगा, पर वे कुछ वोल न सके।

ज्योतिषी आषाढ़ में विवाह की तिथि निश्चित कर अपनी दक्षिणा लेकर प्रस्थान किया।

१८

दशहरा की चहल-पहल खतम हो चली। दूर-दूर से आये हुए यात्री अपनी गठरी-मोठरी बाँध कर अपने घर की ओर चल पड़े और संन्यासी तथा भिख-मंगे दिन-भर की अपनी आय का हिसाब-किताब करने लगे। परन्तु गंगा के किनारे की चहल-पहल खतम नहीं हुई थी। 'हर हर महादेव' और 'बाबा विश्वनाथ की जय' के नारों से दिशाएँ गूँज रही थीं। श्रद्धालु भक्त फूल-पत्ती लेकर मन्दिरों की ओर जा रहे थे और कुछ लोग मन्दिरों के प्रांगणों में बैठकर संध्या कर रहे थे। इस दृश्य को देखकर ठाकुर जयपाल सिंह ने अपने मन में कहा—हिन्दुओं की इस श्रद्धा और भक्ति ने हिन्दू जाति को अब तक जीवित रखा है। अगर यह श्रद्धा और भक्ति न होती तो हिन्दू जाति कब की संसार से मिट गई होती। औरंगजेब ने बाबा विश्वनाथ के मन्दिर को तोड़ा तो दूसरा मन्दिर उसकी बगल में खड़ा हो गया। इसी प्रकार अन्य मन्दिर भी टूटे और बने। अगर हिन्दू नये मन्दिरों का निर्माण नहीं करवाते तो उनकी पराजय समझी जाती और वही पराजय उन्हें खतम कर देती। यहाँ के हरेक मन्दिर की हरेक ईंट हिन्दुओं के त्याग व बलिदान की कथाएँ कह रही है। अपने उसी बलिदान के फलस्वरूप हिन्दू जाति ने अपने को अमर रखा। यही कारण है कि संसार की बड़ी-बड़ी जातियाँ मिट गईं, लेकिन हिन्दू जाति अभी तक जीवित है। आज यूनान, रोम, मिस्र और ईरान की सभ्य जातियाँ कहाँ गईं? उनके पूर्वजों की अस्थियों का भी पता नहीं है। सब-के-सब अतीत के गर्भ में विलीन हो गईं। पर हिन्दुओं का अतीत कभी भी नहीं मिट सका। उस अतीत को देखकर यह आज भी तनकर संसार के सामने खड़ा है। हमारे पूर्वजों ने हमें जो कुछ दिया, उसे थाती के रूप में हमने सुरक्षित रखा है।

इसी बीच उनकी दृष्टि प्रताप पर गई। उन्होंने प्रताप को पुकारा। प्रताप चौंक उठा और इधर-उधर देखने लगा। प्रेमा ने गंगा-तट पर सीढ़ियों की ओर संकेत कर कहा—'दादा जी वहाँ बैठे हैं। वे ही तुमको पुकार रहे हैं?'

प्रताप और प्रेमा दोनों ने उनके समीप जाकर उन्हें प्रणाम किया और एक ओर दोनों बैठ गए। प्रेमा ने उनसे पूछा—'दादाजी, आप कब आए?'

ठाकुर जयपाल सिंह—'बेटी, मुझे आए हुए तो यहाँ तीन दिन हो गए।

इच्छा हुई कि चलें दशहरा में काशी में गंगास्नान कर आवें।'

प्रेमा—'हाँ, धर्म-कर्म से कभी अलग नहीं होना चाहिए। धार्मिक कार्यों में लगे रहने से मन की शुद्धि होती है और आत्मा को शान्ति मिलती है।'

ठाकुर जयपाल सिंह ने हँसते हुए कहा—'हाँ बेटी, तुम्हारे विचारों से मुझे प्रसन्नता है। तुम्हारा कहना सही है कि धर्म का पथ कभी नहीं छोड़ना चाहिए। धर्म के पथ पर चलने से अन्त में अवश्य सफलता मिलती है। धर्म किसी विशेष सम्प्रदाय का नहीं है। धर्म वही है, जिससे सत्य की रक्षा होती है। इसी में दया, सहानुभूति, त्याग और बलिदान निहित हैं। दूसरों की पीड़ा का अपने में अनुभव करना ही धर्म है। जिसमें ये गुण हों, वही सच्चा मानव है। ऐसे तो सभी मनुष्य हैं। सभी जन्म लेते हैं और सभी मरते हैं, पर शास्त्र-पुराण ने उन्हीं का जन्म सार्थक कहा है, जो परोपकारी हैं और दूसरों की उन्नति देख-कर प्रसन्न रहते हैं।'

बीच में ही उनकी बात रोककर प्रेमा ने पूछा—'दादाजी, जाति को आप जन्म से मानते हैं या कर्म से?'

ठाकुर जयपाल सिंह—'जाति तो कर्म से ही होनी चाहिए, जन्म से नहीं। प्राचीन काल में जाति का निर्णय कर्म से ही होता था। किन्तु ज्यों-ज्यों समय बदलता गया त्यों-त्यों जाति का संस्कार उसकी सन्तान पर अपना प्रभुत्व स्थापित करता गया। जिस कर्म को उसके पूर्वजों ने अपनाया वही कर्म उसकी सन्तान ने स्वीकार किया। जाति के निर्माण का प्रमुख कारण यही है। जन्म से जाति का विरोध विश्वामित्र ने किया था। भगवान गौतम बुद्ध जाति को नहीं मानते थे। अपनी तपस्या के बल से विश्वामित्र क्षत्रिय होते हुए भी ब्राह्मण हो गए। शाक्य मुनि ने नीच कर्म करने वाले ब्राह्मणों को ब्राह्मण स्वीकार नहीं किया और उत्तम कर्म करने वाले शूद्र को ब्राह्मण माना। उन्होंने कर्म को प्रधानता दी है। कर्म की प्रधानता तो शास्त्र-पुराण में भी है।'

ठाकुर जयपाल सिंह ने यह भी कहा—'प्रेमा, शादी-विवाह को भी मैं जाति के अधीन नहीं मानता हूँ। लड़की-लड़का अगर गुणवान हों, दोनों में प्रेम हो तो ऐसी शादी का मैं पक्षपाती हूँ। अगर तुम्हारे घर वालों की राय हो तो मैं प्रताप का विवाह तुम्हारे साथ करने को तैयार हूँ।'

प्रेमा ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह मौन होकर बैठी रही। ठाकुर साहब

ने कहा—'देखो समय काफी हो गया। मैं जाता हूँ। दस रुपये का यह नोट लो और जल-पान करके घर चले जाना।'

ठाकुर साहब के जाने के बाद प्रेमा और प्रताप भी उठ पड़े और पास के एक जलपान-गृह में प्रवेश कर गए। प्रेमा अपनी सुन्दरता के कारण सहज में ही वहाँ उपस्थित रहने वाले पुरुषों के लिए आकर्षण की मूर्ति बन गई। सब एक-टक उसकी ओर देखने लगे। जलपान कर दोनों बाहर आए। उनके पीछे एक काला-कलूटा आदमी भी निकला। पर उसे उन्होंने देखा नहीं।

प्रेमा ने प्रताप से कहा—'अंधेरी गलियों से होकर जाने में मुझे भय मालूम होता है। मुझे अपने घर पहुँचा दो।'

प्रताप ने उसके प्रस्ताव का समर्थन किया और कहा कि चलो।

आगे-आगे प्रताप चल रहा था और पीछे-पीछे प्रेमा थी। जब दोनों एक तंग गली में पहुँचे तब उस आदमी ने जो जलपान-गृह से उनका पीछा कर रहा था, प्रेमा का हाथ पकड़ लिया। प्रेमा चीख पड़ी। प्रताप ने पूछा—'क्या हुआ?'

प्रेमा—'अरे हाथ टूटा। जल्द दौड़ो।'

तब तक प्रताप समीप आ गया था। उसने उस आदमी की गर्दन पकड़ ली। इस पर उसने प्रेमा की बाँह छोड़ दी और अपनी कमर से कटार निकाल-कर कहा—'ए ठाकुर, इस छोकड़ी को मेरे उपभोग के लिए छोड़ दो, अन्यथा इस कटार से मैं तुम्हारा काम तमाम कर दूँगा।'

प्रताप ने अपने एक हाथ से कटार को पकड़ लिया। पर उसकी धार इतनी तीक्ष्ण थी कि प्रताप की तलहत्थी कट गई। फिर भी उसने छोड़ा नहीं और उस आदमी को नीचे गिरा दिया, फिर कटार छीन कर उसी से उसका सर काटना चाहा, पर प्रेमा ने रोक दिया। उस आदमी ने भी बड़ी अनुनय-विनय की तब प्रताप ने उसकी जान छोड़ दी।

वहाँ से प्रेमा को आगे करके प्रताप स्वयं पीछे चला। गुण्डा भी मन-ही-मन प्रताप पर क्रोध करता हुआ वहाँ से भाग चला।

जिस समय प्रेमा प्रताप के साथ अपने मकान पर पहुँची उस समय घड़ी में दस बज रहे थे और श्यामाचरण अपने माथे पर हाथ धर कर उन दोनों के सम्बन्ध में सोच रहे थे—'मैं नहीं कह सकता कि प्रेमा के भाग्य में क्या लिखा

है ? प्रेमशंकर के साथ विवाह न कर वह प्रताप से विवाह करना चाहती है। वह जानती नहीं है कि प्रताप के साथ उसके लाख प्रेम करने पर भी वह उसके घर में उपेक्षा की दृष्टि से देखी जाएगी। प्रेमशंकर के ऐश्वर्य में और ठाकुर साहब के ऐश्वर्य में आकाश-पाताल का अन्तर है। ऐसे ऐश्वर्य-वैभव को छोड़-कर वह प्रताप के रूप, गुण, मधुरवाणी और शांत स्वभाव पर आकर्षित हो गई है। वह यह नहीं सोचती है कि रोटी-बेटी जाति वालों के ही साथ होती है अन्य जाति वालों के साथ नहीं। प्रताप राजपूत है। गाँवों में राजपूतों के समक्ष छोटी जाति वाले कुर्सी, खाट पर बैठ नहीं सकते हैं। उनके सामने जूते नहीं पहन सकते हैं और हाथी-घोड़े की सवारी नहीं कर सकते हैं। ऐसी जाति को कौन अपनी बेटी दे ?

इसी बीच प्रेमा और प्रताप के आने से उनका ध्यान भंग हुआ। वे दोनों को बुला कर कुछ कहना ही चाहते थे कि उनकी दृष्टि प्रताप के हाथ पर गई। उसकी तलहत्थी से अभी भी खून निकल रहा था। उन्होंने आश्चर्यचकित होकर प्रताप से पूछा—'यह क्या ? तुम्हारा हाथ कैसे कट गया ?'

प्रताप के उत्तर देने के पूर्व प्रेमा ने सारी कहानी कह सुनाई। श्यामाचरण ने कहा—'अभी समय है तंग और अंधेरी गलियों से होकर चलने का। तुम्हारा समय अच्छा था कि प्रताप तुम्हारे साथ था। अगर यह नहीं होता तो गुण्डे तुम्हारे आभूषण छीन कर तुम्हारी हत्या कर डालते। तुम्हारे लिए इस लड़के ने अपने प्राणों की बाजी लगाई।'

फिर पास के डाक्टरखाने में वे प्रताप को ले गए और मरहम-पट्टी करा-कर रिक्शा से उन्होंने उसे घर भेज दिया।

प्रताप के घर जाने के बाद श्यामाचरण पुनः प्रताप और प्रेमा के सम्बन्ध में सोचने लगे—आज गुण्डा प्रेमा का अपहरण करने जा रहा था, पर प्रताप ने अपने प्राणों की बाजी लगाकर उसकी रक्षा कर ली। यह प्रेमा के प्रति प्रताप के प्रेम का द्योतक है। क्या प्रताप दूसरी लड़की के लिए भी, जिससे उसका परिचय नहीं हो, ऐसा कर सकता है ? वह कर सकता है, क्योंकि उसने मानव-हृदय पाया है। जिसके पास मानव-हृदय नहीं होगा वह बिराना को कौन कहे अपने को भी नहीं बचा सकता है। ठाकुर जयपाल सिंह के कुल में प्रताप कमल है। मैंने अध्ययन किया है उसका हृदय विशाल है। वह दीन-दुखियों की सेवा के

लिए सदा तैयार रहता है। विद्याध्ययन की ओर इसका मन सदा लगा रहता है। जिस काम की ओर इसका झुकाव होता है उसे हजारों कठिनाइयाँ उठाकर कर डालता है। परन्तु उसके साथ प्रेमा का विवाह कैसे हो सकता है? उसके साथ मैं अपनी पुत्री का विवाह कर अवश्य गौरवान्वित होऊँगा, पर स्वयं ठाकुर साहब के जाति-भाई और बन्धु-बान्धव इसे स्वीकार नहीं करेंगे। संभव है कि ठाकुर साहब की धाक से या समाज-सुधार की उनकी नियत देखकर राजपूतों ने कोई आपत्ति नहीं की परन्तु मेरे समाजवाले तो नहीं मानेंगे। इसमें कोई सन्देह नहीं कि हम शहरी वातावरण में रहते हैं, परन्तु समाज के निरंकुश शासन से हम अपने को मुक्त करने में असमर्थ हैं। जब हमारा हुक्का-पानी ही बन्द हो जायेगा तो ठाकुर साहब ऐसे सम्बन्धी को लेकर हम क्या करेंगे? ठाकुर साहब उत्तम कुल के हैं तो अपना बने रहें, वर्ण-व्यवस्था की सीमा को लांघने का हमारा साहस नहीं होता है और जब हम प्रेमशंकर के साथ प्रेमा का विवाह निश्चित कर चुके हैं तब इसमें परिवर्त्तन कैसे हो सकता है? अब प्रताप को कह देना है कि वह हमारे यहाँ आना-जाना तथा प्रेमा से मिलना-जुलना बन्द कर दे।

इसके बाद वे उठकर भोजन करने चले गए।

और प्रेमा जब घर के अन्दर गई तब विमला ने कहा—'प्रेमशंकर के साथ तुम्हारा विवाह निश्चित हो गया है और तुम आधी-आधी रात तक यार-दोस्तों के साथ-सैर-सपाटे में लगी रहती हो?'

प्रेमा ने झुँझला कर उत्तर दिया—'आज तो तुम्हारी बातों में व्यंग भरा हुआ है। प्रताप मेरा यार है? प्रेमशंकर के साथ मैं विवाह नहीं करूँगी, हमारे परिवार वाले इसके लिए प्रसन्न रहें या अप्रसन्न रहें।'

रसोईघर में श्यामाचरण प्रेमा की बात सुन रहे थे। उन्होंने कुन्ती की ओर देखकर कहा—'कौन-सा युग आ गया कि लड़की लज्जा-शर्म त्याग कर अपना वर स्वयं खोजती है?'

कुन्ती—'यह कलियुग से भी गिरा हुआ युग भ्रष्टयुग है।'

१९

विवाह की निश्चित तिथि के एक सप्ताह पूर्व प्रेमशंकर ने कचना और किशोरी को सूचित किया कि वह प्रेमा का पाणिग्रहण करने जा रहा है। यह सुनकर कंचना और किशोरी दोनों चौंक उठीं। कंचना ने पूछा—'तुम मजाक कर रहे हो या सच कह रहे हो ?'

प्रेमशंकर—'नहीं, झूठ बोलने से क्या लाभ ? मैं ठीक कह रहा हूँ। प्रेमा के पिता ने मुझसे बहुत ही अनुनय-विनय की है और प्रेमा भी मेरी आँखों में जँच गई है इसलिए मैंने उससे विवाह करने का वचन श्यामाचरण को दे दिया है।'

किशोरी—'तब हम दोनों का क्या होगा ?'

प्रेमशंकर—'हाँ, यही चिन्ता मुझको भी सता रही है।'

किशोरी—'इसमें चिन्ता की कौन-सी बात है ? क्यों तुम हम दोनों का परित्याग करोगे ? क्या हमने तुम्हारे सिवा किसी अन्य पुरुष से सम्बन्ध जोड़ा है या तुम्हारे साथ विश्वासघात किया है ? जिससे तुम हमारा परित्याग कर देना चाहते हो ? क्या प्रेमा हम दोनों से अधिक खूबसूरत है जो तुम्हारी आँखों में जँच गई और हम दोनों उसकी रूप-ज्योति के आगे मन्द पड़ गईं ?'

प्रेमशंकर—'किशोरी, तुम्हारे साथ मेरा कोई वैवाहिक सम्बन्ध तो नहीं है। अगर तुमसे मेरी सन्तान पैदा होती है तो समाज में उसकी उपेक्षा होगी और हमारा वंश कलंकित हो जायेगा। परन्तु प्रेमा से विवाह करने पर यह स्थिति सामने नहीं आवेगी। और, प्रेमा से विवाह करने के बाद अगर तुम दोनों को रखता हूँ तो उससे तुम्हारी पटेगी नहीं, मेरा घर दिन-रात जंग का अखाड़ा बन जाएगा। उस स्थिति में तुमको मेरे घर से जाना ही होगा, इसलिए अच्छा तो यही है कि कल न जाकर तुम आज ही चली जाओ। हाँ, तुम्हारी जीविका के लिए तुम दोनों को मैं पाँच-पाँच सौ रुपये देता हूँ। इस रकम से किसी अच्छे चौराहे पर पान की दुकान खोल दो और देखो कि दिन-रात कैसी चाँदी कटती है।'

उसकी बातें सुनकर किशोरी का मुख सूख गया। उसने कंचना की ओर

देखा। उसकी आँखों में आँसू छलछला आये। कंचना को किशोरी की आँखों के प्रश्न समझने में देर न लगी। उसने कहा—'मुझसे क्या पूछती हो? बबूल के पेड़ रोपने से आम कहाँ से खा सकती हो? बिना सोचे-समझे जो काम किया जाता है उसका यही परिणाम निकलता है। हमने क्या समझा था कि रूप के कीड़े के समक्ष हम अपना सर्वस्व समर्पित कर रही हैं, प्रेम के पुजारी के समक्ष नहीं। बनारस में पान-बीड़ी की दुकान खोलकर बैठने की सलाह देता है। एक तो इसकी बातों में पड़कर हमने अपने कुल-परिवार की मान-मर्यादा को पैरों तले कुचल दिया और अब जो कुछ प्रतिष्ठा बच गई है उसे भी खुले बाजार में बर्बाद कर देने को कहता है। यह क्या मुझे रुपया दिखलाता है? क्या रुपये पर मैंने अपने को इसके हाथों बेचा है? इसने प्रेम के महत्त्व को नहीं समझा? और उसकी देह पर जो वस्त्र था उसी के साथ वह मकान से निकलकर सड़क पर आ गई। परन्तु सड़क पर आकर उसके पैर रुक गये। उसके सामने प्रश्न उठा कि वह किधर चले? उसके सामने अन्धकार छा गया। पिता के सामने जाने का उसे साहस नहीं हो रहा था और अन्यत्र जाय तो कहाँ जाय? उसके मन में अपनी करतूत पर पश्चात्ताप होने लगा। उसने अपने मन में इसके लिए भी खेद प्रकट किया कि अगर प्रेमशंकर से पाँच सौ रुपये भी उसने ले लिए होते तो बनारस छोड़कर अन्यत्र जाने में सुविधा होती, परन्तु आवेश में आकर उसने वह भी अवसर खो दिया। लोक-लज्जा के कारण उसके पैर अधिक देर तक वहाँ नहीं रुके रहे, आगे बढ़े। पर कहीं उसे आश्रय नहीं मिल रहा था। तूफान में उठे हुए पत्तों के समान लक्ष्यविहीन होकर वह काशी नगरी में घूम रही थी। उसी समय सहसा एक मकान पर उसकी आँखें गईं, जिस पर बहुत मोटे अक्षरों में लिखा था—अनाथालय। उसने अपने मन में विचारा 'हम अभागिनों के लिए ही तो यह अनाथालय बना है तो फिर इसमें मैं क्यों न आश्रय ग्रहण करूँ?' और वह उसमें प्रवेश कर गई। उसके रूप को देखकर अनाथालय के मैनेजर रघुनाथ चौबे दंग रह गये। एकटक वे उसके सौन्दर्य को देखते रहे। फिर उन्होंने मुस्कराते हुए पूछा—'अभी तो तुम्हारी उम्र बहुत कम मालूम होती है, घर से क्यों भाग आई हो?'

कंचना ने अपनी आँखों में आँसू भरकर कहा—'मेरे जीवन की कहानी सुनकर आप क्या करेंगे? एक बार जो मैं भूल कर चुकी हूँ, उसका तो प्राय-

श्चित्त जीवन भर करना होगा। काँटों की राह को मैंने पुष्प का पथ समझा था। एक बार नहीं, दो-दो बार उसी पथ का अनुसरण कर मैंने जीवन को सदा के लिए बर्बाद कर दिया। अब मुझे यह देखना है कि मेरी जीवन की नैया किस घाट जाकर लगती है।'

रघुनाथ चोबे ने कंचना से पूछा—'क्या तुम विवाह करना पसन्द करोगी?'

कंचना—'क्यों नहीं पसन्द करूँगी? किन्तु इस शहर में नहीं रहूँगी। अगर कहीं बाहर आप प्रबन्ध कर दें तो मैं आपकी बहुत ही कृतज्ञ होऊँगी।'

रघुनाथ चौबे—'अगर इलाहाबाद कर दूँ?'

कंचना—'बहुत अच्छा होगा, परन्तु घर-वर की मुझे पहले जानकारी होनी चाहिए।'

रघुनाथ चौबे—'अवश्य, जब तक तुम्हारी पसन्दगी नहीं होगी तब तक शादी कैसे हो सकती है? विवाह के लिए दरख्वास्तें तो बहुतों की आई हैं, परन्तु तुम्हारे योग्य मुझे एक ही वर पसन्द आ रहा है जो इलाहाबाद में एक स्कूल में अध्यापक का काम कर रहा है। उम्र भी अधिक नहीं है, यही लगभग बयालिस वर्ष के होंगे। परन्तु देखने में तीस से अधिक नहीं मालूम पड़ते हैं और शील-स्वभाव भी बहुत अच्छा है। तुम्हारी ऐसी सुकुमार और सुशील कन्या के लिए वे सुयोग्य वर होंगे। मैं सदा इस बात का खयाल रखता हूँ कि हमारी बहनों को अयोग्य वर न मिले, जिससे उनका जीवन पुनः दुखमय न हो। जिस पद पर मेरी नियुक्ति हुई है, उसके उत्तरदायित्व को निबाहना भी तो मेरा परम कर्त्तव्य होता है। किसी भी बहन को धोखे में डालने से मुझे क्या मिल सकता है? तुम्हारे आँसू का एक बूंद भी मेरे विनाश का कारण बन सकता है। इसलिए धर्म का मैं सदा खयाल रखता हूँ।'

कंचना—'ऐसा ही चाहिये बाबूजी, दीन-दुखियों की आह नहीं लेनी चाहिए। आखिर भगवान भी तो कोई है। सदा उनको अपनी आँखों के सामने रखकर काम करना चाहिए।'

रघुनाथ चौबे—'तुम्हारा कहना बहुत ठीक है। मैं दीन-दुखियों की आह से सदा बचने की कोशिश करता हूँ।'

कंचना—'भगवान आपका भला करेंगे।'

रघुनाथ चौबे—'तुम तो बहुत समझदार नारी मालूम पड़ती हो।'

कंचना—समझदार क्या हूँ ? अगर मैं समझदार होती तो अपने पैरों में स्वयं अपने हाथों से कुल्हाड़ी मारती और इस दशा में पहुँचती ? फिसलकर गिरने के बाद ही मनुष्य को अपनी भूल मालूम पड़ती है। मैनेजर साहब, यही आप समझ लीजिए कि आज मैं कहीं की नहीं हूँ।' और उसकी आँखों से दो बूंद आँसू टपक पड़े।

'तुम घबराओ नहीं। मैं तुम्हारे जीवन की सुव्यवस्था कर देता हूँ।' कह-कर रघुनाथ चौबे सीधे पोस्ट आफिस गये और इलाहाबाद राजा उपाध्याय के नाम से एक तार भेज दिया।

राजा उपाध्याय दूसरे दिन अनाथालय में आ पहुँचा। रघुनाथ चौबे के साथ उसने विवाह की बातचीत आरम्भ की। राजा उपाध्याय ने रघुनाथ चौबे से पूछा—'दारोगा जी लड़की कैसी है ?'

रघुनाथ चौबे—'क्या कहूँ उपाध्याय जी, लड़की तो परी से भी सुन्दर और फूल से भी अधिक सुकुमार मालूम पड़ती है। वह किसी बड़े घर की मालूम होती है। मैं नहीं कह सकता कि वह क्यों घर से भाग आई है ? वह अपना पूरा पता भी नहीं बतलाती है। उसका सौन्दर्य देखकर स्वयं मेरा मन भी चल उठा है। लोक-लज्जा से भय खाता हूँ, नहीं तो मैं स्वयं उसे रख लेता। आपने कई बार मेरे पास पत्र लिखा इसका मुझे खयाल था और यह नारी आपके योग्य है, इसलिए मैंने आपको तार देकर बुलाया है। अगर आप इसे स्वीकार नहीं करेंगे तो और लोगों की भी दरख्वास्तें आई हैं, जिनसे मुझे मोटी रकम मिल सकती है।' यह सुनकर राजा उपाध्याय ने कहा—'वाह दारोगा जी, इतने दिनों की जान-पहचान क्या कोई काम नहीं करेगी, और मोटी रकम पर आप भूल गए।'

रघुनाथ चौबे ने हँसते हुए कहा—'वाह मास्टर साहब, आखिर पेट मैं कहाँ रख आऊँ ? अपने परिवार वालों का भरण-पोषण कैसे करूँ ? अना-थालय का काम तो मानव-सेवा है, इसी प्रेरणा से मैं काम कर रहा हूँ। आप ही सोचिए मुझे यहाँ से सौ रुपये मिलते हैं, भला इसी में मेरा काम चलेगा ? अगर कुछ आप लोग न देंगे तो हमारे बाल-बच्चे भूखों मर जाएँगे।'

राजा उपाध्याय ने कुछ देर मौन रहने के बाद कहा—'अच्छा दारोगा जी, पाँच सौ रुपये ले लीजिए।'

रघुनाथ चौबे ने मुँह बनाकर कहा—'बूढ़ी ग्रौर कुरूप ग्रौरतों से जो लोग विवाह करते हैं उनसे मैं हजार रुपये गिनवा लेता हूँ ग्रौर यह तो सतरह-ग्रठारह वर्ष की नवयुवती है, जिस पर मुझे ग्रधिक नहीं तो दो-ढाई हजार रुपये यों ही मिल जाएँगे।'

राजा उपाध्याय—'ग्राप तो मोल-तोल करने लगे।'

रघुनाथ चौबे—'पुण्य के काम में भी कहीं मोल-तोल होता है? विवाह कराना महापुण्य कहा गया है। इसीलिए ग्रापके उजड़े घर को बसाने की चिंता में लगा हूँ। ग्रापके घर बसाने में मुझे उतना ही ग्रानन्द होगा जितना कि मुझे ग्रपना घर बसाने में।'

राजा उपाध्याय—'दारोगा जी, ग्रापको मेरे लिए बड़ी हमदर्दी है।'

रघुनाथ चौबे—'हमदर्दी क्यों न हो। ग्रापकी ग्रौर मेरी जान-पहचान ग्राज की नहीं है बल्कि गत तीन वर्षों की है, जबकि ग्रापके चाचा दीनदयाल उपाध्याय की हत्या ठाकुर जयपाल सिंह ने की थी।'

राजा उपाध्याय—'ग्रापको धन्यवाद।'

रघुनाथ चौबे—'मुझको धन्यवाद नहीं चाहिए, मुझे रुपये चाहिए। पहले ग्राप उस लड़की को देख लीजिये तब ग्राप रुपये की बात कीजिए।'

राजा उपाध्याय—'ग्रच्छा दिखला दीजिए।'

रघुनाथ चौबे—'ग्राप उसके सामने मत जाइये, नहीं तो सफेद बाल ग्रौर घनी साही के काँटों के समान कड़ी-कड़ी मूँछें देखकर वह भड़क उठेगी। ग्राप यहाँ खिड़की पर खड़े रहिये, मैं ग्रलग से उसे दिखला देता हूँ।'

राजा उपाध्याय खिड़की पर जाकर खड़ा हो गया ग्रौर रघुनाथ चौबे उठकर उस कमरे में गये जिसमें कंचना रहती थी। कंचना उस समय चिन्तामग्न होकर बैठी थी। रघुनाथ चौबे की पद-ध्वनि से उसका ध्यान भंग हुग्रा। वह उसकी ग्रोर देखने लगी। रघुनाथ चौबे ने उससे कहा—'बाहर ग्राग्रो तो।'

कंचना बाहर ग्राकर बरामदे के नीचे खड़ी हो गई। रघुनाथ चौबे ने उससे कहा—'इलाहाबाद से तार का उत्तर ग्रा गया है। वे सज्जन कल सवेरे की गाड़ी से ग्रा जाएँगे। तुम भी कल ग्रपने को ठीक से मेकग्रप करके रखना जिससे उसे तुम पसन्द ग्रा जाग्रो। मुझे तुम्हारे लिए बड़ी चिन्ता लगी है।'

कंचना—'परोपकारियों का हृदय ऐसा ही होता है, मैनेजर साहब। ग्राप

की सहानुभूति के लिए मैं आपको धन्यवाद देती हूँ। परन्तु मेरे पास न तो अच्छी साड़ी है न ब्लाउज है और न ही स्नो और पाउडर है।'

रघुनाथ चौबे—'मैं सब प्रबन्ध कर दूंगा।'

कंचना अपने कमरे में चली गई और रघुनाथ चौबे दफ्तर में लौटा। उन्हें देखते ही राजा उपाध्याय ने पूछा—'हां दारोगा जी, लड़की तो सौ में एक है। ऐसी सुन्दर नारी तो मैंने देखी नहीं थी। आपने इस परी को मेरे लिए सुरक्षित रखा— धन्यवाद। और धन्यवाद के साथ लीजिये ये दो हजार रुपये।'

जेब से काढ़कर राजा उपाध्याय ने सौ-सौ के बीस नोट उसके हाथ में दिये और रघुनाथ चौबे ने अपनी जेब में रखते हुए कहा—'उपाध्याय जी, सौन्दर्य की इस मूर्ति का मूल्य कोई नहीं दे सकता है, इस पर भी दूसरों से मैं पाँच हजार से कम नहीं लेता, परन्तु आपका खयाल तो करना ही पड़ता है।'

राजा उपाध्याय—'अपने पुराने परिचितों और मित्रों से बहुत कुछ आशा रहती है।'

रघुनाथ चौबे—'कल वह आपके सामने साधारण वस्त्रों में कैसे आएगी? उसके लिए एक अच्छी साड़ी और ब्लाउज की आवश्यकता पड़ेगी।'

राजा उपाध्याय ने यह सोचकर कि वह साड़ी और ब्लाउज तो मेरे ही घर में जाएगी दो सौ रुपये और रघुनाथ चौबे के हाथ में दे दिये।

उसके बाद रघुनाथ चौबे ने आफिस का दरवाजा बन्द किया और राजा उपाध्याय को अपने साथ लेकर अपने निवास-स्थान के लिए प्रस्थान किया। पर ज्योंहीं वे फाटक से निकल रहे थे त्योंही कालीचरण और प्रेमनाथ वहाँ पहुँच गए। उन्हें देखते ही रघुनाथ चौबे ने अपने मन में कहा—'बाधा उपस्थित हो गई। कहीं बना-बनाया काम बिगड़ न जाय।'

राजा उपाध्याय को फाटक पर ही छोड़कर रघुनाथ चौबे कालीचरण और प्रेमनाथ के साथ लौट पड़े। दफ्तर का दरवाजा खोलकर जब वे बैठ गए तब कालीचरण ने रघुनाथ चौबे से पूछा—'मैनेजर साहब, एक-दो दिनों के अन्दर कोई लड़की यहाँ आई है?'

रजिस्टर के पन्नों को उलटते हुए रघुनाथ चौबे ने कहा—'महाशय जी, एक-दो दिन क्या इधर तो दो सप्ताह से न तो कोई नारी यहाँ आई और न कोई अनाथ बच्चा।'

कालीचरण ने प्रेमनाथ की ओर देखा। प्रेमनाथ ने कहा—'आज सवेरे मुझे प्रेमशंकर का नौकर मिला था। वह मुझसे कह रहा था कि प्रेमशंकर ने कंचना को अपने घर से कल निकाल दिया है। मैंने उसकी बड़ी तलाश की, अपने सगे-सम्बन्धी, मित्रों के यहाँ खोज की पर वह कहीं नहीं मिली। इस स्थिति में मैंने अनुमान किया कि सम्भव है कि वह किसी अनाथालय की शरण में गई हो।'

रघुनाथ चौवे—'नहीं महाशय, वह तो यहाँ नहीं आई है। अगर यहाँ आ जायेगी तो मैं उसको आपके घर पहुँचा दूंगा।'

प्रेमनाथ—'हाँ, इतनी कृपा अवश्य कीजियेगा।'

रघुनाथ चौवे—'इसमें कृपा की कौन सी बात है? मैं आपका क्या कार्य करूँगा? मैं तो अपने कर्त्तव्य का पालन करूँगा।'

'आपके आश्वासन के लिए धन्यवाद। मनुष्य को अपने कर्त्तव्य का ऐसा ही ध्यान होना चाहिए। सेवा का व्रत लेना आसान है, पर उसे निबाहना कठिन है।' कहते हुए प्रेमनाथ उठ खड़े हुए। उनके साथ कालीचरण और रघुनाथ चौवे भी बाहर आये। फाटक पर आकर जिस समय प्रेमनाथ अलग होने लगे उस समय रघुनाथ चौवे ने कहा—'स्त्रियों को यह खयाल नहीं होता है कि उनके घर से बाहर पैर देने में उनके सतीत्व पर तो खतरा पहुँचेगा ही साथ-ही-साथ उनके कुल-परिवार वालों के मुखों पर कालिख पुत जाएगी।'

प्रेमनाथ—'बाबूजी, इसका उत्तर मेरे पास नहीं है।' और वे कालीचरण के साथ अपने घर की ओर बढ़े।

रास्ते में रघुनाथ चौवे ने राजा उपाध्याय से कहा—'जिनसे मेरी अभी बातें हो रही थीं, वही कंचना के पिता प्रेमनाथ हैं। नगर के बड़े सिल्क व्यवसायइयों में एक हैं। अब आप सहज में अनुमान कर सकते हैं कि कैसी कन्या आपको हाथ लगी है?'

राजा उपाध्याय—'यह तो उसका शरीर और सौन्दर्य ही बतला रहा है कि वह एक बड़े घर की सुकुमारी है।'

अनाथालय से रघुनाथ चौवे अपने मकान पर पहुँचे। अपने पति के साथ एक अधेड़ पुरुष को देखकर रघुनाथ चौबे की स्त्री दरवाजे से अन्दर चली गई और खिड़की पर खड़ी होकर राजा उपाध्याय की ओर देखने लगी। रघुनाथ चौबे

ने अन्दर प्रवेश कर अपनी पत्नी को पुकारा। वह उसके सामने आकर खड़ी हो गई। उसके हाथ में बाईस सौ रुपये देते हुए रघुनाथ चौबे ने कहा—'लो आज का मेरा उपार्जित धन, कहती हो कि पुलिस की नौकरी अच्छी थी आदमी कहीं भी रहे, उसे पैसा उपार्जित करने की बुद्धि चाहिए।'

पत्नी ने मुस्कराते हुए रुपये अपने हाथ में ले लिए और पूछा—'यह कौन हैं?'

रघुनाथ चौबे—'यही दीनदयाल उपाध्याय का भतीजा राजा उपाध्याय है। शादी के लिए आया है।'

'यह शादी करेगा? इसके तो आधे से अधिक बाल पक चुके हैं और दाढ़ी-मूँछें भी खिचड़ी हो चुकी हैं।' आश्चर्यचकित होकर उनकी स्त्री ने कहा।

रघुनाथ चौबे—'बाल आधे पके या पूरे पके, उससे हमको क्या मतलब? जो रुपये देंगे उनकी शादी होगी। इस बेचारे ने मुझे अच्छी रकम दी है इसलिए इसका विवाह होगा।'

फिर बाहर आकर रघुनाथ चौबे ने हजाम को बुलाया और राजा उपाध्याय की दाढ़ी-मूँछें साफ करवाईं और सर के बालों में खिजाब लगवाकर काला बना डाला। आईने में अपनी सूरत देखकर राजा उपाध्याय मुस्करा उठा। उधर खिड़की पर खड़ी रघुनाथ चौबे की पत्नी हँसने लगी।

दूसरे दिन रघुनाथ चौबे राजा उपाध्याय को साथ लेकर जब अनाथालय जाने लगे तब उन्होंने अपनी पत्नी से एक सफेद साड़ी ले ली और अनाथालय में पहुँच कर कंचना को दे दी। कंचना ने देखा कि वह साड़ी फटी हुई है उसने वह फेंक दी और अपने भाग्य को दोष देती हुई राजा उपाध्याय के सामने आकर खड़ी हो गई। राजा उपाध्याय बड़े गौर से उसकी ओर देखने लगा, पर कंचना शर्म से पूरी नजर राजा उपाध्याय पर नहीं डाल पाई। रघुनाथ चौबे ने कंचना से पूछा—'कहिये देवी जी, उपाध्याय जी आपको पसन्द हैं?'

कंचना बनारस से शीघ्र-से-शीघ्र हटना चाहती थी, इसलिए उसने बिना सोचे-समझे 'हाँ' कह दिया। रघुनाथ चौबे ने कहा—'जब दोनों ओर से स्वीकृति है तब इसमें लिखा-पढ़ी की कोई आवश्यकता नहीं है। इलाहाबाद जाने वाली गाड़ी नौ बजे खुलती है। आप दोनों स्टेशन चलिए, मैं गाड़ी पर बैठा दूँ।'

फिर उसने नौकर को पुकार कर टैक्सी लाने को कहा। टैक्सी आते ही तीनों स्टेशन पहुँचे। गाड़ी खुलने में अभी दस मिनट की देर थी। राजा उपाध्याय कंचना के साथ तृतीय श्रेणी के डिब्बे में जाकर बैठ गया। उसमें जितने यात्री बैठे थे सब कंचना की ओर देखने लगे और कंचना नतमस्तक होकर अपने पैर के नखों को देखने लगी। जिस समय गाड़ी ने सीटी दी और गाड़ी प्लेटफार्म से खिसकने लगी उस समय कंचना की आँखें बरस पड़ीं। राजा उपाध्याय ने रघुनाथ चौबे को धन्यवाद देते हुए नमस्ते कहा। रघुनाथ चौबे ने अभिवादन स्वीकार करते हुए कहा—'इलाहाबाद जाकर आप अवश्य एक पत्र मेरे नाम से डाल दीजिएगा।'

जब गाड़ी आँखों से ओझल हो गई तब रघुनाथ चौबे की जान में जान आई।

और किशोरी ? कंचना के जाने के बाद किशोरी हताश हो उठी। अपने को अकेली और निस्सहाय अवस्था में पाकर वह अधीर हो गई। वह अपने मन में सोचने लगी—मेरे ही कारण मेरे पिता को इस राक्षस ने जीवित ही गंगाजी में समाधि दे दी। माँ से भी मेरा सम्बन्ध टूटा और जाति भाई घृणा की दृष्टि से मुझे देखते हैं। इस स्थिति में मैं कहाँ जाऊँ ? कुछ नहीं सूझता है।

उसे मौन देखकर प्रेमशंकर ने पूछा—'क्या सोच रही हो किशोरी ?'

किशोरी—'सोचूंगी क्या ? अपने भाग्य पर रोती हूँ।'

प्रेमशंकर—'तो क्या तुम चाहती हो कि प्रेमा ऐसी सुन्दरी को छोड़कर मैं तुम्हारे साथ अपना जीवन बर्बाद कर लूं।'

किशोरी--'दूसरों के जीवन को बर्बाद करने वाले कब अपना जीवन बर्बाद करना चाहेंगे, पर यह ध्यान रखो कि दूसरों को बर्बाद करने वाले स्वयं बर्बाद हो जाते हैं। दूसरों के जीवन को दुखमय बनाने वाले कभी सुखी नहीं रहते हैं। मैं चलती हूँ।' और वह सीढ़ियों से उतर कर नीचे आई। उसने इधर-उधर कंचना की खोज की पर वह कहीं नजर नहीं आई। उसके सामने भी वही समस्या उपस्थित हुई जो कंचना के सामने उपस्थित हुई थी। वह भी सड़क की एक ओर खड़ी होकर अपने भविष्य के बारे में सोचने लगी। इसी बीच कहीं से मोहन आ पहुँचा। किशोरी को वहाँ अकेली खड़ी देखकर

आश्चर्य में पड़ गया। उसने मुस्कराते हुए उससे पूछा—'कहो, किसकी प्रतीक्षा कर रही हो ?'

किशोरी ने भौं तानकर कहा--'जाओ मुँह-जले मेरे सामने से, नहीं तो मुँह में आग लगा दूँगी। मुस्कराकर बड़े प्रेम से पूछ रहे हो, किसकी प्रतीक्षा कर रही हो किशोरी ?'

मोहना ने हँसकर कहा– 'मेरी प्यारी, इसमें रंज होने की कौन सी बात है ? आखिर यहाँ अकेली खड़ी होकर अपने किसी यार-दोस्त की प्रतीक्षा ही तो कर रही हो ?'

किशोरी—'कहती हूँ मेरे सामने से हट जाओ, नहीं तो मैं तुम्हारी दशा बना दूँगी।'

मोहना—'आखिर बात क्या है ?'

किशोरी ने अपने नयनों में जल भर कहा--'बात इसमें ऐसी है कि आज तक मैं स्वर्ग लोक की अप्सरा रही, परन्तु अब प्रेमशंकर की दृष्टियों में मेरा रूप क्षीण हो गया है, इसलिए मेरा कोई मूल्य नहीं रहा। अब तक मैं प्रेमशंकर की धर्मपत्नी रही, परन्तु अब रखेल कहकर मैं घर से निकाल दी गई।'

मोहना—'प्रेमशंकर बहुत बड़ा शैतान है। कितनी महिलाओं का जीवन इसने बर्बाद किया है, मैं कह नहीं सकता। लड़कियों को फँसाने वाला तो मैं रहा और उपभोग करने वाला वह रहा। आज तुम्हारी दशा पर मेरी आँखों में आँसू आ रहे हैं और सेठ साहब की लड़की कंचना कहाँ गई ?'

किशोरी -'वह भी तो ऊपर से उतर कर अभी नीचे आई थी, पर मैं कह नहीं सकती हूँ कि वह किधर गई।'

मोहना बड़े गौर से किशोरी की ओर देखने लगा। उसके शरीर पर चार-पाँच सोने के आभूषण थे और दोनों पैरों में चाँदी के पायल थे। उसने अपने मन में विचारा 'अगर किसी प्रकार से किशोरी को अपने जाल में फँसा लूँ तो सोने और चाँदी के ये जेवर मुझे हाथ लग जाएंगे।'

इसी बीच किशोरी ने उसका ध्यान भंग करते हुए कहा—'मैं जाती हूँ।'

मोहना—'कहाँ जाओगी ? चलो मेरे साथ।'

किशोरी—'तुम्हारे साथ मैं कहाँ चलूँ ? तुम्हारे घर-द्वार भी है ?'

मोहना—'अरी पगली, बजार का मैं भिखमंगा हूँ परन्तु कलकत्ते का तो मैं

राजा हूँ।'

किशोरी—'हाँ, कलकत्ते का टकसालघर तुम्हारा ही है और सुनती हूँ कि बड़ी-बड़ी कोठियाँ भी तुम्हारी ही हैं ?'

मोहना ने हँसकर कहा – 'मैं मानता हूँ कि टकसाल हाउस मेरा नहीं है और विशाल अट्टालिकाएं मेरी नहीं हैं फिर भी मैं वहाँ कुछ हूँ। मेरा अपना मकान है और गंगा में मेरी दो नावें चलती हैं। उनसे मेरी काफी आय होती है। किन्तु मेरे धन का उपभोग करने वाला कोई आदमी नहीं है। तुम जानती हो कि मेरे न तो जोरू और न बाल-बच्चा, अगर तुम मेरे साथ रह जाओगी तो मैं तुमको रानी बनाकर रखूँगा।'

किशोरी ने अपने मन में कहा—'आखिर इस जीवन को बसर करने के लिए कोई आधार तो चाहिए। जब घर से निकल पड़ी हूँ तो मँझधार में पड़ी हुई नाव के समान कहीं-न-कहीं किनारा धरने का प्रयास तो करना ही होगा। संयोग अच्छा रहा कि मोहना अभी मिल गया। आखिर भाग्य में जब यही बदा है तो मैं क्या करूँ ? जो किशोरी अभी तक प्रेमशंकर की अर्द्धांगिनी थी वह अब मोहना की स्त्री बनने जा रही है।'

मोहना ने पूछा—'तब अपना निर्णय बतलाओ।'

किशोरी—'ठीक है, मैं तुम्हारे साथ रहूँगी।'

मोहना के सामने प्रश्न उठा कि वह किशोरी को कहाँ रखे ? उसे मौन देखकर किशोरी ने पूछा—'मोहना तुम खड़े होकर क्या सोच रहे हो ? चलोगे या मैं कोई दूसरी राह पकड़ूँ ?'

मोहना—'नहीं, यही सोच रहा हूँ कि तुम्हें यहीं किसी के घर में रखूँ या कलकत्ते ले चलूँ ?'

किशोरी—'बनारस में मैं नहीं रहूँगी। यहाँ रहने में मेरा उपहास होगा।'

मोहना—'तुम्हारा विचार मुझे पसन्द है। कलकत्ते का वातावरण तुम्हारे लिए अनुकूल होगा। अच्छा दो मिनट ठहरो, मालिक से मिल आऊँ।'

किशोरी—'देखना मोहना, प्रेमशंकर के सामने मेरी चर्चा मत करना।'

मोहना—'किशोरी, तुमने मुझे ऐसा मूर्ख समझ लिया। उनसे तुम्हारी चर्चा कर स्वयं मुझे उनका कोप-भाजन बनना है।' और वह ऊपर चला गया। उस समय प्रेमशंकर मौन होकर बैठा था शायद किशोरी और कंचना के साथ अपने

किए गए व्यवहार पर वह पश्चात्ताप कर रहा था। मनुष्य कितना भी अन्यायी और अत्याचारी क्यों न हो, पर उसके द्वारा कष्ट में होने पर स्वयं उसकी आत्मा कोसती है, स्वभावतः उसके मन में पश्चात्ताप होता है। पर अज्ञानता के महा-अन्धकार में आत्मज्ञान की वह ज्योति उसे नजर नहीं आती और वह भटकता ही रह जाता है। प्रेमशंकर की भी वही दशा हो रही थी। जब मोहना सलाम बजाकर एक ओर खड़ा हो गया और पूछा कि मालिक उदास क्यों हैं ? तब प्रेमशंकर ने एक लम्बी साँस लेते हुए कहा—'आज मैंने जघन्य कार्य किया है।'

मोहना—'वह क्या मालिक ?'

प्रेमशंकर—'कंचना और किशोरी का मैंने परित्याग कर दिया, उसी के लिए मन में क्लेश हो रहा है।'

मोहना ने हँसकर कहा—'बाबू, किसके लिए आपको क्लेश हो रहा है ? इन बाजारू छोकड़ियों के लिए ? इनका तो यही काम है, आज इनके साथ कल उनके साथ। अच्छा हुआ कि दोनों चली गईं। आप किसी प्रतिष्ठित घर में अपना विवाह कर दीवान साहब के उजड़े हुए घर को बसा दीजिये। आप ऐसे प्रतिष्ठित व्यक्ति के लिए किशोरी और कंचना ? मैं तो सरकार के भय से नहीं बोल रहा था, उनके कारण आपकी निन्दा हो रही है।'

प्रेमशंकर—'हाँ, तुम्हारा कहना बिल्कुल ठीक है। उनके कारण मेरी निन्दा हो रही है। इसीलिए तो मैंने उन्हें हटा दिया। किशोरी ने तो पाँच सौ रुपये मुझसे ले लिए, परन्तु अफसोस है कि कंचना ने मुझसे एक पैसा नहीं लिया।'

मोहना—'अफसोस किस बात का ? कंचना धनवान की लड़की है, उसे धन की क़ौन-सी कमी है ? और किशोरी बेचारी तो दीन-हीन है, उसने लिया तो अच्छा ही किया। अच्छा, अब अपने विवाह का कोई प्रबन्ध कीजिये।'

प्रेमशंकर—'मेरा विवाह तो ठीक हो गया है। इसी शहर में श्यामाचरण की सुपुत्री प्रेमा से। आज से सातवें दिन शादी होगी।'

मोहना—'मालिक, इस गुलाम को कोई पता नहीं और शादी ठीक हो गई ? कहिए मैं लड़की देख आऊँ।'

प्रेमशंकर—'लड़की देखी हुई है। देखने में वह बहुत ही खूबसूरत है। सम्भवतः बनारस में उसके समान कोई दूसरी सुन्दरी नहीं है। उसने अपनी एक

ही चितवन से मेरे मन को मोह लिया, जिससे मैंने उसके बाप से एक पैसा तिलक की माँग नहीं की है। वह पढ़ने-लिखने में भी अच्छी है। इस साल विश्वविद्यालय में चतुर्थ वर्ष में पढ़ती है।'

मोहना—'मालूम होता है कि बाबू ने पूर्व जन्म में कठिन तपस्या की थी ?'

यह सुनकर प्रेमशंकर हँसने लगा। मोहना ने कहा—'बाबू, मैं ठीक कहता हूँ। बिना पूर्व-जन्म के पुण्य के सुन्दर स्त्री नहीं मिलती है।'

प्रेमशंकर—'तुम ठीक कह रहे हो। मैं इसका समर्थन करता हूँ। प्रेमा को पाकर मेरा जीवन सुखी होगा, ऐसा मेरा विश्वास है। इस विवाह में अवश्य मेरा पुण्य सहयोग दे रहा है। अच्छा, अभी नौ बजे रात में तुम किधर चले ?'

मोहना—'मालिक, देखिए मेरी बाईं बाँह। ज्येष्ठ दशहरा के दिन एक अति सुन्दर युवती के साथ ठाकुर साहब का पुत्र प्रताप एक गली से होकर जा रहा था। सरकार के लिए उस लड़की का मैं अपहरण करना चाहता था। परन्तु प्रताप के कारण मेरी दाल नहीं गल सकी। उस लड़के ने ही मेरी बाँह काट दी। मरहम पट्टी हो रही है। थोड़ा घाव शेष रहा है। उम्मीद है, एक सप्ताह में अच्छा हो जाएगा। इस अवधि में बेकार रहने से ऋण लेकर खाना पड़ा है। उसे चुकाना है। इसलिए एक सौ रुपये मुझे दीजिए, एक सप्ताह के बाद लौटा दूँगा।'

प्रेमशंकर ने उसी समय तकिया के नीचे से सौ रुपये का एक नोट निकालकर मोहना के हाथ में दे दिया। मोहना प्रसन्न होकर वहाँ से चल पड़ा। परन्तु वह दो ही सीढ़ी नीचे आया होगा कि प्रेमशंकर ने उससे पुकार कर पूछा—'अरे मोहना, उस लड़की के साथ तुमने छेड़खानी तो नहीं की ?'

मोहना—'नहीं बाबू, प्रताप के कारण मेरा कोई बस नहीं चला। ज्योंही मैंने उस लड़की का आँचल पकड़ा त्यों ही वह चिल्ला उठी और प्रताप ने बहुत अच्छी तरह मेरी मरम्मत कर दी।'

प्रेमशंकर—'अच्छा हुआ कि तुमने उसके साथ छेड़खानी नहीं की।'

मोहना—'क्यों ?'

प्रेमशंकर—'वही तो प्रेमा है, जिससे मैं विवाह करने जा रहा हूँ।'

मोहना ने दोनों हाथ जोड़कर कहा—'मालिक, भगवान ने मेरा धर्म रख

लिया। अगर मुझसे कुछ हो जाता तो लोक और परलोक में मेरे लिए जगह नहीं रहती। वास्तव में आपका भाग्य अच्छा है। वह स्वर्ग की अप्सरा कहाँ से आपको मिल गई ?'

प्रेमशंकर—'खैर, जाओ।'

प्रेमशंकर को सलाम बजाकर मोहना चल पड़ा। जब वह नीचे आया तब किशोरी को न देखकर उसके होश उड़ गये। उसने अपने मन में कहा—'हाथ में आया हुआ शिकार मेरी मूर्खता से निकल गया।' वह पश्चात्ताप करते हुए आगे बढ़ा। अपने से थोड़ी दूर पर आगे-आगे जाती हुई एक महिला उसे नजर आई। मोहना को विश्वास हुआ कि वह किशोरी ही जा रही है। वह दौड़ पड़ा और हाँफते हुए किशोरी को पकड़ लिया। किशोरी ने कहा—अरे, मेरी बाँह छोड़। तुमको लोक-लाज कुछ भी नहीं है। अभी तक लोग सड़कों पर चल रहे हैं और तुम मेरी बाँह पकड़ कर खड़े हो।'

मोहना—'तुमने तो मुझे अच्छा परेशान किया।'

किशोरी ने झुँझलाकर उत्तर दिया—'तुम गए प्रेमशंकर के यहाँ सो वहीं बैठ गए।'

मोहना—'तुम बिल्कुल सीधी हो किशोरी। आखिर राह का खर्च तो चाहिए। एक सौ रुपया तो उनसे ऐंठ लाये।'

किशोरी—'अच्छा किया तुमने।'

वहाँ से दोनों आगे बढ़े और बनारस स्टेशन पर आकर हावड़ा जाने वाली ट्रेन में बैठ गए। गाड़ी खुलते ही किशोरी के मन में तरह-तरह के भाव उठे। काशी नगरी को, जो विद्युत के प्रकाश में चमक रही थी, उसने मन-ही-मन नमस्कार किया और खिड़की से झाँककर वह उस ओर तब तक देखती रही जब कि ट्रेन काशी अंचल से उसे बहुत दूर लेकर नहीं चली गई। आँखों से काशी ओझल होते ही किशोरी के नेत्रों से दो बूंद आँसू टपक पड़े। मोहना ने उसके कन्धे को थपथपाते हुए कहा—'अरी पगली, मोह किस बात का ? काशी में तुम्हारा क्या रखा है ? जो तुम रो रही हो ? तुम्हारा जीवन-धन तुम्हारे साथ है तब यह रोना-धोना कैसा ?

किशोरी ने अपने आँचल से अपनी आँखों को पोंछ लिया और उदास होकर मोहना की ओर देखने लगी। मोहना ने उसे धैर्य बँधाते हुए कहा—

'चिन्ता मत करो। मैं तुम्हारे जीवन-मरण तक का साथी हूँ। जब मैंने तुम्हारी बाँह पकड़ी है तब इस लाज को निबाहना भी मेरा कर्त्तव्य होता है। प्रेमशंकर मुझको मत समझना। वह बड़ा आदमी है। वह हरेक कली का रसास्वादन करना चाहता है। देखो वह सम्बन्ध भी कितने दिनों तक रहता है? कुछ दिनों के बाद प्रेमा की भी वही दशा होगी, जो तुम्हारी और कंचना की हुई है।'

किशोरी—'प्रेमा उससे विवाह नहीं करेगी। वह चतुर नारी है। वह इस रूप के कीड़े के जाल में नहीं फँस सकती है।'

मोहना--'जाने दो कुछ हो, हम दोनों की दुनिया आबाद रहे।'

इसके समर्थन में किशोरी ने 'हाँ-हूँ' कुछ नहीं कहा। वह बेंच पर एक ओर आँचल से मुँह ढक कर सो गई। बीच-बीच में यात्री आते व जाते रहे, पर किशोरी को उनका कोई पता नहीं। उसके पैर की ओर मोहना बैठा हुआ मानो उस पर पहरा दे रहा था। अगर कोई यात्री उस बेंच पर बैठने की कोशिश करता तो मोहना उससे लड़ने को तैयार हो जाता। कई बार शोर-गुल सुनकर किशोरी की नींद टूट गई, पर वह ज्यों की त्यों पड़ी रही, थोड़ा भी हिल-डोल उसने नहीं किया। मोकामा में आकर सूर्योदय हुआ। मोहना ने किशोरी को जगाते हुए कहा—'उठो, कितनी सोती हो? कलकत्ता में अच्छी तरह विश्राम करना। किशोरी उठकर बैठ गई और जब वह अंगड़ाई लेने लगी तो उस डिब्बे में बैठे हुए सभी यात्रियों की आँखें सहसा उसकी ओर चली गयीं। मोहना ऐसे काले-कलूटे आदमी के साथ सौन्दर्य की उस मूर्ति को देखकर लोगों ने अनुमान किया कि वह उसे भगाये लिए जा रहा है। परन्तु किसी ने यह जानने का प्रयास नहीं किया कि वास्तव में तथ्य क्या है? किसके पास इतना समय था कि वह उसकी जानकारी प्राप्त करे और बात इसमें ऐसी थी कि दूसरे की समस्या को कौन अपने सर पर ले? परन्तु उसके रूप-लावण्य को देखने और आँख-भौं चलाने के लिए प्रायः सबों के पास समय था। किशोरी यह सब देखकर भी कुछ नहीं देख रही थी। उसके कहने से मोहना मोकामा के आगे एक स्टेशन पर पानी लाने चला गया। इस बीच में अवसर पाकर एक युवक ने उससे पूछा—'यह साथ का आदमी आपका कौन लगता है?'

किशोरी ने उत्तर दिया—'मेरा नौकर है। मैं कलकत्ता अपने पति के पास जा रही हूँ।'

उसके उत्तर पर लोगों ने कहा—'यही तो हमारी भी धारणा थी कि ऐसे बदसूरत के हाथ में यह रूपसी कैसे ?'

तब तक मोहना पानी ले आया। लोग चुप हो गये। किशोरी ने हाथ-मुँह धोया और कुछ जलपान किया। उसके बाद बिहार और बंगाल के दृश्यों को देखने ही में उसने सारा दिन बिता दिया। सन्ध्या को जब गाड़ी हावड़ा पहुँची तब लोगों की अपार भीड़ देखकर वह दंग रह गई। काशी में विशेष अवसरों पर जितने लोग एकत्रित होते हैं उतने आदमी तो उसे हावड़ा स्टेशन पर दीख पड़े, और फिर हावड़ा स्टेशन के बाहर आने पर हुगली नदी पर विशालकाय पुल देखकर किशोरी आश्चर्यचकित रह गई। मोहना उसे अपने साथ लेकर ट्राम में बैठ गया। ट्रामकार किशोरी ने अपने जीवन में प्रथम बार देखी थी। विद्युत द्वारा चालित ट्राम देखकर वह और भी आश्चर्य करने लगी। वहाँ की हर एक चीज उसके सामने अपनी कोई-न-कोई विशेषता लेकर आई और उसे चकित किये बिना नहीं रही। परन्तु सबसे बढ़कर उसे आश्चर्य तो तब हुआ जब बड़ी-बड़ी अट्टालिकाओं को पार कर मोहना उस सड़ी-गली बस्ती में ले गया, जहाँ कच्ची और खपरैल की झोंपड़ियों की भरमार थी। किशोरी के मुख से सहसा निकल पड़ा—'इस अलकापुरी में नरकशाला भी है, जहाँ तुम रह रहे हो ?'

मोहना—'जहाँ स्वर्ग है, वहीं नरक भी है। परन्तु तुम्हारे कहने का आशय मैं नहीं समझ सका।'

किशोरी—'यहीं तुम्हारा निवास-स्थान देखकर मुझे ऐसा कहना पड़ा। कलकत्ते की बाहरी तड़क-भड़क देखकर कोई आदमी अनुमान नहीं कर सकता है कि इसके हृदय में ऐसी गन्दगी भी है जहाँ अन्न खाने को कौन कहे, जल पीने की भी इच्छा नहीं होती है।'

मोहना—'प्यारी, अभी प्रेमशंकर के राजभवन से आ रही हो, फिर अपनी झोंपड़ी कैसे पसन्द आयेगी ? यहाँ तो भाड़े पर भी रहने के लिए किसी को मकान नहीं है और तुम्हारा तो अपना मकान है।'

किशोरी—'चलो यह भी सही, देखें भाग्य में क्या लिखा है ?'

मोहना—'क्षुब्ध होने की कोई आवश्यकता नहीं है। अगर तुम इस मकान में रहना पसन्द नहीं करोगी तो मैं तुम्हारे लिए एक पक्का मकान ले लूँगा।'

किशोरी—'मुझे सब पसन्द है। परिस्थिति के अनुकूल तो अपने को बनाना ही होगा।'

मोहना ने देखा कि किशोरी दुखित है। वह चुपचाप उठ गया और एक झाड़ा लेकर उसने अपना कमरा साफ किया फिर पानी से उसे धो डाला। बिस्तर में उसके पास केवल एक चटाई और दरी थी। परन्तु किशोरी के सोने के लिए उसने अपने एक पड़ोसी से एक खाट माँग ली। जब सम्पूर्ण कलकत्ता के मकानों में विद्युत का प्रकाश चमचमा रहा था तब मोहना के कमरे में मिट्टी के तेल की एक डिबिया मन्द-मन्द गति से जलती हुई मानो किशोरी के भाग्य पर रो रही थी। परन्तु मोहना अपने भाग्य पर विहँस रहा था। अलकापुरी की वह परी किशोरी उसकी शय्या पर पड़ी थी और उसका सौन्दर्य और यौवन उसके सामने अंगड़ाइयाँ ले रहा था। वहाँ के धुंधले प्रकाश में भी किशोरी का देदीप्यमान मुखड़ा स्वच्छ दर्पण के समान चमक रहा था। उसकी कमनीयता को देखकर मोहना अपने को वश में नहीं रख सका। किशोरी को आलिंगन करने के लिए उसने अपने हाथ बढ़ाये, पर अपना शरीर स्पर्श होने के पूर्व ही किशोरी ने उसे चेतावनी देते हुए कहा—'अगर तुमने मेरी इच्छा के विरुद्ध मुझे तंग किया तो मैं आत्म-हत्या कर लूँगी।'

मोहना यद्यपि वासना के वशीभूत होकर व्यग्र हो रहा था तथापि किशोरी की आत्महत्या के भय से उसने उसका अंग-स्पर्श नहीं किया। वह कमरे से बाहर आकर बरामदे में अपनी चटाई बिछाकर पड़ रहा। सवेरा होने पर वह बाजार गया और शाक-भाजी ले आया। किशोरी ने अपने हाथ से रसोई तैयार की, जो मोहना को बहुत ही स्वादिष्ट मालूम हुई। दोपहर को मोहना ने किशोरी से कहा—'मैं अपने काम पर जाता हूँ। संध्या को लौटूँगा, तब तक तुम विश्राम करो। मोहना के जाने बाद ही मकान-मालिक किराया के लिए आया। औरों से किराया वसूल करने के बाद उसने मोहना की तलाश की। किसी ने उसे कहा कि वह घर से अपनी जोरू के साथ आया है परन्तु अभी बाहर कहीं काम-धन्धा खोजने गया है। मकानत्मालिक ने हँसते हुए कहा—'उसने जोरू कहाँ से लाई? कोई बदमाश औरत अपने घर से उसके साथ भाग आई होगी। अच्छा उसे कह देना कि अगर एक सप्ताह के अन्दर वह किराया नहीं देगा तो उसे घर छोड़ देना होगा।'

किशोरी ये बातें सुन रही थी। मकान-मालिक के जाने के बाद चट्टी के पर्दे को हटाकर उसने बाहर झाँककर देखा, एक मोटी और काली सूरत की महिला चौखट पर बैठकर हुक्का पी रही थी। उसके सर में चाँदी का माँग-टीका, गले में भी चाँदी की तीन पौवे की हँसुली, बाजुओं पर रूपा के बाजू और कलाइयों पर आधे-आधे सेर के कंगने थे। उसके रूप को देखकर किशोरी मुस्करा उठी। उसने संकेत से उसे बुलाया और पूछा—'अभी कौन आदमी आया था ?' महिला ने उत्तर दिया—'यही न मकान-मालिक है। घर के किराया के लिए आया था। तुम्हारा आदमी बड़ा शैतान है। वह कभी किराया नहीं देता है और जबरदस्ती यहाँ रहना चाहता है।'

किशोरी ने आश्चर्य-चकित होकर पूछा—'यह मकान उसका अपना नहीं ?'

महिला ने कहा—'उसका अपना मकान कहाँ से आया ? क्या वह इसे अपना मकान कहता है ?'

किशोरी—'हाँ, वह तो ऐसा ही कहता है।'

उस स्त्री ने हँसकर कहा—'जब वह मकान का किराया नहीं देता है और जबरदस्ती यहाँ रह रहा है तो यह उसी का मकान है, इसमें झूठ कौन-सी बात है ? वह जो कुछ कहता है, सब ठीक कहता है।'

किशोरी—'इसकी दो नावें चलती हैं ?'

महिला ने अपने होंठ पर हाथ धर कर कहा—'हे भगवान, ऐसा झूठ। जिसको दोनों वक्त भोजन मिलने पर आफत वह कहे कि मेरी एक नहीं दो-दो नावें चलती हैं। इसकी बातें झूठी हैं। क्या तुम इसकी अपनी जोरू नहीं हो ? यह धोखा देकर तुमको ले आया है ?'

उसके प्रश्न का किशोरी ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह महिला पुनः कहने लगी—'मोहना तो कलकत्ते का नामी गुण्डा है। चोरी, डकैती, हत्या सब इसके लिए सहज है। अगर तुम इसके साथ घर से भाग आई हो तो तुमने भयानक भूल की है। संसार में तुमको कोई मर्द ही नहीं मिला ? तुम्हारा रूप ऐसा है और बुद्धि कुछ नहीं ?'

बातें हो ही रहीं थीं कि मोहना आ पहुँचा। उसके आते ही वह महिला

वहां से उठ पड़ी । मोहना ने मुस्कराते हुए कहा—'भाभी, क्यों चल पड़ीं ?' बैठा न ।'

महिला—'नहीं चलती हूँ, बाजार कोयला लेकर जाना है । देखा तुम्हारी जोरू अकेली बैठी है तो मैं भी आकर बैठ गई । अब तुम दोनों इधर-उधर की बातें कर मन को ताजा करो ।'

मोहना ने उसके जाने के बाद किशोरी से पूछा—'यह चुड़ैल तुमसे क्या कह रही थी ?'

किशोरी—'कुछ नहीं, यही पूछ रही थी कि तुम्हारे कोई सन्तान भी है ?'

मोहना—'क्यों न कह दिया कि सन्तानें तो इतनी होंगी कि सारा आँगन उन्हीं से भर जाएगा ।'

किशोरी मुस्करा उठी । मोहना ने उससे पूछा—'चलोगी चिड़ियाखाना देखने ?'

किशोरी—'चलो न, देखूंगी कि यहाँ का चिड़ियाखाना कैसा है ?'

घर से निकल कर दोनों ट्राम में आकर बैठ गए । परन्तु जब तक वे पहुँचे तब तक चिड़ियाखाना का फाटक वन्द हो चुका था । अतएव दोनों हताश होकर वहाँ से लौट पड़े । वहाँ से दोनों पैदल चौरंगी वापस आए । चौरंगी की चहल-पहल और शान-शौकत देखकर किशोरी मुग्ध हो गई । उसने अपने मन में कहा, 'अगर मैं किसी भले आदमी की स्त्री होती तो यह सुख सब दिन के लिए उपलब्ध होता, किन्तु ताड़ से गिरने के बाद मैं बबूल पर अटक गई ।' मोहना के साथ उसी सड़ी-गली और गन्दी बस्ती में मुझको रहना होगा और कुछ दिनों के बाद माथे पर कोयला चढ़ाकर बाजार में बेचना होगा ।'

मोहना ने देखा कि किशोरी का चेहरा एकाएक उदास हो गया है । उसने हँसते हुए कहा 'क्या बनारस की याद तुमको आ रही है ? कलकत्ता के सामने बनारस क्या है ? यहाँ चौबीसों घंटे सोने की वर्षा होती है और यहाँ सभी सुख-साधन सहज में ही उपलब्ध होते हैं । बनारस में एक पैसे के लिए तरसना पड़ता है और यहाँ दो-चार रुपया प्राप्त कर लेना कोई कठिन नहीं है । कुछ दिन यहाँ रहने के बाद तुम्हारे लिए कलकत्ता बहुत ही आकर्षक बन जाएगा और काशी की स्मृति धीरे-धीरे तुम्हारे मानस-पटल से जाती रहेगी ।'

किशोरी ने खिन्न मन से उत्तर दिया—'यह हो सकता है ।' और वह उसी

जगह बैठ गई। मोहना भी उसी जगह बैठ गया। उसी समय मूंगफली वाला आ गया। मोहना ने उससे दो आने की मूंगफली ली। आधी तो उसने किशोरी को दी और आधी स्वयं खाने लगा। दो-चार दाने खाने के बाद किशोरी ने कहा—'मुझको अच्छी नहीं लगती है, तुम्हीं खाओ।'

मोहना ने उसके हाथ से मूंगफली ले ली और सामने घोड़े पर लार्ड कैनिंग की प्रस्तर-मूर्ति की ओर संकेत करते हुए कहा—'यह सन् १८५७ के गदर के सेनापति बाबू कुँवरसिंह की मूर्ति है। बाबू कुँवरसिंह ने अंग्रेजों के छक्के छुड़ा दिए थे, परन्तु उनके भाई ने उन्हें धोखा देकर मरवा दिया।'

किशोरी मूर्ति की ओर बड़े गौर से देखने लगी और झुंझलाकर बोल उठी—'तुम कैसे बेवकूफ हो, लार्ड कैनिंग की मूर्ति को बाबू कुंवरसिंह की मूर्ति कहते हो।'

मोहना—'यह तुमको किसने कहा ?'

किशोरी—'अरे मूर्ख, लार्ड कैनिंग का नाम तो उसी मूर्ति में लिखा हुआ है।'

मोहना ने हँसते हुए कहा—'तुम अंग्रेजी भी जानती हो ?'

किशोरी ने कोई उत्तर नहीं दिया। मोहना ने पुनः पूछा—'अच्छा, उनके भाई ने उन्हें धोखा देकर मरवाया था न ?'

किशोरी—'नहीं, कुंवरसिंह और अमरसिंह के मारे जाने के बाद उनके चचेरे भाई किशनसिंह ने अंग्रेजों से लोहा लिया और वह तब तक लड़ता रहा जब तक कि उसके पास एक भी सैनिक बचा रहा। उसके बाद वह स्वयं खेत रहा।'

मोहना—'तुम बहुत पढ़ी-लिखी हो।'

किशोरी—'तुम्हारे साथ सारी विद्वत्ता भूल गई।'

दोनों में बातें हो ही रही थीं कि पीछे से एक व्यक्ति ने मोहना का कंधा धर कर कहा—'अरे भैया तुमने यह चिड़िया कहाँ से फँसा ली ?' उसका यह प्रश्न मोहना को बहुत बुरा लगा, पर घूम कर जब उसने उसका चेहरा देखा तब सहसा उसे हँसी आ गई और मुख से दो शब्द भी निकल आए—'अरे कोदई, तुम हो ? मौका न मिल सका जो आ सकूं। कल ही तो घर से आया हूँ और अपनी जोरू के साथ आया हूँ। कहो तुम्हारी भाभी कैसी है ?'

कोदई ने बैठते हुए कहा—'अरे भैया, चारों ओर इस मैदान में नजर दौड़ा आओ, पर कहीं भी ऐसी सुन्दर छोकड़ी नजर नहीं आएगी। तुम्हारे ऐसे कुरूप को यह परी कहाँ से हाथ लग गई? अच्छा ही हुआ, भावज में देवर का भी……।'

मोहना ने सिर हिलाते हुए कहा—'नहीं भाई, जोरू में साझा नहीं होता है। यह आशा छोड़ो।' और फिर उसने किशोरी की ओर देखकर कहा—'सुनती हो इसकी बात? यह तुममें हिस्सेदार बनना चाहता है। किन्तु बात तो यह ठीक कहता है, यह तुम्हारा देवर लगेगा। इसका भी मकान बनारस में ही पड़ता है और यहीं पर अपना हाथ साफ करके दोनों जून भोजन करता है। इससे यारी रखने में हम लोगों को कोई घाटा नहीं होगा, दिन में होली और रात में दीवाली रोज होगी।'

उसकी बातों पर किशोरी घूरकर उसकी ओर देखने लगी। मोहना समझ गया कि किशोरी नाराज हो गई। उसने कोदई से हँसते हुए कहा—'भाई अभी जाओ, कल सन्ध्या को आना, तुम्हारी भावज नाराज है। अगर इसको मनाना हो तो खाली हाथ मत आना।'

कोदई—'देखो कहीं भाग्य ने साथ दिया तो आज ही ट्राम या बस में सौ पचास पैदा कर लूँगा और कल भावज के लिए साड़ी लेने आऊँगा और चलने के समय किशोरी के समक्ष झुककर उसने कहा—'भाभी सलाम।'

किशोरी ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह चला गया। किशोरी ने मोहना से कहा—'चलो घर।'

इच्छा नहीं रहते हुए भी मोहना अपने घर के लिए चल पड़ा। जब दोनों अपने निवास-स्थान पर पहुँचे तो किशोरी आँगन को धुआँ से भरा हुआ देखकर घबरा उठी। हरेक घर से कोयला और लकड़ी का धुआँ निकल कर कुहासा के समान फैला हुआ था। आँचल से अपनी आँखें मलते हुए किशोरी ने कहा—'कैसे इस मकान में लोग रहते हैं?'

मोहना—'घबराओ मत किशोरी, तुम्हारी इच्छा के अनुसार मैं प्रबन्ध कर देता हूँ।'

किशोरी ने कहा—'मुझसे भोजन नहीं बनेगा, मैं थक गई हूँ।'

'तो मैं बना लेता हूँ।' कहकर मोहना रसोई तैयार करने में लग गया।

किशोरी को प्रसन्न करने के लिए उसने खीर तैयार की। आँख-मुँह धोकर किशोरी ने भोजन किया और किवाड़ बन्द कर सो गई। मोहना को यह बहुत बुरा लगा। पर वह कुछ बोल न सका। क्रोध को अपने हृदय में दबाकर वह बरामदे में चटाई पर लेट गया और दूसरे दिन सूर्योदय होने के पूर्व ही कोदई के मकान पर पहुँचा। अभी तक कोदई सोया हुआ था। मोहना के आवाज देने पर वह उठ बैठा और पूछा—'भैया, इतना सवेरे कैसे ?'

अपना दुखड़ा सुनाते हुए मोहना ने कहा—'अरे कोदई, क्या कहूँ ? तुम्हारी भावज तो बड़ी शैतान निकली। वह अपने बिस्तर पर मुझे लात तक नहीं देने देती है। आखिर मैं उसे यहाँ लाया क्यों ? उसकी पूजा करने के लिए ?

कोदई—'वास्तव में बड़ी शैतान औरत मालूम होती है। ऐसी स्त्री रहने ही से क्या जबकि उसके साथ कोई सुख नहीं।'

मोहना—'तुम्हीं सोचो, ऐसी औरत से क्या लाभ ? अगर सोने और चाँदी के जेवर उसके पास नहीं रहते तो मैं उसे घर से निकाल देता और इतना ही नहीं उसके पास पाँच सौ रुपए भी हैं।'

कोदई—'जन्म-भर तुम शहर में ही रहे, पर बुद्धि नहीं हुई। अरे भैया, आज रात में उसका काम तमाम कर डालो और जेवर तथा रुपए हाथ लगा लो। मुझको अधिक नहीं केवल दो सौ रुपए दे देना।'

मोहना—'तुम्हारा विचार मुझे पसन्द है। ऐसी हरामजादी औरत के रहने से क्या लाभ जिससे मन की प्यास नहीं बुझे। आज सन्ध्या मेरे घर पर आओ। वहीं खाना-पीना और आधी रात में उसकी हत्या कर गंगा में फेंक देना।'

कोदई—'चलो, मैं सन्ध्या को आऊँगा। अच्छा मधवा का कोई पता तुम नहीं लाए।'

मोहना—'दीवान गौरीशंकर के डूबने के बाद वह फरार हुआ और आज तक वह फरार ही है। मैं चलता हूँ।'

मोहना अपने घर पर वापस आया। किशोरी अभी तक सोई हुई थी। मोहना ने उसे गाली देते हुए कहा—'अरे उल्लू की बच्ची, राम नाम जपेगी कि किवाड़ खोलेगी ? आई हो कलकत्ता में भोजन करने और सोने के लिए। मोहना रात-भर बरामदे में पड़ा हुआ तड़पता रहे और तुम अपनी शय्या पर

पड़ी हुई अपने प्रियतम की याद में रोया करो।'

किशोरी ने किवाड़ खोला। मोहना लाल-लाल आँखें किए खड़ा था। किशोरी ने कहा—'देखो मुँह सम्भाल कर बोलो नहीं तो मैं तुम्हें ठीक कर दूँगी। मैं तुम्हारी चेरी बनकर नहीं रहूँगी। अगर मुझे अपना यौवन और सौन्दर्य ही बेचना है तो कलकत्ते में मुझे बहुत यार-दोस्त मिलेंगे।'

'चरित्रहीन औरतों के लिए सब सहज है।' कहते हुए मोहना ने बाल्टी उठाई और मीठे कल से पानी लाकर टपों को भर दिया। किशोरी ने मुँह-हाथ धोया और स्नान किया, पर वह दिन एकादशी के रूप में ही बीत गया। सवेरे का गया हुआ मोहना सन्ध्या को लौटा और किशोरी के सामने चावल, माँस और शराब की चार बोतलें रखते हुए कहा—'कोदई को मैं निमंत्रण दे आया हूँ। अभी वह आवेगा। तुम अपने हाथ से उसके लिए स्वादिष्ट भोजन तैयार कर दो।'

किशोरी ने झुँझलाकर कहा—'मुझसे कुछ नहीं होगा। अपना भोजन तैयार करो, स्वयं खाओ और अपने मित्रों को खिलाओ।'

मोहना को क्रोध चढ़ आया पर वह कुछ बोला नहीं। किशोरी खाट पर जाकर सो गई। लगभग दस बजे रात में कोदई पहुँचा और पूछा—'भाभी कहाँ है ?'

मोहना—'नींद ले रही है।'

कोदई—'अरे भाया, उसका चेहरा बहुत ही सुन्दर है। एक बार उसका मुखड़ा दिखला दो।'

किशोरी जगी हुई थी। ज्यों ही उसे पैरों की आहट मालूम हुई त्यों ही आँचल से मुँह ढँककर उसने आँखें मूंद लीं। उसके मुख से आंचल हटाते हुए मोहना ने कहा—'देखो हरामजादी के चेहरे को। देखने में यह जैसी सुन्दरी है हृदय से उतनी ही काली है। प्रेमशंकर के आगे यह मोहना को कुछ नहीं समझ रही है।'

कोदई—'भैया, इसका फल भी तो अभी इसको मिल जाएगा। बहुत हो तो ढाई-तीन घंटे की दुनिया की यह मेहमान है। जल्दी खा-पीकर इसका काम तमाम कर डालो और गंगा में न हो सके तो नाली में ही इसकी लाश फेंक दो।'

मोहना—'हाँ, यही होगा।'

यह सुनकर किशोरी का कलेजा काँप उठा। मोहना ने म्यान से अपनी तलवार निकाली और कोदई नींबू और बालू से उसकी धार साफ करने लगा। कोदई ने मोहना से यह भी पूछा—'भैया, इस तलवार से कितने आदमियों की तुमने हत्या की होगी ?'

मोहना – 'बीस-पचीस आदमियों के खून तो इसमें अवश्य लगे होंगे।'

यह सुनकर किशोरी और भी भयभीत हो उठी। मोहना ने कहा—'चलो भोजन करें।'

दोनों उठ पड़े और खूब डटकर भोजन किया। उसके बाद किशोरी की खाट के समीप चटाई डालकर शराब पीने लगे। किशोरी को अपने प्राण बचाने की चिन्ता थी। वह उठकर बैठ गई। कोदई ने उससे कहा—'भाभी और काम तो नहीं, कम-से-कम अपने हाथ से शराब तो पिला दो।'

किशोरी ने मुस्कराते हुए कहा--'अवश्य पिलाऊँगी।' और वह खाट से उतर गई। कोदई ने उसके सामने गिलास और बोतलें बढ़ाईं। किशोरी ने अपने लिए अच्छा मौका समझा। आध घन्टे में ही दोनों को चार बोतल शराब पिला दी। कोदई ने कहा—'भाभी कुछ नशा नहीं हुआ।'

किशोरी ने कहा—'दो-चार बोतल और ले आओ।'

कोदई--'मेरी जेब में दो बोतलें विलायती शराब की हैं। निकाल लो।'

किशोरी ने दोनों बोतलें निकालीं और थोड़ी देर में दोनों बोतलें उन्हें पिला दीं। दोनों को काफी नशा हुआ। अक-झक बकते हुए दोनों वहीं धरती पर लुढ़क गये। किशोरी अब भागने के उपाय सोचने लगी। इसी बीच पास के थाने में एक की घंटी बजी। किशोरी ने सिढ़ाने से अपने रुपए निकाले और चिराग बुझाकर धीरे से घर से निकल पड़ी। आँगन पारकर वह सड़क पर आई। उस कलकत्ता महानगरी में जहाँ उसका कोई भी परिचित व्यक्ति नहीं था, उसके पैर जिधर बढ़े उसी ओर वह चलती गई और अन्धकार में विलीन हो गई। नींद टूटने पर मोहना और कोदई उसका पीछा करने पर भी उसे नहीं पा सके।

२०

ज्यों-ज्यों प्रेमा के विवाह की तिथि समीप आती गई त्यों-त्यों श्यामाचरण चिन्तित होते गए। प्रेमशंकर के यहाँ विवाह की सारी तैयारियाँ हो रही थीं, परन्तु श्यामाचरण के यहाँ मालूम नहीं होता था कि उनके घर में विवाह है। जब शादी के दो दिन शेष रह गए तब श्यामाचरण ने अपनी पुत्रवधू विमला को बुलाकर शादी के लिए प्रेमा को राजी करने को कहा। विमला प्रेमा को लेकर एक एकान्त कमरे में चली गई और वार्ता आरम्भ करते हुए उसने कहा—'मेरी ननद तो अब दो दिनों की मेहमान रह गई है। तीसरे दिन तो यह पराए घर की हो जाएगी और वह पराया घर ही इसका अपना घर बन जाएगा और आज तक हम जो अपने रहे, पराए बन जाएंगे। क्या सामाजिक व्यवस्था है ? हमारे देश और समाज में भी अगर असभ्य और जंगलियों की व्यवस्था रहती तो कितना अच्छा होता। वहाँ लड़के ही ससुराल में जाकर रहते हैं। कहो प्रेमा, मैं झूठ कहती हूँ ?'

प्रेमा उसके कहने का आशय समझ गई। उसने कहा—'भाभी, तुम इतिहास की पंडिता और सामाजिक व्यवस्था का ज्ञान रखने वाली हो, भला तुम झूठ कहोगी ?'

विमला—'परन्तु शहरों में देहातों के समान रिवाज नहीं है। शहरों में तो लड़कियाँ दिन में नैहर में रहती हैं और रात में ससुराल चली जाती हैं। प्रेमा विवाह के बाद दिन में तुम यहाँ रहना और रात में प्रेमशंकर के पास।' और वह हँस पड़ी।

प्रेमा—'व्यर्थ की कल्पना मत करो। मैंने तो कह दिया कि प्रेमशंकर के साथ मैं विवाह नहीं करूँगी। इसका कारण मैं बतला चुकी हूँ। तुम कहती हो कि प्रेमशंकर के घर में असीम धनराशि पड़ी हुई है और जवाहरात की तो उसके यहाँ खान है। पुराने जमाने की उसके घर में हीरे-मोती की लड़ियाँ पड़ी हैं। मैंने सुना है कि उसने बहुत अच्छे-अच्छे आभूषण भी बनवाए हैं और साड़ियाँ तो ऐसी लाई गई हैं कि राजकुमारियाँ भी उसे देखकर ललचा उठेंगी। परन्तु ये सारी चीजें बाहरी ठाट-बाट के लिए हैं, शरीर को सजाने के लिए हैं और रूप को और भी मोहक तथा आकर्षक बनाने के लिए हैं। इनसे प्रेमशंकर ऐसे पुरुष के

साथ रहकर आत्मा को सुख और शाँति नहीं मिल सकती है। पिताजी धन को महत्व देते हैं पर मैं चरित्र को महत्व देती हूँ। कंचना और किशोरी के साथ प्रेमशंकर ने क्या किया ? दोनों को उसने घर से निकाल दिया। वे कहाँ गईं ? किसी को मालूम नहीं। फिर वैसे के गले में मुझे बाँधने के लिए वे क्यों व्यग्र हो रहे हैं ? तुम जानती हो कि प्रेमशंकर दुराचारी पुरुष है। दुराचारियों के साथ लक्ष्मी नहीं रहती है। एक दिन वह उनका साथ छोड़कर चली जाती है। प्रेमशंकर अपने पूर्वजों के धन का दुरुपयोग करता है। उसका धन वेश्या और सुरा की पूजा में पानी की तरह बहता जा रहा है। उसे रोकने वाला कोई नहीं है। क्या तुम उम्मीद करती हो कि प्रेमशंकर अपनी पत्नी और सन्तान के लिए धन छोड़कर मरेगा ? मेरा तो विश्वास है कि वह अपनी जिन्दगी में ही सब धन समाप्त कर कौड़ी-कौड़ी के लिए तरस कर मरेगा। मेरी आत्मा उसके साथ विवाह करने से मुझे रोकती है, मैं इसकी उपेक्षा कर प्रेमशंकर की पत्नी बनने को तैयार नहीं हूँ। स्त्री के लिए पति ही सर्वस्व है। अगर पति दुराचारी, व्यभिचारी, वेश्यागामी और शराबी निकल गया तो स्त्री का भविष्य नष्ट ही समझो। अगर हठवश तुम लोगों ने प्रेमशंकर के साथ मेरा विवाह कर दिया तो समझ लो कि मेरे वर्तमान और भविष्य दोनों बर्बाद किए।'

विमला—'वास्तव में प्रेमशंकर है दुराचारी और निर्लज्ज। उसने उस दिन तुम्हारा हाथ पकड़ लिया यह मुझे तो बहुत बुरा लगा। उसने लज्जा की कोई परवाह नहीं की। उसने यह भी नहीं सोचा कि आखिर उसके इस व्यवहार का प्रेमा के मन पर कैसा प्रभाव पड़ेगा ? उसने यह नहीं सोचा कि जिस लड़की की उसने परछाईं तक नहीं देखी है उसके साथ एकाएक ढिठाई कर अपने सम्बन्ध में उसके हृदय पर कैसी बुरी छाप देने जा रहा है ? मुझे तो उसकी करतूत पर क्रोध आया, पर मैं कर क्या सकती थी ? अपने घर में आए हुए अतिथि का अपमान कैसे करती ? अगर तुम उसके साथ विवाह करना नहीं चाहोगी तो विवाह नहीं होगा। जिसमें तुम्हारा भविष्य सुन्दर हो, वही हम लोगों को करना है। मैं पिताजी से कह देती हूँ कि प्रेमशंकर के साथ प्रेमा की शादी करने के विचार को वे परित्याग कर दें।'

प्रेमा—'हाँ, कह दो, मैं उससे विवाह नहीं करूँगी। अगर बरात दरवाजे से आकर लौट जाएगी तो दोनों पक्षों का उपहास होगा।'

विमला उठकर बाहर आई। श्यामाचरण बहुत देर से उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। विमला को देखते ही उन्होंने बड़ी उत्सुकता के साथ पूछा – 'क्या प्रेमा प्रेमशंकर के साथ विवाह करने को तैयार है? उसने अपनी स्वीकृति दे दी?'

विमला—'नहीं पिताजी, प्रेमा प्रेमशंकर के साथ विवाह करने को तैयार नहीं है। वह कहती है कि उसके साथ उसका भविष्य बर्बाद हो जाएगा।'

श्यामाचरण –'मैं प्रेमशंकर को प्रेमा के साथ विवाह का वचन दे चुका हूँ। उसके यहाँ सभी तैयारियाँ हो चुकी हैं। उसके सगे-सम्बन्धियों की स्त्रियाँ नित्य मंगल-गान करती हैं और अब विवाह के केवल दो दिन शेष रह गए हैं, इस स्थिति में मैं उसे कैसे कह दूँ कि तुम्हारी शादी मेरी पुत्री के साथ नहीं होगी? आखिर उसकी भी तो मान-मर्यादा है।'

विमला—'पिताजी, आप प्रेमशंकर की मर्यादा मत देखिए, अपनी मर्यादा देखिए। प्रेमशंकर ने तो कब की अपनी मर्यादा खो दी है। आप अगर उसके साथ प्रेमा का विवाह नहीं करेंगे तो कोई नहीं हँसने पाएगा, क्योंकि प्रेमशंकर को प्रायः सब जानते हैं। शहर के इस रईस की बदनामी छिपी हुई नहीं है। उसके सम्बन्ध में प्रेमा के मुख से मैंने जो कुछ सुना है उससे मुझे आश्चर्य हुआ है। मैं देखती हूँ कि प्रेमा का जीवन उसके साथ सुखी नहीं रहेगा। विवाह तो बाजार का सौदा नहीं है, बल्कि वह जीवन का सौदा है, इसलिए बहुत सोच-समझकर निर्णय पर पहुँचना चाहिए। आज का हारा हुआ दम्पती जीवन-भर रोता है और आज का जीता हुआ जीवन भर हँसता है। अपने समाज में तलाक की भी तो प्रथा नहीं है जो मन न मिलने पर पति-पत्नी का सम्बन्ध विच्छेद हो सकता। एक कुलीन हिन्दू नारी होने के नाते पत्नी को अपने कुल-परिवार की मान-मर्यादा और प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए पति के दुःख-सुख में अपने को मिला देना होता है। परन्तु यदि पति के मन के अनुकूल पत्नी नहीं मिली तो पत्नी को घुल-घुलकर मरना पड़ता है। उसका जीवन आँसू की लड़ियों को पिरोए हुए बीतता है और अपने जीवन के सुख-स्वप्न को भंग होते देखकर वह हतोत्साहित हो जाती है। इस दृष्टिकोण से आप प्रेमा के भविष्य पर विचार कीजिए। प्रेमा अब अबोध नहीं है जो आप उसकी इच्छा के विरुद्ध उसका भविष्य निश्चित कर दीजिएगा। वह पढ़ी-लिखी लड़की है, अपना भला-बुरा सब कुछ जानती है। इसलिए उसका विवाह उसकी इच्छा के अनुसार

होना चाहिए न कि हम लोगों की इच्छा के अनुसार ।'

विमला की बातें सुनकर श्यामाचरण देर तक मौन होकर बैठे रहे । उनकी बुद्धि कुछ काम नहीं कर रही थी । वे किंकर्त्तव्य विमूढ़-से हो गए थे । अगर सच पूछा जाय तो साँप-छछून्दर की दशा उनकी हो गई । अपनी भूल पर उन्हें पश्चात्ताप हो रहा था । जिस धन-राशि पर वे प्रेमा को बैठाना चाहते थे, वह धनराशि अब उनकी आँखों में त्रिशूल के समान चुभने लगी थी । वे अपने मन-ही-मन सोचने लगे— 'आखिर प्रेमशंकर को क्या उत्तर दिया जाय ? प्रेमा उसमें केवल दोष-ही-दोष देखती है । यह सम्भव है कि उसमें कुछ दोष हों, परन्तु सब दोष-ही-दोष हैं, यह सम्भव नहीं है । मनुष्य में गुण और अवगुण दोनों होते हैं । पर देखने वाला पक्ष केवल एक-ही-पक्ष की ओर देखता है। जो गुण देखता है उसे केवल गुण ही नजर आता है और जो अवगुण देखता है उसे केवल अवगुण ही नजर आता है । मनुष्य में यह बहुत बड़ी कमजोरी है । मनुष्य को किसी के गुण और अवगुण दोनों देखने का दृष्टिकोण होना चाहिये । जब बड़े-बड़े व्यक्तियों में इसका अभाव है तब प्रेमा की कौन बात ? इसकी उम्र ही कितने दिनों की है । दूर तक सोचने की बुद्धि अभी इसमें नहीं हो पाई है । पुरुष के हृदय पर दूसरी स्त्री क्यों अधिकार कर लेती है ? इसका कारण है कि उसकी पत्नी में अवश्य कुछ ऐसी कमी है जिससे उसका पति दूसरी नारी को प्यार करने लगता है और अपनी पत्नी की उपेक्षा करता है । अगर पत्नी बुद्धिमती होती है तो अपने में कोई अभाव रहने पर भी अपने पति को उसका पता नहीं लगने देती है । वह सदा अपने पति को वश में रखने का यत्न करती है जिससे उसके पति के प्यार में कोई दूसरी स्त्री हिस्सा नहीं बँटा पाती है । अगर प्रेमा में बुद्धि होगी और अपने पति को वश में रखने की कला होगी तो यह प्रेमशंकर को वेश्यागामी और शराबी होने से बचा सकती है । मैं देखता हूँ, प्रेमा में सब कुछ है । इसमें रूप, गुण, विद्या और बुद्धि सब कुछ है । भला ऐसी अनुपम नारी को पाकर प्रेमशंकर दूसरी नारी की ओर क्यों देखेगा ? और, अगर प्रेमा में प्रेमशंकर को अपने वश में रखने की कला नहीं होगी तो आज का स्वच्छन्द विचरने वाला पक्षी क्यों पिंजड़े में बन्द रहना चाहेगा ? प्रेमा अभी अल्प आयु की है, अपने जीवन में इसने केवल अठारह मधुमास देखे हैं । इसलिए इस अल्पायु में इसने बुद्धि भी अल्प पाई

है। इसे अपना पथ निश्चित करने में कठिनाई हो रही है। इस स्थिति में उसका पिता होने के नाते उसके पथ का निर्माण करने का उत्तरदायित्व सहज में ही मुझ पर आ जाता है। अभी मेरा निर्णय इसे बुरा मालूम होता है, किंतु जब वह दीवान साहब के राजसिंहासन पर बैठेगी तब वह स्वयं अनुभव करेगी कि मैंने उसके जीवन को सुखमय बनाने के लिए क्या किया है ? आज भले ही वह प्रेमशंकर को उपेक्षा की भावना से देखे, परन्तु उसके साथ विवाह हो जाने पर उसकी यह उपेक्षा भावना प्रेम में परिणत हो जाएगी। मेरे विचार से विवाह हो जाना ही अच्छा है।'

विमला श्यामाचरण की मुखाकृति से समझ रही थी वे अन्तर्द्वन्द्व में पड़े हुए हैं। परन्तु उनका मस्तिष्क किस निर्णय पर पहुँचा, यह वह नहीं समझ पा रही थी। वह उनसे इस सम्बन्ध में पूछना ही चाहती थी कि उन्होंने स्वयं कहा—'प्रेमा का विवाह प्रेमशंकर के साथ होगा। मेरे इस निर्णय में कोई परिवर्तन नहीं हो सकता है।' उनकी बातों से विमला के हृदय पर एक धक्का-सा मालूम हुआ। उसने कहा—'मालूम होता है कि इस विवाह को लेकर घर में अवश्य कोई काण्ड होगा।'

श्यामाचरण—'काण्ड क्या होगा ? क्या बेटी-पतोहू, माँ-बाप और सास-ससुर की बातें नहीं मानेंगी ? क्या मैं प्रेमा का शत्रु हूँ जो उसके भविष्य को बिगाड़ रहा हूँ ? मेरे निर्णय को रद्द करने का उसने कैसे साहस किया ? आज-कल की लड़कियाँ जहाँ स्कूल-कालेज में गयीं कि पाश्चात्य जगत् की नकल करने लगीं। प्रेमा को अपना भाग्य समझना चाहिये कि प्रेमशंकर के समान उसे सुन्दर और सुखी सम्पन्न व्यक्ति पति के रूप में मिल रहा है।'

प्रेमा भी दीवार की आड़ में अपने पिता के आखिरी निर्णय को सुनने के लिए खड़ी थी। उनके मुख से अन्तिम निर्णय सुनकर वह घायल मृगी-सी विकल हो उठी। उसे मालूम हुआ मानो उसके कोमल कलेजे पर किसी ने तीर मार दिया है। वह अपने बिस्तर पर जाकर लेट गई। विमला उसके पिता का सन्देश लेकर उसके पास पहुँची। उसके पैर की ओर बैठती हुई विमला ने कहा—'पिताजी तो अपना निर्णय बदलने को तैयार महीं हैं। मेरी भी समझ में नहीं आ रहा है कि विवाह के जब केवल दो दिन शेष रह गए हैं तब प्रेम-शंकर के पास अपनी अस्वीकृति कैसे भेजी जाय ? प्रेमा, तुम स्वयं सोचो

अपनी बात बदलने में पिताजी को कितना सदमा पहुँचेगा ? अपने पिता के वचन को रखने के लिए तुम विष का घूंट पी जाओ । यह विष भी तुम्हारे लिए अमृत होगा । अगर प्रेमशंकर बुरा व्यक्ति है तो प्रयत्न करके तुम उसे भले रास्ते पर ला सकती हो । उसके पास कितनी विशाल सम्पत्ति है, इसका तुम कुछ भी खयाल नहीं करती हो ।'

प्रेमा—'मेरा विवाह प्रेमशंकर के साथ होगा या सम्पत्ति के साथ ?'

विमला—'सम्पत्ति का स्वामी तो प्रेमशंकर ही है ।'

प्रेमा—'जो कुछ हो, प्रेमशंकर के साथ मैं विवाह नहीं करूँगी ।'

विमला वहाँ से उठकर सीधी कुन्ती के पास गई । उसके चेहरे को देखकर कुन्ती समझ गई कि समस्या अपना उग्र रूप धारण करती जा रही है । अपनी उत्सुकता मिटाने के लिए उसने विमला से पूछा—'बहू, प्रेमा ने क्या निर्णय किया ?'

विमला—'वह तो प्रेमशंकर के साथ विवाह करना नहीं चाहती है और उसने अपना अन्तिम निर्णय भी दे दिया कि प्रेमशंकर के साथ विवाह करने से वह मृत्यु को आलिंगन करना अधिक पसन्द करेगी ।'

कुन्ती—'तब क्या होगा ?'

विमला—देखिए ऊँट किस करवट बैठता है ?'

२१

ठाकुर धनुषधारी सिंह के समीप बैठते हुए कालीचरण ने कहा—'ठाकुर साहब, रघुनाथ चौबे के कारण अनाथालय की बड़ी शिकायत हो रही है। अखबारों में भी आजकल यह चर्चा का विषय बना हुआ है । रघुनाथ चौबे ने वहाँ भ्रष्टाचार फैला रखा है । यह भी सुनने में आया है कि अनाथ महिलाओं के विवाह से वह अच्छा धन उपार्जन कर लेता है । हाल की ही बात है, जैसा मैंने सुना है, प्रेमनाथ की लड़की कंचना को उसने इलाहाबाद के किसी अध्यापक के हाथ बेच दिया । जिस समय वह लड़की अनाथालय में थी उस समय प्रेमनाथ

मेरे साथ उसकी खोज में वहाँ गये, पर चौबेजी ने साफ इंकार कर दिया कि वह लड़की वहाँ नहीं आई है और उसके बाद ही उसका मोल-तोलकर अध्यापक के हाथ बेच दिया।'

ठाकुर साहब—'यह आपको कैसे पता चला ?'

कालीचरण—'वहीं का एक क्लर्क मुझे बतला रहा था।'

ठाकुर साहब—'एक ही व्यक्ति से समाज बदनाम हो जाता है और एक ही व्यक्ति संस्था को बदनाम कर देता है। रघुनाथ चौबे ने पुलिस में काम किया, उस क्षति की पूर्ति का साधन उसने अनाथालय को बना लिया है।'

कालीचरण—'इसकी तो चर्चा एक बार मैंने आपसे की थी।'

ठाकुर साहब—'हाँ, मुझे इसका स्मरण है। आपने कहा था कि चौबे ने अनाथालय को अपनी काली करतूत से बदनाम कर रखा है। उसे वहाँ से हटाना आवश्यक है।'

कालीचरण—'हाँ, ठाकुर साहब, मैंने आपको कहा था।'

ठाकुर साहब—'तो फिर आप क्या सोचते हैं ?'

कालीचरण—'मैं उसे हटाकर एक ईमानदार और सदाचारी व्यक्ति को रखना चाहता हूँ।'

ठाकुर साहब—'ऐसा कोई व्यक्ति आपकी नजरों में है ?'

कालीचरण—'मेरा तो अनुरोध था कि आप उसकी देखभाल करते रहें।'

ठाकुर साहब—'कालीरण बाबू, सेवा का व्रत महान है और सभी धर्मों से वह कठिन है। इस धर्म से चूक जाने पर मनुष्य रघुनाथ चौबे के समान कहीं का नहीं रहता है। उसका लोक-परलोक दोनों नष्ट हो जाता है। सम्भव है कि मैं भी अपने धर्म से चूक जाऊँ, इसलिए अनाथालय की देख-रेख का भार मैं अपने ऊपर नहीं ले सकता हूँ। इसके अतिरिक्त सेवा में त्याग व बलिदान की भावना होनी चाहिए, जिसका मुझमें अभाव है। मैं वकील ठहरा। हजारों रुपये की मेरी आय है। इसे ठुकरा कर सेवा के व्रत लेने का मुझे साहस नहीं हो रहा है। अपनी असमर्थता मैंने आपके सामने प्रकट कर दी है।'

कालीचरण—'आप अपने पिताजी से इस कार्य के लिए अनुरोध कर सकते हैं ?'

ठाकुर साहब—'हाँ, वह सम्भाल सकते हैं और आजकल सेवा करने की

उनकी प्रवृत्ति हो गई है। अपने पड़ोस के गाँवों को तो उन्होंने इस तरह बना दिया है मानो महात्मा गाँधी का स्वप्न साकार हो गया हो। हर-एक गाँव में स्कूल और सफाई-सुधार की व्यवस्था कर दी है। टेकनीकल स्कूल और कन्या विद्यालय भी उनके प्रयास से सुचारु रूप से चल रहे हैं। अभी वे गंगाजी स्नान करने गए हैं, कुछ देर में लौटेंगे तब तक आप अखबार पढ़ें।'

कालीचरण अखबार पढ़ने लगे। अन्तर्राष्ट्रीय समाचार से उनकी कोई दिलचस्पी नहीं थी और राष्ट्रीय समाचारों के भी प्रति उन्हें कोई आकर्षण नहीं था। अखबार उठाते ही वे स्थानीय समाचार पढ़ने लगते थे। उस दिन भी उनके अनाथालय के सम्बन्ध में शिकायतें भरी थीं। उनकी ओर भी ठाकुर साहब का ध्यान आकर्षित करते हुए उन्होंने कहा--'कि देखिये, आज भी अनाथालय की व्यवस्था पर इसमें चर्चा की गई है। मेरी राय तो यह है कि अभी से रघुनाथ चौबे को वहाँ से निकाल बाहर कर दिया जाय।'

बातें हो ही रही थीं कि ठाकुर जयपाल सिंह प्रताप के साथ गंगा-स्नान कर वापस आ गये। उन्हें नमस्कार करते हुए कालीचरण ने कहा--'ठाकुर साहब, मैं आपकी ही प्रतीक्षा में बैठा हूँ।'

ठाकुर जयपाल सिंह--'बोलिए, मैं आपकी क्या सेवा करूँ?'

कालीचरण--'अनाथ महिलाओं की रक्षा के लिए हम लोगों ने अनाथालय खोल रखा है। परन्तु आप जानते ही हैं कि अपने काम-काज में फँसे रहने के कारण हम लोगों को अनाथालय की देख-रेख करने का अवसर ही नहीं रहता है। रघुनाथ चौबे को, जिसे आप अच्छी तरह जानते हैं हमने उसका मन्त्री नियुक्त किया और उसकी देख-रेख का सारा भार उस पर छोड़ दिया। उसने पैसे के प्रलोभन में आकर वहाँ भ्रष्टाचार फैला रखा है और अनाथ महिलाओं की खरीद-बिक्री आरम्भ कर दी है। समाचार-पत्रों में और लोगों के मुख से भी उसकी निन्दा सुनकर अनाथालय स्थापित करने का मुझे पश्चात्ताप हो रहा है। अगर कोई सुयोग्य व्यक्ति उसको चलाने वाला नहीं मिलेगा तो सरकार को सूचित कर उसे खत्म कर दूंगा।'

ठाकुर जयपाल सिंह—'इतना बड़ा पुण्य का कार्य कर आप पीछे पग देना चाहते हैं। सुयोग्य व्यक्तियों का कौन-सा अभाव है और उसमें भी इस काशी

नगरी में ।'

कालीचरण—'अगर आपका सहयोग मुझे मिले तो अनाथालय को मैं चलने दूंगा, नहीं तो भग कर दूंगा । क्योंकि जिन्हें मैं अच्छी तरह नहीं जानता हूँ उन पर मैं विश्वास नहीं कर सकता ।'

ठाकुर जयपाल सिंह—'ठीक है, मैं उसकी व्यवस्था कर दूंगा ।' अपनी सहायता के लिए मैं प्रताप को नियुक्त करूँगा ।' यह सुनकर कालीचरण के हर्ष की सीमा नहीं रही । उन्होंने ठाकुर साहब के नौकर को गोविन्द साहू को बुलाने के लिए भेजा । नौकर गया और उन्हें तत्काल बुला लाया । कालीचरण ने उन्हें सारी बातें बतलायीं । ठाकुर साहब के हाथ में अनाथालय की व्यवस्था चलाने की बात सुनकर उन्हें भी अति प्रसन्नता हुई । कालीचरण उसी समय ठाकुर जयपाल सिंह, ठाकुर धनुषधारी सिंह, प्रताप और गोविन्द सिंह साहू के साथ अनाथालय गए । उस समय रघुनाथ चौबे एक विधवा के विवाह के लिए एक विधुर के साथ मोल-तोल कर रहे थे । कालीचरण को तीनों ठाकुरों के साथ देखकर रघुनाथ चौबे को अपने भविष्य के अमंगल की आशंका हो आई । वहाँ पहुँचते ही कालीचरण ने रघुनाथ चौबे से कुन्जी ले ली और हिसाब-किताब की बही भी । प्रताप को ठाकुर जयपाल सिंह ने हिसाब-किताब की जाँच-पड़ताल करने को कहा । रघुनाथ चौबे इस पर वहाँ से नौ-दो ग्यारह होना चाहते थे, पर कालीचरण ने कहा, 'बिना हिसाब दिए आप कहाँ जाएँगे ? आप नहीं रहेंगे तो हिसाब-किताब समझावेगा कौन ।'

कालीचरण की इन बातों से रघुनाथ चौबे मानो वहाँ गिरफ्तार हो गया । घर जाने के लिए उसने कितने भी बहाने बनाए, पर कालीचरण और ठाकुर जयपाल सिंह उसे जाने नहीं दिया । हिसाब-किताब की जाँच के बाद रघुनाथ चौबे पर सात हजार रुपए गिरे । कालीचरण ने पूछा—'कहिए चौबेजी, ये रुपए कहाँ गए ? क्या चन्दे के रुपए आपके हजम करने के लिए आए हैं ?'

कालीचरण—'अच्छा, कंचना के बेचने में आपको कितने रुपए मिले ?'

रघुनाथ चौबे मौन थे । उनके मुख से एक शब्द नहीं निकला ।

कालीचरण—'जिस व्यक्ति के साथ आपने उसकी शादी की है, कम-से-कम उसका भी पता दे देते तो बेचारी का हम लोग उद्धार कर देते ।'

रघुनाथ चौबे ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया । इस पर कालीचरण ने

कहा—'जनता का सेवक बनकर आपने इतना बड़ा विश्वासघात किया ? क्या आपने अनाथालय को थाना समझ लिया, जहां अधिक-से-अधिक अर्जित करने का आपने अपने लिए सुअवसर समझा है।'

गोविन्द साहू ने कहा—'आप बोलते क्यों नहीं हैं ? कंचना की शादी किसके साथ आपने की है ?'

रघुनाथ चौबे ने सही पता बतला दिया। इस पर आश्चर्य प्रकट करते हुए ठाकुर जयपाल सिंह ने कहा—'राजा उपाध्याय के साथ आपने उसकी शादी कराई है ? राजा उपाध्याय की अवस्था पचास से अधिक ही होगी, कम नहीं। और, वह तो बहुत बड़ा कंजूस है, उसके घर में किसी लड़की का वास होगा ?'

कालीचरण—'इसने मानवता का गला घोंटा है। मैं क्या जानता था कि यह इतना बड़ा अधम है। पैसे के लिए मनुष्य इतना गिर सकता है मैंने आशा नहीं की थी।'

गोविन्द साहू—'पुलिस को खबर देकर इसे गिरफ्तार करवा दिया जाए।'

कालीचरण—'हां, पुलिस को अभी खबर दी जाए।'

यह सुनकर रघुनाथ चौबे के होश उड़ गए। वे घबरा उठे। उन्होंने कर जोड़कर कहा—'पुलिस में मुझे देकर आप कोई लाभ नहीं उठा सकेंगे। अनाथालय का रुपया जो मैं खा गया, वह तो वापस नहीं होगा, क्योंकि वह न तो मेरे पास है और न उससे कोई सम्पत्ति अर्जित की गई। वह धन जैसे आया वैसे चला गया। खाने-पीने और कपड़ा-लत्ता में ही सभी रुपए बर्बाद हो गए। कंचना को बेचकर जो रुपए मैंने प्राप्त किए, वह चोर ले गया। इस प्रकार मैं दरिद्र-का-दरिद्र ही रहा। जेल जाने के बाद मेरे बाल-बच्चे भूखों मर जाएँगे। मेरे ऊपर दया कीजिए।'

कालीचरण—'दुष्टों पर दया नहीं की जाती है। चोर-बदमाश, शैतान और उसमें भी ढोंगी समाज-सेवी को अगर दंड नहीं दिया जाय तो समाज में भ्रष्टाचार फैल जाता है। इसलिए आप पर दया नहीं दिखालाई जा सकती है।'

उसके चेहरे को देखकर प्रताप को दया आ गई। उसने कहा—'छोड़ दीजिए। इनके जेल जाने से इनके परिवार वाले भूखों मर जाएँगे और साथ, इन पर लगाए गए अभियोग को प्रमाणित करने में अनाथालय की और भी बदनामी होगी।'

ठाकुर धनुषधारी सिंह ने भी प्रताप का समर्थन करते हुए कहा—'हाँ, दारोगा जी को छोड़ दीजिए।'

इस पर सब ठाकुर जयपाल सिंह की ओर देखने लगे। ठाकुर जयपाल सिंह ने कहा, 'रघुनाथ चौबे अपने कर्त्तव्य-पालन करने में सब दिन पीछे रहे हैं। किसी भी पथ पर आने से मनुष्य का उत्तरदायित्व कितना बढ़ जाता है परन्तु ये नहीं जानते हैं। फिर भी इनके बाल-बच्चों का खयाल कर इन्हें मुक्त कर दिया जाय।'

कालीचरण—'अच्छा, रघुनाथ चौबे, आप जा सकते हैं।'

रघुनाथ चौबे ने उठकर सबों को नमस्ते किया और अपना रास्ता लिया। उसके जाने पर ठाकुर जयपाल सिंह ने अनाथालय का कार्यभार ग्रहण किया। उनके संचालन में अनाथालय की व्यवस्था ठीक हो गई। चन्दे काफी आने लगे। किसी तरह की बदनामी पुनः नहीं सुनी गई। ठाकुर साहब अनाथ महिलाओं को, उनके अभिभावकों को समझा-बुझाकर उनके साथ कर देते थे और जो महिला अपने घर वापस जाना नहीं चाहती थी या जिसे उसके अभिभावक वापस नहीं ले जाना चाहते थे, उसका विवाह सुयोग्य पुरुष के साथ वे कर देते थे। इनके अतिरिक्त जो महिला न तो अपने अभिभावक के पास वापस जाना चाहती थी और न विवाह करना चाहती थी, उसके लिए दस्तकारियाँ और सिलाई, कसीदा काढ़ने आदि की शिक्षा की व्यवस्था उन्होंने अनाथालय में ही कर दी। अनाथ बच्चों के लिए भी सुप्रबन्ध था। इस सुव्यवस्था के लिए ठाकुर साहब की कृति चारों ओर फैल गई। उनके इस कार्य में प्रताप उनका सहायक था। अपने अध्ययन से समय निकाल कर वह अपने दादा की मदद करता था।

२२

जिस समय प्रेमा प्रताप से मिलने आई, उस समय घड़ी में दिन के दो बज रहे थे और रिम-झिम वर्षा हो रही थी। प्रेमा भीग गई थी। उसके काले-काले बालों से गिरने वाली जल की बूंदें काली-काली घटा से टपकने वाली बूंदों के समान सुशोभित हो रही थीं और उसके रेशमी वस्त्र भीगकर उसके गौर शरीर से बिल्कुल चिपक गए थे, जिससे शरीर पर वस्त्र रहते हुए भी मालूम होता था कि उसके शरीर पर वस्त्र नहीं हैं। प्रताप की दृष्टि में प्रेमा उस समय यमुना जल में खड़ी उन गोपिकाओं के सदृश लग रही थी जो चीर-हरण हो जाने पर लज्जा और संकोच से कातर हो गई थीं। आँखें चार होते ही दोनों मुस्करा उठे, जिससे मालूम हुआ मानो दो दिशाओं में एक साथ विद्युत चमक उठी हो।

प्रताप ने पूछा—'क्यों, छाता तुम्हारे पास नहीं था?'

प्रेमा ने उत्तर दिया—'मैं क्या जानती थी कि रास्ते में ही बादलों से घिर जाऊंगी? शायद तुम्हारे और मेरे मिलन से मेघ को भी ईर्ष्या हो। पर हम दोनों के सच्चे प्रेम का पता इस काले हृदय वाले बादल को नहीं है। प्रेमा और प्रताप मिलकर रहेंगे। इसमें कोई भी बाधा पहुंचाने में असफल रहेगा। प्रेमा प्रेम की भूखी है और वह प्रेम प्रताप के हृदय में है। प्रताप ने अपना प्रेम प्रेमा पर उँड़ेल दिया है और इसके बदले में प्रेमा ने भी अपना हृदय अपने प्रेमी प्रताप को दान दे दिया है। अब दान दी हुई चीज वह कैसे लौटा सकती है? भूल से राजा नृग ने दान में दी हुई गाय को पुनः दूसरे ब्राह्मण को दान दिया, जिससे उन्हें गिरगिट होना पड़ा और अगर मैं भी अपना हृदय प्रेमशंकर को दे दूं तो मुझे भी गिरगिट, छिपकली, मेढक, चमगादड़ या कोई जीव-जन्तु होकर किसी अन्धे कूप में रहना होगा। राजा नृग को तारने के लिए तो भगवान कृष्ण ने अवतार लिया, परन्तु मुझे तारने के लिए कौन भगवान आवेंगे?'

प्रताप ने मुस्कराते हुए कहा—'बड़ी दूर की कल्पना तुमको सूझती है।'

प्रेमा—'तथ्य को भी कल्पना कहते हो? मैं कल्पना की बात नहीं करती हूँ, सच्ची बात कह रही हूँ। दान जो दे दिया जाता है उसे नहीं लौटाया जाता

है। अगर मैं अपना प्रेम और हृदय तुमसे छीनकर दूसरे को दे दूँ तो तुम्हारे हृदय पर बहुत बड़ा आघात पहुँचेगा। तुम अपने हृदय पर गदा की चोट सह सकते हो, विषैले तीरों के आघात को हँसते हुए सह सकते हो, किन्तु मेरे कठोर वचन को नहीं सह सकते हो। मेरा कठोर वचन क्या होगा? क्या तुम सोच सकते हो? नहीं सोच सकते हो। मैं कह देती हूँ, समझ लो। मेरा कठोर वचन होगा प्रताप, तुम्हारी प्रेमा अपना प्रेम तुमसे वापस लेती है और अपना हृदय अपने शत्रु और तुम्हारे शत्रु के हाथों में दे रही है। कहो, उस समय तुम्हारा हृदय क्या कहेगा? क्या मेरी यह बात तुम्हारे हृदय को नहीं बींध देगी और तुम पर कटे-पक्षी के समान आकाश से भूमि पर गिरकर नहीं तड़पोगे? अवश्य व्याकुल हो उठोगे? तुम मुँह से नहीं बोलोगे, लोक-लज्जा से किसी से कुछ नहीं कहोगे, परन्तु अपने मन में तुम मुझे पापिनी कहोगे और कहोगे जीवन को भ्रम में डाल कर वह चली गई और फिर रोओगे। अपनी अश्रु-बूंदों में तुम मेरा रूप देखोगे, और अपनी आँखें मूँदकर मुझसे दूर रहना चाहोगे। पर तुम्हारी आँखों में जो मेरी सूरत बसी हुई है उसे तुम नहीं निकाल सकते हो। आँखें मूँदने पर वह और भी मोहक रूप में थिरक-थिरक कर नाचेगी, हँसेगी और सुरीली तान में गा उठेगी। इस पर तुम और भी रोओगे और मैं हँसूंगी। इसलिए दिया हुआ दान मैं वापस नहीं लूंगी। तुम निश्चिन्त रहो।'

प्रताप उसके मुखड़े की ओर देख रहा था। बिखरी हुई काली लटों के मध्य उसका गौर मुख पावस के चन्द्रमा के समान, जो काली घटाओं के बीच और भी देदीप्यमान होकर चमकता है, सुशोभित हो रहा था। वह उत्सुकता-पूर्ण आंखों से उसकी ओर देख रही थी। आँखें भी थीं मृगी के समान। वह नारी का नयन-बाण था, जो उस सिंह-शावक के हृदय को बींध रहा था। वह विह्वल हो उठा।

'अगर वह दान उसके हाथ से छिन गया तो वह कहीं का नहीं रहेगा।' प्रताप ने अपने मन में सोचा—'निर्बल मनुष्य हीरा पाकर अगर उसे खो दे तो उसके लिए दोषी कौन होगा? दान देने वाला नहीं, दान लेने वाला दोषी होगा। देने वाले ने तो दे दिया, लेने वाले का धर्म होता है उसकी रक्षा करना। प्रेमा ने मुझे अपना हृदय दे दिया है, प्रेमदान उसने कर दिया है, दी हुई चीज वह वापस लेना नहीं चाहती है तो मैं क्यों वापस करूँ? अगर मैं वापस कर

देता हूँ तो मैं कायर समझा जाऊँगा और कोई कहे या न कहे, परन्तु मेरी आत्मा स्वयं मुझे कायर कहेगी। जिसका पाणिग्रहण एक बार किया जाता है उसका निर्वाह सदा किया जाता है। प्रेमा का पाणिग्रहण मैंने नहीं किया है, पर इसका निश्चय हो चुका है। वह मेरी धर्म-पत्नी नहीं बनी है पर निर्णय सब कुछ हो चुका है। हम दोनों का अब तक गन्धर्व-विवाह भी नहीं हुआ है पर विवाह करने की इच्छा तो प्रबल हो चुकी है। प्रेमा का यह खिलता हुआ यौवन वसन्त की सारी शोभा को लेकर मुस्करा रहा है। इसकी मनोमोहिनी सूरत वास्तव में मेरी आँखों से ओझल नहीं होती है। जब वह मेरे सामने नहीं रहती है तब भी मैं इसे अपनी आँखों में देखता हूँ। इसके सौन्दर्य में आकर्षण है और इसका मुखड़ा ऐसा मोहक है—चकोर की भाँति; जैसे वह शरद के चन्द्र को देखता है वैसे ही मुझे सदा इसे देखने की इच्छा बनी रहती है। अगर प्रेमा मुझसे छिन गई और प्रेमशंकर के हाथ लग गई तो मुझे समझ लेना चाहिए कि उसकी तपस्या पूरी हुई थी और मेरी तपस्या कहीं भंग हो गई थी जो प्रेमा हाथ में आकर चली गई।'

प्रताप को मौन देखकर प्रेमा ने पूछा—'कहो, क्या सोचते हो? अब मेरे विवाह के दो दिन शेष हैं। परसों सब समाप्त। फिर पश्चात्ताप करने से कुछ नहीं होगा। सिंह के आहार को शृंगाल ले जाएगा। आज मैं प्रताप की प्रेमा हूँ परन्तु परसों प्रेमशंकर की प्रेमा बन जाऊँगी। अपना निर्णय शीघ्र बतलाओ। भीग गई हूँ। हवा के स्पर्श से मैं काँप रही हूँ।'

प्रताप चौंक उठा—मानो उसका ध्यान अब भंग हुआ है। उसने कहा—'साड़ी बदल लो और ब्लाउज भी दूसरा पहन लो।'

प्रेमा ने हँसकर कहा—'यहाँ साड़ी और ब्लाउज कहाँ है?'

प्रताप ने अलमारी की ओर देखकर कहा—'पिताजी मेरी बहन के लिए साड़ी और ब्लाउज लाये हैं, अलमारी में वे रखे हैं।'

प्रताप कमरे से बाहर चला गया। प्रेमा ने दरवाजा बन्द कर साड़ी और ब्लाउज पहन लिया। फिर माथे में कंघी कर उसने बालों से जल गिरा दिया। दरवाजा खुलने पर प्रताप अन्दर आया। दोनों आमने-सामने कुर्सी पर बैठ गये। उनके बीच एक मेज थी। प्रेमा ने कहा—'कहो आज अन्तिम मिलन और अन्तिम विदाई है या हम लोग अन्तिम निर्णय कर सदा के लिए

अपने जीवन को एक सूत्र में बाँधने जा रहे हैं।'

प्रताप—'प्रेमा, अगर तुमने अपना हृदय मुझे दिया तो मैं भी अपना हृदय तुमको दे चुका हूँ। अगर हम दोनों एक-दूसरे से अलग होंगे तो जीवन-भर रोते रहेंगे। मेरी भी प्रतिज्ञा सुन लो— अगर मैं विवाह करूँगा तो तुमसे और अगर तुमसे विवाह नहीं कर सकूँगा तो आजन्म अविवाहित रहूँगा और अविवाहित रहने पर भी किसी नारी से प्रेम नहीं करूँगा। तुम्हारे बिना मैं अपने जीवन को शून्य समझूँगा।'

प्रेमा ने उसे धन्यवाद देते हुए अपना हाथ उसकी ओर बढ़ाया। प्रताप ने कहा—'प्रेमा, अधीर मत हो। मैं तुम्हारा पाणिग्रहण इस एकान्त स्थान में नहीं कर सकता हूँ, तुम्हीं कहो, विवाह के पूर्व तुम्हारा शरीर मैं कैसे स्पर्श करूँ? मैं तुम्हारा पाणिग्रहण करूँगा, हजार लोगों के सामने, वैदिक रीति से और अपने कुल के रस्म-रिवाज से जो मेरे कुल में चला आया है। उस समय संसार की कोई भी शक्ति मेरे हाथों से तुमको नहीं छीन सकती है।'

प्रताप की इस भीष्म प्रतिज्ञा पर प्रेमा गद्गद हो उठी। उसने कहा—'प्रताप, तुमने मेरे लिए जो भीष्म प्रतिज्ञा की है उसने मेरे जीवन की दिशा को निश्चित कर दिया है। अगर मेरे पिता तुम्हें छोड़कर प्रेमशंकर के साथ या किसी भी पुरुष के साथ मेरा विवाह करना चाहेंगे तो मैं विवाह नहीं करूँगी। जिस शरीर को तुम्हारे कर-कमलों में समर्पित करने का दृढ़ संकल्प कर चुकी हूँ, भला उस शरीर को दूसरे हाथों में कैसे दे सकती हूँ। इस शरीर पर, इस हृदय पर मेरा अधिकार नहीं है, तुम्हारा अधिकार है, क्योंकि यह तुम्हारा है। जो दिया जाता है उसे वापस नहीं लिया जाता है। 'मैं तुमसे गुप्त रूप से विवाह नहीं करूँगी, मैं घर से भागकर तुम्हारे साथ नहीं जाऊँगी, बल्कि अपने कुल के रस्म-रिवाज के अनुसार विवाह करूँगी। मेरे आँगन में मंडप बनेगा और वैदिक रीति के अनुसार मैं अपना हाथ तुम्हारे हाथ में समर्पित करूँगी। अग्नि और ध्रुव को साक्षी बनाकर तुम मेरा पाणिग्रहण करना। आज मैं जाती हूँ, पिताजी से स्पष्ट शब्दों में कह दूँगी कि पिताजी, मेरा विवाह हो चुका है। अब एक पुरुष को छोड़कर दूसरे से शादी नहीं करूँगी। एक घर को उजाड़कर दूसरा घर नहीं बसाऊँगी। मैं अपने भविष्य का निर्माण कर चुकी हूँ। उसे नष्ट कर पुनः अनजान और अपरिचित व्यक्ति के साथ अपने

भविष्य का निर्माण करने की शक्ति मुझमें नहीं है। जो अपने दृढ़ संकल्प को एक बार छोड़ता है वह जीवन-भर रोता रहता है और उसका पथ कभी भी निश्चित नहीं हो पाता है। अतएव आप मेरे जीवन-पथ को बर्बाद कर अपने ऊपर कलंक नहीं लें।'

प्रताप—'हाँ, उन्हें तुम कह दो।'

इसी बीच दरवाजे के कपाट के हटने से दोनों सन्न हो गये। ठाकुर जयपाल सिंह को देखते दोनों लज्जित हो गए। प्रेमा ने उठकर उनका चरण-स्पर्श किया। दीवार के सहारे अपनी छड़ी रखकर वे पलंग पर बैठ गए और प्रताप से नाश्ता-पानी लाने को कहा। आदेश पाने की देर थी और प्रताप को उनके लिए जलपान लाने में देर नहीं हुई। बाजार की चीजें ठाकुर साहब नहीं खाते थे। अतएव अपने चौका से ही हलुआ और पूरियाँ प्रताप को देते हुए उन्होंने कहा—'तुम लोग भी जलपान कर लो।'

हलुआ अपने मुख में डालते हुए ठाकुर साहब ने कहा—'प्रेमा, आज प्रेमशंकर का मुझे निमन्त्रण-पत्र मिला है। उसमें तुम्हारे साथ उसके विवाह की बात देखकर मैं स्तब्ध रह गया। मेरा स्वप्न स्वप्न ही रहा, वह साकार नहीं हो सका। मैं तुमको अपने गृह की लक्ष्मी नहीं बना सका। जीवन ही है। इसमें सब मनुष्य का सोचा हुआ नहीं होता है। निमन्त्रण-पत्र तो मुझे आज मिला है किन्तु एक सप्ताह पूर्व ही अनाथालय में कालीचरण मुझसे कह रहे थे कि प्रेमा का विवाह प्रेमशंकर से होने जा रहा है। परन्तु उस समय मुझे विश्वास नहीं हुआ। मैंने धनुषधारी से इस सम्बन्ध में बात-चीत की थी। वह भी तो अन्तर्जातीय विवाह से भय खाता है। उसने स्पष्ट शब्दों में मुझसे कहा कि एक ही लड़का है। दूसरी जाति में शादी करने से अनेक विवाद उठ खड़े होंगे और लोग अपने वंश को हीन दृष्टि से देखेंगे। मैंने कितना भी उसे समझाया पर वह संकुचित मस्तिष्क का आदमी मेरी बात मानने को तैयार नहीं हो रहा है। मैं नहीं समझता कि जाति में क्या रखा हुआ है? तुम्हारी ऐसी ललना को, जाति का खयाल कर परित्याग कर दिया जाय मैं उचित नहीं समझता हूँ। मैं यह नहीं कहता कि तुम्हारे समान क्षत्रिय-कुल में कन्या नहीं मिलेगी, परन्तु तुम्हारे साथ जो हम लोगों का स्नेह बंध चुका है वह तो कहीं नहीं मिलेगा। खैर, मेरा वात्सल्य-प्रेम तुम्हारे प्रति जो आज है वह प्रेमशंकर के साथ विवाह हो

जाने पर भी बना रहेगा। सच्चा स्नेह कभी नहीं छूटता है। मेरा आशीर्वाद है तुम्हारा सुहाग अचल रहेगा और तुम्हारा दाम्पत्य जीवन सुखमय होगा।

'अब समाज धीरे-धीरे बदल रहा है। यह अपनी जड़ता छोड़ता जा रहा है और नई रोशनी की चमक-दमक से प्रभावित होता जा रहा है। अन्तर्जातीय विवाह तो अब खुलेआम रूप में होने लगा है। ब्राह्मण की कन्या क्षत्रिय से शादी करती है और क्षत्रिय-कन्या ब्राह्मण से शादी करती है, यह अच्छा है। प्राचीन काल में भी ऐसे विवाह होते थे। शास्त्र-पुराण में तो अनेक उदारहण हैं। जाति में दोष नहीं, व्यक्ति विशेष में दोष है और दोष है कर्म में। कर्म से ही तो जाति का निर्माण हुआ है। आदि पुरुष ब्रह्मा ने कर्म के ही अनुसार समाज का वर्गीकरण किया। त्रेता में आकर कुछ ऋषि-मुनियों ने अपने बूढ़े बाबा ब्रह्मा के विधान को मानने से इन्कार किया और जन्म के अनुसार जाति-प्रथा की प्रणाली जारी की। पर उस समय भी ऐसे आदमी थे जो समाज की नई व्यवस्था को मानने को तैयार नहीं थे। विश्वामित्र ने कहा, कर्म से जाति होती है जन्म से नहीं। तपस्या से वह क्षत्रिय विश्वामित्र ब्रह्मऋषि कहलाने लगा। गायत्री मन्त्र उसी की ऋचा है, जिसे आर्य सन्तान प्रातः और सन्ध्या को पवित्र भाव से बैठकर मनन करती है। उसके बाद एक और क्षत्रिय राजकुमार ने जिसे संसार गौतमबुद्ध के नाम से जानता है जन्म से जाति-बन्धन को मानने से इन्कार किया। दया के अवतार ने सभी मानवों को एक दृष्टि से देखा और कर्म के अनुसार जाति की प्रणाली में परिवर्तन करने को कहा। गौतम के उपदेश को सारे संसार ने सुना। उसी के फलस्वरूप भारत आज जगत-गुरु कहलाता है। बुद्ध की सामाजिक व्यवस्था को सब ने स्वीकार किया। अगर इतिहास पलटा नहीं खाता तो आज इस देश में शंकर की व्यवस्था नहीं रहती, बुद्ध की व्यवस्था रहती। हिन्दू-जाति में एक यही बहुत है। इसमें वर्गीकरण जन्म के आधार पर अच्छा नहीं मालूम होता है। लेकिन जाने इतनी लम्बी-चौड़ी बातें करने से क्या लाभ? प्रश्न है प्रेमा के विवाह का। मेरी समझ में नहीं आ रहा है कि इस दशा में मैं क्या करूँ? धनुषधारी तो चाहते ही नहीं और श्यामाचरण भी नहीं चाहते हैं। अगर मैं कोई जोर-जबरदस्ती करता हूँ तो लोग मेरा ही उपहास करेंगे। हाँ, अगर तुम दोनों विवाह कर लो तो मैं इसका समर्थन करूँगा।'

संकोच से उनकी बातों में 'हाँ' या 'ना' करने का किसी को साहस नहीं

हुआ। प्रेमा चुपचाप धीरे-धीरे कमरे से निकल कर अपने घर की ओर चली गई।

प्रेमा जिस समय अपने मकान पर पहुँची उस समय सन्ध्या हो चुकी थी और आकाश में बादल घिरने के कारण अधिक अन्धेरा छाया हुआ था। वर्षा की बूँदाबूँदी के कारण विद्युत का प्रकाश भी मन्द प्रतीत हो रहा था। विमला खिड़की पर खड़ी होकर उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। प्रेमा को देखते ही वह मुस्कराकर बोल उठी — 'क्या विवाह के पूर्व अपनी सखी-सहेलियों से मिलने गई थीं ?'

उसके प्रश्न का उत्तर दिये बिना प्रेमा अपने अध्ययन-कक्ष में जाकर बैठ गई। परन्तु वह बैठने भी नहीं पाई थी कि विमला वहाँ पहुँच गई। उसकी देह पर दूसरी साड़ी और ब्लाउज देखकर आश्चर्य-चकित हो विमला ने पूछा — 'प्रेमा, तुम्हारी अपनी साड़ी क्या हुई ? दूसरी साड़ी और ब्लाउज देख रही हूँ।'

प्रेमा ने कहा — 'हाँ भाभी, प्रताप के यहाँ गई थी। रास्ते में ही वर्षा होने लगी, मैं भीग गई। उसकी बहन की साड़ी थी वही पहन कर आ गई हूँ।'

विमला—'अगर लोग सुनेंगे तो क्या कहेंगे ? तुम्हारा उपहास ही न करेंगे।'

प्रेमा -- 'लोग सुनेंगे कैसे ? अगर उन्हें बताऊँगी तब तो सुनेंगे, और लोग हँसकर क्या करेंगे। अब तो जन्म-भर की बदनामी हो गई। दुनिया जान गई कि प्रताप के हाथ में मैंने अपने को समर्पित कर दिया है और जो लोग नहीं जानते हैं वे भी प्रेमशंकर के यहाँ से वापस होने पर जान जाएँगे कि प्रेमा ने प्रेम की रीति का निर्वाह किया है। प्रताप को उसने नहीं छोड़ा, प्रेमशंकर से उसने शादी नहीं की।'

विमला — 'तो तुम प्रेमशंकर से विवाह नहीं करोगी ?'

प्रेमा—-'नहीं भाभी, मैं प्रेमशंकर के साथ विवाह नहीं करूँगी।

विमला — 'तब तो बहुत बड़ा उपहास होगा।'

प्रेमा — 'उपहास क्यों होगा ? आखिर जब मुझको शादी करनी ही है तब प्रताप से क्यों न करूँगी ? मुझसे उसका कुल उत्तम, उसकी जाति उत्तम और वह स्वयं उत्तम है। मैं प्रेम में अन्धी होकर उससे विवाह नहीं करने जा रही हूँ बल्कि सोच-समझकर विवाह कर रही हूँ।'

विमला — 'तुम्हारी इच्छा।

२३

कंचना और राजा उपाध्याय दोनों अपने-अपने भाग्य पर रो रहे थे। उनका दाम्पत्य जीवन सुखमय नहीं हो सका, इसका प्रधान कारण वयस् का अन्तर तो था ही साथ ही, दोनों की शिक्षा-दीक्षा और रहन-सहन में भी काफी अन्तर था। शिक्षा का जहाँ तक प्रश्न था कंचना एडमिशन की परीक्षा पास करने के बाद एक वर्ष कालेज में भी पढ़ चुकी थी और राजा उपाध्याय नौवें वर्ग की परीक्षा में ही अनुत्तीर्ण हो गया था। बेकारी की अवस्था में वह इलाहाबाद पहुँचा, कोशिश-पैरवी कर वहीं म्युनिसिपल प्राइमरी स्कूल में शिक्षक बन गया। उस समय से अब तक वह उसी स्कूल में काम कर रहा था। अगर वह ट्रेनिंग करने का प्रयास करता तो सम्भव था कि पास भी कर जाता और प्रधान गुरु की जगह पर पहुँच भी जाता, पर उसने अपनी योग्यता देखते हुए इसके लिए प्रयास करना ही बेकार समझा। परन्तु परिश्रम करने में वह बहादुर था। सवेरे और शाम ट्यूशनों में दौड़ता था और दिन में स्कूल में पढ़ाता था। कहने का तात्पर्य कि वह किसी प्रकार साठ-सत्तर रुपये प्रति माह बचा लेता था। दो प्राणियों के लिए उसकी यह आय कम नहीं थी, पर अपनी कंजूसी के कारण वह सदा दुःख में रहता था। लोग कहते हैं कि उसकी पहली धर्मपत्नी बड़ी सती-साध्वी थी। उसके अनेक कष्ट देने पर भी वह उसकी अर्द्धांगिनी होने के नाते सब सह लेती थी। अच्छे भोजन और वस्त्र के लिये बेचारी तरसती हुई मर गई, पर कभी भी राजा उपाध्याय ने उसकी इच्छा की पूर्ति नहीं की। उसकी मृत्यु का कारण राजा उपाध्याय ही था। दीनदयाल उपाध्याय की हत्या के बाद वह उसे अपने गाँव इलाहाबाद से माधोपुर ले आया। इलाहाबाद आने पर वह बीमार पड़ी और देखते-ही-देखते रोग बढ़ता गया, पर उसने डाक्टर नहीं बुलाया। जब विजय से नहीं देखा गया तब वह अपने पास से फीस देकर डाक्टर को बुला लाया। डाक्टर ने टायफायड घोषित किया। राजा उपाध्याय ने झखमार कर अपने पास से दवाई का दाम दिया, पर वह बेचारी सबसे नाता तोड़कर चल बसी। उसकी मृत्यु के बाद राजा उपाध्याय ने महसूस किया कि समय पर उसका उपचार न कराकर उसने कितनी बड़ी भूल की। ठीक ही है कि हाथ से जब कोई चीज निकल

जाती है तब मनुष्य उसका मूल्य समझता है। राजा उपाध्याय की भी वही हालत हुई। पत्नी के नहीं रहने पर एक नारी का अभाव उसे सदा खटकने लगा। पर गाँव में तो उसकी कोई चीज थी नहीं, जिससे कोई उसे अपनी लड़की देने को तैयार होता और शहर की लड़कियाँ राजा उपाध्याय ऐसे व्यक्ति से विवाह करने को तैयार नहीं थीं। अब शादी के लिये वह अनाथालय और विधवाश्रम की ओर देखने लगा, पर सामाजिक भय के कारण उस ओर उसके जाने का साहस नहीं हो रहा था। फरार की अवस्था में जब ठाकुर जयपाल सिंह ने उसे विधवाश्रम या अनाथालय की किसी महिला से शादी करने को कहा तब उसकी हिम्मत बढ़ी। अपने पास की सारी पूंजी रघुनाथ चौबे के चरणों पर समर्पित कर वह कंचना-जैसी सुन्दरी को अपने घर में ले आया। परन्तु कंचना के जीवन का ऊँचा स्तर देख वह अपने माथे पर हाथ धर कर रोने लगा। वह अपने मन में सोचने लगा, मैंने शादी की कि एक बला अपने माथे पर ले आया। इसके स्नो, पाउडर और लिपस्टिक में ही तबाह हो गया। जो साड़ी और ब्लाउज यह आज पहनती है कल वह धोबी के घर भेज देती है। इस हालत में मेरे साथ इसके जीवन का निर्वाह कैसे होगा ?' वह दिन-रात इसी चिन्ता में पड़ा रहता था, पर समस्या के हल का कोई उपाय नजर नहीं आ रहा था। अगर कंचना के लिए उसके बाईस सौ रुपये नहीं लगे रहते तो सम्भवतः वह उसे छोड़ देता। उसे उस नारी का उतना मोह नहीं था जितना कि उस मोटी रकम का। उस समय अगर उसे कहीं अपनी पहली धर्मपत्नी का स्मरण हो आता था तो उसकी आँखों में से आंसू की दो बूंदें गिरे बिना नहीं रहती थीं। और, उसके मुख से सहसा निकल पड़ता था, कंचना के साथ विवाह कर मैंने भयानक भूल की। लोगों की यह धारणा सत्य है कि विधवाश्रम या अनाथालय की स्त्रियाँ भली नहीं होती हैं। यह सहज में अनुमान किया जा सकता है कि अगर वे भली होतीं तो घर से क्यों निकल आतीं। मैं तो रघुनाथ चौबे के जाल में फँसकर रूपसी के नाम पर एक दानवी को अपने घर ले आया। वह कहती है कि वह बड़े घर की लड़की है। मैं मानता हूँ कि वह बड़े घर की लड़की है, पर वह जब थी तब थी, अब तो नहीं है। आज तो वह अपने माता-पिता, भाई बन्धु और सगे-सम्बन्धियों को छोड़कर तथा अपना सर्वस्व खोकर

अनाथिनी बन गई है। उसे मेरा उपकार मानना चाहिए कि मैंने उसे शरण दी है। उसे मेरे जीवन में अपने जीवन को मिला देना चाहिए और उसे सोचना चाहिए कि एक अध्यापक के घर में सेठ या साहूकार का सुख कहाँ से मिलेगा? अध्यापक का घर भी तो एक आश्रम के समान है। उसमें उसे एक आश्रम-वासिनी के समान रहना चाहिए। वह कहती है कि वह अपने जीवन-स्तर को गिरा नहीं सकती है। मैंने आज ही जीवन-स्तर का नाम सुना है। मैं नहीं कह सकता हूँ कि भला जीवन-स्तर यह कौन-सा बला है? सादा रहना और ऊँचा विचार रखना मेरे जीवन का सिद्धान्त है। परन्तु कंचना ऐसे मानने को तैयार नहीं है। वह मुझसे साफ कहती है कि आप भगवान गौतम बुद्ध या शंकराचार्य नहीं हैं जो मैं आपके सिद्धान्त को आँख मूँद कर मान लूँ, जिससे मेरा जीवन-पथ बन जाएगा। वह यह नहीं समझती है कि पत्नी के लिए पति ही सर्वस्व है। उसके लिए वही सब कुछ है, वही गौतम और वही शंकर है। मालूम होता है कि उसकी दृष्टि में पति की बातों का कोई मूल्य नहीं है। लोग कहते हैं कि यह कलिकाल है। कलिकाल में स्त्रियाँ पति का अनुसरण नहीं करती हैं। उनकी दृष्टि में पतिव्रत धर्म का कोई मूल्य नहीं है।'

और, जब कंचना राजा उपाध्याय के मुख से पतिव्रत धर्म का उपदेश सुनती थी तब जलकर खाक हो जाती थी। अपना सारा क्रोध उस पर उतारती हुई कहने लगती थी, 'सुनो, पतिव्रत धर्म के उपदेश से मेरी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं हो सकती है। जब तुम मेरे बोझ उठाने में असमर्थ थे तब तुमने मुझसे शादी क्यों की? तुमने समझा था कि अनाथालय में होगी राह में कोई भीख माँगने वाली, कोई दीन-क्षीण स्त्री; उसे अपने घर में लाकर उससे पत्नी और दासी दोनों का काम लेकर अपने जीवन को सुखमय बनाऊँगा। वह स्त्री मेरी रूखी-सूखी रोटी और फटे-पुराने वस्त्र पर प्रसन्न रहेगी और जब वह इसका विरोध करेगी तब उसके सामने आदर्शवादी बनकर अपना काम निकाल लूँगा। पर मेरे सामने तुम्हारी बुद्धि कोई काम नहीं कर सकती है। तुम अपना सिद्धान्त और अपना आदर्श अपने लिए रखो, मुझ पर उनका प्रयोग मत करो। मेरे लिए सुन्दर व्यवस्था करो, अन्यथा मैं कोर्ट की शरण लूँगी।'

कोर्ट का नाम सुनकर राजा उपाध्याय घबरा उठा। अपने चाचा की हत्या में ठाकुर जयपाल सिंह के विरुद्ध जब वह गवाही देने गया था तब वकील के

प्रश्नों पर वह काँप उठा था और किसी प्रकार झूठ-सच बोलकर उसने अपनी जान छुड़ा ली थी। एक दूसरे मामले का भी उसे अच्छी तरह स्मरण है जबकि वह अपने मित्र की ओर से मजिस्ट्रेट के समक्ष गवाही देने गया था। उस समय उसने अपना जो कुछ बयान दिया था उससे उसके मित्र को छः महीने की सजा हो गई और विरोधी दल आनन्द में उछलता हुआ अपने घर आया। उसने कंचना की ओर देखकर कहा—'प्रिये, तुमको जहाँ जाना हो जाओ, परन्तु कोर्ट का नाम मुझसे मत लो। कोर्ट में न्याय नहीं है। अधर्मी राजा के राज्य में न्याय नहीं है। अगर न्याय रहता तो कहीं अतिवृष्टि और कहीं अनावृष्टि होती। धर्मी राजा के राज्य में गाय नहीं कटती है और पशु-पक्षी भी अन्याय-पूर्वक नहीं मारे जाते हैं। धार्मिक शासन में ब्राह्मणों का सम्मान होता है, स्त्रियाँ सदाचारिणी होती हैं और वृक्ष समय पर फल देते हैं तथा धरती विभिन्न प्रकार की फसलों से सम्पन्न रहती है।'

कंचना—'और पुरुष कैसे होते हैं?'

राजा उपाध्याय—'मैं नहीं कहता कि पुरुष भले ही होते हैं। अधार्मिक राज्य में स्त्री, पुरुष सब समान होते हैं। सब गिरे हुए होते हैं।' परन्तु अधार्मिक राज्य का यह विशेष चिन्ह है कि स्त्रियाँ उच्छृंखल हो जाती हैं और वे पति की बातें नहीं मानती हैं।'

कंचना—'यह क्यों नहीं तुम कहते कि धार्मिक राज्य में स्त्रियाँ पुरुष की दासी बनकर रहती हैं और ईश्वर के नियमानुसार स्त्रियों को पुरुषों की गुलामी स्वीकार करनी चाहिए।'

राजा उपाध्याय—'तुम सैकड़ों घाट के पानी पी चुकी हो, तुमसे कौन मुँह लगावे? तुम्हारे समान मुँहफट और उच्छृंखल नारी को अपने घर में लाकर मैं पश्चात्ताप कर रहा हूँ।'

अपने चरित्र पर आक्षेप सुनकर कंचना काली नागिन के समान फुफकार छोड़ती हुई कहने लगी, 'तुम बड़े चरित्रवान बने हो? जहाँ तुम ट्यूशन करने जाते हो, वहीं तुम्हारी बदनामी होती है। तुम्हारे समान पतित पुरुष के साथ शादी कर मैं स्वयं पछता रही हूँ। तुम क्यों रोते हो? जब मैं व्यभिचारिणी थी तब मुझे लाने की क्या आवश्यकता थी?'

राजा उपाध्याय के मुख से इसके प्रतिवाद में एक भी शब्द नहीं निकला। वह कंचना के मुख की ओर देखता रहा और वह बोलती जा रही थी, 'अरे तुम अपने भाग्य पर क्यों रोते हो? रोना तो मुझको चाहिए कि मेरे भाग्य ने मुझको तुम्हारे ऐसे दीन-हीन और बूढ़े के पैरों में बाँध दिया।'

राजा उपाध्याय की दृष्टि कंचना के मुख पर से हटकर अपने आँगन के तुलसी चबूतरे की ओर गई। वहाँ तक धूप आ चुकी थी। उसके स्कूल जाने का समय हो गया था। खूँटी से उसने अपनी कमीज और टोपी उतारी और यह भनभनाते हुए स्कूल की ओर चल पड़ा—'सोलह वर्ष की छोकरी और बात बोलती है अस्सी वर्ष की बुढ़िया के समान?'

कंचना—'सोलह वर्ष की छोकरी नहीं तो तुम्हारे समान साठ वर्ष का बूढ़ा हूँ।'

उसके व्यंग्य का कोई उत्तर न देकर राजा उपाध्याय लम्बे कदम से चौखट पार कर गया। उसके जाने के बाद कंचना अपनी दीन दशा पर आँसू बहाने लगी। उसी समय बाहर से विजय आ पहुँचा। कंचना को रोती हुई देखकर उसके आश्चर्य की सीमा न रही। उसने पूछा—'कंचना, रो क्यों रही हो?'

कंचना ने हिचकियाँ लेते हुए कहा—'रोती हूँ अपने भाग्य पर और अपनी चंचल बुद्धि पर। यह अभागा मास्टर अनाथालय से मुझे लाकर मेरे ऊपर अपनी कृपा और उदारता की छाप लगाना चाहता है और चाहता है कि मैं नंगी, भूखी और प्यासी रहकर इसकी सेवा करूँ। इसके चरणों को धोकर पिऊँ और इसकी इच्छा की पूर्ति में किसी प्रकार की बाधा उपस्थित नहीं करूँ?'

विजय—'इसका खयाल तो तुमको पहले ही करना चाहिए था।'

कंचना—'तुम भी क्या अबूझ के समान बात करते हो? अनाथालयों की स्त्रियाँ अपनी इच्छा से थोड़े विवाह करती हैं? उनके विवाह के मामले में वहाँ के अधिकारियों की इच्छाएँ ही सब कुछ करती हैं। अनाथालय के मैनेजर ने इससे मोटी रकम लेकर गाय-भैंस के समान मेरे गले की डोरी इसके हाथ में दे दी और मैं इसके साथ चली आई। कहाँ मैं राजसिंहासन पर विराजती थी और कहाँ इस अभागे के घर में चटाई पर सोती हूँ और बाजरे की रोटी और साग खाकर अपनी जिन्दगी के शेष दिन बिता रही हूँ।'

विजय—'तुम्हारे आँसू और दर्द-भरे शब्दों पर मुझे हार्दिक दुःख होता

है। किसी प्रकार इस अभागे से अपनी मुक्ति ले लो और अपनी इच्छा के अनुसार किसी सुन्दर व सुयोग्य व्यक्ति से विवाह कर लो।'

कंचना ने उसके सुझाव का कोई उत्तर नहीं दिया, केवल आँचल से अपने आँसू पोंछकर रह गई। विजय ने पुनः कहा—'तब बैठी क्या करती हो? जाओ स्नान और भोजन करो।'

कंचना—'क्या पहन कर स्नान करूँ और क्या चीज भोजन करूँ?'

विजय—'क्या दूसरी साड़ी नहीं है?'

कंचना—'साड़ी कहाँ से आई? सभी साड़ियाँ धोबी के घर पड़ी हुई हैं। मैंने मास्टर से कहा कि उन्हें धोबी के घर से मंगा दो या बाजार से ही एक साड़ी ला दो, पर उसने मेरी एक बात न सुनी और उल्टे वह मुझे पतिव्रत धर्म का उपदेश सुनाने लगा।'

विजय ने अपनी कोठरी खोली और सन्दूक से कुछ रुपये लेकर बाजार गया। आध घण्टे में वह एक जोड़ी अच्छी साड़ियाँ लेकर लौटा। उस समय तक कंचना उसी जगह उदास और खिन्न बैठी हुई थी। अपने कमरे में प्रवेश करते हुए उसने कंचना को पुकारा। कंचना उसकी पीठ पर ही पहुँच गई। विजय ने उसकी ओर देखा। उसके ललाट पर लटें बिखरी हुई थीं, जिससे विजय की दृष्टि में उसका मुखमण्डल उसे अति कमनीय प्रतीत हुआ। जब वह आँचल सम्भालने लगी तब उसके हाथ से आँचल छूटकर नीचे गिर गया। उस समय विजय की आँखें उसके मुखसे हटकर उसके उरोजों पर चली आईं। कंचना ने भी जान-बूझ कर आँचल सम्भालने में देर कर दी, जिससे उसका मन अच्छी तरह उसके वशीभूत हो जाय। फिर उसने पूछा—'मुझे क्यों बुलाया?'

विजय ने कहा—'स्नान कर लो, तुम्हारे लिए मैं दो साड़ियाँ ले आया हूँ।'

कंचना—'तुम साड़ियाँ क्यों लाए? मास्टर इन्हें देखकर मुझपर बिगड़ेगा, और उसे संदेह करने की गुञ्जाइश हो जाएगी कि हम लोगों का अनैतिक सम्बन्ध है।'

विजय—'तुम भय क्यों खाती हो? जो तुम्हारे लिए एक रोटी और एक साड़ी का प्रबन्ध नहीं कर सकता है उससे भला डरने की कौन-सी आवश्यकता है?'

कंचना उठकर स्नानघर में चली गई। परन्तु तुरन्त ही वह लौटकर

विजय के पास पहुँची। विजय ने उससे पूछा—'क्यों लौट आई? स्नान नहीं किया तुमने?'

कंचना ने कहा—'मेरे पास तो तेल-साबुन भी नहीं है। तुम्हारे पास है?'

विजय—'हाँ, हाँ, अलमारी में सब रखे हैं, ले लो।'

कंचना अलमारी से तेल-साबुन निकालकर स्नानघर में चली गई। और, विजय उसके सम्बन्ध में सोचने लगा—कंचना कितनी सुन्दर है। इसके साथ सौन्दर्य अठखेलियाँ खेल रहा है। मास्टर का भाग्य अच्छा है कि इसके समान नारी उसे मिल गई है। परन्तु उसके साथ इसका सम्बन्ध ठीक उसी प्रकार है जैसे लता का सम्बन्ध बबूल के पेड़ के साथ। परन्तु मास्टर का भी अभाग्य है कि इस रूपसी का वह मूल्यांकन नहीं कर पा रहा है? भला फूलों की सेज पर सोने वाली यह कोमलांगनी उसके दुःख-दारिद्रय में कैसे हाथ बँटा सकती है?'

वह कंचना के सम्बन्ध में सोच ही रहा था कि वह उसी की दी हुई हरी साड़ी पहन कर उसके सामने आकर खड़ी हो गई। विजय ने उसकी ओर देखा। उसका कंचन-सा शरीर उस हरी साड़ी में ऐनक के समान दमक रहा था। विजय मुस्करा उठा। कंचना के अधरों पर भी मुस्कान की एक हल्की-सी रेखा दौड़ गई। उसने पूछा—'तुम क्यों मुस्करा रहे हो?'

विजय—'तुम्हारे इस रूप-लावण्य को देखकर। मैं सच कहता हूँ, तुम अप्सरा से भी बढ़कर सुन्दर हो, और बड़े शहरों की बात तो मैं नहीं करता किन्तु इस शहर में तुम्हारे समान रूप किसी लड़की में नहीं पाया है।'

कंचना ने मुँह बनाकर कहा—'हूँ, मेरे समान खूबसूरत कोई लड़की इस शहर में नहीं है?'

इस पर विजय खाट पर से उठ गया और उसकी बाँह धर कर दर्पण के सामने जा खड़ा किया और पूछा—'कहो, मैं झूठ बोलता हूँ? तुम अपनी ही आँखों से पूछो कि तुम कैसी खूबसूरत हो?'

कंचना बड़े गौर से अपने प्रतिविम्ब की ओर देखने लगी। उसका मुस्कराता हुआ मुखड़ा स्वयं उसकी दृष्टि में अति सुन्दर व आकर्षक प्रतीत हुआ। उसकी बगल में विजय भी मुस्कराता हुआ खड़ा था। कंचना ने अपने मन में सोचा—'यह भी कोई कम खूबसूरत नहीं है।

उसकी मूँछ की रेख अभी आ रही थी। उसका उन्नत्त मस्तक, गौर बदन, गोल चेहरा और लम्बा कद कंचना के मन में बस गये। उसने पूछा—'क्या तुम मुझसे कम खूबसूरत हो ? अगर हम दोनों की जोड़ी लग जाती तो तुम्हीं कहो, हम लोगों का जीवन-पथ कितना सुन्दर होता ?'

उसके ललाट पर से लटों को हटाते हुए विजय ने कहा—'अगर तुम्हारी इच्छा हो तो हम दोनों की जोड़ी लग सकती है।'

कंचना—'अभी तुम भावावेश में ऐसी बातें बोल रहे हो, परन्तु पीछे यह भावना नहीं रहेगी। मेरे रूप और यौवन को देखकर तुम्हारे दिल में दर्द पैदा हो गया है। मेरी रूप-सुधा पानकर तुम अपने तृषित हृदय को शान्त करना चाहते हो, इसलिए अभी तुम जो कुछ बोलते हो, वह बहुत ही सरल और निश्छल मालूम होता है किन्तु प्यास बुझ जाने पर यह मधुर पराग तुमको नीरस मालूम होगा और यह जीवन सूखे प्रसून के समान प्रतीत होगा। मेरे जीवन में ऐसी घटना घट चुकी है इसलिए अपने अनुभव के आधार पर मैं ऐसा कह रही हूँ। मैं जो कहती हूँ उस पर विचार करो, सोच-समझ लो और समाज की आँधी के सामने पीठ नहीं झुकाने का दृढ़ संकल्प कर लो, तब मेरा पाणि-ग्रहण करो। अगर तुममें साहस न हो तो मुझे अपने भाग्य पर छोड़ दो और देखो कि इस विशाल भवसागर में मेरी जीवन-नैया कहाँ जाकर लगती है ?'

विजय—'नहीं, मैं भावावेश में नहीं बोल रहा हूँ। आज से नहीं, बल्कि गत मास से ही जब तुम इस अभागे मास्टर के साथ काशी से यहाँ आई तभी से मैं तुम्हारे सम्बन्ध में सोच रहा हूँ। मास्टर जो तुमको कष्ट देता है उससे मेरे हृदय में क्लेश पहुँचता है। मैंने तो कई बार कहा है कि इस दानव के साथ में मानवी कैसे रहती है ? मैं केवल तुम्हारे रूप पर मोहित नहीं हूँ बल्कि मानवता के दृष्टिकोण से उस दानव के हाथ से तुम्हारी मुक्ति चाहता हूँ। तुम स्मरण रखो, मैं प्रेम का पुजारी हूँ। तुम्हारा और मेरा साथ सदा के लिए होगा।'

कंचना को विश्वास दिलाने के लिए विजय ने शपथ भी खाई। इस पर कंचना को उसकी बातों पर विश्वास हुआ। अग्नि को साक्षी देकर विजय ने उसका पाणिग्रहण किया। इसके बाद विजय ने पूछा—'मास्टर के आने पर तुम क्या कहोगी ?'

कंचना—'जो कुछ कहूँगी, वह कान लगाकर सुनना। मेरी देह पर हरी साड़ी देखकर उसे अवश्य आश्चर्य होगा और जब उसे मालूम होगा कि यह साड़ी तुमने दी है तब उसके क्रोध की सीमा नहीं रहेगी। अगर इसके लिए वह मुझ पर बिगड़ेगा तो मैं उसे कह दूँगी कि मैं तुम्हारे साथ नहीं रहूँगी। उसके साथ मेरी शादी की कोई रजिस्ट्री नहीं है और न विवाह का कोई साक्षी है। इस प्रकार एक महीने का सम्बन्ध मैं एक क्षण में खत्म कर दूँगी। इसके लिए तुम चिन्ता मत करो।'

उसके साहस की प्रशंसा करते हुए विजय बाजार गया और पूरियाँ और मिष्ठान्न लेकर लौटा। कंचना अलग खाना चाहती थी किन्तु विजय के आग्रह को वह टाल न सकी और एक ही साथ दोनों भोजन करने लगे।

इस समय तक राजा उपाध्याय के टिफिन का समय हो चुका था। उसका टिफिन का समय भी बर्बाद नहीं जाता था। उस समय भी एक लड़के को पढ़ाकर कुछ-न-कुछ वह उपार्जन कर लेता था। परन्तु संयोगवश उस दिन उसका वह विद्यार्थी नहीं आया था। राजा उपाध्याय ने मन में सोचा कि आज कंचना के भोजन का कोई प्रबन्ध नहीं है, देखूँ तो वह अभी कैसे रह रही है। अपने इन्हीं विचारों में वह डूबा हुआ अपने निवास-स्थान पर पहुँचा। जब वह दरवाजे पर ही था तब उसके जूतों की आवाज सुनकर कंचना समझ गई कि उसके भूतपूर्व पतिदेव का आगमन हो गया। यद्यपि वह पहले से दृढ़ संकल्प कर चुकी थी कि उसके साथ उसका कोई सम्बन्ध नहीं रहेगा, उन दोनों का नाता टूट चुका है तथापि उसे देखते ही वह भयभीत हो गई और जब वह उसके सामने आकर खड़ा हो गया तब उसके हाथ की मिठाई हाथ में ही रह गई और मुँह का कौर मुँह में ही रह गया। उपाध्याय को यह दृश्य देखकर क्रोध चढ़ आया, परन्तु उसने कंचना को इतना ही कहा—'अभी तुम्हारी उम्र मिठाई खाने की है, खा लो और अब पेट पर ही अपनी इज्जत-आबरू बेचना चाहोगी तब तुमको मिठाई खिलाने वाले बहुत मिलेंगे।'

कंचना के क्रोध की भी सीमा न रही। मुँह का अन्न गले के नीचे उतारते हुए उसने कहा—'शर्म नहीं आती है, तुमको बोलने में? तुम्हारे ऐसे पुरुष को पाकर स्त्री को कौन से कार्य नहीं करने पड़ेंगे? तुम स्त्री में पतिव्रत धर्म की

खोज करते हो, पर मैं यह कहती हूँ कि तुम्हारे समान पति पाकर कौन स्त्री सती-साध्वी रह सकती है। घर में स्त्री रखने का तुमको शौक लग रहा था, परन्तु उसके भार को सहन करने की तुमने अपने में शक्ति नहीं रखी। तुमसे मुझको कौन-सा सुख मिल रहा है, जिससे मैं तुम्हारे साथ अपने जीवन को बर्बाद करूँ? मैंने विजय को अपना पति बना लिया है। आज हम दोनों का एक अलग संसार बन गया।'

उसके मुख से इन बातों को सुनकर राजा उपाध्याय का क्रोध उसके माथे पर ठीक उसी प्रकार चढ़ गया जिस प्रकार डंक मारने पर बिच्छू का विष। उसके गालों पर एक तमाचा लगाते हुए उसने कहा—'चलो व्यभिचारिणी अपने घर में।'

अरुणाई लिए हुए कंचना के कोमल गालों पर उपाध्याय की पाँचों अंगुलियों के दाग उभर आए। वह भक-भक रोने लगी और उसके मृगी-से नयन सहायता पाने के लिए विजय की ओर देखने लगे। विजय ने उपाध्याय का हाथ पकड़ते हुए कहा—'आप इसे क्यों मार रहे हैं? आप जानते नहीं हैं कि अबला पर हाथ उठाना नैतिक और कानून की दृष्टि से भी अन्याय है।'

उससे अपना हाथ छुड़ाते हुए राजा उपाध्याय ने कहा—'शैतान का बच्चा, मेरी इज्जत-आबरू लूट रहा है और मुझको ही धर्म-कर्म और न्याय का पाठ पढ़ाता है। तुम्हारे समान साँप का सिर कुचल कर मैं दम लूंगा।'

फिर कंचना का हाथ पकड़कर राजा उपाध्याय अपने घर में ले गया और बाहर से जंजीर बन्द कर बैठ गया। इतने ही में स्कूल का चपरासी आया और उससे कहने लगा – 'प्रधानाध्यापक जी आपको बुला रहे हैं।'

राजा उपाध्याय उसके साथ स्कूल में गया। उसका चेहरा देखते ही प्रधानाध्यापक समझ गए कि अवश्य इसमें कोई रहस्य है। उन्होंने पूछा—'उपाध्याय जी, आप क्रोध से क्यों लाल हो रहे हैं?'

राजा उपाध्याय ने उससे अपना सारा दुःख कह सुनाया। प्रधानाध्यापक ने पूछा – 'यह विजय कौन है?'

राजा उपाध्याय—'हाईकोर्ट का कोई वकील है, उन्हीं का क्लर्क है। जिस मकान में मैं रहता हूँ उसी मकान में वह भी कई वर्षों से रह रहा है। पहले

तो वह पढ़ता था किन्तु अब पढ़ना-लिखना छोड़कर नौकरी करता है। मेरी पत्नी के साथ गत सप्ताह से उसका अनैतिक सम्वन्ध चला आ रहा है। उसके बहकावे में आकर मेरी धर्मपत्नी ने कहा है कि वह मुझसे सम्बन्ध नहीं रखेगी।'

प्रधानाध्यापक—'यह विजय रहने वाला कहाँ का है ?'

राजा उपाध्याय—'लखनऊ का रहने वाला है। इसके पिता लखन जी बनारस में किसी सेठ के यहाँ मैनेजर थे, पर कुछ आचरण-सम्वन्धी शिकायत पर उन्हें अपनी नौकरी से हाथ धोना पड़ा।'

प्रधानाध्यापक—'जब पिता ही आचरण भ्रष्ट है तो पुत्र को तो वैसा होना ही चाहिए। अच्छा, चलिए थाने। विजय को उसके कर्म का फल चखा दूँ। बड़ा दारोगा हमारा शिष्य है।'

स्कूल से दोनों थाना पहुँचे। दारोगा ने कुर्सी से उठकर अपने गुरु का अभिवादन किया और उनके आगमन का कारण पूछा। प्रधानाध्यापक ने राजा उपाध्याय की पत्नी के सम्वन्ध में आरम्भ से अन्त तक सारी कहानी दारोगा को कह सुनाई और कहा कि अगर तुम इस मामले में हस्तक्षेप नहीं करोगे तो यह बेचारा अध्यापक कहीं का नहीं रहेगा। इसका धन तो गया ही, इज्ज़त भी चली जायेगी।'

दारोगा ने जोरावर सिंह जमादार को पुकार कर कहा—'आप मास्टर साहब के साथ इनके घर पर जायँ और विजय नाम का कोई क्लर्क है उसको समझा-बुझा दीजिए कि अगर उसने इनकी पत्नी के साथ अनैतिक सम्बन्ध जोड़ा तो उसे मैं बिना गिरफ्तार किए नहीं रहूँगा।'

जोरावर सिंह ने काँख के नीचे अपना हंटर दबा लिया और मूँछ को ऐंठते हुए राजा उपाध्याय के साथ उसके घर गया। प्रधानाध्यापक भी साथ में थे। विजय उस समय चिन्तामग्न होकर बैठा था। जमादार को देखते ही वह सन्न रह गया और जमादार जब उसके समीप आया तब उसने अपनी कुर्सी उसे बैठने के लिये बढ़ा दी। कुर्सी पर बैठते हुए जोरावर सिंह ने कहा—'कहो किरानी साहब, तुम मास्टर की पत्नी को बहका रहे हो ? सीधे-सादे आदमी पर अपना हाथ साफ करना अच्छा जानते हो। अगर मेरी पत्नी के बहकाने का तुम प्रयत्न करते तो मैं तुम्हारा गला घोंट देता।'

विजय —'हुजूर की पत्नी के समीप जाने की किसकी हिम्मत हो सकती है।'

जोरावर सिंह—'तुम मेरे साथ मजाक करता है।'

विजय—'हुजूर ने जैसा कहा है, उसका मैंने उत्तर दिया है।'

जोरावर सिंह ने राजा उपाध्याय से पूछा—'आपकी पत्नी कहाँ है ?'

राजा उपाध्याय—'उसे अपने कमरे में मैंने बन्द कर रखा है।'

जोरावर सिंह – 'आपको किसी को बन्द करने का क्या अधिकार है ? आपने स्वयं अपराध किया है। मैं आपको ही गिरफ्तार करूँगा।'

यह सुनकर राजा उपाध्याय काँप उठा और दौड़कर कमरा खोल दिया। उस कोठरी से कंचना सिसकती हुई निकली। उसे देखते ही जोरावर सिंह ने कहा—'अरे यह तो बिल्कुल सोलह-सतरह साल की छोकरी है। तब उपाध्याय जी इसे कैसे पसन्द आवें ? इसने अपना जीवन-साथी चुन लिया है। अगर यह आपके साथ नहीं रहना चाहेगी तो आप कुछ नहीं कर सकते हैं। कोर्ट से भी आपकी हार हो जाएगी। इसलिए आपस ही में मिलकर इस समस्या का समाधान निकाल लीजिये।'

राजा उपाध्याय--'विजय को समझा दीजिए कि यह मेरी पत्नी से आँखें नहीं लड़ावे और उससे बातें न करें।'

जोरावर सिंह—'सुनिये मास्टर साहब, ताली एक हाथ से नहीं बजती है, दो हाथों से ताली बजती है। आकर्षण दोनों ओर से उत्पन्न होता है। जब आपकी पत्नी विजय से हँसी-मजाक करती होगी और आँखें लड़ाती होगी तब प्रकृति के नियम के अनुसार विजय का भी इसकी ओर आकर्षित होना स्वाभाविक है।'

प्रधानाध्यापक ने अपना सर हिलाकर जमादार साहब का समर्थन किया और कहा—'बाबू साहब, किन्तु आपकी बातों से तो विजय को इनकी पत्नी के साथ अनैतिक सम्बन्ध स्थापित करने में प्रोत्साहन मिल रहा है।'

जोरावर सिंह ने विजय की ओर देखकर कहा--'हाँ जी, तुमको मेरी बातों से प्रोत्साहन मिल रहा है। अगर तुमने मास्टर साहब की पत्नी के साथ अपना सम्बन्ध रखा तो इस हन्टर से मारकर तुम्हारी खोपड़ी ठीक कर दूँगा।'

विजय--'देखिये जमादार साहब, मार-पीट की धमकियाँ मुझको मत दिखाइए। मैं वकील साहब का क्लर्क हूँ। आपसे अधिक कानून मैं जानता हूँ।

ऐसा न हो कि इस काण्ड में आप भी चले जायँ ।'

जोरावर सिंह--'अरे, उल्लू का बच्चा, तुम तो वकील के क्लर्क हो और मैंने कितने वकीलों को हवालात की हवा खिला दी, इसका तुमको पता नहीं। अगर इनकी पत्नी ठीक रह गई तो देखें तुम्हारे वकील साहब कहाँ तक तुम्हारी रक्षा करते हैं ?'

विजय ने जोरावर सिंह की बातों का कोई उत्तर नहीं दिया । वह चुपचाप खड़ा रहा । फिर जोरावर सिंह ने कंचना की ओर देखकर कहा—'अगर मास्टर साहब को छोड़कर तुमने किसी दूसरे पुरुष से प्रेम किया तो भारतीय दंड विधान के अनुसार तुमको दण्ड भोगना पड़ेगा ।'

कंचना ने निर्भीक शब्दों में उत्तर दिया—'मालूम होता है कि भारतीय दंड विधान के रचयिता आप ही हैं । मास्टर से मैंने शादी नहीं की है। मेरा पति विजय है । आपको जो करना हो वह कीजिए ।'

जोरावर सिंह—'अरे बाप रे बाप, यह स्त्री मेरे वश की नहीं है । मैं जाता हूँ, दारोगाजी को सारी बातों से अवगत करा दूँगा और कहूँगा कि आप ही उस छोकरी से निबट लीजिए ।'

कंचना—'दारोगा जी क्या, इंसपेक्टर साहब को जाकर कहिये, मुझे इसका भय नहीं है ! मैं भी कहूँगी कि मेरा पति कौन है और आपके जमादार साहब मुझको किसकी पत्नी बना रहे हैं ।'

जोरावर सिंह—'देवी जी, आपका जिससे मन भरे उसकी पत्नी बनिये मुझसे उसका कोई प्रयोजन नहीं । मैं आपको मास्टर साहब के साथ रहने के लिए क्यों बाध्य करूँगा ?'

उनकी इन बातों पर कंचना के अधरों पर मुस्कराहट आ गई, परन्तु राजा उपाध्याय को बड़ी निराशा हुई। उसने कहा—'जमादार साहब, आप तो इसी को डिग्री देकर जा रहे हैं, मेरा कौन-सा उपकार आपने किया ?'

जोरावर सिंह—'आपका मैं क्या उपकार कर सकता हूँ ? अगर आप मेरी सलाह मानिए तो आप तिल और कुश लेकर ऐसी नारी का परित्याग कर दीजिये । आपका इसी में कल्याण है । आप इस पर मामला-मुकदमा करके भी इसे नहीं पा सकते हैं । कानून इसको [illegible] पति चुनने का अधिकार है । इस

स्थिति में अदालत से भी आपको हार खानी पड़ेगी ।'

प्रधानाध्यापक—'हाँ, चार पैर वालों को बाँधकर रखा जा सकता है किन्तु दो पैर वालों को नहीं । जब यह स्वयं इनके साथ नहीं रहना चाहेगी तो पुलिस और अदालत क्या करेगी ?'

'हाँ मास्टर साहब, यही सोचकर धैर्य धारण कीजिये और ऐसी नारी को नमस्कार करके अलग हो जाइये ।' कहकर जोरावर सिंह चल पड़े । पर जब कंचना ने आवाज दी तब खड़े होकर वे उसकी ओर देखने लगे । कंचना ने कहा—'जमादार साहब, राजा उपाध्याय ने मुझको कमरे में बन्द रखा, यह तो आपने देखा ।'

जोरावर सिंह—'हाँ, मैंने देखा ।'

कंचना—'आपके कहने से इसने ताला और जंजीर खोली ।'

जोरावर सिंह—बन्द करने का अधिकार पुलिस के अतिरिक्त किसी को नहीं है ।'

कंचना—'इसने अपराध किया ?'

जोरावर सिंह—'हाँ, यह इसका अपराध है ।'

कंचना—'तब आप इसे गिरफ्तार कीजिए और अगर आप ऐसा नहीं करेंगे तो मैं आप पर भी मामला चलाऊँगी ।'

जोरावर सिंह—'मैंने अपने जीवन में ऐसी नारी नहीं देखी ।' फिर उन्होंने अपने सिपाही को, जो उनके साथ में थाना से आया था, राजा उपाध्याय के हाथों में हथकड़ी भर दी और थाना की ओर ले चला ।

घर से उनके बाहर जाते ही कंचना राजा उपाध्याय के कमरे में प्रवेश कर गई और अपने सारे आभूषण, वस्त्र और राजा उपाध्याय के रुपये-पैसे उठाकर विजय के कमरे में ले आई । फिर वह विजय के साथ अपने भावी जीवन की रूप-रेखा तैयार करने लगी ।

इधर जोरावर सिंह जब राजा उपाध्याय को हथकड़ी पहनाए हुए थाने में पहुँचे तब दारोगा के आश्चर्य की सीमा न रही । उन्होंने हँसते हुए पूछा—'जमादार, यह क्या ?'

जोरावर सिंह—'यह तो बहुत बड़ा जुल्मी आदमी है । इसने अपनी स्त्री को कमरे में बन्द करके रखा था और वह बेचारी बिलख-सिसक कर रो रही थी ।'

दारोगा—'और उल्टे ये विजय की शिकायत करने आए थे। इन्हें हवालात में बन्द कर दीजिए।'

जब सिपाही राजा उपाध्याय को हाजत की ओर ले जा रहा था तब उसने आशा-भरी दृष्टि से प्रधानाध्यापक की ओर देखा। राजा उपाध्याय की दीन दशा देखकर प्रधानाध्यापक द्रवित हो उठे। उन्होंने दारोगा से कहा—'यह क्या करते हो? आये थे तुम्हारे पास रक्षा के लिए और तुमने हमें अपना आहार बना लिया, इन्हें छोड़ दो।'

दारोगा ने जोरावर सिंह की ओर देखकर कहा—'जमादार साहब, इस मास्टर को छोड़ने का कोई उपाय है?'

जोरावर सिंह—'है क्यों नहीं? अगर सौ रुपए का एक नम्बरी नोट भेंट करें तो अभी ये छूटकर हँसते-खेलते घर चले जाएँगे।'

दारोगा ने प्रधानाध्यापक की ओर देखा। प्रधानाध्यापक ने दारोगा से कहा—'तुम तो मेरे शिष्य हो। मुझसे ही रुपये लोगे? मुझको तुमसे गुरु-दक्षिणा चाहिए।'

दारोगा ने हँसकर कहा—'मास्टर साहब, गुरु और शिष्य का सम्बन्ध तो घर पर होता है, थाने पर नहीं। यहाँ तो मैं अपने-आपको नहीं छोड़ सकता हूँ और आप तो मेरे बचपन के गुरु जी हैं।'

प्रधानाध्यापक ने राजा उपाध्याय की ओर देखा। राजा उपाध्याय ने उनसे कहा—'आप अपने पास से इन्हें रुपए दे दीजिए, घर चलता हूँ तो मैं आपको रुपये दे दूंगा।'

प्रधानाध्यापक दौड़कर अपने निवास-स्थान पर गए और दस-दस रुपये के दस नोट लाकर उन्होंने दारोगा के हाथ में दिए। दारोगा ने सिपाही को राजा उपाध्याय को मुक्त करने का आदेश दिया। सिपाही ने हथकड़ी खोल दी। वहाँ से प्रधानाध्यापक और राजा उपाध्याय अपने स्कूल की ओर चले। रास्ते में दोनों बातें करते जा रहे थे, पुलिस किसी की नहीं है। यहाँ आने से लेने के देने पड़ गए।'

इधर दारोगा ने छः नोट तो अपनी जेब में रखे, तीन नोट जोरावर सिंह के हाथ में और एक नोट सिपाही के हाथ में दिया। सिपाही ने हँसते हुए कहा—'आज किसी अच्छे आदमी का मुँह देखकर हम लोग उठे थे।'

जोरावर सिंह—'मालूम तो यही होता है। अच्छा, आज भंग खूब छने।'

सिपाही—'हाँ, भंग भी छनेगी और गाँजा भी बनेगा।'

दारोगा—'हाँ, लूट लाओ, छूट खाओ। पुलिस का धन थोड़े ही रहता है। वह जैसे आता है, वैसे जाता है।'

राजा उपाध्याय और प्रधानाध्यापक के स्कूल लौटते-लौटते सन्ध्या हो गई। लड़के सब अपने-अपने घर चले गए थे। चपरासी स्कूल में ताला बन्द कर खड़ा था। प्रधानाध्यापक ने राजा उपाध्याय को कहा—'आप भी अपने घर जायें, मैं भी अपने घर जाता हूँ।'

वहाँ से दोनों दो ओर चले। राजा उपाध्याय जब अपने मकान पर पहुँचा तो देखा कि उसके घर में कोई सामान नहीं है। वह अपने माथे पर हाथ धर कर बैठ गया। उसे रोते हुए देखकर कंचना मुस्करा रही थी।

२४

श्यामाचरण ने प्रेमशंकर को बरात प्रस्थान करने के ठीक एक घंटा पूर्व सूचना दी कि उनकी लड़की एकाएक ज्वरग्रस्त हो गई है, इसलिए इस तारीख पर शादी नहीं होगी, आगे के लिए इसे स्थगित कर दिया जाय। इस सम्वाद को सुनते ही प्रेमशंकर सातवें आसमान से नीचे गिरा। उसकी सारी उमंगें स्वतः नष्ट हो गईं। बाजे बन्द कर दिए गए। अभी जहाँ आनन्द छाया हुआ था वहाँ शोक का राज्य स्थापित हो गया। रंग में भंग हो गया और चारों ओर उदासी छा गई। उसके हितु-मित्र मौन होकर बैठ गए और उसके सगे-सम्बन्धी सब श्यामाचरण को दोष देने लगे। उनमें कोई कहता था कि श्यामाचरण ने दीवान साहब के खानदान को मिट्टी में मिला दिया और उनमें कोई कहता था कि बेचारे श्यामाचरण का कोई दोष नहीं है। अगर दोष है तो उनकी लड़की का। हमें तो पहले ही पता था कि वह इनसे विवाह करना नहीं चाहती है, परन्तु श्यामाचरण जबरदस्ती उसका विवाह करना चाहते हैं। उसी समय हमें संदेह

हुआ था कि यह विवाह होने का नहीं है, क्योंकि आजकल की शिक्षित लड़कियों के सामने माँ-बाप का कोई वश नहीं चलता है। जब वह स्वयं शादी करने को तैयार नहीं हुई तब बेचारे श्यामाचरण क्या करें ? किसी-किसी का तर्क यह भी होता था कि जो कुछ हो, श्यामाचरण के लिए उचित था कि विवाह नहीं करने की सूचना वे पहले दे देते। बनारस के सभी प्रतिष्ठित व्यक्तियों को मालूम होने को कौन कहे वे इसमें निमंत्रित होकर आए हैं। बनारस और इसके इर्द-गिर्द प्रेमशंकर का उपहास होगा। वह बेचारा तो कहीं मुँह दिखाने लायक नहीं रहा।

रघुनाथ चौबे भी वहाँ उपस्थित थे। प्रेमशंकर से उन्हें तब जान-पहचान हुई थी, जबकि वे अनाथालय के मैनेजर थे और चन्दे के लिए हर महीने उसके यहाँ आया करते थे। अनाथालय से हटने के बाद वे प्रेमशंकर के आश्रम में ही रहते थे और उसकी जमींदारी का काम देखते थे। उन्होंने अपना मत प्रकट करते हुए कहा—'श्यामाचरण की लड़की प्रेमा को मैं अच्छी तरह जानता हूँ। वह ठाकुर धनुषधारी सिंह के पुत्र प्रताप के प्रेम में पागल हो गई है। इस पागलपन के पीछे उसे अपना-पराया और इज्जत-आबरू कुछ नहीं सूझ रहा है। उसने अपनी लज्जा-शर्म सब कुछ छोड़ दी है। वह इसका कुछ खयाल नहीं करती है कि प्रताप क्षत्रिय है और वह दूसरे कुल की कन्या है, तब भला दोनों में कैसे शादी हो सकती है ? अंग्रेजी कहावत है कि प्रेम अन्धा होता है। अगर प्रताप ने अपने माँ-बाप और जाति-भाई के साथ बगावत करके प्रेमा को रख भी लिया तो भी वह रखेल ही कही जाएगी, उसे उसकी कुल-ललना की प्रतिष्ठा नहीं मिल सकती है। खैर जो कुछ हो, मेरी तो राय है कि श्यामाचरण के घर जबरदस्ती बरात ले चलें और प्रेमा के साथ प्रेमशंकर की शादी कर दी जाय।'

प्रेमशंकर को यह राय पसन्द आ गई। उसने बरात को श्यामाचरण के घर पर चलने को कहा। प्रतिष्ठित लोगों ने उसे वहाँ जाने से मना किया, पर उसने किसी की बात नहीं मानी। वह रघुनाथ चौबे और अपने दो-चार साथियों के साथ श्यामाचरण के मकान पर पहुँचा। श्यामाचरण उस समय शोकाकुल होकर अपने दरवाजे पर चक्कर लगा रहे थे। प्रेमशंकर की मोटर देखकर वे सन्न रह गए। प्रेमशंकर के मोटर से उतरने के पूर्व ही वे मोटर के समीप पहुँच गए और

कहने लगे—'बाबूजी, मेरी लड़की तो सख्त बीमार पड़ गई। उसको ज्वर सौ से ऊपर है। इस स्थिति में विवाह कैसे हो सकता है ?'

रघुनाथ चौबे—'बाबूजी, माँग में सिन्दूर रखने में कितनी देर लगती है और उसका कोई कुप्रभाव भी तो आपकी लड़की के स्वास्थ्य पर नहीं पड़ेगा।'

श्यामाचरण—'देर क्यों नहीं लगती है ? हवन, वेदमन्त्रों का पाठ, भाँवर, कन्या-निरीक्षण आदि में सारी रात बीत जाती है और आप कहते हैं कि कुछ देर न लगेगी। सारी रात मंडप में बैठने का क्या बुरा असर दुलहिन के स्वास्थ्य पर नहीं पड़ेगा ? विवाह आनन्द का समय है। मनुष्य के जीवन में विवाह का समय ही सबसे अधिक आनन्दमय होता है। अगर उस आनन्द का अनुभव मेरी पुत्री नहीं कर सकेगी तो फिर उसे विवाह करने से क्या लाभ ? आखिर उसके आनन्द और प्रसन्नता पर भी तो आपको विचार करना है। शादी आज नहीं तो कल होगी। जब मैं वचन दे चुका हूँ तब उसका पालन तो अवश्य ही करूँगा, किन्तु अभी मैं पुत्री की बीमारी के कारण असमर्थ हूँ।'

प्रेमशंकर—'आप अपनी पुत्री के स्वास्थ्य और आनन्द पर विचार तो करते हैं किन्तु मेरी प्रतिष्ठा का कुछ खयाल नहीं करते हैं।'

श्यामाचरण—'अवश्य खयाल करता हूँ। आपकी प्रतिष्ठा मेरी प्रतिष्ठा है। आप मेरे पुत्र सोहन के मित्र भी हैं। अभी वह कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में विज्ञान पढ़ रहा है। मैंने जब इस विवाह की सूचना उसे दी तब उसने हर्ष प्रकट किया और अपनी बहन के भाग्य की प्रशंसा की है। इस स्थिति में आप कैसे विश्वास करते हैं कि मैं आपको धोखा दे रहा हूँ। आप मेरी बातों पर विश्वास कर लौट जाइए।

प्रेमशंकर—'मैं बिना विवाह किए लौट नहीं सकता हूँ। इस अपमान से मृत्यु को मैं श्रेष्ठ समझता हूँ। जब आप ऐसे साधारण आदमी मेरी प्रतिष्टा पर इस प्रकार आघात करेंगे तब इस जिन्दगी से मेरा मर जाना उत्तम है। मैं जानता हूँ कि आप मुझे धोखा देकर मूर्ख बनाना चाहते हैं। आपकी पुत्री प्रेमा प्रताप से विवाह करना चाहती है।'

बीच में ही प्रेमशंकर की बात काट कर श्यामाचरण बोल उठे—'क्या आप इतने लोगों के बीच मुझे लज्जित कर रहे हैं। प्रताप के साथ प्रेमा की शादी कैसे हो सकती है ? ऐसा अनुमान तो एक बच्चा भी कर सकता है। मनु और

पराशर के युग में भले ही ऐसी शादी हुई होगी परन्तु आज के युग में तो ऐसी शादी बिल्कुल निषिद्ध है। इसे न तो मेरा समाज स्वीकार करेगा और न ही ठाकुर साहब का समाज स्वीकार करेगा। इसके अतिरिक्त स्वयं ठाकुर धनुषधारी सिंह तैयार नहीं होंगे। आप जानते हैं कि वे कितने धार्मिक विचार के आदमी हैं। माघ महीने में भी वे सवेरे चार बजे उठकर गंगाजी जाते हैं और स्नान कर पूजा-पाठ करते हैं। रामायण, गीता, हनुमान चालीसा आदि धार्मिक ग्रन्थों का पाठ करते हैं। वे बाजार की पूरी और मिठाइयाँ तक नहीं खाते हैं। किसी पार्टी में जाते हैं तो खाने को कौन कहे छूत के भय से पानी और चाय तक नहीं पीते हैं। उनकी इस कट्टरता पर उनके साथी हँसते हैं। वे जाति-प्रथा को मानने वाले हैं। जाति के बन्धन में ढिलाई करना वे पसन्द नहीं करते हैं। उनका कहना है कि क्षत्रियों का खून विशुद्ध रहना चाहिए। इसमें मिश्रण नहीं होना चाहिए। ठाकुर साहब के इन विचारों से आप अच्छी तरह अवगत हैं तब भला आप कैसे कहते हैं कि प्रेमा प्रताप से विवाह करेगी ?'

रघुनाथ चौबे—'बाबूजी, ठाकुर धनुषधारी का युग खतम हो गया। अब प्रताप का युग आया है। इस युग में अन्तर्जातीय विवाह खूब चलता है। लड़के और लड़कियाँ जाति के बन्धन को नहीं मानती हैं। अगर प्रताप प्रेमा से विवाह कर लेगा तो क्या ठाकुर साहब उसे अपने घर से निकाल देंगे। कुछ दिनों तक रंज रहेंगे, फिर क्रोध शान्त हो जाने पर अपने पुत्र और पुत्र-वधू का सहर्ष स्वागत करेंगे। मुझे इस सम्बन्ध में पूरा पता है। आपकी दलील मेरे सामने कोई काम नहीं कर सकती है। अगर आप अपना कल्याण चाहते हैं, अपनी इज्जत-आबरू की रक्षा करना चाहते हों तो छल-कपट छोड़कर प्रेमा की शादी प्रेमशंकर के साथ कर दीजिए, अन्यथा हमारी ओर से जोर-जुल्म होगा।'

श्यामाचरण—'जोर-जुल्म क्या होगा ? क्या जबरदस्ती मेरी लड़की को ले जाएँगे ?'

रघुनाथ चौबे—'हम पुलिस को तो पीछे खबर देंगे, पहले समस्त बनारस शहर के गुण्डों को बुलाकर आपकी इज्जत उतार लेंगे।'

श्यामाचरण—'अच्छा, जो करना है वह करो, मुझे भय नहीं है।'

रघुनाथ चौबे—'मेरा नाम रघुनाथ चौबे है। आपको खयाल रखना चाहिए।'

श्यामाचरण—'मैं रघुनाथ चौबे को अच्छी तरह जानता हूँ, जो रोटी के एक टुकड़े के लिए दरवाजे-दरवाजे कुत्तों के समान दुम हिलाता फिरता है।'

रघुनाथ चौबे चाहने पर भी इसका उत्तर न दे सके। परन्तु प्रेमशंकर से नहीं रहा गया। वह गरज पड़ा और कहा—'दिन-रात तुम्हारी बेटी के यहाँ उसके दस यार आते रहते हैं तब तुम्हारी इज्जत नहीं जाती है और चौबे जी परिश्रम करके दो पैसे का उपार्जन करते हैं तब इनकी इज्जत चली जाती है।'

श्यामाचरण के लिए इससे बढ़कर अपमान का विषय दूसरा नहीं हो सकता था, फिर भी बवण्डर को शान्त करने के खयाल से उन्होंने अपमान का घूँट पी लिया और इसके प्रतिपादन में एक भी शब्द नहीं कहा, परन्तु उनके नौकर से नहीं सुना गया। प्रेमशंकर की गर्दन पर एक धौल लगाते हुए उसने कहा—'शर्म नहीं आती है, किसी की इज्जत पर कीचड़ उछालने में? जिस लड़की से तुम शादी करने आए हो, उसी के आचरण के विरुद्ध बातें बोलते हो? प्रेमा के समान सुचरित्र लड़की तो तुम्हारे खानदान में भी नहीं हुई होगी। पहले अपना चरित्र नहीं देखते हो, जो दूसरे के चरित्र का अवलोकन करते हो?'

प्रेमशंकर क्रोध से तिलमिला उठा। पर वह कुछ बोल न सका। उसके संकेत से रघुनाथ चौबे पास के थाने में गया और दारोगा को अपना परिचय देते हुए उसने कहा—'आप मुझे पहचानते तो नहीं होंगे? आपकी माँ और मेरी धर्मपत्नी दोनों सगी बहन हैं। मेरा नाम रघुनाथ चौबे है।'

दारोगा ने कुछ मिनटों तक उसके चेहरे की ओर खयाल करके देखते हुए कहा—'वास्तव में मैंने आपको नहीं पहचाना था। अब आपके दाँत टूट गये और केश भी सफेद हो चले हैं। और सबसे बढ़कर तो बात यह है कि बहुत दिनों के बाद आप मिले हैं। आप बक्सर में जब थे उसी समय प्रथम बार आप से मैंने भेंट की थी। आपका तों नाम कट गया था न?'

उस समय रघुनाथ चौबे कुछ लज्जित हो गये। फिर भी सर हिलाकर उन्होंने स्वीकारात्मक उत्तर दिया। दारोगा ने पूछा—'आपका यहाँ आना कैसे हुआ?'

रघुनाथ चौबे ने प्रेमशंकर के बिवाह के सम्बन्ध में आदि से लेकर अन्त तक की कहानी कह सुनाई और उससे श्यामाचरण के दरवाजे पर चलने को कहा। दारोगा ने कहा—'श्यामाचरण जी भी कोई साधारण आदमी नहीं

हैं। भय से उनको दबाना मेरी शक्ति के बाहर की बात है, और उसमें भी आप ठाकुर धनुषधारी सिंह की बात करते हैं। ठाकुर साहब को थोड़ा भी अवसर मिल जाएगा तो श्यामाचरण के कहने पर मुझे निगल जाएँगे। इसलिए इस मामले में मैं हस्तक्षेप नहीं कर सकता।'

रघुनाथ चौबे—'तब मेरी इतने दिनों की जान-पहचान का कोई परिणाम नहीं निकला।'

दारोगा—'आपको तो इसका स्वयं अनुभव है कि अगर पुलिस जान-पहचान का खयाल करे तो न तो सरकार का काम होगा और न उसका काम होगा। अगर मैं आपके साथ का खयाल करूँ तो मुझे भी आपके समान एक रोटी के लिए दरवाजे-दरवाजे घूमना होगा।'

यही बात अभी श्यामाचरण ने रघुनाथ चौबे को कही थी—जिसे सुनकर वे तिलमिला उठे, पर दारोगा के सामने वे निरीह व्यक्ति के समान खड़े रहे। उसी स्थान पर एक सिपाही भी खड़ा था। उसने रघुनाथ चौबे से कहा—'आप तो दारोगा रह चुके हैं। आपका तो स्वयं अनुभव है कि पूजा चढ़ाने से पुलिस कठिन-से-कठिन काम कर डालती है। प्रेमशंकर कोई गरीब आदमी हैं जो आप इतना गिड़गिड़ा रहे हैं। दो हजार रुपये दारोगा जी को दीजिये और चलिए श्यामाचरण के घर से उसकी लड़की की बाँह पकड़ कर मैं खींच लाता हूँ और प्रेमशंकर के सुपुर्द कर देता हूँ।'

रघुनाथ चौबे ने अपने मन में कहा—'सिपाही का कहना ठीक है। पुलिस के यहाँ बिना पूजा चढ़ाये, जान-पहचान से कुछ नहीं होता है।'

रघुनाथ चौबे थाना से प्रेमशंकर के पास गये। प्रेमशंकर अभी तक माथे पर हाथ धर कर श्यामाचरण के दरवाजे पर बैठा था। रघुनाथ चौबे के पहुँचते ही उसने पूछा—'क्या हुआ ? पुलिस नहीं आई ?'

रघुनाथ चौबे ने उसके कान में घूस की बात कही। प्रेमशंकर ने अपनी जेब से तीन हजार रुपये के नोट निकाल कर उसके हाथ में दिये। रघुनाथ चौबे ने राह में एक हजार रुपये एक जेब में, डेढ़ हजार एक जेब में और पाँच सौ रुपये एक जेब में रखा। थाना पहुँच कर अपनी जेब से एक हजार रुपये के नोट निकाल कर उसने दारोगा के सामने रख दिये। दारोगा ने कहा—'चौबे जी, आपको क्या कहा जाय ? आपकी खातिर से मैं इस मामले में पड़ रहा हूँ।

श्यामाचरण के सामने जाना बाघ के सामने जाना है । एक हजार रुपये से काम नहीं चलने को है ।'

ऊपर की जेब से और पाँच सौ रुपये के नोट निकाल कर रघुनाथ चौबे ने दारोगा की मेज पर रख दिये । दारोगा ने सिपाही की ओर देखा। सिपाही ने कहा—'हुजूर रख लिया जाय और चलकर प्रेमशंकर की शादी करा दी जाय ।'

दारोगा दो सिपाहियों तथा एक जमादार को लेकर श्यामाचरण के मकान पर पहुँचा । श्यामाचरण ने उठकर उनका स्वागत किया । दारोगा ने पूछा—'श्याम बाबू, क्या मामला है ? आप ऐसे प्रतिष्ठित आदमी के लिए यह शोभा नहीं देता है कि शादी की बात पक्की कर और दरवाजे पर आये हुए वर को वापस कर दें ।'

श्यामाचरण—'हुजूर, मैंने इसके साथ शादी की कोई बात पक्की नहीं की। यह जबरदस्ती मेरी लड़की से विवाह करना चाहता है । कहीं ऐसा हुआ है ? आप तो न्यायी पुरुष हैं । आप ही सोचिए कि अगर मुझे शादी करनी होती तो आप लोगों को और नगर के प्रतिष्ठित व्यक्तियों को निमन्त्रण-पत्र नहीं देता । इसने मुझको प्रेमनाथ समझ लिया, जिनकी लड़की को जबरदस्ती इसने रख लिया और अन्त में घर से निकाल बाहर किया । वह बेचारी कहाँ गई, अभी तक पता नहीं ।'

दारोगा—'जो कुछ हो इनके साथ आपको अपनी लड़की की शादी करनी होगी ।'

श्यामाचरण—'जी नहीं, इसके साथ मैं अपनी लड़की का विवाह नहीं करूँगा ।'

दारोगा—'आप सोच लें, मैं आपके कल्याण की बात करता हूँ । अगर आप विवाह करने पर तैयार नहीं होंगे तो मैं आपको और आपकी लड़की को गिरफ्तार कर लूँगा और कोर्ट में मामला भेज दूँगा ।'

उसकी इन बातों पर श्यामाचरण कुछ भयभीत हो गए । वे इसलिए भयभीत नहीं हुए कि उन्हें हिरासत में जाना होगा, बल्कि इसलिए भयभीत हुए कि प्रेमा को भी उनके साथ हिरासत में जाना होगा और कोर्ट में मामला जाने में उनकी शिकायत होगी । वे कुछ गम्भीर चिन्ता में पड़ गए ।

कुन्ती, विमला और प्रेमा खिड़की की बगल में खड़ी होकर सारी बातें सुन

रही थीं। अपने पति की दशा पर कुन्ती को प्रेमा के प्रति क्रोध चढ़ आया। उसने प्रेमा की ओर देखकर कहा—'तुमने क्या कांड कर दिया। अगर प्रेम-शंकर के साथ अब भी तुम विवाह करने को तैयार हो जाओ तो तुम दोनों बाप-बेटी के हिरासत में जाने की नौबत टल जाय।'

प्रेमा ने झुँझलाकर उत्तर दिया—'दारोगा की हिम्मत हुई हम लोगों को गिरफ्तार करने की। मैं प्रेमशंकर से शादी न करूँगी तो दारोगा जबरदस्ती उसके साथ मेरा विवाह कर देगा।' और वह कमरे से बाहर निकल आई। इस पर कुन्ती छाती पीटने लगी और विमला दाँतों तले अंगुली दबाने लगी। प्रेमा को देखते ही श्यामाचरण काँप उठे, परन्तु प्रेमशंकर के हर्ष की सीमा नहीं रही। प्रसन्नता से उसका मुखड़ा चमक उठा। दारोगा ने समझा कि उसकी डांट-डपट काम कर गई। सब प्रेमा की ओर देखने लगे। प्रेमा ने दारोगा से पूछा—'आप यहाँ क्यों आए हैं ?'

दारोगा ने प्रेमशंकर की सारी शिकायत उसे कह सुनाई और यह भी कहा कि आप प्रेमशंकर से विवाह कर लें। ऐसा सुन्दर और धनाढ्य वर आपको नहीं मिलेगा। मैं जानता हूँ कि आपकी ओर से आपत्ति होने पर श्यामाचरण ने शादी करने से इन्कार किया है।'

प्रेमा—'दारोगा जी, आप विश्वास करें, इसके साथ मेरी शादी की बात पक्की नहीं हुई है। यह जबरदस्ती मेरा पाणिग्रहण करना चाहता है। आप ही सोचिए कि क्या मैं अनाथ की लड़की हूँ जिसकी माँग में यह जबरदस्ती सिन्दूर रखना चाहता है ?'

दारोगा—'आप का तर्क कोई काम नहीं करेगा। आपको प्रेमशंकर के साथ शादी करनी होगी।'

प्रेमा ने क्रोध में आकर कहा—'मैं इसके साथ विवाह नहीं करूँगी। आप क्या करेंगे ? और आप हमें गिरफ्तारी का भय दिखलाते हैं, मैं आपकी नौकरी खा जाऊँगी।'

दारोगा ने हँसकर कहा—'आप तो बहुत ही क्रोध दिखलाती हैं। आप मेरी नौकरी खा जाएँगी। अच्छा आप दोनों पिता-पुत्री थाना चलिए।'

अब थाना का नाम सुनकर प्रेमा के होश उड़ गए। उसका गुलाब-सा

हँसता हुआ मुखड़ा सूख गया। उसकी बुद्धि कुछ काम नहीं कर रही थी। परन्तु

उसी समय एकाएक ठाकुर धनुषधारी सिंह के आ जाने से दोनों बाप-बेटी की कौन कहे कुन्ती और विमला के हृदय में भी साहस का संचार हुआ। बग्घी से उतरते हुए ठाकुर साहब ने प्रेमशंकर से कहा—'मेरे आने में देर हो गई। मैं इसे बिल्कुल भूल ही गया था कि आज आपकी शादी है। नौकर के स्मरण दिलाने पर मुझे पश्चात्ताप हुआ। फिर भी प्रसन्नता की बात है कि मैं समय पर आ गया।'

प्रेमशंकर ने तो उनसे कुछ नहीं कहा। परन्तु रघुनाथ चौबे ने स्पष्ट रूप से सारी बातें कह सुनाईं। इस पर ठाकुर साहब मौन होकर बैठ गए। सब उनकी ओर उत्सुकतापूर्वक देख रहे थे। दारोगा ने कहा—'ठाकुर साहब, मैं तो प्रेमा को सलाह देता हूँ कि वह प्रेमशंकर के साथ विवाह कर ले। परन्तु यह नहीं मानती है।'

ठाकुर साहब—'जब यह नहीं मानती है तब बात खत्म कीजिए। जब पसन्द नहीं है तब शादी कैसे होगी?'

दारोगा—'अगर यह समझाने-बुझाने में नहीं मानेगी तो मैं पिता-पुत्री दोनों को गिरफ्तार कर लूंगा।'

ठाकुर साहब ने कहा—'सुनिए दारोगा जी, श्यामाचरण बाबू के साथ मेरा आज से सम्बन्ध नहीं है। बल्कि आज पचीस वर्षों से है। ये मेरे घनिष्ठ मित्रों में से एक हैं। आफत विपत्ति में हम दोनों साथ रहे हैं। फरार की अवस्था में इन्होंने मेरे पिता को अपने यहाँ आश्रय दिया था और इनकी पुत्री—यही प्रेमा उनकी सेवा-शुश्रूषा में लगी रहती थी। इनका उपकार मैं आजन्म नहीं भूलूंगा। लेकिन इतनी घनिष्ठता रहने पर भी अगर प्रेमा का विवाह निश्चय करते समय मुझसे विचार-विमर्श करते तो मैं अपनी राय देता किन्तु इन्होंने मुझे सूचना तक नहीं दी। केवल प्रेमशंकर का निमन्त्रण-पत्र मिला, जिससे मुझे ज्ञात हुआ कि प्रेमा की शादी प्रेमशंकर के साथ होने वाली है। मुझे इसके लिए दुख भी हुआ कि श्यामाचरण बाबू ने मुझे निमन्त्रित नहीं किया। मैं यहाँ आया हूँ प्रेमशंकर के निमन्त्रण पर। यहाँ आने से ज्ञात हुआ कि यह सब प्रेमशंकर का षड्यंत्र है। वह जबरदस्ती प्रेमा का अपहरण करना चाहता है और उसमें आप इसके सहायक हैं।'

दारोगा ने चौंक कर कहा—'मैं कैसे इनका सहायक हूँ।'

ठाकुर साहब—'आप सहायक क्यों नहीं हैं ? आप किस कानून से कहते हैं कि पिता-पुत्री दोनों को थाना ले जाऊँगा ? जबरदस्ती करता है प्रेमशंकर और आप गिरफ्तार करना चाहते हैं, श्यामाचरण बाबू को और प्रेमा को। परन्तु आप याद रखिए कि अगर आपने ऐसा दुस्साहस किया तो आपकी नौकरी तो जाएगी ही, आपको जेल की हवा भी खानी पड़ेगी।'

दारोगा—'ठाकुर साहब, मुझे भय मत दिखाइए। मैं भी बी. ए. एल-एल. बी. हूँ। मैं भी कानून जानता हूँ।'

ठाकुर साहब ने कहा—'अच्छा तो हम दोनों के कानून की परीक्षा हो ही जाए।' और उन्होंने प्रेमा को पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट के टेलीफोन नम्बर मिलाने को कहा। प्रेमा ने नम्बर मिला दिया। ठाकुर साहब ने सुपरिन्टेन्डेन्ट को सारी बातों से अवगत कराते हुए कहा कि प्रेमशंकर कुछ गुण्डों के साथ आकर श्यामाचरण बाबू की पुत्री प्रेमा का अपहरण करना चाहता है और उसमें सहायक हैं आपके दारोगा, जमादार और दो सिपाही।'

सुपरिन्टेन्डेन्ट अँग्रेज था। उसने ठाकुर साहब की बातों पर विश्वास किया और दारोगा को तत्काल अपने बंगले पर बुलाकर नौकरी से मुअत्तल कर दिया। पीछे उस पर मुकदमा चला और वह नौकरी से बर्खास्त कर दिया गया।

जमादार की दो वर्ष के लिए तरक्की बन्द कर दी गई और सिपाहियों का दो वर्ष तक वेतन बढ़ना रोक दिया गया। दारोगा ने भी समझा कि ठाकुर से शत्रुता लेने का क्या परिणाम निकला।

ठाकुर साहब ने मान-हानि का मामला श्यामाचरण की ओर से प्रेमशंकर पर किया। उसमें कोर्ट से श्यामाचरण को दस हजार रुपए मिले। प्रेमशंकर की प्रेमा के साथ शादी करने की सारी अभिलाषा ठंडी हो गई।

श्यामाचरण ने ठाकुर साहब को धन्यवाद दिया और कहा—'मैं आपके उपकार से दब गया हूँ। बड़े आदमियों के साथ मित्रता करने का यही फल होत।'

२५

विजय ने नौकरी छोड़ दी और कंचना को साथ लेकर वह बम्बई चला गया। बम्बई उसके लिए बिल्कुल अपरिचित स्थान था। वहाँ उसका न तो कोई अपना सम्बन्धी रहता था और न कोई मित्र। बम्बई नगर की सजावट और लोगों का व्यस्त जीवन देखकर वह दंग रह गया। कंचना के साथ वह जिस गली से निकलता था वहाँ के लोगों के समझने में देर नहीं लगती थी कि वे नगर में नव आगन्तुक हैं। कुछ गुण्डे भी उनके पीछे लगे, पर उनकी कोई दाल नहीं गली। दिन-भर इधर-उधर घूमने के बाद सन्ध्या में उसे एक धर्मशाला में जगह मिल गई। धर्मशाला के फाटक पर ही एक भोजनालय था, जिसमें निम्न श्रेणी के लोग भोजन करते थे। विजय कंचना के साथ उसी होटल में भोजन करने गया। एक ही कौर खाने के बाद कंचना का हाथ रुक गया। विजय ने पूछा—'क्यों, अच्छा नहीं लग रहा है?'

कंचना ने सिर हिलाकर कहा—'नहीं, मुझे तो मालूम होता है उल्टी हो जाएगी।'

उन्हीं की बगल में एक युवक भी खा रहा था। उसने हँसते हुए कहा—'आपके खाने लायक यह भोजन थोड़े है। इसमें तो कुली और मजदूर सस्ती दर में भोजन प्राप्त कर अपना पेट भर लिया करते हैं। आपको तो ताजमहल होटल में ठहरना चाहिए था।'

विजय ने पूछा—'आप भी तो यहीं भोजन करते हैं।'

उस युवक ने उत्तर दिया—'मैं कोई बड़ा आदमी नहीं हूँ। कुछ इधर-उधर काम कर लेता हूँ और जो कुछ आय होती है उससे अपने जीवन का निर्वाह करता हूँ।'

विजय—'कोई मुझे भी रोजी लगाइए। मैं तो आज ही सवेरे की गाड़ी से अपनी पत्नी के साथ इलाहाबाद से आ रहा हूँ। यहाँ के आदमियों में मैं बन्धुत्व की भावना नहीं देख रहा हूँ। कोई भी व्यक्ति सहानुभूति के शब्दों में बात नहीं करता है। जिधर जाओ उधर ही व्यंग। लोग मेरी पत्नी को देखकर मुस्करा उठते हैं और कई आदमी तो इसके साथ हँसी-मजाक भी कर बैठे हैं।'

उस युवक ने उत्तर दिया—'भाई साहब, केवल इसी शहर की बात नहीं है। कलकत्ता, मद्रास दिल्ली श्रादि सभी बड़े शहरों में अधिकांश लोग इसी तरह के होते हैं जो दूसरों को विपत्ति में फँसे हुए देखकर उसकी परिस्थिति से लाभ उठाना चाहते हैं। बात इसमें ऐसी है कि हम लोगों का नैतिक स्तर नीचे गिर गया है। खैर जाने दीजिए इन बातों को, आप कैसी नौकरी चाहते हैं?'

तब तक विजय के आगे की थाली साफ हो चुकी थी। मेज से उठते हुए उसने कहा—'आइये मेरे कमरे में, स्थिर चित्त से बातें करूँगा।'

उसके साथ कंचना भी उठकर कल पर हाथ धोने आई। उसने धीरे से विजय को कहा—'एक अपरिचित आदमी के साथ इतनी घनिष्ठता मत बढ़ाओ। तुमको क्या पता कि यह कैसा आदमी है?'

विजय—'अच्छा हो या बुरा, मेरा क्या बिगाड़ लेगा?'

दोनों जब होटल के पैसे देकर अपने कमरे में जाने लगे तब वह युवक भी उनके साथ लग गया। अपने कमरे में प्रवेश कर विजय उस युवक को अपना दुःख-सुख कहने लगा और कंचना उनके साथ न बैठकर एक ओर कोने में बैठकर किसी मासिक-पत्रिका के पन्ने उलटने लगी। फिर भी उसका ध्यान उनकी बातचीत की ही ओर था। विजय ने जब उस युवक से अपनी सारी कठिनाई कह सुनायी, तब युवक ने उसके साथ सहानुभूति प्रकट करते हुए कहा—'मेरा स्वतन्त्र पेशा है। किसी कम्पनी में अगर काम करूँगा तो यही न पचास या सौ रुपए मिलेंगे, किन्तु बम्बई ऐसे शहर के लिए सौ रुपया कोई चीज नहीं है। अपने पेशे में मुझे किसी महीना में पाँच सौ भी मिल जाते हैं और किसी महीने में हजार रुपए भी। मेरे कहने का—तात्पर्य है कि अगर आप भी मेरे ही पेशे को अपनावें तो आपके सामने अभाव नाम की कोई वस्तु नहीं रहेगी और सुख से आपकी जिन्दगी कटेगी और आपके पास साधन भी अच्छा है। इसलिए आप मुझसे अधिक धनोपार्जन कर सकते हैं।'

विजय ने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा—'मेरे पास वह कौन-सा साधन है?'

युवक ने कंचना की ओर देखा। वह दीवार के सहारे बैठी ऊँघ रही थी और हाथ की पत्रिका नीचे गिरी हुई थी। उसने कहा—'आपको तो मालूम ही है कि इण्डिया हालीवुड बम्बई ही है। यहाँ सुन्दर नारियाँ जो सिनेमा में प्रवेश

कर जाती हैं अपने परिवार के लिए धनोपार्जन काएक अच्छा साधन बन जाती हैं। क्या आप जानते नहीं हैं कि अच्छे-अच्छे घरों की सुशिक्षित लड़कियाँ फिल्मों में काम करके काफी बैंक-बैलेन्स बना रही हैं ? मैं लड़कियों को ठेके पर फिल्मों में ले जाता हूँ। इससे उनकी भी अच्छी आय हो जाती है और मुझे भी कम्पनी की ओर से काफी कमीशन मिल जाता है। इससे फिल्म कम्पनी वाले भी प्रसन्न रहते हैं, लड़कियाँ भी प्रसन्न रहती हैं और मैं भी प्रसन्न रहता हूँ। आप भी इसी पेशे को अपनावें और आपकी पत्नी को मैं किसी फिल्म कम्पनी में भर्त्ती करवा देता हूँ।'

विजय—'धन्धा तो आपने बहुत ही अच्छा बतलाया। आपके साथ रहकर मैं यह काम सीख जाऊँगा, किन्तु कंचना तो शायद फिल्म में काम करने के लिए तैयार नहीं होगी।'

युवक—'आप घबराते क्यों हैं ? थोड़े से प्रलोभन में लड़कियाँ फिसल जाती हैं। जब इसके सामने मैं सब्ज बाग लगाऊँगा तो बिना बुलाये यह उसमें प्रवेश कर जाएगी। कल मैं आऊँगा और आपको बुलाकर पार्कों और मैदानों में ले चलूँगा और आप देखेंगे कि परिचित लड़कियाँ किस प्रकार मेरे पीछे पड़ती हैं और नई लड़कियों से मैं किस प्रकार अपना सम्पर्क स्थापित करता हूँ और कैसे उनको अपने जाल में फाँसता हूँ।'

विजय ने हँसते हुए कहा—'ठीक है, कल आप आएँगे तो मैं आपके साथ चलूँगा, आप रहते कहाँ हैं ?'

युवक—'मैं तो मातुँगा में रहता हूँ। मेरा अपना मकान है और वह मकान भी मैंने इसी पेशे से खरीदा है। उसमें कुल आठ कमरे हैं जिनमें छः तो भाड़े पर लगे हैं और दो में मैं स्वयं रहता हूँ।'

विजय—'तो क्या आप मेरे लिए एक कमरे का प्रबन्ध नहीं कर सकते हैं ?'

युवक—'हाँ, क्यों नहीं कर सकता हूँ ? मैं अपना ही एक कमरा आपको दे दूँगा।'

विजय—'आपको कष्ट होगा।'

युवक—'कष्ट क्या होगा ? मैं अपना एक कमरा आपको खुशी से दे सकता हूँ।'

विजय—'अच्छा, कल सवेरे आप आइए तो मैं आपके साथ चलकर आपका

मकान देखूंगा।'

युवक—'आप मेरी प्रतीक्षा करेंगे, मैं आठ-नौ वजे आऊँगा।' और वह युवक चला गया।

विजय ने कंचना की ओर देखा। वह बैठे-ही-बैठे नींद खींच रही थी। विजय ने बिछावन किया और उसकी बाँह धर कर उस पर सुला दिया। पीछे किवाड़ बन्द कर स्वयं भी सो गया। दिन-भर के थके-माँदे रहने के कारण उसे भी नींद आ गई। पर सोने के पहले वह अपने भावी जीवन का चित्र खींचता रहा। वह भी अपने नए मित्र के धन्धे को अपनाकर हजारों रुपये का उपार्जन करेगा और इसी बम्बई शहर में अपने लिए मकान और मोटर खरीदेगा। और कंचना के कारण उसकी आय भी विशेष रूप से होगी।

सवेरे बहुत देर तक दोनों सोये रहे। आठ वजे किवाड़ में किसी के धक्का देने से उसकी नींद टूटी। पर कंचना ने आँखें खोलकर पुनः बन्द कर लीं। विजय ने किवाड़ खोला। उसने देखा कि उसका मित्र पान चबाता हुआ मुस्करा रहा है। उसने विजय से पूछा—'बहुत देर तक सोए ?'

विजय—'थकावट के कारण।' और उसके साथ वह कमरे में प्रवेश कर गया। कंचना की साड़ी अस्तव्यस्त थी। नया आगन्तुक उसकी ओर छिपी नजरों से देख रहा था। उसकी साड़ी के कोर को खींच कर उसकी जाँघ को ढँकते हुए विजय ने कहा—'उठो न ?'

कंचना ने पुनः आँखें खोलीं और सामने उस युवक को देखकर सम्भल कर उठ बैठी।

युवक ने कहा—'अच्छा आप लोग हाथ-मुँह धोएँ, मैं बाहर बैठता हूँ।'

उसके चले जाने पर कंचना ने कहा—'क्यों इस आदमी को तुमने बुलाया ? इससे सम्पर्क बढ़ाकर तुम स्वयं रोओगे, मेरा कुछ नहीं बिगड़ेगा ? मेरे भाग्य में तो आजन्म रोना लिखा ही है।'

विजय—'तो क्या इसके सम्पर्क में आकर तुम सभी को छोड़ दोगी ?'

कंचना—'मैं क्या छोड़ूंगी ? तुम स्वयं मुझको छोड़ दोगे।'

विजय ने पुनः हँसते हुए कहा—'ऐसा नहीं हो सकता है मेरी रानी ?'

बिछावन से उठकर दोनों ने हाथ-मुँह धोए, स्नान किया और कुछ जलपान कर उस युवक के साथ मातुङ्गा में उसका मकान देखने गये। मकान तो एक-

तल्ला ही था पर बहुत सुन्दर था। उसके आगे छोटा-सा पार्क था, जिसमें कुछ फूलों के पेड़ लगे थे। चार-पाच बेंच भी रखे थे और पार्क के मध्य में पानी का एक हौज बना हुआ था। उस दृश्य को देखकर कंचना का मन प्रफुल्लित हो उठा। उसने कहा—'हाँ यह मकान मिल जाय तो अच्छा हो।'

युवक ने मुस्कराते हुए कहा—'आपकी सेवा में मैं सारा मकान समर्पित कर सकता हूँ, एक कमरा की कौन सी बात ?'

अपने बगल का कमरा उस युवक ने उन्हें दे दिया। विजय धर्मशाला से सामान लेने चला गया। कंचना ने उस युवक से पूछा—'आपने अपना नाम तो हमें बतलाया ही नहीं।'

युवक ने उत्तर दिया—'आपने पूछा कब ? जो मैंने अपना नाम नहीं बतलाया ? मेरा नाम लालचन्द खरे है।' आप घबराइए नहीं, मैं आपके लिए बहुत ही सुन्दर व्यवस्था कर दूँगा।'

बातें हो ही रही थीं कि ताँगा पर अपना सामान लिए विजय पहुँच गया। लालचन्द खरे के नौकर ने उसका सारा सासान ताँगा से उतार कर कमरे में रख दिया। खरे ने अपनी एक मेज और दो कुर्सियाँ भी उन्हें दे दीं। इनके अतिरिक्त कुछ देवताओं, नेताओं और कुछ अभिनेताओं तथा अभिनेत्रियों की तस्वीरें भी दीं। कमरा सजाने में बारह बज गए। लालचन्द खरे ने कंचना से कहा—'आपने तो अपनी सजावट से इस कमरे को आकर्षक बना दिया। आप में तो कलाएँ हैं परन्तु इसकी पहचान सम्भवतः मेरे मित्र को भी नहीं है।'

उसकी बातों पर कंचना मुस्करा उठी और विजय हँसने लगा। खरे ने कहा—'बारह बज गये। चलिए भोजन किया जाय।'

विजय ने पूछा—'क्या होटल समीप है ?'

खरे—'होटल में नहीं, आपको मेरे यहाँ भोजन करना होगा।'

कंचना—'यह तो उचित नहीं होगा ?'

खरे—'आज आपको मेरा निमन्त्रण अतिथि के रूप में स्वीकार करना होगा।'

विजय ने कहा—'अच्छा स्वीकार है।'

खरे के साथ दोनों उसके चौका में गये। रोटी, भात, कई तरह की दाल, तरकारियाँ, अचार और चटनी थी। पकौड़ी थी। घर का जमाया

हुआ दही था जो खाने में बहुत अच्छा मालूम हुआ। बड़े प्रेम से दोनों ने भोजन किया। विजय ने कहा—'घर छोड़ने के बाद आज ही सुन्दर भोजन मिला है, जिससे मुझे पूरी संतुष्टि हुई है।'

उसका समर्थन करते हुए कंचना ने कहा—'हाँ, भोजन तो स्वादिष्ट और सुन्दर मिला। अगर सच पूछो तो प्रेमशंकर के घर छोड़ने के बाद आज ही मेरे मन-लायक भोजन मिला है।'

लालचन्द खरे ने अपने मन में कहा—'मेरी गोटी ठीक घर में बैठी है।'

अपने मुँह से निकली हुई बातों के लिए कंचना को तत्काल पश्चात्ताप हुआ। उसने बातें बदल कर झट कहा—'आप यहाँ अकेले रहते हैं? आपकी पत्नी और बाल-बच्चे कहाँ हैं?'

खरे—'वे सब घर पर हैं। एक-दो महीने के बाद आवेंगे। तब तक एक रसोइया मैंने रख लिया है। उसी की तैयार की हुई यह रसोई है।'

कंचना—'अच्छा, धन्यवाद।'

दोनों हाथ धोकर अपने कमरे में चले गये और संध्या को छः बजे सिनेमा देखने गए। बारह बजे जब वे लौटे तो खरे के यहाँ ही भोजन किया। खरे ने कहा—'आप लोग मेरे ही चौका में सदा भोजन कीजिए। जो व्यय बैठेगा, उसे दे दीजियेगा।'

विजय के बोलने के पूर्व ही कंचना ने कहा—'ठीक है। कौन रसोईघर में मरेगा?'

साथ रहने और साथ खाने-पीने से खरे की घनिष्ठता उनके साथ बढ़ती गई। विजय उसके साथ फिल्म कम्पनियों को लड़कियाँ पहुँचाने लगा। कुछ दिनों के बाद खरे की राय से कंचना भी जाने लगी। पहले तो उसने आपत्ति की किन्तु बाद में आय की वृद्धि का खयाल कर उसने उसके विचार का स्वागत किया।

एक दिन फिल्म कम्पनी से जब कंचना लौट रही थी तब साथ में विजय नहीं था, खरे था। खरे ने उसके कन्धे पर हाथ धर कर कहा—'तुम विजय की पत्नी नहीं हो? अपने घर से भाग कर इसके साथ आई हो?'

कंचना ने चौंक कर कहा—'यह कैसे?'

उसके गाल पर एक हल्का चपत मारते हुए खरे ने कहा—'दिन-रात तो मैं यही काम करता हूँ, फिर उड़ने वाली चिड़िया को नहीं पहचानूँगा ?'

उसकी बातों का कंचना ने कोई उत्तर नहीं दिया । इससे खरे को अपनी बातों का समर्थन मिल गया । इधर-उधर देखकर उसने उसकी ठोड़ी पकड़कर उसके अधरों को चूम लिया और कहा—'कंचना, मैं तुम्हारे रूप पर मोहित हूँ । तुम अपना प्रेम-दान मुझे दो और मेरा सर्वस्व मुझसे ले लो । न तो मेरे स्त्री है और न बाल-बच्चे हैं । इस धन का उपभोग कौन करेगा ? विजय ऐसे निर्धन व्यक्ति के साथ में तुम कौन-सा सुख भोगोगी ? इसका साथ छोड़कर मेरी पत्नी बनना स्वीकार करो ।'

कंचना ने खरे की ओर देखा और मुस्करा उठी । उसके बाएँ हाथ को अपने हाथ में दबाते हुए खरे ने पूछा—'कहो कंचना, मेरा प्रस्ताव तुम्हें स्वीकार है ?'

कंचना ने कहा—'तुम अपनी सारी सम्पत्ति मुझे दे दोगे ?'

खरे—'मेरी सारी सम्पत्ति और प्रेम तुम्हारे चरणों पर समर्पित है ।'

कंचना ने मन में विचार किया—वास्तव में विजय के पास क्या रखा है ? वह तो मेरे ही उपार्जित धन पर जी रहा है । मैं फिल्मों में काम करती हूँ और वह बैठकर खाता है और सुख की नींद सोता है । खरे से सम्बन्ध जोड़कर मैं अपनी दीन-हीन किस्मत को चमका दूँ ।

खरे ने पुनः पूछा—'जल्द उत्तर दो, अब घर समीप आ गया ।'

कंचना खड़ी हो गई । खरे भी खड़ा होकर उसके मुख की ओर उत्तर पाने के लिए देखता रहा । कंचना ने कहा—'जिसके साथ मैं अपने घर से चली आई हूँ उसको एकाएक छोड़ देना ठीक नहीं होगा । उसके हृदय पर आघात पहुँचेगा । इसलिए धीरे-धीरे उससे मैं किनारा करती जाऊँगी और मेरा-तुम्हारा प्रेम बढ़ता जाएगा । इसका अन्तिम परिणाम यही निकलेगा कि वह स्वयं मुझे छोड़कर भाग जाएगा और उसके बाद मेरा तुम्हारे घर में निष्कंटक राज्य स्थापित हो जाएगा ।'

खरे के हर्ष की सीमा न रही । उसने कहा—'तुम्हारी बुद्धिमानी पर मैं दंग रह गया । ठीक है, अभी से अपने विचारों को कार्य में परिणत कर दो ।'

कंचना कुछ बोलना ही चाहती थी कि उधर से विजय आता हुआ दीख

पड़ा । कंचना के मुँह की बात मुँह में ही रह गई । विजय ने समीप आकर पूछा—'यहाँ तुम लोग क्यों खड़े हो ?'

कंचना ने हँसकर कहा—'क्या तुमको संदेह हो रहा है ?'

उसके इस निर्लज्जतापूर्ण उत्तर पर विजय को क्रोध आ गया । उसने कहा—'फिल्मों में जाकर तुम्हारी आँखों का पानी गिर गया । कोई भी सभ्य नारी इस तरह का उत्तर दे सकती है ?'

कंचना ने भी क्रोध में आकर उत्तर दिया—'तुम्हारे समान निकम्मे पुरुष को पाकर अगर मैंने अपनी लज्जा खो दी और मेरी आँखों का पानी गिर गया तो इसमें कौन-सा आश्चर्य ? तुम घर में बैठे रहते हो और मैं फिल्मों में काम करके पैसे लाती हूँ तो खाते हो और सिनेमा देखते हो ।'

कंचना ने अभी जो कुछ कहा था, वह सत्य था । इसलिए उसके प्रतिवाद में विजय के मुख से एक शब्द भी नहीं निकला । पर उसकी बातें उसे तीर के समान लगीं । वह तिलमिला उठा । कंचना आगे बढ़ गई । उसके पीछे खरे चला, परन्तु विजय वहीं पार्क में एक बैंच पर बैठ गया । घर के अन्दर प्रवेश करते हुए पीछे की ओर देखकर कंचना ने कहा—'खरे, तुम्हारा भाग्य अच्छा है । अभी से अनबन शुरू हो गई ।'

खरे ने मुस्कराते हुए कहा—'मेरे भाग्य का बनना और बिगड़ना तुम्हारी कृपा पर निर्भर करता है । तुम मेरे मन मन्दिर में वास करती हो, मैं तुम्हारा पुजारी हूँ । मैं तुमसे प्रेम की भीख माँगता हूँ ।'

कंचना—'घबराओ नहीं, विजय पुनः इलाहाबाद का पथ पकड़ेगा और मेरा-तुम्हारा संसार बसेगा ।'

इसके बाद कंचना अपने कमरे में जाकर बत्ती जलाकर बैठ गई और कुछ सुखद-स्वप्न देखने लगी । इधर पार्क में बैठकर विजय अपने भाग्य पर रो रहा था । वह अपने मन में कह रहा था—'कर्म मनुष्य का साथ नहीं छोड़ता है । जो जैसा करता है, वह वैसा फल पाता है । मैंने राजा उपाध्याय का घर उजाड़ दिया और यह साँपिन उसे डंस कर मेरे साथ भाग आई । मनुष्य जिस शस्त्र से दूसरों की हत्या करता है उसी शस्त्र से उसकी भी हत्या होती है । इस साँपिन को मैंने अपने गले का हार समझा था परन्तु इसने मुझे भी डंस लिया । यह खरे के प्रेम में फँस गई है । इस बम्बइया धूर्त को वह नहीं पहचान पाई है ।

जिस प्रकार इसने राजा उपाध्याय को रुलाया और आज मुझको रुला रही है, उसी प्रकार एक दिन स्वयं भी रोएगी ।'

बहुत देर तक वह अपने इन्हीं विचारों में खोया रहा। पार्क में एक ही विद्युत स्तम्भ था। उसी से चारों ओर रोशनी फैल रही थी। कुछ लोग दूब पर बैठे थे और कुछ लोग बैंच पर। सब लोग हास-परिहास में लगे थे परन्तु विजय अपनी समस्या के सुलझाने में व्यस्त था। वह कुछ निर्णय नहीं कर पा रहा था कि वह कंचना को छोड़कर अपने घर लौट जाय या उसे साथ लेकर किसी दूसरे शहर में चला जाय। उसने अपने मन में कहा—राजा उपाध्याय ने कंचना को ठीक कहा था कि यह अनेक घाटों का पानी पी चुकी है। इसकी आँखों का पानी गिर चुका है। यह कब किसके साथ रहे और किसके साथ जाय, नहीं कहा जा सकता है। ऐसी नारी से अगर मुक्ति मिल जाय वही उत्तम है। फिर भी जहाँ वह कंचना को छोड़ने का निश्चय करता था वहाँ उसे एक प्रकार का मोह घेर लेता था। उसका हृदय उसे छोड़ना नहीं चाहता था। कंचना ऐसी सौन्दर्य की प्रतिमा को छोड़ने का प्रश्न जब भी उसके सामने उपस्थित होता था, तभी उसके हृदय में एक प्रकार की पीड़ा मालूम होती थी। कंचना के लिए उसने नौकरी छोड़ी और माता-पिता को भूल गया, उस कंचना को उससे खरे छीन लेगा, यह कभी नहीं हो सकता है। वह अपने मन को यही उत्तर देकर सांत्वना देता था।

इसी बीच पीछे से एक आदमी ने उसका ध्यान भंग करते हुए पूछा—'क्या लालचन्द खरे का मकान यही है ?'

'हाँ, यही तो है।' कहते हुए विजय ने गर्दन टेढ़ी कर पीछे की ओर देखा। अपने पिता लखन जी को खड़े देखकर उसे आश्चर्य हुआ। वह सन्न रह गया। विजय को पाकर लखन जी को जितना आनन्द हुआ उतना ही क्रोध भी चढ़ा। विजय ने उनका चरणस्पर्श किया और उन्हें अपने साथ लेकर अपने मकान में गया। खिड़की से ही लखन जी ने देखा कि किसी पुरुष के साथ कंचना हँस-हँस कर बातें कर रही है और कह रही है, 'मैंने ऐसा अनुपम सौन्दर्य पाया है कि इस पर पुरुष परवाने के समान मर रहे हैं।'

कमरे में प्रवेश करते हुए लखन जी ने कहा—'अवश्य इस दीप-शिखा पर कितने परवाने मरे हैं, मर रहे हैं और आगे भी मरेंगे। और, यह भी सही है

कि इस दीप-शिखा से कितने घर जल कर खाक हो जाएँगे।'

परिचित-सी ग्रावाज सुनकर कंचना चौंक उठी। तब तक लखन जी उसके सामने ग्राकर खड़े हो गए। उन्हें देखते ही वह नतमस्तक होकर खड़ी हो गई। उसके मुखड़े पर लज्जा स्पष्ट रूप ले दीख पड़ती थी। लखन जी ने कहा—'कंचना, तुमने ग्रपने पाप को छिपाने के लिए मेरे समान वृद्ध के चरित्र पर दोषारोपण किया ग्रौर वैसी ही तुम्हारे पिता की बुद्धि हुई कि उन्होंने विना सोचे-समझे तुम्हारी बातों पर विश्वास कर लिया। मुझे नौकरी छूटने की थोड़ी भी चिन्ता नहीं रही, चिन्ता हुई ग्रपने चरित्र के विरुद्ध तुम्हारा ग्रभि-योग सुनकर। तुमको मैं ग्रपनी बेटी के समान मानता रहा ग्रौर उसी दृष्टि से देखता रहा, फिर भी तुमने मुझे रसातल में पहुँचा दिया। चरित्र पर लगाया गया ग्राक्षेप ऐसा ग्राक्षेप होता है कि सहसा उस पर लोग विश्वास कर लेते हैं। उस समय मैं ऐसा लज्जित हुग्रा कि बनारस से चलने के समय मैंने किसी से भेंट नहीं की ग्रौर न पुनः बनारस गया। खैर, जो परिणाम सामने ग्राया, उसे तुमने ग्रौर तुम्हारे पिता ने भी देख लिया। ग्राज तुम भारतीय नारी की मान-मर्यादा को ग्रपने पैरों तले मसल कर कामी पुरुषों की वासना की शान्ति का एक साधन बन गई हो। तुमने जिस विजय से प्रेम किया है वह मेरा पुत्र है। यह भी ऐसा ग्रयोग्य ग्रौर पतित निकला कि पराई स्त्री से प्रेम करने लगा ग्रौर तुम्हारे नयनबाण से घायल हो गया। सम्भव है कि किसी जन्म में मैंने तुम्हारा कुछ बिगाड़ा होगा, इसीलिए ग्राज तुमने मेरा घर उजाड़ दिया। तुमने ग्रपने सौन्दर्य को ग्राकर्षण का एक ग्रच्छा साधन समझा है। खैर, गुलाब की कली के समान जब तक तुम मुस्करा रही हो, सैकड़ों ग्रौर हजारों भौंरे तुम्हारे पराग के स्वाद लेने के लिए तुम्हारे ग्रधरों पर बैठेंगे, किन्तु जिस दिन खिलकर मुरझा जाग्रोगी उस दिन कोई नहीं पूछेगा। यह सौन्दर्य की दीप-शिखा जिस दिन बुझ जाएगी, उस दिन परवाने इस पर मरने नहीं ग्रावेंगे।'

क्रोध में लखनजी ग्रौर क्या-क्या बोल गए, स्वयं उन्हीं को पीछे स्मरण नहीं रहा। उनकी बातों पर कंचना की ग्राँखों से ग्राँसू गिर रहे थे। उसने ग्रपने हृदय में साहस बटोर कर रुँधे कण्ठ से कहा—'पिताजी, ग्रब ग्रधिक कुछ मत कहिए।'

उसकी इस विनय पर लखनजी को दया आ गई। वे जो कुछ बोल गए

उसके लिए उन्हें पश्चात्ताप हुआ। खाट पर बैठते हुए उन्होंने अपने सामने अपने एक अपरिचित पुरुष से प्रश्न किया—'क्या आप ही का नाम लालचन्द खरे है ?'

उसने नमस्ते करते हुए कहा—'मेरा ही नाम लालचन्द खरे है ?'

उसे धन्यवाद देते हुए लखन जी ने कहा—'अच्छा हुआ जो आपने मुझे पत्र लिख दिया। आज एक वर्ष से विजय के लिए हम लोग व्याकुल थे। इसकी स्त्री ने तो अन्न-पानी का परित्याग कर दिया है और मरने की अवस्था में पहुंच गई है। आपको मेरा पता कैसे मालूम हुआ ?'

खरे इसे खोलना नहीं चाहता था, परन्तु लखन जी के बार-बार के हठ के कारण उसे कहना पड़ा। उसने उत्तर दिया—'विजय की डायरी से मुझे उसके घर का पता चला।'

उसकी बातों पर विजय और कंचना दोनों को क्रोध आ गया। जब लखन जी कपड़े उतार कर स्नान करने चले गए और विजय उनके लिए जलपान लाने चला गया, तब एकांत पाकर कंचना ने खरे से पूछा—'तुमने इन्हें पत्र क्यों लिख दिया।'

खरे ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया—'इसलिए कि विजय के शिकार का उपभोग मैं कर सकूँ।'

इस पर कंचना झँझला उठी। इसी बीच विजय आ गया जिससे वह कुछ न बोल सकी।

रात में लखन जी ने वहीं भोजन और विश्राम किया। सवेरे चायपान करने के बाद वे थाने में गए और दारोगा को उन्होंने एकान्त में बुलाकर कहा—'महाशय, मातुंगा में लालचन्द खरे नामक आदमी रहता है। वास्तव में वह लालचन्द खरे नहीं है। वह है बनारस का नामी गुण्डा मोहना का साथी मधवा। परन्तु मोहना पढ़ा-लिखा नहीं है, मूर्ख है और यह पढ़ा-लिखा और होशियार आदमी है। इसने कितनों की हत्या की है और न मालूम कितनी लूट-पाट की है। औरतों का अपहरण, ठगी और चोरी इसके लिए मामूली-सी बात है। नोट बनाने और दीवान गौरीशंकर को डुबाने के मामले में यह कई वर्षों से फरार है। पुलिस इसकी खोज कर रही है। आप इसे गिरफ्तार कीजिए, मैं गवाह हूँगा।'

दारोगा ने फरार व्यक्तियों की लिस्ट लेकर देखी। उसमें मधवा का नाम भी था। उस पर लूट, मार, हत्या, अपहरण और चोरी, डकैती तथा जालसाजी के कई अभियोग थे। दारोगा उसी समय खादी की पोशाक में दो सिपाहियों को लेकर लखन जी के साथ उसके मकान पर गया। उस समय मधवा मोहना का पत्र जो अभी कलकत्ता से आया था, बड़े ध्यान से पढ़ रहा था। पत्र अ ब स जानने वाले का लिखा हुआ था, इसलिए साफ पढ़ने में नहीं आ रहा था। कमरे में प्रवेश करते हुए लखन जी ने उससे पूछा—'कहिए खरे साहब, घर से चिट्ठी आई है क्या?'

खरे—'हाँ, बाबूजी, घर से ही पत्र आया है। बड़ी महँगी है। अन्न-वस्त्र के बिना लोग मर रहे हैं और सरकार कुछ ध्यान नहीं दे रही है।'

'सरकार अवश्य ध्यान देगी।' कहते हुए दारोगा ने मधवा का हाथ पकड़ लिया। मधवा ने चौंककर ऊपर की ओर देखा। अपने को दारोगा के हाथ में देखकर वह सन्न हो गया। उसने पूछा—'दारोगा जी, आपने मुझे क्यों पकड़ा है?'

दारोगा—'तुम्हारा नाम मधवा है?'

'जी नहीं, मेरा नाम लालचन्द खरे है।' मधवा ने उत्तर दिया।

'खरे, मैं तुमको बनारस भेज देता हूँ। वहाँ तुम साबित करना कि तुम खरे हो या मधवा।' कहते हुए दारोगा ने उसे हथकड़ी लगा दी और दूसरे दिन बनारस भेज दिया। बनारस में उस पर मामला चला। वह अपने को लाल-चन्द खरे प्रमाणित नहीं कर सका और पुलिस ने प्रमाणित कर दिया कि वह मधवा है। सेशन ने उस पर लगाए गये अभियोगों पर विचार कर उसे आजन्म कारावास की सजा दे दी। उसके पीछे मोहना को भी कलकत्ता से पकड़कर लाया गया और उसे भी आजन्म कालापानी की सजा दी गई।

मधवा की गिरफ्तारी के बाद विजय को मालूम हुआ कि वह मकान उसका नहीं था, बल्कि वह उसने ठेके पर ले रखा था और बाजार से युवतियों को फँसाकर वहाँ लाता था तथा उनकी खरीद-बिक्री करता था।

जब लखन जी विजय के साथ अपने घर जाने लगे तब कंचना ने उदास और खिन्न होकर उनसे पूछा—'पिताजी, मेरा कौन सहारा होगा? मैं क्या

करूँ ?'

उसकी बातों पर लखन जी को दया आ गई। उन्होंने कहा—'अगर विजय की शादी नहीं हुई होती तो तुम दोनों का विवाह मैं कर देता, किन्तु इसके घर में तो पत्नी है। मेरे साथ चलो। मैं तुम्हें बनारस तुम्हारे पिता के पास पहुँचा दूँगा और उनसे तुम्हारी ओर से आग्रह करूँगा कि तुम्हारे अपराध को वे भूल जायँ और तुम्हें क्षमा प्रदान करें। फिर तुम्हारी शादी का प्रबन्ध हो जाएगा।

कंचना—'अब मैं क्या शादी करूँगी ? मुझ पतिता से कौन विवाह करेगा ?'

लखन जी—'खैर, वह तो बाद की बात है।'

२६

रघुनाथ चौबे के साथ प्रेमशंकर कलकत्ता भ्रमण के लिए पहुँचा। कलकत्ता महानगरी में यह उसका प्रथम आगमन था। जैसे नये आगन्तुक कलकत्ता को देखकर आश्चर्य-चकित रह जाते हैं उसी प्रकार प्रेमशंकर भी आश्चर्यचकित रह गया। कलकत्ता में वह एक महीना ठहरा। इस अवधि में उसने वहाँ का एक भी प्रसिद्ध स्थान नहीं छोड़ा और सिनेमा तथा थियेटर देखने ही में सारा समय व्यतीत कर दिया।

एक दिन संध्या को रघुनाथ चौबे प्रेमशंकर को साथ लेकर सोनागाछी पहुँचा। सोनागाछी रूप के बाजार की दृष्टि से कलकत्ता में अपना प्रमुख स्थान रखता है। वहाँ रूप के सौदे की बिक्री के लिए सूर्यास्त होते ही वासना के पुजारियों की भीड़ लग जाती है। प्रेमशंकर भी उन्हीं में से एक था। वहाँ पदार्पण करते ही, उसे लगा मानो वह परियों के लोक में आ गया है। चारों ओर रूप-ही-रूप बिखर रहा था। जिधर उसकी दृष्टि जाती थी उसी ओर कमनीय छटा लिए मुस्काते हुए मुखड़े दृष्टिगोचर हो रहे थे। वहाँ की परियों की लुभावनी सूरत ने प्रेमशंकर के मन को मोह लिया। उनके रूप को देखकर वह उन्हीं में खो गया। परन्तु उसका ध्यान उनकी बेबसी की ओर नहीं गया।

उसने यह नहीं सोचा कि आखिर ये कुल-ललनाएँ चाँदी के चन्द टुकड़ों पर अपने यौवन, सौन्दर्य और सतीत्व को बेचने के लिए क्यों खड़ी हैं? प्रत्येक दरवाजे पर सुन्दर सुकुमारियाँ बन-ठन कर क्यों खड़ी हैं? ये देवियाँ अपने पूर्वजों की पगड़ियाँ खुले बाजार में क्यों बेच रही हैं? ये पुरुषों के समक्ष मोहक बनकर क्यों आती हैं और उनके आमोद-प्रमोद का साधन क्यों बनती हैं?

सूर्य ज्योंही अस्ताचल की ओर प्रस्थान करता है त्योंही ये नारियाँ अपने पापी पेट को भरने के लिए अपने रूप को सजाने लगती हैं। प्रकृति की देन में चार चाँद लगाने के लिए ये अपने शरीर को सुन्दर आभूषणों और चटकीले वस्त्रों से सजाती हैं। ये सुगन्धित द्रव्यों को लगाकर वायुमंडल को वासनामय बना देती हैं। दुनिया की दौलत सोना-चाँदी है और इनकी दौलत यही रूप है। यहाँ रूप और सोना-चाँदी में विनिमय होता है। पर सोना-चाँदी के सौदागर यहाँ से कुछ लेकर नहीं जाते बल्कि अपना सर्वस्व गँवाकर जाते हैं। हाँ, वे लेकर जाते हैं नाना प्रकार के रोग और बदनामी।

विद्युत के प्रकाश में पाउडर से पुते हुए मुखड़े प्रेमशंकर की दृष्टि में अति आकर्षक प्रतीत हुए। कण्ठ-कोकिलाओं के मधुर स्वरों से उसके हृदय में गुदगुदी पैदा हो गई।

इन बहिष्कृत नारियों को, जो अपने रूप, यौवन और जीवन को पुरुषों की इच्छा-तृप्ति के लिए लुटा देती हैं, पुरुष समाज वेश्या, गणिका और सदा सुहागिनों के नामों से पुकारता है।

प्रेमशंकर ने अपने मन में कहा—ऐसी ही रूप की परियाँ मुनियों का मन विचलित कर देती थीं और उनका ध्यान भंग कर देती थीं। कितनी अप्सराओं ने अपने रूप का प्रदर्शन कर ऋषियों और महात्माओं का तपोधन क्षण में ही लूट लिया। पर आज तो किसी के पास तपोधन नहीं है, केवल धन है। ये परियाँ यही धन लूटती हैं और इन्हें इसकी आवश्यकता है। भला तपस्वियों का तपोधन लेकर ये क्या करेंगी? यहाँ कौन इन्द्र बैठा हुआ है, जो इनका भय मानेगा?'

यही सोचते-सोचते वह एक कोठे पर चढ़ गया। दरवाजे पर खड़ी एक दासी उसे अन्दर एक कमरे में ले गई। कमरे की सजावट ने ही प्रेमशंकर और रघुनाथ चौबे का मन मोह लिया। फर्श पर दरी बिछी थी और उस पर

मखमल की चादर। दो मसनद भी वहाँ पड़े थे। दासी ने दोनों को आदर-पूर्वक केस गद्दी पर बैठा दिया। प्रेमकर की दृष्टि दीवारों पर गई जिन पर मादकता से परिपूर्ण अश्लील चित्र टँगे थे। स्त्री और पुरुष के मिलन के नग्न चित्रों के प्रदर्शन थे। खिड़कियों पर फूलों के गुच्छे थे और अलमारी में रंगीन बोतलें नारी के समान ही मादकता लिए अपने साकी की ओर देख रही थीं। इतनी आकर्षक वस्तुएँ भरी थीं फिर भी प्रेमशंकर को कुछ अभाव खटक रहा था। उसने दासी की ओर देखा। दासी को उसके हृदय का भाव समझने में देर न लगी। उसने कहा—'बाबूजी, दो मिनट धैर्य रखें, आपकी सेवा में आपकी प्राणेश्वरी आ रही हैं। आप ही के लिए वह तैयार हो रही हैं।' बातें हो ही रही थीं कि एक सुन्दर नारी अपने अलौकिक रूप और यौवन को लेकर उनके सामने आ गई और मुस्कराकर बड़े अदब के साथ आदाब बजाकर वह प्रेमशंकर के सामने बैठ गई। प्रेमशंकर ने नीचे से ऊपर तक उसको देखा। बिहारी की नायिका के समान उसने नख से शिख तक सौन्दर्य के साथ आकर्षण भरा था। मृगी-सी उसकी आँखें अजीब मादकता लिये प्रेमशंकर के हृदय पर आघात कर रही थीं। प्रेमशंकर उसके नयन-बाण से विह्वल हो उठा। वह उसे आलिंगन करने के लिए व्यग्र हो उठा। पर वह नारी उसके हाथों की पहुँच से दूर बैठी थी। उस नारी ने भी प्रेमशंकर को ऊपर से लेकर नीचे तक देखा। बनारस का वह रईस मलमल का कुर्त्ता और पल्ला की टोपी पहने बैठा था और मुख में पान चबा रहा था। वह भी कम रूपवान नहीं था। उसका भी सुन्दर वदन किसी भी नारी को एक क्षण में मोहित कर सकता था। वह दीवान साहब का पुत्र था। लक्ष्मी का वरद् हाथ उस पर था। सुरा और सुन्दरी के पीछे लाखों रुपये बर्बाद कर वह आज भी उसी तरह धनाढ्य बना हुआ है, जैसा कि दीवान साहब के जीवन-काल में था। हीरे-मोती की मालाएँ उसके गले में सुशोभित हो रही थीं और हीरा-जड़ित स्वर्ण मुद्रिकाएँ उसकी गोरी अंगुलियों की सुन्दरता को बढ़ा रही थीं।

आखें चार हुईं। नारी ने घृणा से अपनी आँखें नीचे कर लीं और अपने मन में कहने लगी—इस मानव ने सुन्दर शरीर पाया, पर सुन्दर हृदय नहीं पाया। मानवता को खोकर यह रूप का उपासक बना हुआ है। कितनी स्त्रियों के सतीत्व को लूटकर आज भी इसका वदन विहँस रहा है, इसका

मुखड़ा मलिन नहीं है। बल्कि मेरी ओर देखकर कंचन की वर्षा करना चाहता है, पर यह नहीं जानता है कि इसके कंचन ने कंचना और किशोरी के जीवन को बर्बाद कर दिया। कंचन सुपात्र के पास होना चाहिए जिसका सदुपयोग हो। दुर्व्यसनी के हाथ में लक्ष्मी की प्रतिष्ठा नहीं बचती है। पर न जाने लक्ष्मी को क्या मिलता है कि ऐसे ही पुरुषों के साथ वह रहती है।

इसी बीच उसका ध्यान भंग करते हुए दासी ने उसके हाथ में चमेली और बेला की कलियों की माला दी जिसे उस रूपसी ने अपने प्रेमी के गले में डाल दिया और प्रेमी ने भी अपने गले से मोती की माला निकाल कर सौन्दर्य की उस प्रतिमा के गले में डाल दी और उसका हाथ पकड़ लिया। इस पर उस नारी ने कहा—'उफ्, बाप रे, कलाई टूट गई।' और हँस दी।

उसके हँसने में जादू भरा था। प्रेमशंकर एकटक उसकी ओर देखता रहा। उसकी इच्छा हुई उसे अपने अंक में सिमेट लेने की। किन्तु रघुनाथ चौबे और दासी की उपस्थिति ने उसे कुछ लज्जा में डाल दिया। उसने रूपसी से अनुरोध करते हुए कहा—'सारी रात यों ही गुजर जाएगी या अपनी कुछ कला दिखाओगी?'

नारी के संकेत पर तबला, सारंगी, मंजीरा आदि बजने लगे और नारी के मधुर कंठ से मधुर स्वर निकल कर उस कमरे में गूँज उठा।

'मुझसे न भरी जाएगी, राजा तोहर पनियाँ।'······

और प्रेमशंकर झूम उठा। नारी का स्वर समाप्त होते ही बाजे भी बन्द हो गए। प्रेमशंकर ने उससे कहा—'तुमने तो मेरे हृदय को प्रफुल्लित कर दिया। कहो पारितोषिक में मैं तुमको क्या दूँ?'

उत्तर देने के समय नारी के अधरों पर न तो मुस्कराहट आई और न आनन्द में विभोर होकर उसने उस लखपति के आगे कुछ पाने की आशा से हाथ पसारा। प्रेमशंकर ने देखा कि उसकी आँखों में आँसू छलछला आए हैं और चाहने पर भी वह कुछ बोल नहीं पा रही है। प्रेमशंकर ने हँसते हुए कहा—'प्रिये मुझसे कुछ माँगो।'

दासी उस रूपसी को प्रेमशंकर के गले के हीरे के हार को संकेत से बतलाती रह गई, पर उसने उसके लिए कोई आतुरता नहीं दिखलाई। प्रेमशंकर के बार-बार के आग्रह पर उसने कातर स्वर में कहा—'प्रेमशंकर, कृपया हम अबलाओं

के जीवन के साथ खेला मत करो ।'

उसके मुख से अपना नाम सुनकर वह चौंक पड़ा । वह बड़े गौर के साथ उसके मुखड़े की ओर देखने लगा । उसकी ठोड़ी पर काले तिल के दाग ने प्रेमशंकर को उस नारी के पहचानने में बड़ी सहायता पहुँचाई । उसके मुख से सहसा निकल पड़ा—'कौन – किशोरी ?'

और उत्तर में किशोरी की आँखों से दो बूँद आँसू टपक पड़े । वहाँ बिल्कुल निस्तब्धता छा गई । उस रहस्य को न तो रघुनाथ चौबे समझ सके और न दासी । बहुत देर तक मौन रहने के बाद प्रेमशंकर ने रघुनाथ चौबे और दासी को उस कमरे से चले जाने को कहा । परन्तु किशोरी ने आपत्ति की और कहा—'इन्हें यहीं बैठने दो । मेरे इस शरीर में कोई सार नहीं रह गया है जिससे मैं तुम्हारा स्वागत कर सकूँगी । जिस जीवन को तुमने नीरस करके छोड़ा, वह आज सूखे प्रसून के समान इस बाजार में पड़ा है । मैं क्या जानती थी कि तुम्हारा आलिंगन मेरे जीवन को बर्बाद करके छोड़ेगा और तुम्हारा प्रेम एक दिन मुझे वेश्या बनने के लिए बाध्य करेगा ? मुस्कराती हुई कली को तोड़कर तुमने सूँघ लिया और अपने पैरों तले मसल दिया । मेरा रोना भी तुम्हारी दृष्टि में मेरा अपराध समझा गया । तुम्हारे ही कारण आज मैं सैकड़ों पुरुषों के लिए भोग-विलास का साधन बनी हुई हूँ और आँसू की लड़ियों को पिरोती हुई जिन्दगी काट रही हूँ । आत्मा बेचकर पेट पाल रही हूँ । इससे बढ़कर मेरे लिए निन्दनीय काम कौन हो सकता है ?'

प्रेमशंकर ने कोई उत्तर नहीं दिया । वह उसके सम्बन्ध में और कुछ जानने की इच्छा से उसके मुखड़े की ओर देखता रहा । किशोरी ने कहा—'बनारस से मोहना के साथ मैं कलकत्ता आई । मोहना ने प्रथम मेरे सौन्दर्य लूटने की चेष्टा की और जब वह अपने प्रयत्न में सफल नहीं हुआ तब उसने अपने किसी मित्र की सहायता से मेरी हत्या करनी चाही । पर भाग्य को ऐसा दिन देखना था तो फिर मृत्यु के आलिंगन के लिए क्यों तैयारा होती ? मौत के मुख से मैं भाग निकली और अन्धेरी रात में भटकती हुई इस बाजार में पहुँच गई । उस समय मेरा कौन ठिकाना था । कहीं भी आश्रय पाने की व्यग्रता थी । जिसे तुम दासी कहते हो उसे मैं माँ कहती हूँ । इसी ने उस अर्द्ध-रात्रि में मुझे शरण दी । यह भी दुर्दिन की मारी हुई है । [illegible] के हाथ अपने

कौमार्य में ही अपना यौवन और सौन्दर्य लुटाकर लोक-निन्दा से बचने के लिए कलकत्ता भाग आई और अपने पास जो कुछ सौदा शेष रह गया था उसी को बेचकर खाती रही। पर जब यौवन ढल चला और सुन्दरता खो गई तब इस नीरस और सूखे हुए पुष्प की ओर भौंरे क्यों देखें? अतएव इसका भी जीवन दुख से कटने लगा। इसी बीच मुझे पाकर इसने अपने भाग्य के सितारे का उदय समझा और बहुत कुछ समझा-बुझाकर अपने पास रख लिया। परन्तु दूसरे दिन जब मुझे वेश्यावृत्ति स्वीकार करने को कहा तो मेरे रोंगटे खड़े हो गए, मेरा हृदय काँप उठा और मेरी आत्मा रो पड़ी। पर अपने समान दूसरी नारियों को भी मैंने देखा। उन्हीं की तरह यह नरक का जीवन मुझे भी आकर्षक प्रतीत हुआ। अतएव मैंने भी उन्हीं के समान रहकर अपना जीवन व्यतीत करने का निर्णय किया। किन्तु जब मैं अपना रूप सजाकर बैठ गई और संध्या से ढलती रात तक जब नित्य दस-बारह पुरुष मेरे पास आने लगे और मुझे अपने आमोद-प्रमोद का खिलौना समझ कर जब मेरे साथ खेलने लगे तब मेरा मन इस जीवन से ऊब गया। परन्तु जब पतन होने लगता है तब वह रुकने को नहीं रहता है। हिमालय से निकलने के बाद नदी जब तक नीचे आते-आते अपना अस्तित्व खतम नहीं कर लेती है तब तक नहीं रुकती है। यही हालत नारी की भी है। जब वह अपने ऊँचे सिद्धांत से गिरती है तब गिरती ही जाती है और जब तक उसका अधःपतन नहीं हो जाता तब तक वह नहीं रुकती है। अब उसके नीचे वह कहाँ जाय? नरक ही तो पाप का आखिरी दंड है। मेरा जीवन भी तो नारकीय जीवन है। पुरुष कहते हैं कि तुम्हारे शरीर से सुगन्ध निकलती है, किन्तु मैं कहती हूँ कि मेरे शरीर से दुर्गन्ध निकलती है। पर दुर्गन्ध ही अगर उनको प्रिय है तो मैं क्या करूँ? अस्तु, मैं तुमसे पूछना चाहती हूँ कि आखिर मेरे इस नारकीय जीवन के लिए उत्तरदायी कौन है? मैं हूँ या तुम हो?'

कुछ देर सोचने के बाद प्रेमशंकर ने कहा—'तुम्हारे इस जीवन के लिए सारा दोष मेरा है। मैंने ही अपनी इच्छा की तृप्ति के लिए नाना प्रकार के प्रलोभन देकर अपनी पत्नी स्वीकार कर तुम्हारा जीवन बर्बाद किया। आज तुमको वेश्या के रूप में देख कर अतीत की सारी घटनाएँ मेरी आँखों के सामने चक्कर काट रही हैं और मुझे दुख हो रहा है। मैं नहीं कह सकता कि तुम्हारी अवस्था में कंचन कहाँ होगी? मेरी इच्छा होती है कि तुम इस जीवन का

परित्याग कर दो और मुझसे भी विलग रहो, किन्तु जितनी सम्पत्ति की तुम्हें आवश्यकता हो उतनी सम्पत्ति मुझसे ले लो और सात्त्विक जीवन व्यतीत करो।'

किशोरी ने काँपते हुए उसे उत्तर दिया—'अरे ना रे बाबा, तुम बहुत ही निर्दयी और जालिम व्यक्ति हो। तुम्हारा कौन-सा विश्वास। अगर दूसरा कोई पुरुष ऐसा कहता तो मैं कुछ विचार भी करती, किन्तु तुम्हारी बातों का कौन-सा विश्वास। मेरे जीवन की जो शृंखला चल रही है वह भी टूट जाएगी। उस स्थिति में मैं कौड़ी की तीन हो जाऊँगी। अपना विचार अपने पास रखो, मुझे अब कोई प्रलोभन मत दिखलाओ। रात काफी बीत गई—अब जाओ।'

उसकी बातों पर प्रेमशंकर वहाँ से उठ पड़ा। उसके पीछे रघुनाथ चौबे भी चल पड़ा। मकान से जब वे नीचे आए और सड़क पर आगे बढ़ने लगे तब दो सिपाहियों ने उन्हें पकड़ लिया और पूछा—'तुम्हें मालूम नहीं कि बारह बजे रात के बाद वेश्या के यहाँ जाना अपराध है। अपनी वासना की तृप्ति के लिए तुम कानून का उल्लंघन करते हो? प्रेमशंकर भयभीत हो उठा। रघुनाथ चौबे ने अपनी जेब से दस रुपये का एक नोट निकाल कर उन्हें दिया और उन्होंने इसके बदले उन्हें मुक्त कर दिया। प्रेमशंकर वहाँ से उदास और खिन्न होकर आगे बढ़ा। किशोरी की वेश्यावृत्ति का पेशा देखकर वह विह्वल हो उठा। उसके हृदय पर उसका बहुत बड़ा असर पड़ा। टैक्सी को उसे चौरंगी पहुँचाने में देर न लगी। एक होटल में जहाँ उसका निवास-स्थान था, वह बिना कुछ खाये-पिये पड़ गया। रात-भर उसे नींद नहीं आई। उसकी आँखों के सामने वेश्या के रूप में खड़ी किशोरी रो रही थी और उसके शरीर से वास्तव में दुर्गन्ध आ रही थी। उसका मन अशान्त हो उठा। किशोरी को वेश्या बनाने और कंचना को बाजारों में बिकने का उत्तरदायित्व उसने अपने ऊपर लिया। उसने अपने मन में सोचा कि जब तक उसका उद्धार नहीं होगा तब तक उसकी आत्मा को शान्ति नहीं मिलेगी और उसकी आत्मा रोती रहेगी। उसने निश्चय किया कि कल दोपहर को वह किशोरी के पास जाएगा और बाँह धर कर सोनागाछी से लाकर उसका उद्धार करेगा। अपनी वासना की तृप्ति के लिए नहीं, बल्कि मानवता की रक्षा के लिए। किशोरी ने मेरी आँखें खोल दी हैं। वास्तव में मैंने किशोरी और कंचना के जीवन से खिलवाड़ की। अपनी इच्छा की पूर्ति के लिये मैंने उनके जीवन को बर्बाद किया। यह सोचते-सोचते उसे नींद आ गई।

इधर जब पुलिस प्रेमशंकर और रघुनाथ चौबे की डाँट-डपट कर रही थी किशोरी अपने जीवन पर सोचकर रो रही थी। उसने अपने मन में कहा— वेश्यां का जीवन ऐसा घृणित है कि समाज और कानून की दृष्टि में इसके समीप आना दंडनीय है और उसी जीवन को अपनाकर हम कुछ गौरवान्वित होती हैं।

इसी बीच दासी ने उससे कहा—'उठो क्या सोच रही हो? अतीत की घटनाओं पर आँसू बहाना उचित नहीं।'

किशोरी ने उठकर साड़ी बदली और जाकर सो गई। पर ठीक से उसे नींद नहीं आई। कभी वह अपने ऊपर सोचती और कभी कंचना के ऊपर; कभी प्रेमशंकर के ऊपर और कभी मोहना के ऊपर। जब किसी सेठ के घर पर दरवान ने चार की घण्टी मारी तब उसकी आँखें लगने लगीं। वह सो गई और काफी दिन चढ़ने तक सोती रही। लगभग दस बजे दिन में दासी ने आकर कहा— 'बेटी, काफी देर हुई, उठकर हाथ-मुँह धोओ।'

किशोरी उठ बैठी। उसने घड़ी की ओर देखा, वास्तव में दस बज गए थे। सब दिन किशोरी घर पर ही स्नान करती थी, किन्तु उस दिन वह गंगाजी अपनी दासी के साथ स्नान करने गई। स्नान करके उसने संन्यासी, फकीर और दीन-दुखियों को काफी दान दिया। उसके दान को देखकर बहुत-सी सेठानियाँ भी लज्जित हो गईं, जो एक पैसा किसी भिखमंगे को देकर अपने को दानी समझती हैं या गाय को एक लड्डू खिलाकर गौरवान्वित हो उठती हैं। घर लौटने के समय किशोरी ने एक मिष्टान्न भण्डार में अपनी दासी के साथ मिठाइयाँ खाईं और उसी के फाटक पर पान की एक दुकान थी, उससे पान लेकर खाया।

घर पहुँचकर किशोरी अपने शृंगार में लग गई। दीवाल में लगे हुए स्वच्छ दर्पण में किशोरी का प्रतिविम्ब पान खाता हुआ मुस्करा रहा था। कभी वह हाथ में कंघी लेकर बाल सँवारता था, कभी कमीज का कालर ठीक करता था और कभी अपने कोमल कपोलों पर स्नो लगाता था। आज किशोरी के सौन्दर्य से वह दर्पण भी अपने मन में सुन्दरता का अनुभव कर रहा था।

अपने रूप को देखकर किशोरी को गौरव हो रहा था और वह सोच रही थी कि उसकी रूप-शिखा पर कितने परवाने आकर जल गए, किन्तु उसकी ज्योति ज्यों-की-त्यों जल रही है। फिर भी उसने उस रूप-शिखा की लौ में

कालिमा की क्षीण रेखा देखी, जिस पर दृष्टि जाते ही उसके मुखड़े पर उदासी छा गई। कुर्सी खींचकर वह दर्पण के सामने बैठ गई और सर पर हाथ धर-कर कुछ सोचने लगी। उसके हृदय में अतीत की घटनाओं का स्मरण तूफान-सा काम कर रहा था। सर्वप्रथम उसके सामने उसका बाल्यकाल आया। वह फुलवारियों में फूल चुनती थी, मालाएँ बनाती थी, पहनती थी और बच्चों के साथ हँस-खेल कर दिन व्यतीत करती थी और संध्या होते ही भूत-प्रेत के भय से बूढ़ी दादी की गोद में छिपकर-सो जाती थी। उसके बाद छलकता हुआ यौवन आया जो अपने साथ उसके लिए आकर्षण भी लाया। उस समय उसे काली घटाओं में दर्द, पपीहे की बोली में व्याकुलता, कोयल की कुहुक में बेचैनी और वासन्ती हवा में पागलपन का अनुभव हो रहा था। जिस समय वह यौवन की मादकता में बेहोश थी, उसी समय प्रेमशंकर ने उसे प्रेम की सुरा पिलाकर और भी मदहोश कर दिया। मदमाती दुनिया में वह कहाँ तक गई उसे कुछ भी न पता चला। अपनी उस दशा में उसने माँ-बाप को छोड़ दिया, स्वजनों को भुला दिया और लोक-लज्जा का परित्याग कर दिया। वह दीवानी बन गई थी। प्रेमशंकर के अतिरिक्त उसके लिए संसार में दूसरा कोई नहीं था। पर प्रेमशंकर उसे तब वीरान मालूम हुआ जब उसका नशा उतर गया और वह दीवान साहब के महल से दूध की मक्खी के समान निकाल कर फेंक दी गई। उसी यौवन की भूल और प्रेम के नशे ने आज उसे इस अवस्था में लाकर छोड़ा है।

किशोरी गम्भीर चिन्ता में निमग्न होकर सोचने लगी—मैंने अपनी इस बीस वर्ष की अवस्था में बहुत-सी विपत्तियों का सामना किया है। वर्तमान जीवन से मेरा मन ऊब गया है। इस परित्याग के लिए आत्मा व्याकुल हो रही है। इच्छा होती है कि किसी अनाथालय में जाकर शरण लूं? पर कुछ निश्चय नहीं कर पा रही हूँ। क्या करूँ कुछ समझ में नहीं आता है?'

जिस समय वह इन विचारों में निमग्न थी, उसी समय उसकी दासी ने आकर कहा—'एक भद्र पुरुष तुमसे मिलने के लिए खड़े हैं।'

किशोरी ने दोतल्ले से झाँककर नीचे की ओर देखा। प्रेमशंकर को पहचानने में उसे देर न लगी। उसने अपने मन में कहा—अब वह यहाँ क्या करने आया है? अब मेरा उद्धार इसकी शक्ति के बाहर की बात है? वह लौटकर कमरे

में वापस आई और दासी को अपने पास बुलाकर उसने कहा—'मैं जाती हूँ और सदा के लिए जाती हूँ। इस घर की सारी सम्पत्ति तुम्हारी है। एक स्वामिनी की भाँति तुम इसका उपभोग करो।'

दासी ने कहा—'सम्पत्ति लेकर मैं क्या करूँगी ? जहाँ तुम चलोगी वहाँ मैं भी चलूँगी।'

किशोरी ने दुःख प्रकट करते हुए कहा—'तुम मेरे साथ नहीं जा सकती हो। जहाँ से मैं आई हूँ वहीं पुनः जा रही हूँ और वहाँ से मुझे पुनः वापस आना नहीं है।'

दासी ने उसके कहने का आशय नहीं समझा। वह एकटक उसकी ओर देखती रही। किशोरी ने अलमारी से एक बोतल निकाली जिस पर लिखा हुआ था 'विष'। उसने एक बार बोतल की ओर देखा और फिर सारे संसार को देख लिया। उसके सुकुमार अधरों पर एक हल्की-सी मुस्कराहट आई और विलीन हो गई। उसके बाद उस बोतल का तरल पदार्थ उसके मुख में प्रवेश करने लगा। क्षण में ही उसकी आँखें बन्द हो गईं और उसके पैर लड़खड़ाने लगे। देखते-देखते वह धरती पर धड़ाम से गिर पड़ी। दासी चिल्ला उठी। प्रेमशंकर दौड़कर ऊपर आया। वह अधीर होकर उसे उठाने लगा। पर किशोरी इस संसार में नहीं थी। उसकी आत्मा नश्वर शरीर का परित्याग कर किसी अन्य लोक में चली गई थी। यह दृश्य देखकर प्रेमशंकर की आँखों से आँसू की बूंदें किशोरी की बिखरी हुई लटों पर गिरने लगीं और दासी छाती पीटकर रोने लगी।

आस-पास के लोग भी आ गए। किशोरी का मृत शरीर फर्श पर पड़ा था। उसे देखकर मालूम होता था कि वह मरी नहीं है, पर अर्द्धनिद्रा में सोई हुई है। उसकी खुली हुई आँखों को देखकर एक वेश्या गुनगुना उठी—'उड़ि गैले सुग्गवा ताकेला दोनों नयना हो रामा।'

प्रेमशंकर ने उस नारी की ओर देखकर रुँधे कण्ठ से कहा—'देवि, तुमने बहुत ही ठीक कहा। प्राण पंछी के उड़ जाने से यह शरीर पिंजड़े के समान रह जाता है। रात से अभी तक जो घटनाएँ मेरे सामने घटी हैं उनसे मेरे हृदय पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा है। मेरी दृष्टि में संसार तुच्छ प्रतीत हो रहा है। धर्म-कर्म से विमुख होना अपनी आत्मा के प्रति अन्याय करना है।

मानव धर्म तो यही कहता है कि ऐसा कार्य मत करो, जिससे दूसरों की आत्मा को पीड़ा पहुँचे। इस तथ्य का पता तो मुझे अब चला है, जब कि किशोरी मेरी काली करतूतों का मुझे स्मरण दिलाकर स्वयं किसी दूसरे लोक में भाग गई। इसने मेरे पापों के कारण संसार से नाता तोड़ लिया। इसका नश्वर शरीर मेरी आँखों के सामने पड़ा है किन्तु इसकी आत्मा किसी और लोक में विचरती होगी। किशोरी ने मर कर मुझे कल्याण का पथ दिखला दिया है और उसने बतला दिया है कि इस नश्वर शरीर में सौन्दर्य नहीं है वरन् हृदय में सौन्दर्य है। हृदय के सौन्दर्य पर आकर्षित होना चाहिये, शरीर में क्या रखा है? सजावट से शरीर को सुन्दर न बनाकर हृदय को सुन्दर बनाना चाहिए। पवित्र हृदय के व्यक्ति को सदा सद्गति मिलती है।'

अन्य नर-नारियों ने उसके कथन का समर्थन किया। दासी ने रोते हुए कहा—बाबूजी, इसके दाह 'संस्कार का प्रबन्ध कर दो।'

प्रेमशंकर के प्रयत्न से शीघ्र ही अर्थी सजाई गई और नीमतल्ला घाट में उसका दाह-संस्कार प्रेमशंकर ने स्वयं अपने हाथों से किया। जिस समय किशोरी की चिता धू-धू कर जल रही थी, उस समय प्रेमशंकर को मालूम हो रहा था कि संसार उसको काटने के लिए मुँह बाए खड़ा है। वह रो रहा है, परन्तु किशोरी की आत्मा अपने पापी शरीर को जलते हुए देख कर हँसती होगी। उसकी आत्मा मानो उससे कह रही है कि संसार में न कोई कुछ लेकर आया है और न कुछ लेकर जाएगा। भला या बुरा कर्म ही प्राणी के अन्तिम क्षण में साथ देता है। कर्म छाया के समान जीवात्मा का साथ नहीं छोड़ता है। आत्मा कर्म के अधीन है। अपने कर्म के अनुसार उसे फल भोगना ही पड़ता है।

जब तक वह इन्हीं चिन्ताओं में डूबा रहा तब तक किशोरी का मृत शरीर जलकर भस्म हो गया और पाँचों तत्व अपने-अपने स्वरूप में मिल गए। शरीर का अवशेष माँ गंगा की पवित्र धारा में प्रवाहित कर प्रेमशंकर चौरंगी अपने होटल में गया। उसका उतरा हुआ चेहरा देखकर रघुनाथ चौबे को आश्चर्य हुआ। उसने पूछा—'बाबूजी, ऐसा क्यों?'

खाट पर लेटते हुए प्रेमशंकर ने रघुनाथ चौबे से सारी कहानी कह सुनाई। रघुनाथ चौबे के हृदय में चाहे जो कुछ बीता हो परन्तु ऊपर से उसने किशोरी

की आत्महत्या पर दुःख प्रकट किया, और कहा—'बाबूजी, यह नश्वर जगत है। इसमें जो जन्म लेता है वह अवश्य मरता है। इसलिए इस शरीर के लिए चिन्ता करना व्यर्थ है।'

प्रेमशंकर—'जो कुछ हो, पर किशारी ने केवल मेरे कारण आत्महत्या की है। मेरे ही कारण वह चाँदी के चन्द टुकड़ों पर अपनी आत्मा बेचती थी। उसने मेरे सामने अपने जीवन का अन्त कर यह दिखला दिया है कि पुरुष-समाज के कपट का नारी समाज को कैसा परिणाम भोगना पड़ता है ? मेरे मन में वैराग्य उत्पन्न हो गया है। अब तक मैं नारी को ही आत्मा की तुष्टि के लिए और अपने आनन्द के लिए सबसे उत्तम साधन समझता था, पर किशोरी ने बतला दिया कि यह मेरी भूल थी। वासना की पूर्ति में आनन्द नहीं है, बल्कि वासना के दमन में आनन्द है। इस नाशवान शरीर में कुछ नहीं रखा है। यौवन ढलता है, सौन्दर्य नष्ट होता है और जीवन का अन्त होता है। यही संसार है। इसी के लिए दुनिया मरती है। पर इसमें कुछ नहीं है। किशोरी ने आत्महत्या करके शरीर छोड़ा है, पर मैं आत्महत्या नहीं करूँगा। नाशवान संसार को अपनी आँखों के सामने नाश होते देखूंगा। इसे अवसर नहीं दूंगा कि वह मेरा नाश देखे। मेरे पूर्वजों ने लाखों की सम्पत्ति एकत्रित कर दी, जिसका मूल्य आज मेरी दृष्टि में नहीं के बराबर है। इस धन का मैं कौन-सा उपभोग करूँ ? आज तक तो मैंने इसका उपभोग नारियों के सतीत्व लूटने, मद्य-पान करने आदि में ही किया और अगर यह मेरे पास रह जाएगा तो संसार से मैं विलग नहीं हो सकूंगा। प्रेमनाथ ने एक बार कहा था कि चेत सिंह को धोखा देकर और राष्ट्र के साथ विश्वासघात करके मेरे पूर्वजों ने यह सम्पत्ति अंग्रेजों से पाई थी, इसलिए यह धन कलुषित है। इस धन से मेरे कुल का गौरव नहीं बढ़ रहा है बल्कि कलंक के टीके को सुरक्षित रखा जा रहा है। आज उस कलंक को दूर करने के लिए मैं इस धनराशि को खत्म कर दूंगा।'

रघुनाथ चौबे ने सोचा कि किशोरी की आत्महत्या से प्रेमशंकर का मस्तिष्क खराब हो गया है। इसलिए उसने उससे कहा—'आप सो जाएँ।'

प्रेमशंक ने कहा—'मुझे पागल मत समझिये चौबेजी, मेरा मस्तिष्क ठीक है। इस जलते हुए संसार से अपनी रक्षा के लिए अपनी विपुल सम्पत्ति को इसी में स्वाहा कर देना चाहता हूँ, अनाथों और गरीबों में इसे बाँटकर स्वयं

राह का भिखारी बनकर अपने पूर्वजों का उद्धार करूँगा।'

रघुनाथ चौबे उसकी ओर देख रहे थे। प्रेमशंकर ने उससे पूछा--'चौबे-जी, आपको कितना रुपया दे दूँ, जिससे आपको पुनः नौकरी या इस प्रपंच का सहारा नहीं लेना पड़े।'

रघुनाथ चौबे उसका मुख देख रहा था। प्रेमशंकर ने कहा--'बोलिए, मैं मजाक नहीं कर रहा हूँ।'

रघुनाथ चौबे ने कहा—'बीस हजार रुपये से मेरा काम चल जायेगा। इसीसे मेरी जिन्दगी कट जाएगी।'

प्रेमशंकर ने रघुनाथ चौबे को अपने साथ में लिया और वह हावड़ा स्टेशन आया। फिर बनारस जाने वाली गाड़ी से अपने घर के लिए चल पड़ा। दूसरे दिन घर पहुँच कर बीस हजार रुपये रघुनाथ चौबे को देकर उसने विदा कर दिया। फिर उसके कोष में जो कुछ सम्पत्ति रही और जो अचल सम्पत्ति रही, उसे उसने अनाथ महिलाओं, बच्चों के पालन-पोषण और वेश्याओं के उद्धार में लगाना चाहा और स्वयं संन्यासी का जीवन व्यतीत करने के ध्येय से ठाकुर जयपाल सिंह के यहाँ गया। ठाकुर जयपाल सिंह ने उससे कहा--'अभी किशोरी की आत्महत्या से तुम्हारी बुद्धि ठीक नहीं है। तुम घबरा गये हो। अभी शान्त रहो। शीघ्रता में आकर कोई काम करने से पश्चात्ताप करना पड़ता है।'

प्रेमशंकर ने उनके विचारों का स्वागत करते हुए कहा--'आपकी आज्ञा शिरोधार्य है।'

२७

कंचना लखन जी के साथ काशी में अपने पिता के मकान पर पहुंची। उस समय अतीत की सारी घटनाएँ एक बार उसके मस्तिष्क में चक्कर काट गईं। इन्हीं लखन जी की आज्ञा का उल्लंघन कर वह प्रेमशंकर के यहाँ चली गई थी और इन्हीं पर दोषारोपण कर इनको नौकरी से हटवा दिया। फिर पिता के

बतलाये हुए मार्ग का अनुसरण न कर प्राण के मोह से उसने माँ गंगा के आँचल में न छिपकर प्रेमशंकर के अंक में ही जाकर विश्राम लिया। पर उसका अंक जिसे उसने फूल की शैया समझा था, काँटों से भी भयानक निकला और उसमें लेटते ही उसका कोमल शरीर छिन्न-भिन्न हो गया। उसने अपने मन में पुनः कहा कि केवल उसका शरीर ही छिन्न-भिन्न नहीं हुआ बल्कि जीवन भी छिन्न-भिन्न हो गया। आज वह पतिता बनकर यहाँ आई है। उसका मस्तक नत है। पिता की इच्छा के ऊपर निर्भर करता है, चाहे वह उसे रखे या न रखे।

गेट पर पुराने दरबान ने लखन जी को झुककर सलाम किया और वक्र दृष्टि से वह कंचना की ओर देखने लगा। कंचना ने भी उसकी ओर देखा और अपना सर नीचे झुका लिया। वहाँ से दोनों आगे बढ़े। नौकर-चाकर कोई नजर नहीं आए। दोतल्ले पर पहुँचकर उन्होंने देखा कि उनके समय के एक पुराने चपरासी के अतिरिक्त कोई नहीं है। उसने लखन जी को सलाम किया और मुस्कराते हुए कंचना की ओर देखकर कहा—'नमस्ते।' उसकी मुस्कराहट में व्यंग की भावना भरी थी। कंचना को क्रोध आया, पर वह कुछ बोल न सकी। लखन जी ने पूछा—'अरे, बाबू कहाँ ?'

उसने दो कुर्सियाँ उनके सामने लाकर रख दीं। दोनों उस पर बैठ गए। लखन जी ने उत्सुकतापूर्वक उसकी ओर देखा। वह कुछ बोलना ही चाहता था कि नीचे से दरबान भी आ पहुँचा। लखन जी ने उससे पूछा—'कहो दरबान, कुशल तो है न ? तुम्हारे मालिक कहाँ ?'

दरबान ने कहा—'बाबू जी, नारी कुल की प्रतिष्ठा है। इसके ऊँच-नीच में पैर धरने से कुल की प्रतिष्ठा मिट्टी में मिल जाती है। प्रथम बार जिस दिन कंचना प्रेमशंकर के सम्पर्क में आई, उसी दिन मैंने कहा कि यह कुल में कलंक लगायेगी और जब मैंने प्रेमशंकर को यहाँ से जाने को कहा तब यह मेरी ओर इस प्रकार क्रोध की दृष्टि से देखने लगी मानो यह मुझे निगल जाएगी। इसी के कारण आपको भी हटना पड़ा। इसने जो कुछ किया वैसा किसी ने नहीं किया। पर मालिक की ममता इसके लिए ज्यों-की-त्यों थी। जब उन्होंने सुना कि अनाथालय में जाकर वह बिक गई तब उनके हृदय पर बहुत बड़ी चोट पहुँची, शोक से वे विह्वल हो गये और अस्वस्थ रहने लगे। उन्होंने समझा कि उनकी मृत्यु अब समीप आ गई है।

मृत्यु का नाम सुनकर कंचना बड़ी व्यग्रता और उत्सुकता की दृष्टि से उसकी ओर देखने लगी। दरवान ने कहा —'मालिक ने अनाथालय के सेक्रेटरी ठाकुर जयपाल सिंह से कंचना की खोज करने का आग्रह किया। ठाकुर साहब बड़े दयालु आदमी हैं। ब्रह्महत्या उन्होंने अवश्य की किन्तु उसके बाद जो उनमें परिवर्तन हुआ वह दूसरों में नहीं देखा गया। ठाकुर साहब ने अपने पौत्र प्रताप को इलाहाबाद इसे खोजने के लिए भेजा। वहाँ इसका पति राजा उपाध्याय प्रताप को देखते ही अधीर होकर रोने लगा और कहा कि प्रताप बाबू मैं तो उजड़ गया। प्रताप ने उसे बहुत धैर्य बँधाया और उसे बनारस ले आया। ठाकुर साहब ने उसे अपने गाँव में पाँच एकड़ जमीन मुफ्त दे दी और अनाथालय की किसी अधेड़ औरत से उसका विवाह कराकर उन्होंने उसके उजड़े घर को बसा दिया। खैर, राजा उपाध्याय ने ठाकुर साहब को बतलाया कि कंचना उसे छोड़कर किसी छोकरे के साथ बम्बई भाग गई। ठाकुर साहब ने इसकी सूचना मालिक को दी। मालिक यह सुनते ही सन्न रह गये। उन्होंने ठाकुर साहब को बुलाकर अपनी सारी सम्पत्ति का वसीयतनामा कंचना के नाम से कर दिया है और उसमें यह भी लिख दिया है कि कंचना के पता न चलने पर सारी सम्पत्ति का स्वामी प्रताप होगा। इसके कागजात ठाकुर साहब के पास रखे हुए हैं।'

लखन जी ने पूछा— 'और फिर ?'

दरवान--'और फिर क्या ? वसीयतनामा लिखने के दो दिन बाद प्रेमनाथ जी संसार से चल बसे।'

लखन जी—'प्रेमनाथ जी संसार से चल बसे ?'

दरबान--'जी हाँ, वे अब संसार में नहीं रहे।'

लखन जी तो यह सुनकर मौन रह गए, परन्तु कंचना अधीर होकर रोने लगी। लखन जी के बहुत समझाने-बुझाने पर उसका रोना बन्द हुआ। फिर गंगा जी जाकर कंचना ने स्नान किया और पिता के नाम पर तर्पण किया। उसके पास में तो पैसे थे नहीं कि वह दान-पुण्य करती। दिल मसोस कर वह घर लौट आई। दरबान ने उनके लिए भोजन बनाया। लखन जी और कंचना ने भोजन किया। इसके बाद कंचना तो सोने चली गई और लखन जी अनाथालय में गये। ठाकुर जयपाल सिंह उस समय वहीं थे। लखन जी ने उन्हें नमस्ते करते

हुए अपना परिचय दिया। ठाकुर साहब ने उनसे मिलकर प्रसन्नता प्रकट की और कहा कि कंचना का कहीं पता नहीं मिल रहा है और प्रेमनाथ जी ने वसीयतनामा मेरे पास रख दिया है। अगर वह नहीं मिलेगी तो मैं क्या करूँगा ?'

लखन जी—'करना क्या है ? सारी सम्पत्ति के अधिकारी आप हुए।'

ठाकुर साहब—'राम, राम, ऐसी बात मत बोलिए। दूसरे के धन का उपभोग कर कोई भी व्यक्ति सुख और शांतिपूर्वक नहीं रह सकता है। वह धन विष के समान काम करता है। बेईमानी, शैतानी और पाप से जो धन एकत्रित होता है वह मनुष्य को चैन नहीं लेने देता है, और वह धन अपने जाने का रास्ता स्वयं बनाकर जाता है। इसलिए ऐसे धन की ओर देखना नहीं चाहिये। वैसे तो उन्होंने लिख दिया है कि कंचना के न मिलने पर उस धन का अधिकारी प्रताप होगा। परन्तु मैं ऐसा नहीं चाहता।'

लखन जी—'कंचना तो आ गई है मेरे साथ।'

यह सुनकर ठाकुर साहब को बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने कहा—'बहुत अच्छा हुआ। मेरा उत्तरदायित्व खत्म हुआ। उसकी वस्तु उसको सौंप कर मैं शान्ति की साँस ले सकूँगा।'

लखन जी ने हँसते हुए कहा—'आपके महान विचार से मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। आपका त्यागमय जीवन दूसरों के लिए अनुकरणीय है। लेकिन मुझे और कुछ कहना है।'

ठाकुर साहब—'क्या ?'

लखन जी—'कंचना तो पतिता बन गई है। उसका उद्धार कर दीजिये।'

ठाकुर साहब—'वह कैसे ?'

लखन जी—'आप प्रताप की शादी उससे कर दीजिए। उससे कंचना का उद्धार भी हो जायेगा और उसकी सारी सम्पत्ति आपके हाथों में आ जाएगी।'

ठाकुर साहब—'जहाँ तक सम्पत्ति का प्रश्न है उसके लिए मेरे मन में थोड़ा भी प्रलोभन नहीं है। उस सम्पत्ति को मैं मिट्टी से भी तुच्छ समझ रहा हूँ। रहा प्रश्न प्रताप के साथ उसके विवाह का। यह तो प्रताप की इच्छा के ऊपर निर्भर करता है। अगर प्रताप उससे विवाह करना चाहे तो कर सकता है, मेरी ओर से कोई आपत्ति नहीं होगी। परन्तु प्रताप पर मैं इसके लिए दबाव

नहीं डाल सकता हूँ। क्योंकि शादी-विवाह जीवन-मरण का सौदा है। अगर शादी इच्छा के विरुद्ध हुई तो दाम्पत्य-जीवन सुखमय नहीं होता है। प्रताप प्रेमा से विवाह करना चाहता है और प्रेमा प्रताप से विवाह करना चाहती है। इसीलिए उसने अपने दरवाजे से प्रेमशंकर को वापस कर दिया। अगर भाग्य-वश धनुषधारी वहाँ नहीं पहुँचते तो बहुत बड़ा काण्ड हो जाता। स्थिति मैंने स्पष्ट कर दी है।'

'आपको धन्यवाद ! अच्छा मैं चलता हूँ कंचना के पास।' कहकर लखन जी ने विदा माँगी।

ठाकुर साहब ने कहा—'अच्छा, आप चलें मैं भी आ रहा हूँ।'

लखन जी ने कंचना के पास आकर कहा—'ठाकुर जयपाल सिंह आ रहे हैं। मैंने उनसे अनुरोध किया है कि प्रताप की शादी कंचना के साथ कर दीजिए।'

कंचना ने कहा—'नहीं पिता जी, मैं पतिता बन गई। मुझसे विवाह कर आप क्यों समाज की दृष्टि में गिरेगा और मैं भी अब शादी करना भी नहीं चाहती हूँ, क्योंकि इस उन्नीस-बीस वर्ष की अवस्था में मुझे संसार का बहुत बड़ा अनुभव हुआ है। आप लोगों की बातें नहीं मानने का परिणाम मुझे मिल गया है। मेरे माथे में कलंक की जो कालिमा लग चुकी है वह मानव-सेवा से ही दूर हो सकती है। मेरे जीवन के उद्धार का एकमात्र रास्ता यही है।'

बातें हो ही रही थीं कि ठाकुर जयपाल सिंह आ पहुँचे। लखन जी के संकेत पर कंचना ने उठकर उनका चरणस्पर्श किया और नतमस्तक होकर वह एक ओर खड़ी हो गई। ठाकुर साहब के कहने से वह बैठ गई। उसके हाथ में उसके पिता प्रेमनाथ का वसीयतनामा देते हुए ठाकुर साहब ने कहा—'बेटी, तुम्हारे आने से मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। अपना यह वसीयतनामा लो, मेरा उत्तरदायित्व खत्म हो गया।'

कंचना ने अपनी आँखों में आँसू भर कर कहा—'पिता जी, मेरे हाथों में वसीयतनामा देने से आपका उत्तरदायित्व कैसे खत्म होगा ? फिर मेरी देख-भाल करने का उत्तरदायित्व कौन लेगा ? आप अगर मेरी रक्षा का उत्तरदायित्व नहीं लेंगे तो इस पतिता की आगे क्या दशा होगी ?'

हुए अपना परिचय दिया। ठाकुर साहब ने उनसे मिलकर प्रसन्नता प्रकट की और कहा कि कंचना का कहीं पता नहीं मिल रहा है और प्रेमनाथ जी ने वसीयतनामा मेरे पास रख दिया है। अगर वह नहीं मिलेगी तो मैं क्या करूँगा ?'

लखन जी—'करना क्या है ? सारी सम्पत्ति के अधिकारी आप हुए।'

ठाकुर साहब—'राम, राम, ऐसी बात मत बोलिए। दूसरे के धन का उपभोग कर कोई भी व्यक्ति सुख और शांतिपूर्वक नहीं रह सकता है। वह धन विष के समान काम करता है। बेईमानी, शैतानी और पाप से जो धन एकत्रित होता है वह मनुष्य को चैन नहीं लेने देता है, और वह धन अपने जाने का रास्ता स्वयं बनाकर जाता है। इसलिए ऐसे धन की ओर देखना नहीं चाहिये। वैसे तो उन्होंने लिख दिया है कि कंचना के न मिलने पर उस धन का अधिकारी प्रताप होगा। परन्तु मैं ऐसा नहीं चाहता।'

लखन जी—'कंचना तो आ गई है मेरे साथ।'

यह सुनकर ठाकुर साहब को बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने कहा—'बहुत अच्छा हुआ। मेरा उत्तरदायित्व खत्म हुआ। उसकी वस्तु उसको सौंप कर मैं शान्ति की साँस ले सकूँगा।'

लखन जी ने हँसते हुए कहा—'आपके महान विचार से मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। आपका त्यागमय जीवन दूसरों के लिए अनुकरणीय है। लेकिन मुझे और कुछ कहना है।'

ठाकुर साहब—'क्या ?'

लखन जी—'कंचना तो पतिता बन गई है। उसका उद्धार कर दीजिये।'

ठाकुर साहब—'वह कैसे ?'

लखन जी—'आप प्रताप की शादी उससे कर दीजिए। उससे कंचना का उद्धार भी हो जायेगा और उसकी सारी सम्पत्ति आपके हाथों में आ जाएगी।'

ठाकुर साहब—'जहाँ तक सम्पत्ति का प्रश्न है उसके लिए मेरे मन में थोड़ा भी प्रलोभन नहीं है। उस सम्पत्ति को मैं मिट्टी से भी तुच्छ समझ रहा हूँ। रहा प्रश्न प्रताप के साथ उसके विवाह का। यह तो प्रताप की इच्छा के ऊपर निर्भर करता है। अगर प्रताप उससे विवाह करना चाहे तो कर सकता है, मेरी ओर से कोई आपत्ति नहीं होगी। परन्तु प्रताप पर मैं इसके लिए दबाव

नहीं डाल सकता हूँ। क्योंकि शादी-विवाह जीवन-मरण का सौदा है। अगर शादी इच्छा के विरुद्ध हुई तो दाम्पत्य-जीवन सुखमय नहीं होता है। प्रताप प्रेमा से विवाह करना चाहता है और प्रेमा प्रताप से विवाह करना चाहती है। इसीलिए उसने अपने दरवाजे से प्रेमशंकर को वापस कर दिया। अगर भाग्य-वश धनुषधारी वहाँ नहीं पहुँचते तो बहुत बड़ा काण्ड हो जाता। स्थिति मैंने स्पष्ट कर दी है।'

'आपको धन्यवाद! अच्छा मैं चलता हूँ कंचना के पास।' कहकर लखन जी ने विदा माँगी।

ठाकुर साहब ने कहा—'अच्छा, आप चलें मैं भी आ रहा हूँ।'

लखन जी ने कंचना के पास आकर कहा—'ठाकुर जयपाल सिंह आ रहे हैं। मैंने उनसे अनुरोध किया है कि प्रताप की शादी कंचना के साथ कर दीजिए।'

कंचना ने कहा—'नहीं पिता जी, मैं पतिता बन गई। मुझसे विवाह कर आप क्यों समाज की दृष्टि में गिरेगा और मैं भी अब शादी करना भी नहीं चाहती हूँ, क्योंकि इस उन्नीस-बीस वर्ष की अवस्था में मुझे संसार का बहुत बड़ा अनुभव हुआ है। आप लोगों की बातें नहीं मानने का परिणाम मुझे मिल गया है। मेरे माथे में कलंक की जो कालिमा लग चुकी है वह मानव-सेवा से ही दूर हो सकती है। मेरे जीवन के उद्धार का एकमात्र रास्ता यही है।'

बातें हो ही रही थीं कि ठाकुर जयपाल सिंह आ पहुँचे। लखन जी के संकेत पर कंचना ने उठकर उनका चरणस्पर्श किया और नतमस्तक होकर वह एक ओर खड़ी हो गई। ठाकुर साहब के कहने से वह बैठ गई। उसके हाथ में उसके पिता प्रेमनाथ का वसीयतनामा देते हुए ठाकुर साहब ने कहा—'बेटी, तुम्हारे आने से मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। अपना यह वसीयतनामा लो, मेरा उत्तरदायित्त्व खतम हो गया।'

कंचना ने अपनी आँखों में आँसू भर कर कहा—'पिता जी, मेरे हाथों में वसीयतनामा देने से आपका उत्तरदायित्व कैसे खतम होगा? फिर मेरी देख-भाल करने का उत्तरदायित्व कौन लेगा? आप अगर मेरी रक्षा का उत्तरदायित्व नहीं लेंगे तो इस पतिता की आगे कैसी सी दशा होगी?'

ठाकुर साहब ने समझा कि कंचना प्रताप के साथ विवाह करना चाहती है। उन्होंने कहा— 'बेटी, प्रताप को मैं शादी के लिए विवश नहीं कर सकता हूँ। अगर तुम उसको राजी कर लो तो मुझे कोई आपत्ति नहीं होगी।'

कंचना— 'नहीं पिता जी, मैं विवाह करना नहीं चाहती हूँ। मैं चाहती हूँ आपकी शरण में रहकर मानव-सेवा करना, अनाथ बच्चों और महिलाओं की सेवा करना।'

ठाकुर साहब—'परन्तु सेवा की एक अवस्था होती है। इस उम्र में सेवा का व्रत लेना तुम्हारे लिए कहाँ तक उचित होगा मैं नहीं कह सकता हूँ।'

कंचना—'पिता जी, मेरे पैर बार-बार फिसलते गए हैं, इसलिए आपको विश्वास दिलाती हूँ कि ठोकरें खाने के बाद मनुष्य के हृदय में चेतना आती है। अब मैं वैसा कोई काम नहीं करूँगी जिससे आपकी या आपकी संस्था की बदनामी हो। मेरे नाम से जो कुछ सम्पत्ति है उसे अनाथालय को दान देती हूँ। यह घर भी मैं अनाथालय को देती हूँ।'

ठाकुर साहब ने लखन जी की ओर देखा। लखन जी ने कहा—'जब इसकी यही इच्छा है तो आप इसके आग्रह को स्वीकार कीजिए।'

ठाकुर साहब ने कहा—'नहीं, लखन जी, इसकी सम्पत्ति अगर अनाथालय में मैं ले लेता हूँ तो लोग यही कहेंगे कि एक अबोध और अनाथ बालिका का धन ठाकुर साहब ने धोखा देकर ले लिया है, और आगे चलकर जब कोई कठिनाई होगी तो इसे पश्चात्ताप करना होगा। अभी इसका मस्तिष्क ठीक से काम नहीं कर रहा है। यह क्षुब्ध है। इसलिए ऐसा कह रही है। हृदय को शान्त करे तब पीछे काम किया जायेगा।'

इस पर कंचना ने कहा—'आपकी आज्ञा शिरोधार्य होगी।'

२८

आषाढ़ का महीना था। आकाश में काले-काले बादल इधर-उधर दौड़ रहे थे। पवित्र गंगा की धारा से ठंडी हवा आकर प्रेमा के शरीर को स्पर्श कर रही थी। उसके दरवाजे से हुस्नहिना की सुगन्ध-भरी हवा उसे पागल बना रही थी। बीच-बीच में चन्द्रमा बादलों की ओट से निकल कर उसकी दशा पर हँस उठता था। सारा संसार सोया हुआ था, परन्तु प्रकृति के सौन्दर्य के दिग्दर्शन कर अपार पीड़ा को दबाकर अपने मकान के दोतल्ले के कमरे में लेटी हुई प्रेमा की पलकें खुली हुई थीं। वह सोने का बहुत कुछ प्रयत्न कर रही थी, पर नींद उसकी आँखों से लाखों कोस दूर भाग रही थी। वह अपने भावी जीवन की समस्याओं के सुलझाने में लगी थी।

उसी समय बन्दर ने उसकी छत पर दौड़ लगाई जिससे उसके भाई सोहन की नींद टूट गई। उसने उठकर देखा तो दो बन्दर इधर-उधर ऊधम मचाकर लोगों की नींद हराम कर रहे थे। प्रेमा के कमरे में उस अर्द्धरात्रि में विद्युत का प्रकाश देखकर उसे आश्चर्य हुआ। उसने दबे-पाँव खिड़की से झाँककर देखा तो प्रेमा अपनी खाट पर करवटें बदल रही थी। अपनी बहन की इस दशा पर उसे दु:ख हुआ। वह अपने कमरे में वापस चला आया। उसने विद्युत जलाई। घड़ी में एक बज रहा था। खाट पर पैर धरते ही विमला की नींद टूट गई। उसने मुस्कराते हुए पूछा—'अर्द्धरात्रि में आप क्यों चक्कर काट रहे हैं?'

उसने देखा कि विद्युत के प्रकाश में विमला की मुस्कराहट की छटा सौ गुनी बढ़ गई है। उसका विहँसता हुआ मुखड़ा उसकी दृष्टि में अति आकर्षक और कमनीय प्रतीत हुआ। वह एकान्त और उस सुन्दरी की मदभरी आँखें दोनों उसे प्रिय मालूम हुए। उसने उसके कंधे पर हाथ धर कर कहा—'प्रिये, तुम्हारा यह अनुपम सौन्दर्य इसके पहले कभी मैंने नहीं देखा था।'

विमला ने हँसते हुए कहा—'जब मेरा यह यौवन और सौन्दर्य स्फुटित हो रहा था तब तुम लन्दन में गोरी परियों की छवि देखते रहे होगे' और वह पुनः हँस पड़ी। उसके हँसने की आवाज उस शान्त रात्रि में दो कमरों को पार कर प्रेमा के कानों में पहुँचने में देर न लगी। उसने अपने मन में कहा—'एक ही क्षण किसी के लिए अभिशाप-स्वरूप और किसी के लिए वरदान-स्वरूप होता

है। कोई अपने भाग्य पर विहँस रहा है और कोई रो रहा है। इसी को कहते हैं अपना-अपना भाग्य; और वह किवाड़ खोल बरामदे में आकर खड़ी हो गई। उस समय की रात्रि उसकी दृष्टि में अति सुहावनी मालूम हो रही थी। गंगा का कल-कल नाद, मेघों की गर्जना और मेघाच्छन्न आकाश में विद्युत की चमक उसके हृदय की पीड़ा को और भी बढ़ा रही थी। वह बहुत देर तक खड़ी-खड़ी यह प्राकृतिक दृश्य देखती रही और मन-ही-मन सन्ताप सहती रही। उस समय विमला के कुछ शब्द भी उसके कानों में पड़े। सोहन कह रहा था—'प्रेमा के कमरे में अभी बिजली जल रही है और वह सोई नहीं है।' विमला ने कहा—'आपकी बहन प्रेमा दीवानी हो गई। वह प्रताप को छोड़कर अन्य से विवाह नहीं करेगी और आपके माँ-बाप अन्तर्जातीय विवाह नहीं करेंगे। इस स्थिति में न तो बेचारी की शादी होगी और न वह संसार के सुख-भोग को जान सकेगी। उसका जीवन इस संसार में इस प्रकार व्यतीत होगा जिस प्रकार वन में खिलती हुई गुलाब की कली जो मुस्कराती है, हँसती है और मुरझा जाती है, परन्तु उसका उपभोग करने वाला कोई नहीं होता है। उसका यह यौवन और सौन्दर्य स्वयं उसके लिए सन्ताप और अभिशाप बन रहे हैं। आखिर प्रताप के साथ प्रेमा के विवाह करने में आप लोगों को क्यों आपत्ति हो रही है? सारी दुनिया आप देख आए तो भी आपकी आँखों पर पर्दा छाया हुआ है। अब स्त्रियों को स्वाधीनता से वंचित नहीं किया जा सकता है और सामाजिक नियमों में बाँध कर नारी के जीवन के साथ खिलवाड़ नहीं की जा सकती है। जातीयता का सम्बन्ध समाज की जड़ता के फलस्वरूप उत्पन्न हुआ परन्तु इस बीसवीं सदी में वह बन्धन स्वयं टूट रहा है इसलिए उससे भय करना मूर्खता होगी। मैं तो आपको सलाह दूँगी कि आप पिताजी व माताजी को समझा-बुझा कर प्रेमा का विवाह प्रताप से कर दीजिए और अगर वे नहीं भी मानें तो आप उनकी इच्छा के विरुद्ध प्रताप के साथ प्रेमा का पाणिग्रहण करा दीजिए।'

'......हाँ, तुम्हारा कहना बिल्कुल ठीक है। जाति में कुछ नहीं रखा है। मैं नहीं चाहता कि प्रेमा का जीवन समाज के अन्ध-विश्वास की बलिवेदी पर अर्पित हो। कल सवेरे मैं माता व पिताजी से इस सम्बन्ध में बातें करूँगा।'

उनकी बातें सुनकर प्रेमा के हृदय में आशा का संचार हुआ। वह खाट पर

जाकर सो गई। और घड़ी की ओर देखते हुए उसने अपने मन में कहा—'दो बज रहे हैं। छः-सात घण्टे के बाद मेरे भाग्य का फैसला हो जाएगा।' उस समय उसके मन की दशा उस विचाराधीन कैदी के समान हो रही थी, जो निर्दोष होने पर भी पुलिस के जाल में फँसकर न्यायालय में न्यायाधीश के समक्ष कठघरे में खड़ा रहकर ईश्वर से अपनी मुक्ति के लिए प्रार्थना करता है।'

प्रेमा के लिए रात बड़ी कठिनाई के साथ व्यतीत हो रही थी। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि निशा की मन्दगति हो गई या सूर्य का रथ ही कहीं अटक गया। खैर, धीरे-धीरे रात भी व्यतीत हुई और सूर्योदय भी हुआ। अब प्रेमा की उत्सुकता और भी बढ़ी। उसका ध्यान बार-बार दरवाजे की ओर जाता था। पर जब तक श्यामाचरण गंगाजी से स्नान करके नहीं लौटे तब तक उसके विवाह की चर्चा आरम्भ नहीं हुई। प्रेमा को खिड़की पर खड़ी देखकर सोहन ने श्यामाचरण से कहा—'पिताजी, प्रेमा का विवाह क्यों न कर देते हैं?'

उस समय कुन्ती भी अंदर से श्यामाचरण के लिए जलपान लेकर आ गई थी। प्रेमा के विवाह की बात सुनकर वह भी खड़ी हो गई। कालीचरण ने कहा—'बेटा, मैं क्या जानता था कि प्रेमा पढ़-लिखकर कुल में कलंक लगाने के लिए तैयार होगी। भला अन्तर्जातीय विवाह कर समाज के सामने मैं अपना कौन-सा मुँह दिखलाऊँगा। मैं यह नहीं चाहता कि मैं ऐसा कोई कार्य कर जाऊँ, जिससे तुमको और तुम्हारी सन्तान को भविष्य में नतमस्तक होना पड़े।'

सोहन—'तब क्या प्रेमा कुमारी रह जायगी?'

श्यामाचरण—'उसके भाग्य में कुमारी रहना लिखा है तो मैं क्या करूँ? प्रेमशंकर के साथ मैं उसका विवाह कर रहा था, पर दरवाजे पर आए हुए वर को उसने लौटा दिया। उस समय जिस अपमान का सामना मुझको करना पड़ा वह तो मैं ही जानता हूँ। तुम उसकी कल्पना तक नहीं कर सकते। खैर, अकस्मात् ठाकुर धनुषधारी सिंह ने आकर हम लोगों की प्रतिष्ठा बचा ली, नहीं तो हवालात में मेरी और प्रेमा की क्या दशा होती? कैसे व्यक्त करूँ?'

सोहन—'वह तो अतीत की घटना हुई। इसे जाने दीजिए। संसार की गति बड़ी तेजी से बदल रही है। पुराने रस्म-रिवाज को दफनाया जा रहा है। समाज का कायापलट किया जा रहा है। इससे अपने को वंचित मत रखिये और प्रेमा का ... के साथ विवाह कर समाज के समक्ष एक आदर्श रखिए।'

उसकी बातों पर कालीचरण मौन हो गये। उनकी ओर देखकर कुन्ती ने कहा--'मौन क्यों हो गये ? सोहन सारी दुनिया छान आया है। इसने संसार को देखा है और समय की गति को पहचाना है। इसलिए इसकी बातों की उपेक्षा मत कीजिए। प्रेमा का विवाह प्रताप के साथ कर दीजिए। मैं तो प्रेमा को धन्यवाद देती हूँ कि प्रताप के साथ प्रेम करने पर भी वह हम लोगों की इच्छा के विरुद्ध उसके साथ विवाह नहीं कर रही है। अगर वह अपनी इच्छा से उसके साथ शादी कर लेगी तब आपकी पगड़ी कहाँ रहेगी ? इसलिए समय देखकर काम कीजिए।'

श्यामाचरण--'जब तुम लोगों की राय है तब प्रेमा का विवाह प्रताप के साथ करने की मैं स्वीकृति प्रदान करता हूँ।'

यह सुनते ही प्रेमा का मुखड़ा प्रसन्नता से खिल उठा। उसके अधरों पर मुस्कराहट दौड़ गई।

श्यामाचरण और सोहन ठाकुर धनुषधारी सिंह के मकान पर पहुँचे। उस समय दोनों बाप-बेटे के अतिरिक्त प्रताप भी वहीं था।

ठाकुर जयपाल सिंह ने उन्हें बहुत ही आदरपूर्वक बैठाया, और कुशल-समाचार पूछा। अपना समाचार बताते हुए श्यामाचरण ने कहा--'मेरे परिवार वालों की राय प्रताप के साथ प्रेमा की शादी करने की हो गई है। मेरा विश्वास है कि आपकी ओर से इसमें कोई आपत्ति नहीं होगी ?'

ठाकुर जयपाल सिंह ने ठाकुर धनुषधारी सिंह की ओर देखा। ठाकुर धनुषधारी सिंह ने कहा—'मेरी राय तो अन्तर्जातीय विवाह करने की नहीं होती, किन्तु अगर आपकी राय होती है तो मैं ऐसे विवाह में सब तरह से सहयोग देने को तैयार हूँ।'

ठाकुर जयपाल सिंह ने हर्ष के साथ श्यामाचरण के प्रस्ताव को स्वीकार करते हुए कहा—'परसों आषाढ़ पूर्णिमा को विवाह की उत्तम लगन है। उस दिन शादी हो जाय।'

श्यामाचरण को उनके विचार पर बड़ी प्रसन्नता हुई और दो दिनों के बीच जहाँ तक हो सकता था विवाह की तैयारी की गई। नगर के प्रतिष्ठित व्यक्तियों के अतिरिक्त वर और वधू पक्ष के सगे-सम्बन्धियों और मित्रों को भी आमन्त्रित किया गया। प्रेमा और प्रताप के विवाह का निर्णय हो जाने के बाद

ठाकुर जयपाल सिंह ने अपने नौकरों को भेज कर प्रेमशंकर और कंचना को बुलाया और दोनों को समझाते हुए कहा कि देखो वैराग्य की एक अवस्था होती है। युवावस्था में वैराग्य लेकर शायद ही कोई सफल हुआ है। सब तो बुद्धदेव और शुकदेव नहीं हो सकते हैं। काषाय वस्त्र धारण करने पर ही अधिकांश के पैर फिसल जाते हैं। इसलिए मेरी राय तो होती है कि अतीत में जो कुछ दुखद घटनाएँ घटी हैं उन्हें भुला दो और तुम दोनों दाम्पत्य जीवन के सूत्र में बंध जाओ। इससे जीवन सुखी और शांत रहेगा।

कंचना के कहा—'नहीं पिता जी, अब मैं एक पतिता होकर क्या शादी करूँ ? केवल मुझे आपका आशीर्वाद चाहिए जिससे भविष्य में मेरे जीवन के पृष्ठों पर कलंक की और कालिमा न लगे। और एक सदाचारिणी की तरह जीवन व्यतीत कर सकूँ।'

ठाकुर जयपाल सिंह—'एक सदाचारी जीवन व्यतीत करने ही के लिए तो मैं तुम्हें विवाह में बन्ध जाने को कहता हूँ। यह अवस्था बहुत ही अल्हड़ होती है। इसलिए इस पर विश्वास नहीं किया जा सकता है। मेरी बात मानकर तुम वैवाहिक जीवन स्वीकार कर लो।'

बहुत देर तक मौन रहने के बाद कंचना ने प्रेमशंकर की ओर देख कर कहा—'पिता जी, इनका कौन विश्वास। बार-बार इनसे मैं तिरस्कृत हो चुकी हूँ। समाज, कानून और ईश्वर की दृष्टि में मेरे गिरने का एकमात्र कारण यही हैं। इसलिए इनकी जीवन-संगिनी बनने को कैसे राय देते हैं?'

ठाकुर साहब—'बेटी, सदा मनुष्य के मन की गति एक-सी नहीं रहती है। तुम्हारे और किशोरी को लेकर प्रेमशंकर को काफी पश्चात्ताप हुआ है। अपने कर्म के लिए यह कम दुखी नहीं है। यह भी अपना सारा ऐश्वर्य अनाथालय को दान देकर संयास ले रहा था, लेकिन मेरे समझाने-बुझाने पर रुक गया है। अब पहले वाली बात नहीं होगी। मेरा ऐसा विश्वास है।'

इसके प्रतिकार में कंचना कुछ बोल न सकी। उसके मौनावलम्बन से ठाकुर साहब ने उसकी स्त्रीकृति समझ ली। फिर जब ठाकुर साहब ने प्रेमशंकर की ओर देखा तो प्रेमशंकर ने विवाह से अनिच्छा प्रकट करते हुए कहा—'नहीं ठाकुर साहब, मैं अब क्या विवाह करूँ। विषय सुख के लिए मैंने कितनी युवतियों का

संसार उजाड़ दिया और उनके जीवन को बरबाद कर दिया। कंचना ठीक कहती है। इसकी इस दशा के लिए एकमात्र उत्तरदायी मैं ही हूँ। इसके लिए मुझे हार्दिक दुख और क्लेश और पश्चात्ताप हो रहा है। उसके प्रायश्चित्त का रास्ता नजर नहीं आ रहा है। अब आपका यही आशीर्वाद हो कि भविष्य में मेरा जीवन कलुषित नहीं हो और मैं पवित्र मार्ग पर सदा चलता रहूँ।'

ठाकुर साहब—'सुनो बेटा, दिन-भर का भूला हुआ यदि शाम को अपने घर पर आ जाता है तो उसे भूला नहीं कहेंगे। तुम अगर कंचना का पाणिग्रहण कर लेते हो तो तुम दोनों के प्रति समाज की उपेक्षित भावना खत्म हो जाएगी। और एक गृहस्थ का जीवन व्यतीत करने में तुम दोनों को सुख और शान्ति मिलेगी। इसके साथ शादी करने ही से तुमने जो इसके प्रति अब तक जो अन्याय किया है उसका प्रायश्चित्त हो जाएगा।'

बहुत देर तक मौन रहने के बाद प्रेमशंकर ने कहा—'बड़ों की आज्ञा नहीं मानने से भी तो उनका तिरस्कार होता है और अपना कल्याण भी नहीं होता है। इसलिए आपकी आज्ञा शिरोधार्य है।'

ठाकुर साहब—'लेकिन प्रतिज्ञा करो कि भविष्य में तुम इसके साथ अन्याय नहीं करोगे और एक विवाहिता पत्नी का सारा अधिकार इसे दोगे।'

प्रेमशंकर ने ठाकुर जयपाल सिंह का चरण-स्पर्श करते हुए कहा कि मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि इसके साथ कोई दुर्व्यवहार नहीं करूँगा। और एक विवाहिता पत्नी का जो अधिकार अपने पति और उसकी सम्पत्ति पर होता है उसे प्राप्त होगा।'

ठाकुर जयपाल सिंह—'ठीक है, आषाढ़ पूर्णिमा को जिस दिन प्रताप प्रेमा का पाणिग्रहण करेगा, उसी दिन उसी मंडप पर तुम दोनों का भी विवाह हो जाएगा।'

आषाढ़ पूर्णिमा को आकाश साफ था। चन्द्रमा पूर्ण कला के साथ विहँस रहा था। श्यामाचरण के दरवाजे पर शहनाई बज रही थी और उसके साथ अन्य कई प्रकार के बाजे भी मधुर-मधुर ध्वनि से लोगों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर रहे थे। नृत्य और संगीत का भी सुन्दर आयोजन किया गया था। विवाह का मुहूर्त एक बजे रात में था। अतः उसी समय प्रेमा और

कंचना को विमला ने लाकर मंडप पर खड़ा किया। सभी दर्शक उनके रूप पर मुग्ध हो गए। ठाकुर जयपाल सिंह ने प्रेमा और कंचना को कई स्वर्णभूषण दिए। ठाकुर धनुषधारी सिंह ने भी दोनों को मोती की एक-एक माला दी। मंडप में हवन हो रहा था जिसकी सुगन्ध दूर तक फैल रही थी। और वेद मन्त्रों के साथ शंखध्वनि से दिशाएँ गूँज रही थीं। इसके बीच पुरोहित के आदेश से प्रताप ने प्रेमा के और प्रेमशंकर ने कंचना के भाल पर सिंदूर दिये।



राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली-६

18

अनीका का ज़माना

नोबेल पुरस्कार से सम्मानित यूगोस्लाव उपन्यासकार
के तीन उपन्यास और एक कहानी

लेखक
इवो आन्द्रिच
(नोबेल पुरस्कार, १९६१)

संपादक : **'अज्ञेय'**

अनुवादक :
सच्चिदानन्द वात्स्यायन, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना,
भारतभूषण अग्रवाल, रघुवीर सहाय

मूल्य : आठ रुपये

पहला संस्करण : अगस्त, १९६९
मुद्रक : रूपक प्रिंटर्स, दिल्ली–३२

ANIKA KA ZAMANA by Ivo Andric
Fictions Rs. 8

भूमिका

दूसरे महायुद्ध के आरंभ होने पर जो कई राजदूत बाध्य हो कर अपने-अपने देश लौटे, उनमें दो-एक को यह अनुभव भी हुआ कि उनके अपने नगर पहुँचते न पहुँचते वहाँ पर जर्मन विमानों द्वारा बम-वर्षा शुरू हो जाय। बर्लिन से बेग्रो-ग्राद (बेलग्रेड) लौटे युगोस्लावी राजदूत **इवो आंद्रिच** का यही अनुभव था। नात्सी-अधिकृत बेग्रोग्राद से हट कर आंद्रिच को देहात में छिप कर रहना पड़ा; लेकिन यह अज्ञातवास ही कदाचित् उनकी कीर्ति का आधार हुआ क्योंकि इसी में आंद्रिच ने अपनी प्रतिभा के वास्तविक रूप को पहचाना और स्वीकार किया। सन् १९६१ में जब उन्हें नोबेल पुरस्कार दिया गया तब उनके प्रशस्ति-पट्ट पर यह वाक्य अंकित था : **"उस महाकाव्योचित शक्ति के लिए, जिसके साथ आपने अपने देश के इतिहास से घटनाएँ ली हैं और मानवीय नियतियों का चित्रण किया है।"** वास्तव में पराधिकृत देश में विवश एकांत में ही आंद्रिच ने—जिन्होंने साहित्यिक जीवन कविता से आरंभ किया था—अपने युद्ध और अत्याचार-पीड़ित देश के इतिहास का नयी दृष्टि से मनन किया और अपने देशवासियों की मनो-रचना और नियति को नये रूप में पहचाना : और इस नयी पहचान में ही कृतिकार के नाते स्वयं अपनी नियति भी उन्होंने निर्धारित कर ली। दूसरे महायुद्ध के काल में, उन्होंने वह उपन्यास-त्रयी पूरी की जो **बोस्नियाई कहानी** के नाम से प्रसिद्ध हुई : १९४५ में इनका प्रकाशन हुआ तभी यूगोस्लाविया ने देखा कि उसे अपना राष्ट्रीय कथाकार मिल गया है—और क्रमशः संसार ने पहचाना कि एक नया समर्थ लेखक विश्व-साहित्य की श्रीवृद्धि कर रहा है।

युवा कवि आंद्रिच के मुक्तकों का स्वर नैराश्य का स्वर था, यद्यपि विद्रोह भी उनमें था : पहले महायुद्ध के समय ही युवा आंद्रिच को अपनी आस्ट्रिया-विरोधी भावनाओं के लिए (यूगोस्लाविया तब आस्ट्रियाई साम्राज्य का अंग था) कारावास भुगतना पड़ा था। कारा-जीवन में आंद्रिच के प्रिय लेखक थे क्यिर्केगार्द : सांत्वना के इस स्रोत के प्रभाव का ही फल था कि पहले महायुद्ध और अपने कारा-जीवन के अनुभवों को आंद्रिच ने दो ललित गद्य रचनाओं में व्यक्त किया जिनमें से एक का शीर्षक भी था **चिंताएँ**। किन्तु दूसरे महायुद्ध के एकांतवास तक वह कविता से निरंतर हटते हुए पहले कहानी-लेखक और फिर उपन्यास-लेखक बन चुके थे, यद्यपि उनके उपन्यास ने अपना विशिष्ट और परिपक्व रूप बोस्नियाई उपन्यास-त्रयी में ही प्राप्त किया। इन्हीं के साथ वह उस तटस्थ महाकाव्य-रूपी उपन्यास-गाथा के लेखक के रूप में सामने आये जो उनकी विशेष देन है, और जिसके कारण वह न केवल अपने देश और जाति के ऐतिहासिक अनुभव के व्याख्याकार हो गये हैं, बल्कि जिसमें स्वयं यूगोस्लाव जन ने अपने से साक्षात्कार किया है, अपनी नियति को पहचाना है।

'बोस्नियाई उपन्यास-त्रयी' का कहानी के रूप में एक दूसरे से कोई संबंध नहीं है। संबंध का सूत्र इससे कहीं गहरा है : इन अलग-अलग वृत्तांतों में आंद्रिच अपने प्रदेश और देश के जन-मानस में गहरे उतर कर उन शक्तियों को पहचानते हैं जो उसके गठन को निरूपित करती हैं, उसकी कर्म-प्रेरणाओं को निर्धारित करती हैं—जिनके कारण उसका इतिहास वैसा हुआ जैसा वह हुआ। निस्सन्देह इन शक्तियों और प्रभावों में ऐतिहासिक घटना-चक्र और परिस्थिति का भी स्थान है और आंद्रिच इस बात को न केवल अनदेखा नहीं करते बल्कि निरंतर ऐतिहासिक अनुभव के संदर्भ में ही जन-जीवन की पड़ताल करते हैं : अर्थात् लोक-चरित्र और ऐतिहासिक अनुभव की परस्पर-प्रभाविता को ही अपनी कथा-वस्तु बनाते हैं। ऐसा न होता तो कहा जा सकता कि आंद्रिच के इन उपन्यासों में एक ऐतिहासिक नियतिवाद का प्रतिपादन दीखता है; पर ऐसा है इसलिए यह कहा गया है कि "आंद्रिच में **अलिफ़-लैला** के नियतिवाद के साथ आधुनिक मनोवैज्ञानिक अंतर्दृष्टि है।" यह सिद्ध-योग आंद्रिच ने अकस्मात् नहीं

पा लिया; कवि की गीत्यात्मक भावना से ले कर ऐतिहासिक उपन्यासकार की 'प्राचीन अवचेतन और सुखद पैतृक दाय' की पहचान तक आंद्रिच की यात्रा कठिन आत्मानुशासन की यात्रा रही जो दूसरे महायुद्ध की अवधि में राष्ट्रव्यापी संकट की छाया के नीचे और तोपों की गड़गड़ाहट के बीच पूरी हुई। नोबेल पुरस्कार स्वीकार करते समय अपने भाषण में आंद्रिच ने प्रकारांतर से इसी यात्रा की ओर संकेत किया था :

वह मानव-नियति की ही कहानी है जो निरंतर गढ़ी जा रही है, जिसे मनुष्य एक दूसरे को सुनाते कभी नहीं थकते····· कभी-कभी तो अपने को यही विश्वास दिला लिया जा सकता है कि चेतना के उषःकाल से ही हर युग में मानव-जाति अपनी साँस और अपनी नाड़ी के ताल पर अपने को ही वही एक कहानी निरन्तर सुनाती रही है, यद्यपि असंख्य रूपान्तरों में······कहानी-लेखक क्या अपनी कला द्वारा मानव को अपने को जानने और पहचानने में मदद करे? या कि शायद उसका ध्येय यह है कि उन सब की ओर से बोले जिनमें इसकी क्षमता न थी या जो जीवन द्वारा कुचले जा कर आत्माभिव्यक्ति की शक्ति न पा सके? या कि कहानीकार स्वयं अपने को अपनी कहानी सुनाता है—उस बच्चे की तरह जो अँधेरे में अपने भय को शांत करने के लिए अपने आप गा उठता है? या कि इन कहानियों का उद्देश्य यह हो सकता है कि जिन अँधियारी गलियों में जीवन हमें कभी-कभी ला पटकता है उन्हें यत्किंचित् प्रकाशित करे, और उस जीवन के बारे में जिसे हम अंधे और अनजान हो कर जीते हैं, उससे अधिक कुछ बताये जितना कि हम अपनी दुर्बलता में समझ और बूझ सकते हैं? इसी तरह तो अच्छे कहानीकार के शब्द बहुधा हमारे कर्म-अकर्म पर, जो हमें करना चाहिए उस पर या जो हमें नहीं करना चाहिए था उस पर प्रकाश डालते हैं। कोई पूछ सकता है कि मानव जाति का सच्चा इतिहास क्या इन्हीं लिखी या सुनायी गयी कहानियों में नहीं होता : और क्या उस इतिहास के अर्थ का धुँधला ही सही, कुछ आभास हम इनमें नहीं पा सकते? इस बात का महत्त्व कम है कि

वह कहानी अतीत में स्थित है या कि वर्तमान में।

'इस बात का महत्त्व कम है कि कहानी अतीत में घटित होती है या वर्तमान में।' आंद्रिच के उल्लिखित तीन उपन्यासों में ही नहीं, सारे साहित्य में इसी सिद्धांत की प्रतिपत्ति होती है। ये तीनों उपन्यास, **ना द्रीनी चुप्रिया** (द्रीना नदी का पुल), **त्राव्निचका ख़्रोनिका** (त्राव्निक का वृत्तांत) और **गोस्पोद्यिचा** (श्रीमती) उस ऐतिहासिक परिवेश में प्रतिष्ठित हैं जिसके ऊपर दो प्रतीकों के सदियों के संघर्ष की छाया है—सलीब और चाँद-सितारे के घात-प्रतिघात की; पर उस आधुनिक यूगोस्लाविया में, जिसमें ये दोनों ही अप्रासंगिक हो गये हैं, इन उपन्यासों के सहारे लाख-लाख समकालीन यूगोस्लावियों ने अपने सही रूप को पहचाना है—उस रूप को जो पुरातन की मिट्टी से बना है और जिसे नवीन की साँस अनुप्राणित कर रही है। आज यूगोस्लाविया में और नहीं तो एक दूसरा उपन्यासकार तो ऐसा है ही जिसे साहित्य की दृष्टि से आंद्रिच का समकक्ष माना जाये; पर विशालतर राजनैतिक अनुभव और प्रभाव या पुष्टतर रचना-सौष्ठव और मँजाव के बावजूद **मिरोस्लाव क्रलेषा** के उपन्यासों में नहीं, आंद्रिच के उपन्यासों में ही यूगोस्लावी अपने को मुकुरित पाता है। जन्मना क्रलेषा ख़्रावात्सी (क्रोएशियाई) भाषा-प्रदेश के हैं, आंद्रिच सृप्स्की (सर्बियाई) भाषा-प्रदेश के; पर सृप्स्की-ख़्रावात्सी भाषा के इन दो लेखकों की तुलना करें तो दीखता है कि क्रलेषा यूरोपीय उपन्यासकार हैं, और अच्छे यूरोपीय उपन्यासकार दूसरे भी हैं; आंद्रिच यूगोस्लाविया के हैं और यूगोस्लाविया का उपन्यासकार उन जैसा दूसरा नहीं है। क्रलेषा यूरोपीय हो कर देश में महान् हैं, आंद्रिच अपने देसीपन में अद्वितीय हो कर विश्व-साहित्य में स्थान रखते हैं।

प्रस्तुत संकलन के तीन उपन्यास यद्यपि बोस्नियाई बृहत्-त्रयी के नहीं हैं, तीनों लघु उपन्यास हैं; तथापि ये भी आंद्रिच की प्रतिभा और शक्ति का पूरा प्रतिनिधित्व करते हैं, बल्कि अगर संकलित चौथी रचना को भी ध्यान में रखें तो कहा जा सकता है कि वस्तु की दृष्टि से भी यह संकलन बोस्नियाई बृहत्कथा

का एक संक्षिप्त और सघन रूप प्रस्तुत करता है **गोस्पोदिचचा**। (जिसका अनुवाद अंग्रेज़ी में **द वुमन फ्राम सरोयेवो** नाम से छपा है,) अगर एक लालची नारी की ऐसी भयानक लोभवृत्ति का मनोवैज्ञानिक अध्ययन है जो पागलपन की सीमा तक पहुँच गयी है, तो प्रस्तुत संकलन में **अनीका का ज़माना** न केवल ज़माने को प्रतिबिंबित करता है वरन् एक नारी की मार्मिक और अविस्मरणीय शबीह हमारे सामने रख देता है। इसी प्रकार **वज़ीर का फ़ीला** भी वास्तव में त्राव्निक के वृत्तांतों में से मानो एक क़िस्सा बयान करता है; और **ज़ेपा नदी का पुल** तो मानो बीज-रूप में उसी ऐतिहासिक वस्तु को उसी दृष्टि से प्रस्तुत करता है जो **द्रीना नदी का पुल** में परिपक्व रूप में आयी है। **ज़ेको** मानो दूसरे महा-युद्ध में यूगोस्लाविया की उस संकटापन्न स्थिति का चित्र खींच देता है जिसमें आंद्रिच की प्रतिभा मँजी और निखरी। यह नहीं कि ये लघु उपन्यास पढ़ लेने के बाद अन्य बड़े उपन्यास पढ़ना कम आवश्यक हो जाता है; बल्कि इस बानगी के बाद तो आंद्रिच के पूरे कृतित्व का आकर्षण कहीं अधिक होना चाहिए। हमारा विश्वास है, इस परिचय-ग्रंथ के बाद हिंदी जगत् में आंद्रिच के और यूगोस्लावी साहित्य के अनेक स्थायी प्रशंसक हो जायेंगे; हमें आशा है कि अनति-दूर भविष्य में इस महान् लेखक के और भी कुछ उपन्यास हम हिंदी पाठक के लिए सुलभ कर सकेंगे। स्वाधीन भारत और स्वाधीन यूगोस्लाविया की मैत्री के अनेक ऐतिहासिक कारण और आधार हैं; दोनों देशों का इधर का इतिहास और विश्व की राजनीति में उनका योगदान उस मैत्री को और पुष्ट करता आया है। किंतु राजनैतिक आधारों से दृढ़तर आधार दोनों देशों की सांस्कृतिक स्थितियों, ऐतिहासिक परंपराओं और मनोरचना में मिलेंगे; इन आधारों को पहचानना और दृढ़तर बनाना दोनों देशों के साहित्य-प्रेमियों का कर्तव्य है। और यह कर्तव्य अत्यंत प्रीतिकर हो जाता है जब उसे निबाहने के निमित्त से हमें इवो आंद्रिच के उपन्यासों जैसी मूल्यवान् संपत्ति प्राप्त होती है।

आंद्रिच से मेरी पहली भेंट चार-पाँच वर्ष पूर्व हुई थी। तब तक मैंने उनका साहित्य थोड़ा ही पढ़ा था (तब तक जर्मन के सिवा दूसरी भाषाओं में अनुवाद

भी प्राप्य न थे), इसलिए जो भी बातचीत हुई उसमें बिखराव होना स्वाभाविक था। फिर भी उनके विनम्र सौजन्य के साथ गहरे चिंतन और मानव-मात्र के प्रति एक ममत्वभरे कारुण्य की गहरी छाप ले कर आया था। तभी यह भी सोचा था कि हो सका तो कुछ रचनाओं के अनुवाद हिंदी में उपलभ्य कराने होंगे। क्योंकि आंद्रिच से, यूगोस्लावी लेखक संघ से और कुछ साहित्य-कारों से अनुवादों द्वारा आदान-प्रदान की बात भी हुई थी, इसलिए और भी उत्साह था। पहली भेंट की धारणा क्रमशः पुष्ट ही होती गयी, और उसके साथ अनुवाद प्रस्तुत करने का संकल्प भी; मेरे लिए यह बड़े संतोष का विषय है कि उस संकल्प की आंशिक पूर्ति प्रस्तुत ग्रंथ द्वारा हो रही है। भारत में ऐसे काम लेखक संघों के सूत्रधारत्व से नहीं संपन्न होते, फुटकर प्रयत्नों से ही होते हैं; पर किसी संघ के अनुमोदन के बिना भी मुझे अनुवाद-कार्य में जो साथी मिले उनका सहयोग मैं अपना सौभाग्य ही समझता हूँ। अनुवाद सब अंग्रेज़ी से किये गये हैं--लाचारी थी; पर यूगोस्लाविया से और वहाँ के साहित्य तथा साहित्यकारों से परिचय के सहारे मैंने उन्हें एक बार फिर देख जाने का प्रयत्न किया है और मुझे भरोसा है कि वे मूल की वस्तु, शैली, दृष्टि और आस्वाद के साथ अन्याय नहीं करते। यों अनुवाद तो उपपन्न कर्म हैं; उसमें सुधार और संशोधन की गुंजाइश हमेशा रहती है। अगले संस्करण के लिए इन अनुवादों को भी निस्संदेह और सँवारा जा सकेगा।

—सच्चिदानंद वात्स्यायन

क्रम

अनीका का ज़माना

अनुवादक
सर्वेश्वरदयाल सक्सेना

पिछली सदी के छठे दशक में ज्ञान की तीखी प्यास और शिक्षा के माध्यम से ज़िन्दगी को बेहतर बनाने की आकांक्षा बोस्निया में दूर-दूर तक फैल गयी थी। यहाँ तक कि रोमानिया पर्वत श्रेणी या द्रीना नदी भी इस प्यास को दोब्रुन पहुँचने से और वहाँ के पल्ली-पुरोहित फ़ादर कोस्टा पोरुबोविच को प्रबुद्ध बनाने से नहीं रोक सकी। और ढलती आयु के फ़ादर कोस्टा अपने कमज़ोर और शर्मीले एक-लौते बेटे वुयादिन को देख इस नतीजे पर पहुँचे कि किसी भी क़ीमत पर उसे शिक्षा मिलनी चाहिए। सरायेवो में व्यापार करने वाले कुछ दोस्तों की मदद से वह उसे स्रेम्स्की कार्लोव्त्सी भेजने में कामयाब हो सके कि 'कम से कम साल-दो साल धर्मशास्त्र ही पढ़े।' वह उतना ही पढ़ सका, क्योंकि दूसरा वर्ष ख़तम होते-होते फ़ादर कोस्टा की अचानक मृत्यु हो गयी। वुयादिन वापस आये, उनकी शादी कर दी गयी और उन्हें अपने पिता के इलाक़े में पुरोहिती का काम सौंप दिया गया। विवाह के पहले वर्ष में ही उनकी पत्नी की पहली सन्तान हुई। थी तो यह लड़की ही, पर अभी दोनों के पास बहुत समय था और यह निश्चित ही लगता था कि दोब्रुन में पोरुबोविच वंश की पुरोहिती अभी पीढ़ी-दर-पीढ़ी बनी रहेगी।

लेकिन फ़ादर वुयादिन के साथ कहीं कुछ गड़बड़ थी। ठीक क्या, इसका पता नहीं चलता था; न ही कोई निश्चयपूर्वक कह सकता था कि कोई बात बिगड़ी हुई है। लेकिन हर आदमी को यह लगता था कि पुरोहित और यज-मानों के बीच एक तनाव है। इस तनाव का कारण न तो फ़ादर वुयादिन के

युवा होने को माना जा सकता था और न उनके स्वभाव को; क्योंकि ज्यों-ज्यों समय बीतता जाता था तनाव घटने की बजाय बढ़ता जाता था। वुयादिन क़द के लम्बे और सुदर्शन थे जैसा कि पोरुबोविच वंश के लोग होते थे, लेकिन दुबले पीले और असाधारण रूप से मुरझाये हुए जान पड़ते थे; जवानी के बावजूद उनकी आवाज़ और आँखों से बुढ़ापा झाँकता था।

सन् १८७५ के आसपास, बोस्निया पर आस्ट्रिया के कब्ज़े के कुछ ही वर्ष पहले, फ़ादर वुयादिन पर दुःख का पहाड़ टूट पड़ा। दूसरे बच्चे के प्रसव-काल में उनकी पत्नी का देहान्त हो गया। उसके बाद से ही वह दुनिया से और कटते चले गये। अपनी नन्ही बिटिया को उन्होंने विशेग्राद में अपनी स्वर्गीया पत्नी के सम्बन्धियों के पास भेज दिया और दोब्रुन के गिरजाघर के पास अपने बड़े मकान में एक नौकर के साथ अकेले रहने लगे। पुरोहिती का काम वह नियमित रूप से ज़रूर चलाते रहे; अन्तिम संस्कारों में जाते, बपतिस्मा और विवाह कराते, और अनुरोध किये जाने पर प्रार्थना सभाएँ भी करते, लेकिन गिरजाघर के अहाते में किसानों के साथ गप-शप या पीने-पिलाने से वह दूर रहते, न ही क़र्ज़दारों से पावने के बारे में बहस में उलझते। क़स्बे के लोग, जो आदतन् किसी भी चुप्पे और उदास आदमी से शंकित रहते हैं और स्वस्थ बातूनी पुरोहितों को पसन्द करते हैं, फ़ादर वुयादिन से अपना मेल नहीं बैठा सके। कोई दूसरी कमी उनमें होती तो वे लोग अधिक आसानी से उन्हें क्षमा कर सकते। ऐसी छोटी जगहों में स्त्रियाँ ही किसी आदमी के प्रति अच्छी या बुरी राय क़ायम करती हैं; फ़ादर वुयादिन के बारे में उनका कहना था कि 'उसके सिर पर बिजली मँडराती रहती है।' वे गिरजाघर जाना पसन्द नहीं करती थीं और हमेशा उस 'अक्खड़ फ़ादर कोस्टा' का बहाना बना देती थीं।

''बोदा और मनहूस है वह !'' किसान हमेशा उसके पिता से उसकी तुलना करते हुए 'स्वर्गीय कोस्टा पोरुबोविच कहा करते थे' की चर्चा पर आ जाते थे; कैसे वह मोटे थे, खुशमिज़ाज थे पर साथ ही बुद्धिमान और साफ़-गो थे; किसानों और तुर्कों से, कमज़ोर और ताक़तवर सभी से अच्छे सम्बन्ध रखते थे। फ़ादर कोस्टा की मृत्यु से सभी एक-से दुःखी थे। क़स्बे के बूढ़े लोग तो वुयादिन के बाबा याक्षा को भी (याकोन या रखवाल नाम से) याद किया करते थे। याकोन भी बिलकुल दूसरी ही तरह के आदमी थे : अपनी जवानी में वह हैदुकों में जा मिले

थे और इस पर उन्हें गर्व भी था। लोग उनसे पूछते कि उन्हें रखवाल क्यों कहते हैं, तो वह खुशी-खुशी जवाब देते :

"आह बेटे; जब मैं अभी रखवाल ही था तभी मैं हैदुकों में शामिल हो गया था। हर हैदुक का एक उपनाम अवश्य होता है, इसलिए वे लोग मुझे 'हैदुक रखवाल' कहकर पुकारने लगे। इस तरह वह नाम मेरे साथ चस्पाँ हो गया। लेकिन आगे चलकर ज्यों-ज्यों समय बीतता गया और सम्मान मुझ पर इस तरह बरसते गये जैसे घोड़े पर तीर बरसते हैं, मुझे हैदुक कहलाना अटपटा लगने लगा। इस तरह 'हैदुक' का पुँछल्ला यों झड़ गया जैसे मेढक की दुम झड़ जाती है और मैं फिर सिर्फ़ रखवाल रह गया।"

बूढ़े याकोन के घने बाल थे और लम्बी दाढ़ी जो नीचे को न बढ़कर अगल-बग़ल फैली हुई थी। वह उनके मरने तक सफ़ेद नहीं हुई बल्कि ललौंछ लिए हुए बेतरतीब रही। अक्खड़, दबंग, तेज़-तर्रार और चतुर--मसीहियों और तुर्कों दोनों में ही उनके सच्चे दोस्त और ख़तरनाक दुश्मन थे। उन्हें पीने का शौक़ था और बुढ़ापे में स्त्रियों की ताक में रहते थे। यह सब होते हुए भी वह लोगों को बहुत ही पसन्द थे और बहुत आदर पाते थे।

इसीलिए किसानों के लिए यह समझ पाना कठिन था कि वुयादिन क्यों ऐसे हैं। क्यों अपने पिता और बाबा की तरह नहीं हैं? विधुर बाप के रूप में वुयादिन अपने जीवन के अकेलेपन में और अधिक डूबते गये और अधिक पस्त होते गये। उनकी दाढ़ी के बाल गिरते गये, वह पतली होती गयी, कनपटी पर बाल सफ़ेद होते गये, जबड़े झूल गये और दाढ़ी जाने कैसे सफ़ेद हो गयी जिससे कि चेहरे पर से उनकी बड़ी-बड़ी हरी आँखों और मटमैली भौंहों का आकर्षण जाता रहा। लम्बे, सीधे, सख़्त—वह तभी बोलते जब बहुत ही ज़रूरत होती—गहरी आवाज़ में बिना किसी लाग-लपेट और जोश के।

दोब्रुन गिरजाघर में पुरोहिती करते आये अपने परिवार के सौ वर्षों से अधिक के जीवन में एक ऐसे पुरोहित के रूप में जिसे शिक्षा का अल्पज्ञान ही सही प्राप्त था, फ़ादर वुयादिन अपने स्वभाव और अपनी आदतों की सीमाओं से भली भाँति परिचित थे। वह जानते थे कि लोग किस तरह का पुरोहित चाहते हैं और समझते थे कि जैसा लोग चाहते हैं वह उसके बिलकुल प्रतिकूल हैं। यह ज्ञान उन्हें यातना देता था लेकिन उन्हें कठोर भी करता था। और यजमानों के

साथ उनका आचरण और सख़्त हो जाता था। धीरे-धीरे यह कठोरता उन लोगों के प्रति एक गहरी अनियंत्रित घृणा में बदल गयी।

एक विधुर जीवन की आम थकान और अनेक रूपों में परित्याग और संन्यास के भाव ने बहुत जल्दी ही बुयादिन और लोगों के बीच एक गहरी खाई पैदा कर दी। अपनी पत्नी की मृत्यु के पहले उन्हें यह पीड़ा थी कि वह लोगों से घुल-मिल नहीं पाते, स्नेह-सौहार्द नहीं जता पाते। अब यह पीड़ा और गहन हो गयी थी और वह ऐसी स्थिति में पहुँचने के लिए विवश हो गये थे कि जान-बूझ कर उनसे बहुत-सी बातें छिपाएँ जिसका परिणाम यह हुआ कि वह उनसे दूर होते गये यहाँ तक कि उनकी हर दृष्टि, हर शब्द यातना देता, एक बोझ होता एक व्यथा भरा संघर्ष बनता। अब वह ख़तरा भी बन गया था और स्वयं के टूट जाने के भय ने उन्हें और अधिक असुरक्षित और सशंकित बना दिया था।

इस प्रकार लोगों के प्रति उनकी घृणा बढ़ती गयी, उनमें बस गयी और एक छिपे विद्वेष-भाव ने उनमें नफ़रत का ज़हर भर दिया जो अबोध्य और अनभिप्रेत था लेकिन यथार्थ था। फ़ादर बुयादिन के जीवन का यह रहस्य था। वह स्वयं से और अपने सन्ताप से घृणा करते थे। ऐसे भी दिन थे जब पराजित और वृद्धावस्था की मार से झुके वह अपनी खिड़की में छिपकर घंटों खड़े रहते जिससे कि गाँव की औरतों को नदी की ओर कपड़े धोने के लिए जाते वक्त देख सकें। और जब वह झाड़ियों के पीछे अदृश्य हो जातीं तब वह घृणा से भरे आधे ख़ाली घुटन भरे अपने कमरे में वापस लौट आते और उन औरतों को गन्दी से गन्दी गालियाँ देते। यह विवेकहीन घृणा उनके गले में अटक जाती, उनकी साँस भारी हो जाती और आवाज़ रुंध जाती। वह राहत या अभिव्यक्ति का कोई और मार्ग न पा ज़ोर से खखार कर थूकते। तब ग्रीष्मकाल की दमघोंट ख़ामोश हवा में उन्हें होश आता और अपनी उग्रता का, उन भयानक गालियों का स्मरण और भय से वह जम जाते। उनकी रीढ़ और खोपड़ी में थरथराहट होती और एक जड़ विचार उन्हें कस लेता कि मैं पागल हो रहा हूँ।

ये दौरे उनके पूरे अस्तित्व को विदीर्ण कर रहे थे और अपना रोज़मर्रा का जीवन चलाना उनके लिए लगभग असम्भव हो गया था, पुरोहिती के कामों के बारे में कुछ कहना ही बेकार है। ऐसे दौरों के आध घंटे भी नहीं हो पाते कि उन्हें किसानों से बातें करनी पड़तीं और वह उनके सामने पीले पड़े, टकटकी बाँधे

बैठे होते, खोखली ग्रावाज़ में उनके ग्रनेक सवालों का जवाब देते, बपतिस्मा, प्रार्थनाग्रों ग्रौर पूजा के दिन तय करते। ग्रौर इन दोनों व्यक्तियों में ग्रन्तर— एक वह जो ग्रपने कमरे की छायाग्रों में प्रतीक्षारत पड़ा होता ग्रौर दूसरा फ़ादर बुयादिन जो गिरजाघर के प्रांगण में बैठकर किसानों को सलाह देता—इतना था कि वह उसके भार से झुके जा रहे थे। ग्रान्तरिक पीड़ा उन्हें ग्रालोड़ित करती, ऐंठती, वह ग्रपनी मूँछें दाँतों से काटते ग्रौर उँगलियों से सिर के बाल नोचते। बस इतना ही ग्रात्मनियंत्रण उनमें रहता कि वह किसानों के सम्मुख ग्रपने ही पैरों पर न गिर पड़ें ग्रौर चीखने लगें :

"मैं पागल हो रहा हूँ !"

ग्रौर जब वह किसानों से बात कर रहे होते उन्हें निरन्तर यह ध्यान बना रहता कि वे लोग उनकी तुलना उनके स्वर्गीय पिता ग्रौर उनके सम्बन्धियों से कर रहे हैं। ग्रौर वह ग्रपने पिता ग्रौर ग्रपने सभी सम्बन्धियों के प्रति नफ़रत से भर उठते।

बुयादिन के साथ जो कुछ भी घटता उससे उनकी ग्रदृश्य कटुता ग्रौर घृणा बढती ही, ग्रकेलेपन में गुज़ारा गया हर दिन ग्रौर ग्रादमियों का हर सम्पर्क उस घृणा को ही मज़बूत करता जो कि उनके तन का, उनकी हर गतिविधि का, उनके भावों ग्रौर विचारों का प्रतिरूप होता। यह घृणा बढती गयी ग्रौर उनमें जो कुछ भी था उस पर छा गयी, वही उनके जीवन का एकमात्र तत्त्व बन गयी, किसी भी चीज़ से ग्रधिक वास्तविक एकमात्र उसी का ग्रस्तित्व रह गया जहाँ वह स्पन्दित होते। बहुत-से ग्रच्छे, पुराने परिवारों के उत्तराधिकारियों की तरह लज्जालु, सम्मानप्रिय ग्रौर सीधे-सादे होने के नाते वह ग्रपनी इस हालत को जितना हो सकता छिपाये रखते थे। दो यथार्थ के बीच निरन्तर टूटते हुए भी उन्होंने सदैव ग्रतिमानवीय प्रयास किया कि उस यथार्थ को देखना छोड़ दें जिसे दूसरे देखते हैं। लेकिन ऐसा दिन ग्राखिरकार ग्राया ही जब कि ग्रान्तरिक जीवन उन पर हावी हो गया ग्रौर फ़ादर बुयादिन को दूसरी ग्रोर जाना ही पड़ा, उस विचित्र भूमि पर जहाँ वर्षों से उनका सारा ग्रान्तरिक जीवन धकेल रहा था : खुले पागलपन के क्षेत्र में जो सबको साफ़ दिखाई देता था।

यह घटना फ़ादर बुयादिन के विधुर जीवन के पाँचवें वर्ष घटी। एक दिन सवेरे तड़के वह खेतों की ग्रोर निकल गये ग्रौर दोपहर तक चारों तरफ़ लोगों को

काम करते देखते रहे। वापस आते समय उन्हें पहाड़ी के नीचे देवदारु के वृक्षों के बीच एक खुली जगह में कुछ अजनबी लोग दिखायी दिये। उनकी संख्या पाँच थी, एक इंजीनियर, दो आस्ट्रियाई आफ़िसर, और दो स्त्रियाँ। कुछ दूर पर सईस घोड़ों की निगरानी कर रहे थे। एक कम्बल बिछा हुआ था और वे अपरिचित व्यक्ति उस पर बैठे हुए थे, आदमी नंगे सिर कोट के बटन खोले हुए और स्त्रियाँ हलके कपड़ों की फ्राक पहने हुए जिनकी सफ़ेदी आँखों में चकाचौंध पैदा करती थी। फ़ादर बुयादिन एक क्षण को ठिठके और फिर तेज़ी से पास की पहाड़ी पर चढ़ गये और एक झुके अधगिरे देवदारु के पेड़ से टिककर खड़े हो गये। उनका दिल धड़क रहा था और वह पसीने-पसीने हो रहे थे। देवदारु के पेड़ के पीछे खड़े वह नीचे उन अजनबियों को टकटकी बाँधे देख रहे थे जहाँ से वह कुछ बेढंगे और टेढ़े परिदृश्य में दिखाई दे रहे थे। यह दृश्य स्वप्न की तरह उन्हें बेचैन और उत्तेजित कर रहा था। और स्वप्न की ही तरह यह दृश्य भी असीम सम्भावनाओं से भरा हुआ लगता था; जितना ही अविश्वास्य उतना ही सम्भाव्य। अजनबी खा रहे थे और बारी-बारी से एक दमकते धातु के पात्र से कुछ पी रहे थे। यह भी उन्हें उत्तेजित कर रहा था। पहले तो फ़ादर बुयादिन को डर लगा कि कहीं उन लोगों को पता न लग जाये। इस बात को वह अच्छी तरह जानते थे कि यह कितना उपहासास्पद होगा यदि इन अपरिचितों को यह पता लग जाये कि एक पुरोहित देवदारु के टेढ़े पेड़ के पीछे छिपा हुआ इन दो औरतों को इस बुरी तरह घूर रहा है लेकिन धीरे-धीरे अनौचित्य का यह भाव और झिझक एकदम चली गयीं। उन्हें पता नहीं चला कि वह कितनी देर तक इस तरह बदहवास देवदारु के तने के छिलकों को अपने नाखूनों से कुरेदते रहे। हो सकता है घंटों हो गये हों। अन्ततः एक स्त्री जो दोनों में से अधिक युवा लगती थी उठी और दोनों अफ़सरों के साथ पहाड़ी पर चढ़ने लगी। वह ठीक बुयादिन के नीचे से गुजरी जिससे कि वह उसके सिर का ऊपरी भाग देख सके। जब वह अपनी छड़ी की सहायता से लड़खड़ाती चढ़ाई चढ़ रही थी तो उसके कूल्हे लचक रहे थे और उसके सफ़ेद चेहरे पर हवा और घुड़सवारी के कारण लाल चकत्ते दिखाई दे रहे थे जैसा कि अक्सर स्वस्थ लोगों के चेहरों पर खाने-पीने के बाद ताज़ी हवा में दिखाई देता है। अन्य दोनों देवदारु के उस पेड़ के नीचे लेट गये थे और बिछा हुआ कम्बल उन्होंने अपने ऊपर डाल लिया था।

और चूँकि दृश्य समाप्त हो गया था। पुरोहित होश में आये, अपने को सँभाला और घर की राह पकड़ी, सावधानी से उस जोड़े से नज़र बचाते हुए जो देवदारु के पेड़ के नीचे पड़ा था और इस चिन्ता से ग्रस्त कि वह उन तीन व्यक्तियों द्वारा देखा जा सकता है जो अभी भी पहाड़ी पर चढ़ रहे थे।

तीसरे पहर तक सब ठीक रहा। अपने नौकर रैडवाय के कुछ पूछने पर फ़ादर बुयादिन कुछ इस प्रकार बहके-बहके से बुदबुदाये जिससे साफ़-साफ़ यह भी समझ में नहीं आया कि वह दोपहर के खाने के वक़्त क्यों इतने निढाल थे। अपने खाली घर में इधर से उधर जाने में उन्हें बेहद भारीपन महसूस हुआ। पृथ्वी और स्वयं सारा दिन जस्ते की तरह उन पर लदा था और जीवन उन्हें सूखी लकड़ी और अंगारों की तरह लगता था जिसमें कहीं भी रस और मिठास न हो। उनकी उँगलियाँ राल से चिपचिपा रही थीं। एक उत्तेजक प्यास का वह अनुभव कर रहे थे। उनकी आँखें थकी हुई थीं और उनके क़दम भारी पड़ रहे थे। उन्होंने अपना दोपहर का खाना खाया और फिर गहरी नींद में सो गये।

जब आँख खुली तब उन्होंने अपने को और अधिक जड़ अनुभव किया। वह जंगल में हुए उन अपरिचितों के साक्षात् को भी स्मरण नहीं कर पा रहे थे जैसे कि वह कोई बहुत गहरी व्यथा हो। वह घर से निकल पड़े और एक पगडंडी द्वारा नज़दीकी रास्ते से पहाड़ी पर जंगल में पहुँच गये। उन्होंने नीचे देखा, देवदारु के पेड़ों के बीच की उस खुली जगह में अब कहीं कोई नहीं था। सूरज डूब चुका था। इधर-उधर कुछ काग़ज़ और कटे हुए टीन के डिब्बे घास में पड़े उस झुटपुटे में दमक रहे थे। मुलायम ज़मीन पर वह उन स्त्रियों के जूतों की गहरी टेढ़ी छाप बड़ी आसानी से पहचान सकते थे। वह उन पगचिह्नों को टटोलते चलने लगे जो आदमियों और घोड़ों की टापों के निशानों में मिले हुए थे जो कभी-कभी पकड़ में आ जाते थे और फिर खो जाते थे। उनके सिर की नसें भन्नाने लगीं। बढ़ते हुए अन्धकार में रास्ता और पगचिह्न दोनों ही खोने लगे। वह चौराहे तक पहुँच गये जहाँ पगडंडी समाप्त हो गयी थी और सड़क शुरू होती थी। बुयादिन ने सोचा, यहाँ वे लोग अपने घोड़ों पर चढ़े होंगे। अब वहाँ सन्नाटा था। काफ़ी अँधेरा हो चुका था। खामोश चमकते आकाश में एक लकड़ी का खम्भा जो दिन में सीमा-चिह्न का काम देता था, दिखाई दे रहा था। वह नीचे ऊबड़-खाबड़ सड़क पर तेजी से उतरने लगे, सड़क के बराबर लगे बाड़े के साथ-साथ लड़खड़ाते हुए और तपते

हुए खेत के ढेलों को रौंदते हुए । आसमान साफ़ था लेकिन गर्मी कम नहीं हुई थी । साँस लेना मुश्किल था । हवा दम घोंट रही थी, जैसे कि अँधेरे में सिर के ऊपर लोहे का तहख़ाना हो । एक छोटे पहाड़ी चश्मे की क्षीण धारा उन्होंने पार की लेकिन उससे कोई ठंडक या ताज़गी नहीं मिली । उन्होंने अचानक अपने को अपने ही अलूचे के बग़ीचे में पाया जो उनके घर से दूर नहीं था। उसकी धुँधली आकृति अँधेरे में देखी जा सकती थी । थकान से चूर और जड़ता की स्थिति में वह फिसल कर गिर पड़े । वह कुछ देर उसी तरह पड़े रहे और फिर अचानक ही उनके सामने फिर उसी स्त्री की आकृति थी और उस आकृति के साथ एक सवाल भी : क्या मैंने सचमुच उन्हें देखा था या मैंने केवल उनकी कल्पना कर ली है ? यह सवाल जो शुरू में साधारण और सादा था धीरे-धीरे उन्हें यातना देने लगा । उत्तेजना में वह कूद कर उठ बैठे । यह सच था या नहीं ? हाँ, यह सच था, सच था । और वह फिर घास में लोट जाने ही वाले थे कि वह रुके और चारों तरफ़ देखने लगे।

चारों तरफ़ अँधेरा था, गाँव का उदास, भारी अँधेरा, जहाँ दूर की भी अवाज़ सुनाई दे सकती है लेकिन उसी तरह अकेली और सिहरन से भरी हुई जैसे भोर का अन्तिम सम्मोहन । और फिर कनपटियों पर एक दर्दनाक टपकन के साथ यह सवाल उठा : क्या वस्तुतः वे स्त्रियाँ थीं या उनकी कल्पना की उपजभर थीं । हर बार जब यह सवाल नये सिरे से उठता, वह काँप जाते ।

भयातुर वह फिर चौराहे की ओर लौट पड़े । अँधेरे में लड़खड़ाये और अन्ततः उस लकड़ी के खम्भे तक पहुँच गये और अपने हाथों से उसे जकड़ लिया । वह झुक कर मिट्टी में पदचिह्नों को टटोलने लगे, चश्मे के किनारे जहाँ ज़मीन कुछ नम थी, वह घुटनों के बल झुककर बैठ गये और बार-बार अपनी उँगलियाँ ज़मीन पर चलाते रहे, भय से काँपते और यह पता लगाते कि दिन की वे आकृतियाँ कल्पना थीं या सच थीं । लेकिन उँगलियों से इस तरह टटोलकर वह कुछ नहीं पा सके ।

"मैंने उन्हें देखा था, मैंने उन्हें देखा था," वह बुदबुदाये और दौड़कर वहाँ पहुँचे जहाँ वह बैठे थे और वहाँ भी अपनी जलती हुई उँगलियों से ज़मीन टटोलने लगे और अँधेरे में आँख फाड़-फाड़ कर देखने की कोशिश करने लगे बंडलों के उन कागज़ों को जिन्हें उन्होंने देखा था या उनका ख्याल था कि उन्हें झुटपुटे में दिखाई दिए थे । अन्ततः उन्हें यह खोज समाप्त कर देनी पड़ी। वह धीरे-

धीरे चलकर अलूचे के अपने बग़ीचे में आ गये, पराजित, जैसे कि अपनी ही इन्द्रियों पर से अपना विश्वास हमेशा के लिए जाता रहा हो। वह बहुत देर तक सख्त-गरम घास पर औंधे मुँह पड़े रहे, बाँहें फैलाए जैसे कि क्रॉस पर लटके हों, अपनी ही हड्डियों और मांसपेशियों के भार की कीलों से ठुँके हुए। अचानक कुछ आती हुई आवाज़ों ने उन्हें चौंका दिया और उनके अर्द्धचेतन सपने तोड़ दिये। उनके पड़ोसी तासिख़ परिवार के खलिहान में आग जल रही थी और उसके चारों तरफ़ किसान बैठे बातें कर रहे थे। आग की चमक में आदमी और औरतों की आकृतियाँ चक्कर काटती और फिर अँधकार में खोती दिखाई दे रही थीं। आवाज़ एक क्रम से चढ़-उतर रही थीं लेकिन इतनी दूरी से शब्द साफ़ पकड़ में नहीं आते थे। तासिख़ परिवार गेहूँ की ओसाई करने जा रहा था। दिन के समय जब बेहद गर्मी पड़ती और हवा बंद रहती तब ओसाई का काम रात को ही किया जाता था। रात के नौ के आसपास पहाड़ी मैदानों की ओर से अवश्य ही हवा चलने लगती थी।

एक तरफ़ आग जल रही थी, जवान छोकरियाँ मशाल लिये खड़ी थीं जिससे कि काम करने वालों को रोशनी मिल सके। उनकी फैली हुई बाँहों में सफ़ेद आस्तीनें झूल रही थीं। वे स्थिर थीं, ज़रूरत भर को ही हिलती थीं जब मशाल एक हाथ से दूसरे हाथ में बदलनी पड़ती थी। किसान अपनी दौरियों से हवा में अनाज ओसा रहे थे। मशालों की लाल रोशनी में वुयादिन को उड़ती हुई भूसियाँ और गिरता हुआ अनाज दिखाई दे रहा था जैसे कि भारी वर्षा हो रही हो। भूसी हवा में धीरे-धीरे तैरती हुई दूर जा गिरती और अँधेरे में खो जाती।

फ़ादर वुयादिन की उत्तेजना, जो सारे दिन उनमें फैलती रही थी, फिर भड़की और एक नयी ऊँचाई पर जा पहुँची। वह काँप उठे और हक़लाते हुए बोले :

"वे शान्त नहीं होंगी, यहाँ तक कि रात में भी अँधेरे में अपनी मशालें झुलाती और अपनी आस्तीनें फहराती विचरेंगी।"

एक के बाद एक, सारे चित्र एक क़तार में उनके सामने से गुजरने लगे : विदेशी स्त्रियाँ जिन्हें उन्होंने देवदारु के पेड़ से छिपकर देखा था; वह झुटपुटा, अँधेरे में खोये पदचिह्नों की बदहवास खोज; और अब यह खोखली रात और आग जिसने अनाज ओसाते आदमियों और उनके पास बाँहें फैलाए तैरती-सी औरतों की आकृतियाँ चमका दी हैं। इस प्रकार उनका छिपा हुआ सम्पूर्ण अस्तित्व उनके

सामने प्रकट हुआ तमाम यातना और पीड़ा से भरा हुआ जिसने उन्हें घृणा में बदल दिया था। उनके अस्तित्व के दूसरे पहलू के अन्तिम चिह्न भी खो गये : फ़ादर बुयादिन गिरजाघर में प्रार्थना कर रहे हैं, किसानों के दुखड़े सुन रहे हैं, बाज़ार के दिनों में शहर जा रहे हैं, स्त्रियाँ और डरे हुए बच्चे उनके लिए रास्ता छोड़ रहे हैं और श्रद्धानत भाव से उनके हाथ चूम रहे हैं। अब कुछ भी ऐसा नहीं था जो उनके इस अस्तित्व को पुनः प्रतिष्ठित कर सकता और उन्हें उन इच्छाओं को अभिव्यक्त करने से रोक सकता जिनकी ओर हर चीज़ उन्हें लिए जा रही थी। उस आदमी की तरह जिसका पीछा किया जा रहा हो, बुदबुदाते हुए वह असहज गति से अलूचे के अपने बग़ीचे को पार कर और एक अँधेरे गलियारे से अपने घर पहुँच कर उन्होंने ख़ुद को एक कमरे में पाया जहाँ से गिरजाघर का आँगन और तासिख़ परिवार का खलिहान दिखायी देता था। कमरे की मेज़-कुर्सियों से टकराते हुए, जैसे उनके होने का उन्हें ज्ञान ही न हो, फ़ादर बुयादिन दीवार तक गये, जहाँ उनकी शिकार की राइफ़ल भरी हुई टँगी थी। उसे तुरत उतार कर और यहाँ तक कि बिना कन्धे पर ठीक से टिकाये हुए ही उन्होंने रोशनी भरे खलिहान की ओर गोली दाग दी। उस खिंचाव में कुछ अजीब-सा सुख था जिसने उनकी बाँहों को झटका दिया, गोया राइफ़ल उनके हाथों से कूद पड़ेगी। यहाँ तक कि गोली दागते समय राइफ़ल का जो ज़ोरदार झटका उनकी छाती में लगा वह भी सुखदायक था। दूसरी बार जब उन्होंने गोली दागी तब कहीं उन्हें चीख सुनाई दी जिसके बाद ज़ोर-ज़ोर से रोने की आवाज़ आयी। मशालें झूलीं और फिर गिर पड़ीं, काम करनेवाले भाग खड़े हुए, खलिहान में केवल आग रह गयी। पुरुषों की आवाज़ें सुनी जा सकती थीं लेकिन उन सबके ऊपर एक बूढ़ी औरत की चीत्कार छायी हुई थी जो अँधेरे को विदीर्ण कर रही थी।

"योवान, मेरा बेटा, लोग हमें मार रहे हैं।"

उस रात तासिख़ परिवार के खलिहान पर जो गोलियाँ दागी गयीं वे फ़ादर बुयादिन के रहस्यमय अस्तित्व के निर्णायक भेदन की सूचक थीं। उन्होंने चारों तरफ़ अँधेरे में देखा। एक बड़ा चाकू उन्हें अलमारी पर रखा दिखायी दिया। उसे उन्होंने मुट्ठी में कस कर पकड़ लिया और घर से उस रात में भाग खड़े हुए।

उन्होंने पैदल रिज़ाव नदी पार की जो उस मौसम में काफ़ी छिछली थी। नदी पार करके थकावट से चूर, हाँफते हुए वह बालू में झाऊ की हरी झाड़ियों

में बैठ गये। वह अभी भी स्वयं से बुदबुदा रहे थे। उन्होंने अपनी छाती और सिर पर ठंडा पानी डाला जैसे कि वह किसी घाव का उपचार कर रहे हों।

दूसरे दिन सारे गाँवों में यह ख़बर फैल गयी कि फ़ादर बुयादिन ने अपने पागलपन में तासिख़ परिवार पर कई बार गोली चलायी और फिर रिज़ाव के पार भाग गये। इस कहानी पर यक़ीन करना कठिन था। न यह किसी की समझ में आती थी, न ही इसे कोई समझा सकता था, विशेषकर क़स्बे के लोगों को जिनके मन में फ़ादर बुयादिन के लिए किसानों से अधिक आदर था। यद्यपि किसान हर चीज़ ज़्यादा ठंडे दिमाग़ से और ज़्यादा आसानी से समझ लेता है फिर भी वह जो कुछ हुआ उससे परेशान थे और अपनी तरह उनके लिए करुणा व्यक्त करते थे। बाज़ार-हाट के रास्ते में मिलने पर किसानों की स्त्रियाँ रुक कर एक-दूसरे का हाल-चाल पूछती थीं और फिर फ़ादर बुयादिन की चर्चा छेड़ती थीं और ईश्वर से प्रार्थना करती थीं कि करुणामय भगवान सबको राज़ी-ख़ुशी रखें।

उन दिनों विशेग्राद में भारी संख्या में सशस्त्र पुलीस रहती थी जो नेवीसीनिया के विद्रोहियों को पकड़ने के लिए भेजी गयी थी। जल्द ही वे फ़ादर बुयादिन का पता लगाने के लिए गाँव-गाँव छानने लगे। किसानों ने सशस्त्र पुलीस को बताया कि उन्होंने उन्हें अमुक जंगल में फटेहाल, नंगे पैर-नंगे सिर, अपने हाथ में एक चाकू लिए हुए शिकार की घात में जंगली जानवर-सा घूमते हुए देखा है। लेकन जब पुलीस वहाँ पहुँचती तो उनका कहीं पता नहीं चलता। वह पहाड़ों में भाग गये थे जहाँ गड़ेरियों को डरा-धमका कर वह उनके अलाव की आग के सहारे दिन काट रहे थे। एक ऐसे ही अलाव ने, जिसकी लपट दूर से दिखाई देती थी, उनका भेद खोल दिया। जब सशस्त्र पुलीस वहाँ पहुँची, उस समय पौ भी नहीं फटी थी, उसने उन्हें गहरी नींद में सोता हुआ पाया, आग लगभग बुझ चुकी थी। पुलीस को उन्हें हथकड़ी लगानी पड़ी क्योंकि वह क़ाबू आना नहीं चाहते थे।

दूसरे दिन सशस्त्र पुलीस ने फ़ादर बुयादिन को पूरे क़स्बे में घुमाया। उनके हाथ पीठ के पीछे हथकड़ी से बंधे थे। वह कुछ अस्वाभाविक तेज़ रफ़्तार से ऐंठ कर चल रहे थे। उनका नंगा सिर पीछे ढुलका हुआ था जिससे कि उनके लम्बे भूरे बाल कन्धों पर आ गये थे। वह अपना निचला होंठ दाँतों से दबाए थे और उनकी आँखें आधी बंद थीं। उनके चेहरे पर, जो आकाश की ओर उठा हुआ था,

पागलपन का कोई चिह्न न था। केवल एक गहरा शहीदाना दर्द था। जब वह अपनी दृष्टि नीची करते थे तभी उनकी उदासी का उनकी खूनी आंखें भंडा फोड़ देती थीं जिनमें समझ का भान नहीं था। हर व्यक्ति उन्हें देख द्रवित होता था। औरतें रो पड़ती थीं और अधिकारीगण परेशान थे।

सशस्त्र पुलीस ने बड़ी अनिच्छा से उन्हें हथकड़ी डाली थी लेकिन जब हथकड़ी हटायी गयी तब वह भाग निकलने की कोशिश करने लगे। अतः उन्हें बेड़ियाँ डाल कर सरायेवो भेज दिया गया। वहाँ कोवाखी के एक बड़े अस्पताल के आधे अँधेरे कमरे में वह दस वर्ष तक स्वयं से और इस दुनिया से अनभिज्ञ जिये।

दुर्भाग्यशाली फ़ादर वुयादिन के साथ पोरुबोविच परिवार का अंत हो गया। दोब्रुन की पुरोहिती के लिए एक अजनबी आ गया। और जब फ़ादर वुयादिन का सरायेवो अस्पताल में स्वर्गवास हुआ तब उन्हें लोग भूल चुके थे। किसानों में कभी-कभी चलते-फिरते उनकी चर्चा हो जाती थी ("र्गमियों में ही फ़ादर वुयादिन पागल हो गये थे") दूसरी ओर क़स्बे में फ़ादर वुयादिन के अंत ने ज़्यादा हलचल पैदा की और आदमियों के दिल और दिमाग़ पर काफ़ी दिनों तक वह छाये रहे। उनके लिए यह कोई अदृश्य अभिशाप था। यह मनस्ताप इतना अप्रत्याशित और विचित्र था कि दुर्भाग्यग्रस्त पुरोहित के साथ सहानुभूति प्रकट करते-करते उन्हें स्वयं अपने और अपने आसपास के सभी लोगों के भाग्य का पूर्वबोध होने लगता था। हर व्यक्ति उनके दुर्भाग्य का कारण सोचता और उसका विश्लेषण करता और इस तरह यह आशा करता कि वह अपने मन को शान्त कर सकेगा और उनकी दर्दनाक याद को धूमिल कर सकेगा। लेकिन सारी कोशिशों के बावजूद वह फ़ादर वुयादिन के जीवन में कुछ भी ऐसा नहीं पा सके जिससे उनके इस विचित्र अंत पर प्रकाश पड़ता। वुयादिन की नियति उनका सामना करती रही, कठोर, सरल, अबोध्य; अनमना बालक, अकेली जवानी, दुखी आदमी।

अन्ततः वुयादिन की स्मृति और उनकी यातना धीरे-धीरे धुँधली पड़ने लगी, यहाँ तक कि क़स्बे के लोगों तक में लेकिन वह और ज़मानों की और दुर्घटनाओं की स्मृतियाँ जगाती रहीं जिन्हें दीर्घकाल से भुलाया जा चुका था। पोरुबोविच परिवार के बारे में बातचीत करते हुए, उदाहरणार्थ, लोग वुयादिन और उनके पिता और उनके पितामह दोब्रुन के पुजारी मेलन्तिया तक ही अपने को सीमित नहीं रखते बल्कि उनसे होकर अनीका के ज़माने तक पहुँच जाते।

मुल्ला इब्राहीम कूका पहले व्यक्ति थे जिन्होंने अनीका का उल्लेख किया। वह ऐसे आदमी थे जो अपने को विद्वान और रहस्यमय दिखाना पसन्द करते थे लेकिन वस्तुतः आलसी, रहमदिल और अज्ञानी आदमी थे जो अपने पितामह की प्रतिष्ठा और आय पर ज़िन्दगी बसर करते थे। पितामह प्रसिद्ध मुतवल्लिया मुल्ला मुहम्मद समझदार और ज्ञानी पुरुष थे जो एक सौ एक वर्ष की आयु में स्वर्ग सिधारे थे। मुल्ला मुहम्मद ने जो किताबें और काग़ज़ात छोड़े थे उनकी कई पीली जिल्द की मोटी कापियाँ थीं जिनमें उन्होंने यह सब-कुछ नोट कर रखा था जो उनके क़स्बे में घटा था। साथ ही दुनिया की वह सब ख़बरें भी अंकित थीं जिनका उनको ज्ञान था। बाढ़, फसलों का चौपट होना, पास और दूर की लड़ाइयाँ, सब कुछ उनमें दर्ज था। इतना ही नहीं, सूर्य और चन्द्रग्रहण, आकाश के रहस्यमय संकेत और दृश्य और हर वह चीज उनमें लिखी थी जो उन दिनों क़स्बे को, क़स्बे के लोगों को उत्तेजित करती थी। एक इस समाचार के बाद ही, कि जर्मनी के एक नगर में एक राक्षस पैदा हुआ है (और चूँकि वह एक फुट ही लम्बा था, उसे सबको देखने के लिए एक बोतल में बन्द करके रख दिया गया है) यह समाचार था कि बोनापार्ट नामक एक मसीही जनरल मिस्र पार करके सुलतान से लड़ने के लिए पहुँचा। और कुछ पृष्ठों बाद यह विवरण था कि किस प्रकार बेलग्राद के एक प्रान्त में रियाया ने विद्रोह कर दिया है और किस तरह बुरे लोगों द्वारा भड़काये जाने पर उन्होंने तोड़-फोड़ और हिंसा के कृत्य किये हैं। इस विषय के बाद निम्नलिखित दर्ज था :

"उसी वर्ष एक नौजवान स्त्री, एक मसीही पर (ईश्वर सभी काफ़िरों का हतबुद्धि कर देता है) पाप सवार हो गया और उससे इतनी हलचल पैदा हुई और उसे इतनी शक्ति मिली कि उसकी कुख्याति दूर-दूर तक फैल गयी। अनगिनत आदमी, जवान और बूढ़े दोनों—सभी ने उसकी सोहबत की और बहुत-से नौजवान उसके चक्कर में फँस गये। सत्ता और क़ानून दोनों को उसने अपने पैरों से कुचल कर रखा। लेकिन उसे समझने वाला भी कोई मिला और वह जिस योग्य थी उसी तरह कुचली गयी और लोग फिर उसी तरह सरल भाव से ईश्वर के आदेशों की चर्चा करने लगे।"

मुल्ला इब्राहीम ने काफ़ी हाउस में जमा लोगों को यह पढ़कर सुनाया और बुज़ुर्गों ने बहुत पहले अपने बचपन के दिनों में अनीका के ज़माने के बारे में,

मसीहियों और सभी धर्मनिरपेक्ष तथा आध्यात्मिक सत्ताधारियों से अनीका की लड़ाई के बारे में विशेषकर दोब्रुन के पुरोहित मेलन्तिया से उसके संघर्ष के बारे में जो कुछ सुना था उसे याद करने की कोशिश की। बहुत कुछ इसके बारे में बहुत पहले ही भुलाया जा चुका था लेकिन जब उसकी कहानी फिर प्रकाश में आयी तो उस पर बहुत चर्चा रही और वस्तुतः 'अनीका का ज़माना' फ़िकरा बाद में चलकर बातचीत में बतौर हवाले के इस्तेमाल किया जाने लगा।

घटना इस प्रकार थी।

२

क़स्बे में जहाँ आदमी और औरत भेड़ों की तरह एक-से दीखते हैं, कभी-कभी हवा में उड़कर आये बीज की तरह संयोग से ऐसा बच्चा जनम लेता है जो भ्रष्ट होता है और सामान्य व्यवस्था से पृथक् दिखाई देता है, दुर्भाग्य और गड़बड़ी तब तक पैदा करता है जब तक स्वयं ही समाप्त नहीं होता और फिर कहीं जाकर पुरानी व्यवस्था पुनः प्रतिष्ठित होती है।

अनीका का बाप मारिको क्रनोयेलात्स विशेग्राद में नानबाई का काम करता था। अपनी युवावस्था में अपने ज़नाने सौन्दर्य के लिए वह प्रसिद्ध था, पर जल्द ही उसकी उम्र ढल गयी। एक बार वह अलूचे के अपने बग़ीचे में घूम रहा था कि उसने देखा एक किसान अपने लड़के के साथ उसके पेड़ों से अलूचे तोड़ रहा है, उसने एक डंडा उठाकर मारा और किसान की वहीं, उसी क्षण मृत्यु हो गयी। लड़का भाग गया। उसी सुबह पुलीस ने मारिको को गिरफ़्तार कर लिया। उसे सरायेवो के पास विदिन जेल में छः साल की क़ैद दी गयी। आने-जाने वाले यात्री बताते थे कि पैरों में खड़खड़ाती बेड़ियाँ डाले वह और क़ैदियों के साथ जूटा ताबिया के लिए चूने के पत्थर ढोता दिखायी देता है।

विदिन की जेल में मारिको चार साल रहा। जब वह छूटकर वापस विशेग्राद आया तो अपने साथ नयी बीवी भी लाया। उसकी पहली बीवी, जिससे उसके

कोई बच्चा नहीं था, जिन दिनों वह जेल काट रहा था उन्हीं दिनों स्वर्ग सिधार गयी थी। उसने फिर नानबाई का काम शुरू कर दिया और पहले की तरह शान्तिपूर्वक जीवन बिताने लगा।

उसकी दूसरी बीवी का नाम अंजा था। वह उम्र में उससे कहीं छोटी थी; कमर थोड़ी झुकी हुई, आँखों में स्थिरता और थकान झलकती थी। उसकी चाल-ढाल में थोड़ा विदेशीपन था। क़स्बे के लोगों ने न तो उसे कभी पसन्द ही किया और न उसे आदर दिया। आम तौर से लोगों की यह धारणा थी कि ऋनोयेलात्स उसे जेल से लाया है और वे उसे जेल के ही नाम पर विदिनिका कहकर पुकारते थे। मारिको ने इसे झूठ साबित करने की बहुत कोशिश की, लाख यह कहा कि वह एक नानबाई की लड़की है जिसकी दूकान पर उसने जेल से छूटने के बाद कुछ दिन नौकरी की थी, पर उसकी एक न चली।

यही औरत अनीका की माँ थी। मारिको के इससे एक लड़का भी था जो अनीका से एक साल बड़ा था। वह दुबला-पतला, कमज़ोर और लम्बा था। आँखें सुन्दर और हँसती हुई थीं लेकिन दिमाग कमज़ोर था। लोग उसे लाले कहते थे। बचपन उसने माँ से साथ लगे-लगे बिताया और बाद में बाप के साथ भट्ठी पर काम करने लगा। दूसरे लड़कों की संगत में वह कभी नहीं घूमा-फिरा। न सिगरेट पी न शराब, न ही लड़कियों की ताक-झाँक में रहा।

किसी के लिए भी यह याद करना बहुत मुश्किल था कि अनीका किस तारीख को पैदा हुई या किस तरह पली-पुसी।

सबसे कटी हुई दूर-दूर रहने वाली अपनी माँ के साथ रहकर वह एक दुबली-पतली लम्बी लड़की के रूप में बड़ी हुई जिसकी बड़ी आँखों में अविश्वास और दर्प था और जिसका मुख उसके छोटे चेहरे पर बहुत बड़ा दीखता था। वह बढ़ी लेकिन ऊपर की तरफ़। उसकी माँ उसके चेहरे पर इस तरह रूमाल बाँध देती कि उसके बाल दिखायी नहीं देते जिससे कि वह और दुबली-पतली और विचित्र दीखती। इकहरे तने हुए शरीर की यह छोटी लड़की अपना सिर झुकाये रहती जैसे अपनी लम्बाई पर उसे शर्म आती हो, उसके होंठ कसे हुए, उद्धत और उसकी आँखें नीचे झुकी हुई रहतीं। कोई ताअज्जुब नहीं कि ऋनोयेलात्स की बिटिया की ओर लोगों का इतना कम ध्यान गया जो न तो देखने में ही इतनी सुन्दर थी न ही इतना ज़्यादा बाहर निकलती थी, अगर जाती भी थी तो थोड़ी देर के लिए

अपने बाप की दूकान तक।

उस बार बिना बर्फ़ की लम्बी नम सर्दी बहुत पहले ही शुरू हो गयी थी—एक दैवी प्रकाश से मंडित। जुलूस कीचड़ में पैर रखता जा रहा था। चर्च के झंडे चमक रहे थे और लोगों की आँखें असामयिक, अस्वास्थ्यकर धूप में मिचमिचा रही थीं। जिस पानी से उन्होंने सलीब निकाला था वह वसन्त की तरह हरा था और लहरा रहा था।

ज्यों ही जुलूस ने चर्च में प्रवेश किया, एक और आश्चर्य दिखाई दिया : क्नोयेलात्स की लड़की। यद्यपि वह अब भी दुबली-पतली थी लेकिन इन सर्दियों में काफ़ी बदल गयी थी। उसका रंग दूध-सा सफ़ेद हो गया था, आकृति तनी हुई थी और वह हर तरफ़ से भर गयी थी; आँखें और बड़ी-बड़ी हो गयी थीं और मुँह पहले से छोटा लगने लगा था। वह साटन का एक असाधारण काट का घाँघरा पहने थी। क़स्बे के लोगों की आँखें उसकी तरफ़ घूम गयीं। उन्हें आश्चर्य था कि यह लड़की कौन है और क्यों चर्च में अकेली आयी है। वस्तुतः ऐसा लगता था जैसे कि वह किसी दूसरे शहर से, किसी अजीब दुनिया से आयी है।

अनीका धीरे-धीरे एक निराली चाल से भीड़ चीरती हुई चल रही थी, न तो चारों ओर देख रही थी और न उनको जो उसे घूर रहे थे। उसकी दृष्टि सीधी चर्च के प्रांगण के द्वार पर लगी थी जिधर वह बढ़ रही थी। द्वार पर वह एक खूबसूरत नवयुवक से लगभग टकरा-सी गयी जिसका नाम मिहाइलो निकोलिन था लेकिन जिसे लोग विदेशी कहते थे। इस तरह टकराने से दोनों ही कुछ झिझके (मिहाइलो अनीका से अधिक) लेकिन वे एक-दूसरे के पीछे दरवाज़े की सीढ़ियों की ओर लगभग एक साथ ही बढ़ गये।

दैवी प्रकाश के बाद के रविवार को अनीका और मिहाइलो उसी चर्च द्वार पर मिले। लेकिन इस बार आकस्मिक नहीं, मिहाइलो उसकी प्रतीक्षा कर रहा था और सीधे उसके साथ हो लिया। यदि क़स्बे के लोगों को अनीका के आकस्मिक रूपान्तरण से आश्चर्य हुआ था तो उतना ही आश्चर्य उन्हें मिहाइलो को देखकर हुआ था, जो कभी लड़कियों के साथ नहीं घूमता-फिरता था लेकिन आज जो अनीका की प्रतीक्षा ही नहीं कर रहा था बल्कि उसे उसके घर भी छोड़ आया था। क़स्बे में क्नोयेलात्स की लड़की की चर्चा रुकी नहीं जो अप्रत्याशित रूप से इतनी जवान हो गयी थी और वह भी इस तरह ढली थी कि क़स्बे की अन्य सभी

औरतों से बिलकुल अलग दीखती थी।

क़स्बे के लोगों के सामने अनीका के पहली बार आने से जितनी उलझन क़स्बे को हुई थी उतनी ही अनीका को भी हुई। उसके चारों तरफ़ जो कुछ था उसे वह नयी आँखों से देख रही थी। और चूँकि वह पहली बार अपने शरीर के प्रति जागी थी वह अपने को सजाने-सँवारने लगी थी और इस बात का प्रयत्न करने लगी थी कि और अधिक सुन्दर दीखे।

वसन्त उस बार बहुत धीरे और डर-डरकर आ रहा था। जब मौसम सुहावना होता अनीका अहाते में निकलती और आंखें मूँद-मूँदकर गहरी-गहरी साँसें लेने लगती। घूमते-घूमते वह थक जाती और जब वापस घर में जाती उसे अपना कमरा इतना अँधेरा और ठंडा लगने लगता कि उसे कँपकँपी छूट जाती, वह फिर बाहर निकल आती। और जब सूरज अहाते की दीवार की ओट जाकर डूब जाता और छायाएँ गहरा जातीं तो वह दौड़कर एक टीले पर चढ़ जाती जिससे कि एक बार फिर सूर्य के ताप को समेट सके। जिस दिन ठंड अधिक होती और हवा में ठिठुरन होती, अनीका अपने कमरे में रहती, अँगीठी जला उसके पास बैठी आग की लपटों को देखती रहती। अपने बटन खोलकर अपने हाथ बग़ल के थोड़ा नीचे रखती जहाँ से कि किसी नवयौवना के उरोज पसलियों से अलग होते हैं। वहाँ की चमड़ी कसी हुई और विशेषकर चिकनी होती। उस स्थल को वह अक्सर घंटों दबाये अंगीठी की आग को और अंगीठी के छोटे-छोटे सूराखों को देखती रहती जो आँखों की तरह लगते और इस पूरे समय वह कुछ कहती रहती जैसे कि कमरे की चीज़ों से बात कर रही हो। लेकिन जब उसकी माँ उसे कुछ करने के लिए बुलाती, उसे अपने हाथ हटाने पड़ते, बटन लगाकर घर से बाहर निकलना पड़ता तो वह चौंक जाती जैसे कि उसकी तन्मयता भंग हो गयी हो। और जब फिर वापस आकर आग के पास बैठती तो वह काफ़ी देर तक अपने को व्यवस्थित नहीं कर पाती। उसे लगता कि अब फिर उस स्थान को वह नहीं पा सकेगी जहाँ उसका हाथ था, जैसे कि कुछ ही देर पहले कोई आँधी उसकी बहुत ही प्यारी चीज़ उससे छीन कर उड़ा ले गयी हो।

इस प्रकार क्नोयेलात्स की लड़की अपने ही बारे में अपने ख़यालों में डूबी रहती, चुपचाप, हर एक से उदासीन लेकिन दिन-प्रतिदिन अधिक सुगठित और सुन्दर होती जाती। उसके दिन बहुत ही तेज़ी से और रहस्यमय ढंग से गुज़रते

जाते : ग्रीष्म, शरत् और फिर शीत। रविवार को और छुट्टियों के दिन अनीका चर्च जाती। उसके साथ एक दुबली-पतली, मरियल पड़ोस की लड़की होती। शुरू में तो मिहाइलो नियमित रूप से उससे चर्च के प्रांगण में मिलता, कुछ बात करता। लेकिन आगे चलकर अन्य नवयुवक उससे मिलने लगे। सर्दियाँ आते-आते क्नोयेलात्स की यह दुबली-पतली भीरु लड़की एक लम्बी सुन्दर औरत बन गयी और आदमियों की कामना और स्त्रियों की गपशप का मुख्य केन्द्र हो गयी।

उन्हीं सर्दियों में मारिको की मृत्यु हो गयी। उसके लड़के लाले ने बाप का काम सँभाला। किशोर और कमज़ोर दिमाग़ का होते हुए भी उसने अपने को एक अच्छा नानबाई सिद्ध किया और उसके बाप के ग्राहक उससे बँधे रहे।

अंजा, जो अब तक एक परछाईं की तरह जी रही थी, और अधिक दुबली हो गयी और झुक गयी। उसकी लड़की, जिसे उसने कभी पसन्द नहीं किया और न ही जिससे उसकी पटती थी, उस उम्र में पहुँच गयी थी जब लड़कियाँ आत्म-केन्द्रित और अन्तर्मुखी हो जाती हैं, अपने माता-पिता और पास-पड़ोस की परवाह नहीं करतीं। अपने पति की मृत्यु के साथ-साथ अंजा का इस नगर से एकमात्र सम्पर्क भी खो गया। उसने बातचीत करना लगभग एकदम बन्द कर दिया। वह रोयी नहीं। अपने चारों तरफ़ की हर चीज़ को वह तटस्थ दृष्टि से देखती उसी वर्ष चुपचाप प्रच्छन्न रूप से चल बसी। अनीका को इतना भी मौक़ा नहीं मिला कि अपने पिता की मृत्यु पर पहने शोकवस्त्र भी उतार पाती।

अनीका अकेली नहीं रही, उसकी बुआ प्लेमा उसके पास आकर रहने लगी। प्लेमा मृत मारिको की सौतेली बहिन थी, वृद्धा, अल्पदृष्टि विधवा, जिसकी युवावस्था सुखद नहीं थी, उथल-पुथल से भरी हुई थी। लेकिन उसको अब इतने दिन गुज़र चुके थे कि दूसरों की बात तो दूर स्वयं उसे भी ठीक-ठीक याद नहीं रह गया था कि क्या-क्या हुआ था। इस प्रकार अनीका के एक ओर उसका अल्प-बुद्धि भाई था दूसरी ओर अल्पदृष्टि बुआ। माता-पिता की मृत्यु ने उसके चारों तरफ़ एक रिक्तता भर दी थी। शोकवस्त्र उसके अद्वितीय सौन्दर्य और उसके आकर्षक रूप-विन्यास को ही रेखांकित करते थे।

वह अपने भाई से लम्बी थी और अभी भी बाढ़ पर थी। वस्तुतः वह निरन्तर बदल रही थी। उसकी निगाहें चंचल हो गयी थीं, उसकी काली आँखों में रतनारी आभा आ गयी थी, उसकी त्वचा और अधिक सफ़ेद, तथा उसकी चाल

और अधिक मन्थर और सहज हो गयी थी। क़स्बे में अनीका का विवाह किससे होगा इस पर अटकलें लगायी जाती थीं। इसी तरह चर्च में नवयुवक भी अटकल लगाते थे। वह उन सबको उदासीनता से देखती और उनकी बातें चुपचाप सुन लेती लेकिन ख़ुद बहुत कम बोलती। और जब बोलती भी तो शान्त और भारी आवाज़ में बिना अपने सुडौल लेकिन पीले अधर खोले हुए। बहुधा उसके एकाक्षरीय बयान अपने पीछे एक हल्की-सी प्रतिध्वनि भी नहीं छोड़ते बल्कि कहे जाने के तुरत बाद ही विलीन और विनष्ट हो जाते। उसकी आवाज़ और उसके कथन की नहीं बल्कि उसके रूप की ही छाप सबसे प्रबल पड़ती।

जितनी ही वह विलक्षण और रहस्यमय होती गयी क़स्बे में उतनी ही इस बात की चर्चा बढ़ती गयी कि उसका पति कौन हो सकता है। मिहाइलो का नाम इस सन्दर्भ में अक्सर लिया जाता।

मिहाइलो छः साल पहले क़स्बे में मास्टर निकोला सुबोतीख के पास शिक्षार्थी बन कर आया था। इसके पूर्व दो वर्ष सरायेवो में सुबोतीख स्टोर में वह काम कर चुका था। मास्टर निकोला चौपायों और खाल का व्यापार करते थे और चूँकि व्यापार में उनकी बड़ी दिलचस्पी थी वह सबसे धनी व्यापारियों में होते यदि आवारागर्दी और जुए की लत उनमें न होती। वह कहीं भी जम कर नहीं रह सके। युवावस्था में ही वह विधुर हो गये थे और फिर उन्होंने कभी विवाह नहीं किया। वह अदम्य साहस और असाधारण बल और बुद्धि के व्यक्ति थे। व्यापार और जुआ दोनों में ही उनका भाग्य काफ़ी साथ देता था। सौभाग्यशाली निर्णयों में उनका एक निर्णय जो आठ साल पहले उन्होंने लिया था वह था मिहाइलो को तीन ग्रासचेन के वेतन पर शिक्षार्थी के रूप में लाना और आगे चलकर उसे साझेदार बनाना। जब कि मास्टर निकोला निरन्तर ताश के पत्तों पर अपना भाग्य आज़माते इधर-उधर घूमा करते थे जिससे अन्त में आदमी का हाथ खाली ही रहता है, मिहाइलो उनका घर चलाता था और विशेग्राद में उनकी दूकान। वह परिश्रम से काम करता था और लाभ को बराबर-बराबर ईमानदारी से बाँट लेता था। इस दृढ़ आचरण के कारण अन्ततः मिहाइलो को क़स्बे में सम्मान मिला। निःसन्देह शुरू में क़स्बे के लोगों ने उसे उसी तरह स्वीकार किया था जैसा कि किसी बाहरी आदमी को स्वीकार करते हैं, उग्रता और अविश्वास के भाव से। लेकिन उसे दो चीज़ें--सम्पत्ति और हैसियत प्राप्त थीं जिनके बल कोई

क़स्बे में अपने को बनाये रख सकता हैं।

वह अपने मालिक के घर में रहता था जिसकी देख-भाल एक बुढ़िया करती थी; वह तब से थी जब मास्टर निकोला का विवाह हुआ था। योग्य, पढ़ा-लिखा और काम में लगन के कारण मिहाइलो को अपने मालिक के कारोबार का काफ़ी बड़ा हिस्सा ही नहीं मिला बल्कि उसको चलाने की ज़िम्मेदारी भी मिली। सुचारु ढंग से काम करने की उसकी आदत के अतिरिक्त ऐसा लगता था कि वह जुट कर काम इसलिए करता है जिससे कि क़स्बे के लोगों में एक हो सके। वह वह सब करता था जो क़स्बे के अन्य नवयुवक करते थे, लोगों के साथ मिलता-जुलता, पीता-पिलाता और गाता-बजाता था। उसके विवाह के बड़े प्रस्ताव आये लेकिन उसने हर एक को मना कर दिया; या तो उन्हें हँसकर टाल दिया या उन पर चुप्पी साध ली। इसलिए लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ जब दो सर्दियों पहले वह अनीका से मिलने-जुलने लगा था; लेकिन यह कहना और ज़रूरी है कि लोगों को उससे भी ज़्यादा आश्चर्य इस बात पर हुआ था कि उसने अचानक अनीका से मिलना-जुलना बन्द कर दिया। क़स्बे के लोग अटकलें लगाते थे कि क्नोयेलात्स की लड़की में, जो उनके लिए इतनी रहस्यमय थी, और मिहाइलो में, जो उनके लिए इतना नया था, क्या हुआ होगा। और वे अटकलें लगाते ही रहे। इस घिसे-पिटे क़स्बे में एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं था जिसे यह पता चला हो कि मिहाइलो और अनीका क्यों अलग हो गये, क्योंकि कोई भी यह कल्पना नहीं कर सकता था कि मास्टर निकोला के इस साझेदार के शान्त और परिश्रमी मुहरे के पीछे क्या छिपा हुआ है।

मिहाइलो का वंश संजक का था लेकिन उसके पितामह संजक से प्रिज़रेन आकर बस गये थे। पीढ़ियों से उसके परिवार में बन्दूक़ बनाने का कारोबार चला आ रहा था। प्रिज़रेन में मिहाइलो के बाप ने इसी कारोबार में काफ़ी धन कमाया था। उसका एक भाई पुरोहित था और चूँकि मिहाइलो पढ़ा-लिखा था और किताबों से प्रेम करता था, लोग चाहते थे कि वह भी वही काम करे। इसके अतिरिक्त, चार पीढ़ियों से बन्दूक़ बनाने का काम करते रहने के कारण परिवार आराम से रहता था और अपनी सम्पत्ति के अनुरूप सुरुचि भी अपना सका था। मिहाइलो के पिता की युवावस्था में ही मृत्यु हो गई थी अतः मिहाइलो अपने भाई के साथ बन्दूक़ बनाने का काम करने लगा।

दोनों भाई साथ-साथ रहते ग्रौर काम करते थे। मिहाइलो के भाई की उम्र तेईस वर्ष थी लेकिन न तो वह ख़ुद ग्रपना विवाह करता था ग्रौर न ही ग्रपने छोटे भाई को ग्रपने से पहले विवाह करने की ग्रनुमति देता था। क्योंकि मिहाइलो में स्त्री की कामना बलवती थी ग्रतः उसे काफ़ी यातना भी भोगनी पड़ती थी, लेकिन इस बात को लेकर ग्रपने भाई से उलझने में उसे बहुत लज्जा ग्राती थी। निरन्तर यातना की ऐसी हालत में वह एक दिन क्रिस्तिनित्सा की सराय में, जो लबे सड़क था, पहुँच गया। वह लियूबिज़्दा की ग्रपनी छोटी-सी ज़मींदारी से वापस लौट रहा था।

उस समय गर्मी थी ग्रौर सराय में सिवा क्रिस्तिनित्सा के ग्रौर कोई नहीं था। वह हट्टी-कट्टी कोई तीस साल की ग्रौरत थी। बातचीत के दौरान वह मिहाइलो के बिलकुल करीब ग्रा गयी। मिहाइलो का सारा शरीर काँपने लगा। उसने ग्रपना हाथ बढ़ाया जिसका कोई प्रतिवाद उसकी ग्रोर से नहीं हुग्रा। उसी समय उसका पति क्रस्तो कुछ दूर पर दिखायी दिया। वह रुग्ण, चिड़चिड़ा ग्रादमी था। उसकी स्वस्थ ग्रौर चौकस बीवी का उस पर पूरा ग्राधिपत्य था। उसने मिहाइलो से फुसफुसा कर कहा कि वह दूसरे दिन शाम को ग्राये। उस रात वह ठीक से सो नहीं सका। दूसरे दिन शाम को जब वह उत्तेजित-हाँफता हुग्रा सराय में पहुंचा, तो उसे यक़ीन नहीं था कि यह सम्भव है या यह दरग्रस्ल हो सकेगा। ग्रौर जब उसने उसका स्वागत किया ग्रौर एकान्त कमरे में ले गयी, तो उसे ऐसा लगा कि एक ग्रसह बोझ उस पर से उतर गया है ग्रौर ईश्वर की पूरी ख़ूबसूरत दुनिया उसके सामने खुल गयी है।

उस महीने में वह दो बार रात में छिपकर क्रिस्तिनित्सा के पास गया ग्रौर लौट ग्राया। क़स्बे में किसी को इसकी हवा भी नहीं लगी। उसने कभी क्रस्तो के बारे में नहीं सोचा; जो कि सच तो यह है, ग्रादमी की केवल परछाईं था, न ही उसने जो कुछ क्रिस्तिनित्सा कहती थी उस पर ध्यान दिया—भविष्य, ग्रपने घोर दुर्भाग्य, ईश्वर को उसके ऊपर दया ग्रानी चाहिए, ग्रौर कैसे वह उसे कभी इस भार से मुक्त करे।

मिहाइलो जब चौथी बार सराय में गया उसने क्रिस्तिनित्सा को बाड़े के पास हमेशा की तरह नहीं पाया। कुछ देर की इन्तज़ारी के बाद उसी एकान्त कमरे से जहाँ उसने क्रिस्तिनित्सा के साथ रातें बितायी थीं, झगड़ने की ग्रावाज़

आती हुई सुनाई दी। वह भय से स्तंभित रह गया लेकिन किसी तरह कमरे तक गया और दरवाज़ा खोलने पर उसने देखा कि कस्तो और क्रिस्तिनित्सा गुत्थम-गुत्था हैं। कस्तो ने अपने दाहिने हाथ में कुल्हाड़ी उठा रखी है लेकिन उसकी बीवी इस तरह से उससे चिपकी हुई है कि उसका कुल्हाड़ीवाला हाथ बिलकुल जड़ और असहाय हो गया है। दोनों निढाल हाँफ रहे हैं, एक-दूसरे को गालियाँ दे रहे हैं और टूटे-फूटे वाक्य कह रहे हैं जिनसे पता चलता था कि झगड़ा किस बात पर हुआ जिसका यह नतीजा है। भयभीत और आश्चर्यचकित मिहाइलो उस समय देहरी पर पहुँचा जब क्रिस्तिनित्सा किसी तरह अपने पति को फ़र्श पर पटकने में सफल हो चुकी थी। उसके साथ-साथ वह भी गिर पड़ी थी लेकिन एक क्षण के लिए भी उसने उसका वह हाथ नहीं छोड़ा था जिसमें उसने कुल्हाड़ी पकड़ रखी थी। वह उसके ऊपर इस तरह गिरी थी जैसे बर्फ़ फिसलती है या पानी टूटता है, अपने को इस तरह साधे हुए जैसे कि कहीं से एक चट्टान फेंकी गयी हो। वह उसे अपने हाथों, घुटनों, छाती तथा अपने पूरे वज़न और ताक़त से जकड़े हुए थी। कस्तो अपने को छुड़ाने के लिए घबराया हुआ पूरी ताक़त से अपने पैर चला रहा था और वह उसके ऊपर मज़बूती से फैली हुई थी अपने पूरे शरीर से यहाँ तक कि अपनी ठोढ़ी से, जिससे कि वह उठ न सके। अपनी छोटी से छोटी पेशी भी उसपर से हटाकर अपना दबाव कम करने की इच्छा न रखते हुए उसने एक दृष्टि मिहाइलो पर डाली और अपनी साँस बटोरकर, जैसे कि अपनी शक्ति सुरक्षित कर रही हो, कहा :

"टाँगें, उसकी टाँगें पकड़ो।"

क्या वह कस्तो की टाँगों पर बैठा था ? और क्या अपनी पेटी में बँधा चाकू उसने क्रिस्तिनित्सा को निकालने दिया था ? यह आठवाँ वर्ष है कि मिहाइलो हर दिन, हर रात खाते-पीते-सोते यह सवाल खुद से पूछता है। और बहुधा हर बार एक भावात्मक उथल-पुथल में वह खुद को जवाब देता है कि ऐसी बात अविश्वसनीय है, क्योंकि ऐसा काम किसी को नहीं करना चाहिए, कोई कर नहीं सकता। और फिर एक अँधेरा उसके ऊपर छा जाता और उस अँधेरे में वह सच्चाई से अपने को बताता कि उसने ऐसा किया, कि वह कस्तो की टाँगों पर बैठा, कि उसने क्रिस्तिनित्सा को चाकू निकालने दिया और उसने सुना कि वह, तीन, चार, पाँच, इधर-उधर बेहिसाब जैसा कि औरत करेगी, पसलियों में, बग़ल में, पुट्ठों पर कस्तो

के चाकू मार रही है। हाँ, उसने यह किया जो अविश्वसनीय है जो कि करना असम्भव था। और यह भयावह लज्जाजनक कृत्य हर समय उसके सामने छाया रहता—असाध्य, अपरिवर्तनशील।

ऋस्तो की हत्या के बाद वह बाहर भागा और सराय के सामने चश्मे के चबूतरे पर बैठ गया। रात की उस ख़ामोशी में चश्मे का कलकल उसे गरज की तरह लगती। उसने ठंडे पानी में अपना हाथ डाल रखा था।

अभी भी वह काँप रहा था। उसने अपने को सँभाला और अचानक उसकी समझ में आया कि सराय के भीतर उसने क्या देखा-सुना है। यह भयावह कृत्य! तो यही सच्चा अर्थ था उसके पूरे महीने की वासना का, उस अपार सुख का जो उसके भीतर उमड़ा था और बहा था, एक क्षण भी बिना सोचे हुए कि इसमें कुछ बुरा है। और आश्चर्य तो यह है कि बजाय विनाश और भयावहता की बात सोचे हुए जो कि उसकी आँखों के सामने घटित हुआ, और जिसमें उसका योग था। उसके विचार इस पूरे महीने के सुख की ओर मुड़ रहे थे, उसे विकृत और लज्जित करना चाहते थे। क्योंकि यकायक यह स्पष्ट हो गया था कि शुरू से ही यह उतना ही भयावह, लज्जाजनक, और निर्मम था जितना कि स्वयं यह अन्तिम कृत्य। उस प्रेम की प्यास और सुख का अब एक चिह्न भी शेष नहीं था जो पूरे महीने उसमें तरंगित होता रहा था। अब वह एक और बड़ी घटना में फँस गया था, जिसमें उसका हाथ बेमतलब सूक्ष्म रूप से थोड़ा-सा था फिर भी वह इस सारी दुखद परिस्थिति का कारण था और साधन था। ऋस्तो और क्रिस्तिनित्सा के बीच जो मामला था और जिसे वे एक लम्बे अरसे से सुलझा रहे थे, वह नहीं जानता था और अब हर चीज़ यकायक कट गयी, समाप्त हो गयी। उसे लगा कि उसे धोखा दिया गया है, लज्जित किया गया, ठगा गया और सदा के लिए कुचल दिया गया है, जैसे कि वह एक जाल में फँसा लिया गया हो, जहाँ वह अलग-अलग कारणों से एक पति और पत्नी द्वारा खींचकर लाया गया था एक गहन और पुरातन घृणा के अंग के रूप में जो इन तीनों से बड़ी और सशक्त है। यह उसका सुख था।

वह क्रिस्तिनित्सा की आवाज़ से चौंक पड़ा; वह उसे आधे खुले दरवाज़े से क़रीब-क़रीब फुसफुसाकर बुला रही थी। वह उठा और उस के पास गया। एक हाथ से वह दरवाज़ा पकड़े थी और दूसरे हाथ में उस का चाकू था। वह बेबाक़

सूखी आवाज़ में कह रही थी :

"मैंने इसे धो दिया है।"

यह साफ़ जानते हुए कि यदि वह चाकू उसके हाथ से ले लेगा तो बाद में क्या होगा, वह एकदम से एक तरफ़ खिसक गया और उसे एक ज़ोर का घूँसा मारा; दरवाज़ा उसके हाथ से छूट गया और वह कमरे में धम्म से जा गिरी। कमरे के दरवाज़े को उसने अधखुला रहने दिया। भीतर ख़ामोश मोमबत्ती जल रही थी जिसका मद्धिम प्रकाश क्रिस्तिनित्सा पर पड़ रहा था जो क्रस्तो के मृत-शरीर के, जो जलबेंत की चटाई से ढका था, बग़ल में बेहोश पड़ी थी।

मिहाइलो तेज़ी से सड़क पर आ गया। चश्मा शांत कलकल करता बह रहा था और चबूतरे से टकराकर छपाक-छपाक कर रहा था।

सूर्योदय के पहले ही मिहाइलो क़स्बे पहुँच गया। इस इरादे से कि अधिकारियों को ख़ुद को सौंपने से पहले कपड़े बदल ले। लेकिन जब वह अपने घर पहुँचा, सहन से होकर कमरे में गया, उसमें रखी चिर-परिचित चीज़ें देखीं और यह महसूस किया कि हर चीज़ वैसी की वैसी है जैसीकि वह रात में सराय जाने के पूर्व छोड़ गया था, एक नया विश्वास उसके भीतर घर करने लगा कि उसे ख़ुद को अधिकारियों को नहीं सौंपना चाहिए क्योंकि उसे गिरफ़्तार करने का अर्थ एक निरपराध आदमी को गिरफ़्तार करना होगा। निश्चय ही वह दोषी है बहुत ही गम्भीर अर्थ में, लेकिन वह उस अपराध का दोषी नहीं है जो उस पर लगाया जायेगा। पुलिस यह अन्तर कर पाने में सक्षम नहीं होगी; और उसे मजबूर होकर उनसे अपनी रक्षा करनी होगी चाहे इसके लिए ज़रूरत होने पर उसे एक बार फिर वार करना पड़े और हत्या करनी पड़े। उत्तेजना का ज्वर उसकी शक्ति को छिन्न-भिन्न करता और दृष्टि को धुँधला करता उसमें उमड़ा। लेकिन उसका यह निर्णय कि वह अपने को पुलिस के हवाले नहीं करेगा और गिरफ़्तारी से बचेगा, साफ़ और पक्का था। उसने तुरत क़स्बे से भाग जाने का निश्चय किया।

यह दुखी युवक, जिसे उसका पिता पुरोहित बनाना चाहता था, उस सुबह अपने को और दूसरों को तौलता रहा और उसने पाया कि वह अपने दुर्भाग्य में बड़ा है और अपने निर्णय में उचित और अचूक। उसके भीतर जो चल रहा था उससे हर चीज़ को नापते हुए मिहाइलो को लगा कि समय को वस्तुतः जैसे बीतना चाहिए उस से कहीं अधिक धीरे-धीरे बीत रहा है।

वह अपने कपड़े बदल रहा था और भागने की जल्दी-जल्दी तैयारी कर रहा था जबकि उसका नौकर येवरा उसके कमरे में एक आश्चर्यजनक घटना सुनाने के लिए घुसा जिस की क़स्बे में चर्चा थी और जो सच्ची मान ली गयी थी। उस रात डाकुओं के एक गिरोह ने क्रिस्तिनित्सा की सराय पर हमला किया। क्रस्तो को मार डाला और क्रिस्तिनित्सा को घायल कर दिया। बुरी हालत में होते हुए भी क्रिस्तिनित्सा डाकुओं के इस हमले के बारे में कुछ विस्तार से बता सकी जिसमें 'यूनानी डाकुओं' का सन्दर्भ भी था जो इसमें शामिल थे !

अब मिहाइलो को अनदेखा शहर से निकल जाने में देर हो चुकी थी। उसने तय किया कि वह कुछ देर और रुक कर येवरा की बताई कहानी के पक्की होने की प्रतीक्षा करेगा, जो उसे एक चमत्कार लग रही थी; और यदि पुलीस का आदमी या कोई अधिकारी वह अपने दरवाज़े पर देखेगा तो वह बग़ीचे से होकर मिसा की झाड़ियों की ओर भाग जायेगा।

बाद में दिन में उसने बड़ी सतर्कता से क़स्बे का चक्कर लगाया इस दृढ़ निश्चय के साथ कि यदि उस पर कोई भी सन्देह व्यक्त किया गया या पुलीस उसके पास आयी तो वह मरेगा या मार डालेगा।

जेब के छिपे चाकू पर अपना हाथ रखे दाँत भींचे अपने काँपते हुए हाथ को बड़ी मुश्किल से वश में किये मिहाइलो सड़कों पर घूमता रहा और आश्चर्य करता रहा कि बाक़ी दुनिया उसके दिल की इतनी तेज़ धड़कन क्यों नहीं सुन पा रही है। अपने को शान्त दिखाते हुए उसने क्रिस्तिनित्सा के सराय पर हमले के बारे में सब कुछ सुना। यहाँ तक कि उसने शक्ति बटोर कर उसमें कुछ अपनी टिप्पणी भी जोड़ी। कई दिन वह बिना खाये, बिना सोये एक-एक मिनट गिन कर अपना समय काटता रहा।

धीरे-धीरे यह स्पष्ट हो गया कि क्रिस्तिनित्सा अदेखे डाकुओं के अपने बयान पर दृढ़ है और किसी ने उसके कथन पर सन्देह नहीं किया; वह क्रस्तो की मृत्यु पर शोक मना रही है लेकिन सराय भी चला रही है। वह अपनी विधवा बहन को अपने पास ले आयी है जिससे कि अकेली न रहे। जब खतरा टल गया तब कहीं मिहाइलो को लगा कि उसकी शक्ति जवाब दे चुकी है, और वह बीमार पड़ गया।

लेकिन उसने कुछ प्रकट नही किया यहाँ तक कि सख्त ज्वर की हालत में

भी। तीन सप्ताह बाद वह फिर अपने पैरों पर खड़ा हो सका। वह यह तथ्य मान गया कि क्रिस्तिनित्सा क्रस्तो के मृत्यु की सही बात नहीं बताने जा रही है। और इस प्रकार शान्तिपूर्वक, स्वयं पर आश्चर्यचकित, उसने प्रस्थान की तैयारियाँ शुरू करदीं—धीरे-धीरे सतर्क तैयारियाँ जिससे कि दूसरों को सन्देह न हो। उसका भाई प्रकृति से लालची था जिस से कि मिहाइलो के प्रस्थान में कोई बाधा नहीं पड़ी। दूकान भाई पर छोड़कर और अपने हिस्से का थोड़ा-सा अंश चालू रक़म के रूप में लेकर वह अपने भाई से दुनिया देखने के लिए निकलने की अनुमति पा सका। दरअस्ल उसने इतनी सावधानी से सब कार्य किया था कि जब अन्ततः उसने क़स्बे से प्रस्थान किया तो न तो किसी के मन में सन्देह जगा और न किसी को आश्चर्य ही हुआ।

लेकिन ज्यों ही उसने पहली पहाड़ी पार की और लियूबिज़ादा के उसके अपने ही खेत और भूसाघर आँखों की ओट हो गये उसका साहस जाता रहा और एक बार फिर उसकी मानसिक शान्ति खो गयी। उसे यक़ीन हो गया कि वह अभिशप्त है और एक पशु है जिसका पीछा किया जा रहा है। वह मुख्य सड़कें छोड़कर पगडंडियों और चक्करदार मार्गों से चलने लगा, साधारण, कम ख्यात सरायों में ही रुकता और अपने ही रास्ते को बार-बार पार करता जिस से कि उसके काल्पनिक पीछा करने वाले उसको पकड़ न सकें। लेकिन ज्यों ही वास्तविक ख़तरा टल गया, एक और ख़तरा उसके भीतर जन्म लेने लगा और, संक्रमित कल्पना और क्षुब्ध चेतना का खेल जड़ पकड़ने लगा। वह नोवा वरोश के क़स्बे से होकर गुज़रा जहाँ कि उस के सम्बन्धी थे लेकिन वह रुका नहीं। प्रिबाय में कहीं जाकर वह पहली बार एक सराय में रुका, रोटी और तम्बाकू लेने के लिए।

प्रकृति से संयमी होने के नाते और पिता और भाई द्वारा सख़्ती से पाले जाने के कारण इसके पहले मिहाइलो ने बहुत कम धूम्रपान किया था; लेकिन उस समय से वह निरन्तर बड़ी लगन के साथ धूम्रपान करने लगा। उसे लगने लगा कि उसकी आँखों के सामने की यह स्थायी छोटी-सी लपट उसके लिए एक वरदान है और वही गुलाबी धुआँ जो आँखों और गले को गुदगुदाता है आदमी के लिए यह भी सम्भव बनाता है कि वह बिना रोये हुए आँसू बहा सके और धुआँ बाहर निकालते समय बिना आह भरे हुए आह भर सके। अतः अनेक आने वाले सालों तक उसकी आँखों के सामने यह लपट दिखायी देती रही या उसकी उँगलियों के

बीच जलती रही। धुआँ निरन्तर वहीं रहते हुए भी हमेशा बदलता रहता था, उसके विचारों को उलट कर वहाँ जाने से बचाता था जहाँ उनके जाने से वह सब से अधिक डरता था, और असाधारण शान्त क्षणों में उसे पूर्ण विस्मृत के लोक में ले जाता था; रोटी की तरह उसका पेट भरता था और मित्र की तरह उसे राहत देता था। रात में वह धूम्रपान के सपने देखता जैसा कि दूसरे अपने प्रिय-जनों से मुलाक़ात के सपने देखते हैं। और जब उसके सपने कुस्वप्न में बदलने लगे और वह सोचता कि उसने रूस्तो का शरीर या क्रिस्तिनित्सा की आंखें देखी हैं तो वह चीख कर जाग पड़ता और सिगरेट को पिस्तौल की तरह पकड़ लेता या उनकी तरह जो अकेले नहीं सोते किसी के हाथ की तरह पकड़े रहता। और ज्यों ही इस चकमक से अन्धकार सुलग उठता और सिगरेट से चिनगारियाँ निकलने लगतीं वह राहत महसूस करता और अदृश्य धुएँ के साथ वह अपने उत्ते-जित मन से बोझ उड़ा देता।

वह यात्रा पर चलता रहा। विशेग्राद को छोड़कर, जो कि उसके घर के बहुत समीप था। रोमनिया पर्वत की ढाल पर ओबोद्याश की बड़ी सराय में उसकी मास्टर निकोला सुबोतीख़ से मुलाक़ात हुई जो बहुधा सरायेवो और विशेग्राद के बीच सड़क द्वारा यात्रा किया करता था। सुबोतीख़ ने मिहाइलो को चरवाहे के रूप में नौकर रख लिया और वह पहली बार जब से उसने यात्रा शुरू की थी वस्तुतः रुका। सख़्त जीवन और शुष्क प्रथाओं का अभ्यस्त न होने के कारण उसे बहुत कुछ सहन करना पड़ा लेकिन यह सब एक बड़े और अकेले वरदान के आगे नगण्य हो गया: कि एक बार फिर नवयुवकों के साथ कठिन श्रम करने लगा लोगों से घिरा चाहे वह खेत हो चाहे बाज़ार।

सरायेवो में उसने दो साल बिताए और सुबोतीख़ के काम से विभिन्न छोटी-मोटी यात्राएं भी कीं। और इसी बीच, जैसा कि हम देख चुके हैं, सुबोतीख़ ने मिहाइलो को अन्य नौजवानों के बीच से छाँट लिया और उसे अपने काम-काज की देखभाल के लिए विशेग्राद में रख दिया। पहले-पहल उसे यह क़स्बा पसन्द नहीं आया जो कि दो नदियों से बँधा हुआ और पहाड़ों से घिरा हुआ था। यहाँ के लोगों की घृणा और अविश्वास ने उसे चोट पहुँचाया। लेकिन ज्यों-ज्यों समय बीतता गया वह उनके तौर-तरीकों का आदी होता गया और अन्ततः वह सचमुच इस क़स्बे को और उसके लोगों को पसन्द करने लगा जैसे कि वे उसके

अपने हों। इस दौरान लगता है उसकी यह गुप्त यातना कम हो गयी और ज़िन्दगी पहले से आसान हो गयी।

पिछले वर्ष क्नोयेलात्स की लड़की अनीका से मिलने पर सम्भावनाओं के नये द्वार यकायक उसके सामने खुल गये, सम्भावनाएँ जो अब तक नहीं थीं और जिनके लिए आशा करने की उसने हिम्मत भी नहीं की थी। अनेक वर्षों बाद पहली बार एक पूरा दिन और रात इस तरह बीती जिसमें वह उस भयंकर मनहूस विचार से मुक्त रहा जो उसके भीतर निरन्तर घुमड़ता रहता था जिसमें ऋस्तो की हत्या और उसकी अपने मृत्यु की आकांक्षा घुलमिलकर एक हो गयी थी। यह विचार ही कि इस संसार में कुछ ऐसा है जो पुनः उसकी वह स्वाधीनता दिला सकता है जिसका उसने सराय की उस सुबह के पूर्व उपभोग किया था उसे इस पृथ्वी से उठा लेने के लिए काफ़ी था।

लेकिन जब इन आशाओं और स्वप्नों से आगे जाने का समय आया तो उसके सामने अलंघ्य दीवारें उठने लगीं जिनकी प्रकृति केवल वही जानता था। अपने जीवन के इतने प्रारम्भ में ही लड़खड़ा जाने और टूट जाने से वह इस लड़की तक पहुंचने का मार्ग नहीं पा सका, वह उसकी ओर सच्चाई के साथ प्रसन्नतापूर्वक बढ़ा और फिर यकायक वह घबराया और पीछे हट गया। अनीका के साथ उसे जो प्रसन्नता और खुशी मिली वह उसके पूर्व अनुभव की यातना से मुक्त करा सकने के लिए यथेष्ट नहीं थी। वह अनीका की मुसकान के लिए लालायित रहता और तृषित दृष्टि से उसकी मुद्राओं और भंगिमाओं को निहारा करता और बाद में अपने एकान्त क्षणों में बड़ी सावधानी से उनकी नाप-जोरव करता रहता। वह क्रिस्तिनित्सा का कुछ सादृश्य खोज रहा था और साथ ही साथ उसके पा लेने का भय भी था। इसने निःसन्देह उसकी सारी खुशियों पर पानी फेर दिया, यहाँ तक कि उसका रूप-ढंग भी बदलने लगा। उस लड़की के प्रति उसके आश्चर्यजनक व्यवहार का यही कारण था।

इस तरह पूरा एक वर्ष बीत गया। उनके बीच कोई सच्चा मेल-मिलाप नहीं पनप सका और न ही कोई अलगाव हुआ। इस बीच अनीका और अधिक सुन्दर और अधिक असाधारण होती गयी और उसकी और अधिक सराहना होने लगी। ऐसी परिस्थितयों में अलगाव अवश्यम्भावी था; वह बाद में बसन्त में एक बहुत ही मामूली बात पर हुआ।

एक दिन चाची प्लेमा मिहाइलो से मिली ग्रौर उससे कहा कि ग्रनीका उससे मिलना चाहती है। उसने सोचा कि किसी लड़की के घर जाना उसके लिए उचित नहीं है फिर भी वह जाने के लिए राज़ी हो गया।

ऋनोयेलात्स के घर की सजावट बड़ी शानदार थी, विशेग्राद के ग्रन्य घरों की ग्रपेक्षा कहीं ग्रधिक। वह सजावट सम्पत्ति की सूचक उतनी नहीं थी जितनी कि उसके रंगों, दरी-कालीनों, मेज-कुर्सियों में कुछ विदेशीपन ग्रौर ग्रद्वितीयता थी। इस पृष्ठभूमि में ग्रनीका उसे कुछ ग्रौर लम्बी ग्रौर ग्रसाधारण लगी। ग्रनीका ने बताया कि उसने उसे इसलिए बुलाया है कि उसे मालूम हो सके कि सेंट जार्ज उत्सव का उसने क्या कार्यक्रम बनाया है। उसकी पोली-गहरी ग्रावाज़, गम्भीर दूध जैसे सफ़ेद चेहरे ग्रौर इस छोटी-सी बात, जिसके बारे में वह पूछ रही थी, के बीच एक विचित्र कमी थी क्योंकि उसका मेल किसी तरह नहीं बैठ रहा था। मिहाइलो की उलझन बढ़ गयी। फिर भी वे मिलने पर सहमत हुए ग्रौर मिहाइलो ने वायदा किया की 'यदि ईश्वर ने चाहा' वह उत्सव में ग्रायेगा।

"मैं भी, यदि ईश्वर ने चाहा ग्रौर यदि तब तक मेरा विवाह नहीं हो गया, तो ग्रवश्य वहाँ ग्राऊँगी।" ग्रनीका ने कहा।

"मेरी समझ में नहीं ग्राता कि कैसे ग्रगले कुछ दिनों में ही तुम्हारा विवाह हो जायेगा ?"

"बहुत-सी चीज़ें हैं जो मैं कर सकती हूँ।"

"नहीं, मैं नहीं सोचता तुम कर सकती हो, मैं नहीं सोचता तुम कर सकोगी।"

"तुम नहीं सोचते ?"

यह ग्रन्तिम वाक्य इतने विचित्र ढंग से कहा गया था कि मिहाइलो को उसकी ग्राँखों में झाँकना पड़ा।

ये ग्राँखें जो हमेशा ग्रथाह रहती थीं, ग्रब जैसे भीतर से ग्रालोकित हो रही थी स्पष्ट ग्रौर गूढ़ एकसाथ, उनमें खून के रंग की दीप्ति थी ग्रौर ग्राँसुग्रों का ग्रावेग; उनकी ग्रभिव्यक्ति तीखी, स्पष्ट ग्रौर सख़्त हो गई थी। मिहाइलो ने सीधे उन ग्राँखों में झाँका, ग्रौर उनकी ज्योति से चुँधिया गया। ग्रविश्वास से भरा इसकी प्रतीक्षा करता रहा कि उनका रंग बदले या किसी मरीचिका की तरह धूमिल पड़ जाए। लेकिन वह दृष्टि ग्रौर ग्रधिक तीखी ग्रौर स्पष्ट होती गयी ग्रौर वह दीप्ति ग्रौर ग्रधिक प्रखर। एक विचार मिहाइलो के मन में कौंधा ग्रौर

तुरन्त ही उसने एक आकृति ग्रहण कर ली; उसने चाहा कि वह चीख़ पड़े, अट्टहास कर उठे। अनीका की यह दृष्टि उसके लिए परिचित थी; उसने इसे कुछ समय पूर्व देखा था, सराय में और अपनी लम्बी यातनापूर्ण रातों के सपनों में। उसे लगा कि वह क्रिस्तिनित्सा की पशुवत् आँखों में घूर रहा है, जिनमें भयावह, अज्ञात इरादे भरे हुए हैं। उसने चाहा कि वह भाग जाए यद्यपि कोई बहुत दूर तक नहीं भाग सकता। उसने सोचा कि वह एक अप्रत्याशित गति से, एक उग्र चीख़ से उसकी आँखों की पकड़ तोड़ सकता है जैसा कि उसने हमेशा किया है जब भी इस आकृति का सामना उसे सड़क के किनारे सरायों और नम-एकान्त भूसाघरों में करना पड़ा है। लेकिन यह जादुई पकड़ टूट नहीं सकी और जब कि वह स्वप्न और यथार्थ के बीच आगे-पीछे झूलता हुआ खड़ा हुआ था, अनीका का प्रश्न उसके कानों में फिर-फिर बजता रहा, सौ गुनी तेज़ आवाज़ के साथ—

"तुम नहीं सोचते ?"

अनीका और मिहाइलो एक-दूसरे को घूरते रहे उसी तन्मयता से जैसी कि प्रेमियों में प्रथम कुछ दिनों में होती है या जैसी कि दो पशुओं में जो वन के अँधेरे में एक-दूसरे से टकरा जाते हैं और केवल एक-दूसरे के दीदे देखते रहते हैं। लेकिन प्रेम की लम्बी से लम्बी टकटकी भी समाप्त हो जाती है। अपनी आँखें बलात् उसकी आँखों से हटाते हुए मिहाइलो ने अनीका के सुदृढ़-सुन्दर हाथों पर दृष्टि डाली जिनकी त्वचा सलोनी और नाख़ून गुलाबी थे। अन्ततः अपने भय की चरम सीमा की अनुभूति के बाद उसने उनसे किसी भी प्रकार के छुटकारे की आशा त्याग दी और इस प्रकार वह जाल में फँसे पशु की तरह पीछे लौटने लगा।

बहुत कोशिशों के बाद वह अपने होंठों पर मुसकान ला सका जिसका उद्देश्य अपने शत्रु को छलना था और अपने पर इतना नियंत्रण कर लेना था कि दरवाज़ा धड़ाक से बन्द करके घर से न भागना पड़े। इसके विपरीत उसने आज्ञा ली और शान्त क़दमों से बाहर चला गया यद्यपि वह अत्यधिक भय से आक्रान्त था! उसके निकलते ही दरवाज़ा बन्द हो गया; किसी तरह उसने सहन पार किया, और क़स्बे के चौराहे तक पहुँचा जो दिन के इस समय वीरान था। चश्मा शान्त स्वरों में कलकल करता बह रहा था। मिहाइलो उस पर बने पत्थर के चबूतरे के एक सिरे पर जा कर बैठ गया। उसने बहते पानी में अपना हाथ डाल दिया और शान्त होने और अपनी लुप्त चेतना को पुनः प्राप्त करने की कोशिश करने लगा।

अगले कुछ दिन उसने अपने विचारों के साथ संघर्ष में बिताए जैसे कि छायाओं और प्रेतों से घिरा हुआ हो। पूरे एक साल से अनीका उसकी सारी आशाओं का केन्द्र थी, अब ये आशाएँ समाप्त होने लगीं और उसे लगा कि स्वयं उसकी ज़िन्दगी ही समाप्त होती जा रही है।

जब चाची प्लेमा फिर उसके पास अनीका का बुलावा लेकर आयीं तो उसने जवाब दिया कि वह नहीं आ सकेगा। सेंट जार्ज के उत्सव के एक दिन पहले वह यह जानने के लिए आयी कि क्या वह अनीका के साथ उत्सव में जा सकेगा। "मैं नहीं जा सकूँगा" उसने जवाब दिया था किसी भयंकर प्रतिक्रिया का अनुमान लगाते हुए जैसे कोई किसी आघात की प्रतीक्षा करता हो। (उस आदमी की तरह जो सख़्त बीमार हो, वह केवल अपने ही बारे में नहीं सोच सका, उसे आश्चर्य की बात भी नहीं लगी, न ही उसने यह कल्पना की कि उन दिनों अनीका के मन में क्या चल रहा था।)

घटनाएँ तेज़ी से घटती गयीं जिनका परिणाम इतना गम्भीर और गहरा होता गया जिसकी कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था।

उस वर्ष सेंट जार्ज के उत्सव का दिन क़स्बे में उस दिन के रूप में याद किया जाता था जिस दिन अनीका ने 'स्वयं को घोषित' कर दिया था। उसके दो महीने बाद ही सेंट इलियास के उत्सव के समय तक उसका झंडा पूरी तरह लहराने लगा था। अनीका ने अपना घर मर्दों के लिए खोल दिया। उसने गाँव की दो आवारा औरतें किराये पर अपने साथ रख लीं जिनका नाम येलेंका और सवेता था। इस प्रकार अनीका क्नोयेलात्स का शासन शुरू हुआ—डेढ़ वर्ष का शासन जिसमें अनीका ने खुद को कुकर्म और विनाश को इस तरह समर्पित कर दिया जैसे लोग रोटी, घर और बच्चों के लिए खुद को समर्पित कर देते हैं। वह आदमियों को सुलगाती थी फिर उनमें आग जगा देती थी, क़स्बे में ही नहीं बल्कि समूचे विशेग्राद नगर में। बहुत-सी तफ़सील अब भुलाई जा चुकी है, और बहुत-से दुर्भाग्यों का कभी पता ही नहीं चला लेकिन अनीका के ज़माने के पहले तक विशेग्राद के लोगों को पता नहीं था कि एक शैतान औरत की कितनी शक्ति होती है।

धीरे-धीरे करके अनीका के घर के सामने का सहन शिविर-स्थल-सा दीखने लगा। बहुत-से लोग—जो रात में पड़ाव डालते थे उनका लेखा-जोखा रखना

किसी के लिए भी असम्भव था। इनमें जवान भी होते और बूढ़े भी, कुंवारे भी होते और विवाहित भी, पास के दोब्रुन के लोग भी और सुदूर फूचा के यात्री भी। और बहुत-से ऐसे लोग भी थे जो शर्म, हया और विवेक को ताक में रख कर खुलेआम दिन में आते और सहन में तथा यदि अनुमति मिली तो घर में बैठे रहते या महज़ अपनी जेबों में हाथ डाले चहलक़दमी करते रहते, और समय-समय पर अनीका की खिड़की के नज़ारे लेते रहते।

अनीका का सबसे अधिक दु:साहसी और उत्साही मुलाक़ाती ताने कुयुनज़िया था, दुबला-पतला आदमी, थके हुए जीर्ण चेहरे पर बड़ी फैली हुई आँखें। वह रसोईघर के दरवाज़े के पीछे एक लकड़ी के बक्से पर चुपचाप बिना कुछ कहे बैठा रहता और धैर्यपूर्वक अनीका की प्रतीक्षा करता रहता और ऊपर तभी निगाह उठाता जब येलेंका और सवेता रसोईघर में आतीं। उसके अस्तित्व को नकारती हुई येलेंका और सवेता उसके पास से गुज़र जातीं और आगन्तुकों को लेकर अपने-अपने कमरों में चली जातीं। जब वे उसे रसोईघर से भगा देतीं तब वह सहन में कहीं बैठा येलेंका की ओर बेहयाई से मुसकराता रहता और वह उसे बाहर खदेड़ती।

"मुझे बैठा रहने दे भली औरत, आख़िर मैं तेरा क्या बिगाड़ रहा हूँ।"

वह घंटों सहन में प्रतीक्षा करता रहता, शोक-संतप्त जैसे कि वहाँ इतनी देर तक बैठा रहना उसके लिए कठिन है। कभी-कभी वह उठ कर बिना कुछ कहे चला जाता और फिर दूसरे-दिन आ धमकता। घर पर उसकी पत्नी, कोसारा, किसान घर की हट्टी-कट्टी औरत जिसकी दोनों भौंहें मिली हुई थीं, उसे फटकारती।

"क्या तुम फिर उस कुतिया के सहन में बैठ कर आये हो, घिनौने नकटे? वहीं रह जाते!"

"आह! मैं वहीं रह जाता," वह उदास स्वरों में दोहराता और उसके विचार फिर उस सहन में चले जाते जहाँ से वह अभी-अभी आया था। यह उपेक्षा कोसारा को पागल कर देती और वह विकराल झगड़ा शुरू कर देती लेकिन ताने केवल अपना हाथ हिलाता रहता जैसे कि किसी स्वप्न से जगा हो।

अनीका के यहाँ आने वाले कुछ तो बिलकुल पागल थे जैसे नाज़िफ़, बेग घराने का एक बड़ा किन्तु पिछड़ा नौजवान। वह पक्का गावदी था; गूँगा और

बहरा। वह अनीका की खिड़की के नीचे से गुज़रता था और उसे दिन में कम से कम दो बार अस्पष्ट भाषा में आवाज़ देता था। वह उसे एक मुट्ठी चीनी देता था और वह उसे लेकर उससे मज़ाक करती थी।

"इतना काफ़ी नहीं है नाज़िफ़, इतना काफ़ी नही है।" अनीका ऊपर से पुकार कर मुसकराती हुई कहती। उस गावदी ने उसका कहना जाने क्या समझा, घर भागा गया, अपने भाइयों के कुछ पैसे चुराए, और दो आधी बोरी चीनी खरीदकर खिड़की पर वापस आया। मारे खुशी के खीसें निपोरता हुआ उसने अपनी सम्पत्ति चीनी में प्रदान की। अनीका हँसी के मारे लोट-पोट हो गयी और संकेतों से उसे समझाया कि वह अभी भी काफ़ी नहीं लाया है और वह उदास बुदबुदाता हुआ चला गया।

उस दिन से वह हर सुबह आता, एक टोकरी चीनी भर कर लाता साथ ही अपनी टेंट और जेबों में अतिरिक्त धन भी। अनीका शीघ्र ही इस मज़ाक से थक गयी। उस पगले के दुराग्रह पर उसे गुस्सा आया। उसने सवेता और येलेंका को उसे खदेड़ बाहर करने के लिए भेजा। उसने अपने को बचाया और फिर बेसिर-पैर के बड़बड़ाता हुआ चला गया और दूसरी सुबह और अधिक चीनी लेकर खुश-खुश आ धमका। उन्होंने फिर उसे खदेड़कर भगा दिया। सारे दिन वह चीनी लिए-लिए पूरे क़स्बे में चक्कर काटता रहा, चहकता और बड़बड़ाता। बच्चों ने उसका पीछा किया, छेड़खानी की और उसकी टोकरी में से चीनी झपट ली जिसे वह बड़े आवेग से छाती से चिपकाए हुए था।

निःसन्देह ऐसे भी आदमी वहाँ आते थे जिनकी दिन में आने की हिम्मत नहीं पड़ती थी, जो नित्य रात आने की प्रतीक्षा करते थे यद्यपि उनमें से बहुतों के लिए यह सम्भावना भी नहीं थी कि वह अनीका के घर में घुस भी सकें। वे महज़ वहाँ चश्मे के पास चबूतरे पर बैठे रहते, सारी रात प्रतीक्षा करते रहते और सिगरेट फूँकते रहते। कोई भी आदमी रात में सब की निगाह बचा कर आ सकता था और उसी तरह जा सकता था। दूसरी सुबह लकड़ी की चैलियाँ और सिगरेट के टुकड़े वहाँ पड़े मिलते जहाँ वह बैठा रहता। वह अवश्य एक दुखी आदमी रहा होगा, ईश्वर ही जानता होगा कौन, अनीका निश्चय ही उसे नहीं जानती और वह भी केवल अनीका को देखकर ही जानता होगा। क्योंकि वहाँ सभी अनीका को देखने के लिए ही नहीं आते। कुछ महज़ इसलिए आते कि

कुकर्म उन्हें आकर्षित करते और दूसरे इसलिए आते क्योंकि वे जन्म से ही भ्रमित और पीड़ित होते। हर चीज़ जिस पर प्रश्न किया जा सकता था और जो ईश्वर की इच्छा के विपरीत हो सकती थी उस घर के चारों ओर उस सहन में जमा होती थी। अनीका के घर के चारों ओर आदमियों का घेरा तेज़ी से बढ़ रहा था और अपने ज़माने में अनीका ने दुर्बल और दुष्टों को ही गले नहीं लगाया; स्वस्थ और बुद्धिमानों को भी।

अन्त में क़स्बे में कुछ ही नौजवान ऐसे रह गये जिन्होंने उस तक पहुँचने की कोशिश न की हो। पहले वे चोरी-चोरी रात में, छिप-छिप कर अकेले-अकेले गये। उसके बारे में इस तरह बात की जैसे कि कोई लज्जाजनक भयावह चीज़ हो और साथ ही पहुँच के परे और लगभग अविश्वसनीय हो। लेकिन जितना ही वे उस के बारे में बात करते, गपशप करते उसके कुकृत्य उतने ही अधिक व्यापक प्रतीत होते। पहले-पहले उन्होंने उन पर सख्त उँगली उठाई जो वहाँ गये लेकिन अन्त में उन पर घृणा की जाने लगी जो अनीका के यहाँ नहीं गये। क्योंकि बहुत थोड़े-से आदमी अनीका तक पहले प्रयत्न में पहुँचने में समर्थ हो सके बाकी को येलेंका और सवेता से अपने को सन्तुष्ट करना पड़ा अतः शत्रुता, पुरुष का अहं और ईर्ष्या बढ़ने लगी। जो अस्वीकार कर दिये गये थे, फिर आये इस आशा में कि एक ही रात में जाने और अस्वीकृत कर दिये जाने का जो दोहरा अपमान उन्हें भोगना पड़ा है उसका निराकरण हो जायेगा, और जिनको एक बार स्वीकार किया जा चुका था वे अपने को दुबारा जाने से रोक नहीं पाते थे बल्कि जैसे कि एक सम्मोहन में बँधे फिर-फिर जाते थे।

विशेग्राद की औरतें एकमत से मैदान के इस घर में हो रहे कुकर्म के घोर विरुद्ध थीं और उद्धत, निमर्म रूप से, बिना सोचे-विचारे जैसा कि औरतों की आदत होती है, लड़ती थीं। लेकिन उनका झगड़ा हमेशा आसान या सुरक्षित नहीं रहता और ऐसे ही कलह में रिस्तिख़ी परिवार बरबाद हो गया।

बुढ़िया रिस्तिच्का, पुरुष जैसी योग्यता और संकल्प वाली धनी विधवा थी। अपने एकलौते लड़के और अपनी सभी लड़कियों की शादी सफलतापूर्वक कर चुकी थी। लड़का छोटे कद, गुलाबी गालों और शान्त प्रकृति का था, चतुर सौदागर था जो अपने से आयु में बड़े लोगों का साथ करता था, धन कमाता था और परिवार और बीवी की देखभाल करता था। उसकी माँ ने उसके लिए फूचा

में रहने वाले धनी परिवार की एक सुन्दर-शान्त स्वभाव की लड़की से शादी कर दी थी। उनके दो बच्चे थे।

झगड़ा पिछली सर्दियों में श्राद्ध के भोज के मौके पर शुरू हुआ। स्त्रियाँ अनीका और अपने-अपने आदमियों की शिक़ायत कर रही थीं। बुढ़िया रिस्तिच्का ने मृत आत्मा के नाम पर शराब का एक गिलास खाली करते हुए तेज़ आवाज़ में चुनौती देते हुए कहा :

"ईश्वर क़सम, मैं कहती हूँ, उन्हें मत जाने दो। मेरे भी एक बेटा है, भला आदमी है। लेकिन जब तक मैं ज़िन्दा हूँ तब तक वह उस कुतिया की ड्योढ़ी नहीं लाँघ सकता।"

दूसरे ही दिन, ये शब्द अनीका तक पहुँच गये जैसे कि हर बात जो उसके बारे में कही जाती थी उस तक पहुँच जाती थी। तीसरे दिन रिस्तिच्का को एक सन्देश मिला :

"अगले महीने तुम्हारा लड़का वह भला आदमी मेरे पास अपने हाथों में शनिवार की सारी कमाई लेकर आयेगा; तब तुम्हें पता चलेगा अनीका कौन है।"

एक प्रकार की बेचैनी और चिन्ता रिस्तिखी के घर में व्याप गयी, लेकिन इससे बुढ़िया की ज़बान बन्द नहीं हुई। वह अनीका की भर्त्सना करती रही जो कि उस समय अपनी शक्ति की चरमसीमा पर थी। दूसरे शनिवार को युवा रिस्तिख नशे में धुत अपने साथियों के सहारे लड़खड़ाता हुआ, पतलून की जेबों में शनिवार की अपनी सारी कमाई ठसाठस भरे हुए अनीका के पास पहुँचा! वह अनीका के दरवाज़े पर अपने पैर पटकता, चारों तरफ़ पैसे बिखराता, पागलों की तरह अनीका और अपनी माँ को साथ-साथ पुकारता पड़ा रहा। येलेंका और सवेता उस पर मँडराती रहीं और उसे भीतर ले गयीं कि अनीका को देख ले।

सूर्योदय होने पर अनीका ने सवेता को हुक्म दिया कि दो जवान तुर्कों का इन्तज़ाम करके उनके साथ इसे घर पहुँचा दिया जाये!

जब बूढ़ी रिस्तिच्का को पता चला कि उसका लड़का ब्यालू के लिए इतनी देर हो गयी नहीं आया है तो उसने क़स्बे का चक्कर लगाया। अन्त में यह जान कर कि वह दरअसल अनीका के पास गया है, वह बूढ़ी औरत घर लौट गयी और बैठकखाने के बीचोंबीच गिर पड़ी। उसके मुँह से झाग निकल रही थी

और फिर उसके बाद होश में नहीं आयी। उसकी बहू—दुबली-पतली कमज़ोर, काले बाल, बड़ी-बड़ी आँखें—इस खास कमरे में चलकर आयी और पुण्य प्रकाश के सामने घुटनों के बल बैठकर शीघ्रता से कई बार उसने अपने पर सलीब का पवित्र चिह्न बनाया और अनीका को कोसने लगी :

"ऐ औरत, मैं ईश्वर से प्रार्थना करती हूँ कि वह तुझे पागल कर दे, बेड़िया डाल कर तू निकाड़ी जाये, ईश्वर तुझे कोढ़ी कर दे, तेरा सारा शरीर घावों से भर जाये; अपने से ऊब कर तू मौत माँगे और तुझे मौत भी न आये। आमीन। हे महाप्रभु, आमीन आमीन।"

इसके बाद वह फूट-फूटकर रो पड़ी; उसकी पीड़ा इतनी शक्ति से उमड़ी कि वह अन्धी हो गयी, उसका सन्तुलन खो गया और लड़खड़ाकर अपने सारे वज़न के साथ निढाल फर्श पर गिर पड़ी। अपनी बाँहों में कसने के कारण पुण्य प्रकाश-दीप गिर पड़ा और रोशनी चली गयी। बाद में रात में वह उठी और धीरे-धीरे कमरे को व्यवस्थित करने लगी। उसने फर्श धोया, कम्बल पर फैला हुआ लैम्प का तेल उसने पोंछा, एक दूसरा लैम्प जलाया और उसके सामने तीन बार अपने पर सलीब का चिह्न बनाया और बिना कुछ कहे उसके सामने सिर झुका लिया। उसने बच्चे की तरफ़ देखा जो खटोले में सो रहा था। फिर वह पुण्य प्रकाश के पास गयी और उसके पास अपनी गोद में क़ायदे से अपने हाथ पर हाथ धरे वह बैठी अपने पति की प्रतीक्षा करती रही।

क़स्बे में हर चीज़ दूसरे को मालूम हो जाती है यहाँ तक कि खुद से कही हुई बात भी; आत्मा या शरीर किसी का कुछ गुप्त नहीं है। इस नवयुवती के अभि-शाप की खबर दूसरे दिन अनीका तक पहुँच गयी। तीसरे पहर अनीका की कानी कंज़र नौकरानी बहू के पास आयी और उसे उसने एक रूमाल दिया जिसमें चाँदी और ताँबे के सिक्के बँधे हुए थे। ज्योंही उस कंज़र औरत ने रूमाल दिया; वह सहन में दूर एक कोने में चली गयी जहाँ पूर्वबोध से भर कर, उसने वह सन्देश दोहराया जो उसकी मालकिन ने भेजा था। यहाँ तक कि एक कंज़र के लिए भी यह दहला देने वाला काम था।

"अनीका ने तुम्हें यह भेजा है। रिस्तिच्का से कहो अपने बहू और बेटे के साथ बैठकर इसे गिन ले; उसकी सारी कमाई इसमें है, एक पाई भी खोई नहीं। उसने तुम्हें तुम्हारा आदमी वापस कर दिया और उसका पैसा भी वह लौटा रही

है। उसने उतना ही लिया है जितना उसने दिया है इसलिए तुम्हारे श्राप का उसके लिए कोई मूल्य नहीं है।''

क़स्बे की औरतों के बाद, जिनके मन में अनीका के लिए एक जैसा घृणा का ज़हर था, अनीका के सबसे बड़े शत्रु मास्टर पीटर फिलिपोवात्स थे। उनका लड़का आन्द्रिय उन लोगों में से था जो बहुधा अनीका के घर जाते थे। परिवार में सबसे बड़ा लड़का, नाजुक और कमज़ोर जवान हमेशा सोया-सोया और जैसे कि खोया-खोया रहता था, उसमें अनीका के लिए बड़ी लगन थी। उसने घर आना एकदम बन्द कर दिया क्योंकि उसके बाप ने एक रात उसे मार डालने की कोशिश की और निश्चय ही वह मार डाला गया होता यदि उसकी माँ ने उसे छिपा कर बचा न लिया होता। अब वह भूसाघर में सोता है। और उसकी माँ चोरी-छिपे उसे खाना भेजती रहती है। और साथ ही साथ सारे समय ईश्वर से प्रार्थना करती रहती और रोती रहती है, लेकिन छिप कर, क्योंकि मास्टर पीटर ने उसे धमकी दे रखी है कि तीस साल के वैवाहिक जीवन के बावजूद वह उसे घर से निकाल देंगे यदि उसने उस विश्वासघाती के लिए एक आह भरी या एक भी आँसू बहाया।

वो लोग जो दरअस्ल अनीका से घृणा करते थे और उसकी निन्दा करते थे मास्टर पीटर फिलीपोवात्स की दूकान पर इकट्ठे होते थे। हो सकता है वो धूम्रपान करने के लिए या किसी और मामले पर बातचीत करने के लिए आये हों, लेकिन वह घूम-फिर कर अवश्यमेव अपनी मुख्य चिन्ता पर आ जाते : मैदान की वह लड़की। इस सिलसिले में वे तियाना की कहानी का स्मरण करते जो बहुधा उनके बुज़ुर्गों ने उन्हें सुनायी थी।

कोई सत्तर वर्ष पूर्व तियाना नाम की एक गड़ेरिये की लड़की थी जो अपने सौन्दर्य के लिए विख्यात थी। बिना किसी नैतिक संकोच या झिझक के उसने क़स्बे में क़हर बरपा कर रखा था। उसे पाने के लिए इतनी भाग-दौड़ और मार-पीट थी कि चर्च के एक बड़े मेले के दौरान चार्शिया की सारी दूकानें बन्द रहीं जैसा कि प्लेग या बाढ़ के ज़माने में ही पहले कभी होती थीं। सरायेवो के सुनार और स्कापल्ये के सौदागर ताँबें की तश्तरियाँ भर-भर कर लाये और उसके पास अपना सामान और अपनी कमाई दोनों ही छोड़ गये और खाली बन्दूक की तरह वापस लौट गये। उसे खत्म करने के लिए कुछ भी नहीं किया जा सका। लेकिन

एक दिन वह उसी तरह अचानक लुप्त हो गयी जिस तरह प्रकट हुई थी। तियाना के पहले प्रेमियों में कोई कोस्ता नाम का आदमी था, जिसे यूनानी कहा जाता था। धनी नवयुवक न माँ न बाप। लोग कहते थे वह उससे शादी करना चाहता था लेकिन तियाना विवाह के बारे में सुनना भी नहीं पसन्द करती थी बल्कि इसके विपरीत वह पहले से कहीं अधिक लफंगों को अपने चारों ओर जमा करने लगी, तुर्क और हर मज़हब के लोग। यूनानी क़स्बे से ग़ायब हो गया। बाद में पता चला कि वह बन्या मठ में जाकर साधु हो गया है और कष्ट उठा रहा है। फिर लोग उसको भूल गये। लेकिन ठीक एक साल बाद जब तियाना पूरे वेग पर थी और ईश्वर और आदमी दोनों ने उसका पूरा-पूरा उपयोग कर लिया था, वही कोस्ता यकायक फिर प्रकट हुआ। उसके चेहरे पर दाढ़ी हो गयी थी, उसका वज़न घट गया था और वह आधा साधू और आधा किसान के कपड़े पहने हुआ था। उसके पास न तो साधुओं का चोगा था न ही छड़ी। बजाय इसके उसकी पेटी में दो पिस्तौलें लगी हुई थीं। वह सीधा बाज़ की तरह तियाना के घर गया, उसके कमरे का दरवाज़ा भड़ाक से खोला और धड़ाधड़ उस पर कई गोलियाँ चला दी। लेकिन वह थोड़ी ही घायल हुई और घर से निकलकर गलियों में भाग आयी। मैदान की चढ़ाई पर दौड़ते समय उसकी चप्पलें टूट गयीं, अशरफ़ियाँ उसके गले से टूट कर गिर पड़ीं, बालों के पिन निकल गये। पुराने क़स्बे के नीचे वह जंगल की तरफ़ भागी। एक खाई के पास पहुँच कर वह उसमें गिर पड़ी। वह थक कर चूर हो गयी थी। साधु ने उसे पकड़ लिया और मार डाला।

वहाँ पर पड़ी रही, सारे दिन, उसके बाल उसके चारों तरफ़ बिखरे रहे, अभी भी एक कोड़ा पकड़े हुए, उसका मुँह चौड़ा खुला हुआ था ऐसा लगता था कि वह दूर कहीं गड़ेरियों को निहार रही है। उसके नीले रेशमी वस्त्र में एक बड़ा काला घाव देखा जा सकता था। साँझ के झुटपुटे में क़स्बे से दो जिप्सी भेजे गये कि जहाँ उसे मारा गया है वहीं उसे दफ़न कर दिया जाये। हत्यारा ख़ुद भी जंगल में लुप्त हो गया। किसी ने उसे खोजने की कोशिश नहीं की। लेकिन तीन दिन बाद वह तियाना की कब्र के ऊपर पड़ी मिट्टी के ढेर पर पाया गया, उसकी गरदन कटी हुई थी!

जब कि आदमी अपनी दूकानों में बैठे अतीत को याद करते होते और स्त्रियाँ अपनी इस घरेलू विपदा पर आँसू बहाती होतीं, स्त्री की पापलीला जो अनीका

रच रही थी चलती होती। इसी समय अनीका ने दोब्रुन के पुरोहित मेलेन्तिये के साथ उसके लड़के याक्षा को लेकर, जिसे देकोन कहते थे, लड़ाई मोल ले ली।

३

अनीका की शोहरत दूर-दूर तक फैल गयी थी। लेकिन दोब्रुन के पुरोहित के लड़के याक्षा पोरुबोविच के मन में कभी उसके पास जाने का ख्याल नहीं आया। वह स्त्री से अधिक राकिया (एक प्रकार की शराब) पसन्द करता था और राकिया से भी अधिक अपनी आज़ादी और आवारागर्दी के हक़ को।

याक्षा बीस साल का था, दोब्रुन और विशेग्राद के कादीलुक्स में सबसे अधिक लम्बा-तगड़ा जवान। यहाँ तक कि वह कुर्याकोविच नाम के एक नेजो से लड़ने चायनिशे भी गया था और उसे पछाड़ कर आया था।

गोरा रंग, लाल बाल, निर्भीक हरी आँखें—याक्षा अपने पिता के बिलकुल विपरीत था जो दुबले-पतले लम्बे आदमी थे, पीला चेहरा, भौंहों के बीच एक काली झुर्री, बाल जवानी के दिनों से ही पक गये थे, पुरोहित उन लोगों में से थे जो अपने लिए भी उतने ही बोझ होते हैं जितने दूसरों के लिए, जो अपने भीतर जीवन से मृत्यु तक लगता है एक गहन विचार ढोते रहते हैं। इसके विपरीत उनका पुत्र याक्षा अपने नाना, पड़ा था जो त्रनाव्त्सी के मिलीसाव थे, धनाढ्य पर प्रसन्नचित्त और उदार व्यक्ति।

पुरोहित के लिए अपना इकलौता बेटा बड़ा लाड़ला था और वह उसके तेज़-तर्रार स्वभाव से बहुत चिंतित रहते थे। याक्षा एक वर्ष से उपयाजक हो गया था। उसके पिता उस पर ज़ोर डाल रहे थे कि वह विवाह कर लें जिससे कि पुरोहिती कर सकें। लेकिन याक्षा को पुरोहिती की बहुत चिन्ता नहीं थी और वह विवाह की बात भी सुनना नहीं चाहते थे। पुरोहित की पत्नी नेक, गहरे रंग की दुर्बल वृद्ध स्त्री थी, इतनी मितव्ययी कि चिढ़ होने लगे, कभी लड़के की तरफ़-दारी लेती कभी बाप की। और दोनों के लिए रोती।

उन सर्दियों में निश्चय ही याक्षा थोड़ा शान्त हो गये थे। वह अक्सर घर पर ही रहते और यदि माता-पिता उनके विवाह की बातचीत चलाने लगते तो भी दख़ल नहीं देते यद्यपि स्वयं उन्होंने कभी एक शब्द भी नहीं कहा। वसन्त पर सेंट जार्ज के उत्सव दिवस पर उन्हें सरायेवो के बिशप के आगमन की आशा थी और पुरोहित को यह उम्मीद थी कि उस समय वह अपने लड़के की शादी कर देंगे और स्वयं बिशप द्वारा उनके लड़के का अभिषेक हो सकेगा। सर्दियाँ समाप्त होने पर याक्षा कार्यवश विशेग्राद आये।

फरवरी का अन्त था, उन दिनों मछलियों का बहुत बड़ा रेला आता था। रिज़ाव नदी में थोड़े-थोड़े दिनों के अन्तर पर हज़ारों मछलियों का ऊपर से तीन बड़ा झुंड आता था, एक ऐसा रेला सुबह तड़के आता आम तौर पर सूर्योदय के पहले और दोपहर तक आता रहता। सभी हाथों में जाल लिए नदी पर दिखायी देते, बच्चे छिछले पानी में खड़े बरतन से या केवल हाथ से ही मछलियाँ पकड़ते होते।

ये तीन दिन पूर्व वसन्त काल की छुट्टियों की तरह हो जाते; घर-घर में तेल की गन्ध भरी होती और इतनी मछली खाई जातीं कि लोगों का मन भर जाता और उसके भाव बहुत ज़्यादा गिर जाते। वस्तुतः अंत के रेले में पकड़ी गयी मछलियाँ आसपास के किसान थोक की थोक खरीद लेते और उन्हें अपने गाँव ले जा कर सुखा कर रख लेते।

उस सुबह दोब्रुन की सड़क पर अपनी गाड़ी से याक्षा ने रिज़ाव नदी पर मछुआरों और बच्चों को चीटियों की तरह जमा देखा। सूरज दमक रहा था, धरती पर धुआँ था और मछलियाँ झिलमिला रही थीं।

याक्षा ने तेज़ी से अपना काम समाप्त किया जिसके लिए वह विशेग्राद आये थे और सूर्यास्त के पूर्व ही दोब्रुन वापस लौटने की तैयारी कर रहे थे। लेकिन कुछ दोस्तों ने पास के एक कहवाघर में रुकने का अनुरोध किया जहाँ कुछ सौदागरों के लड़के मछलियाँ खा रहे थे और हल्की राकिया पी रहे थे। वे गाजिया से, जो विशेग्राद का सबसे होशियार मछुआरा था और सभी मछुआरों की तरह पियक्कड़ था, हँसी-मज़ाक कर रहे थे। गाजिया कहवाघर के बीच में, मछली का भीगा जाल लिये जिसमें भारी सीसे का वज़न लटक रहा था और पानी फर्श पर उसके नंगे पैरों के पास चू रहा था, खड़ा था। उसने जितनी मछलियाँ पकड़ी थीं सब

बेच ग्राया था। कमर तक भीगा हुग्रा वह थोड़ा काँप रहा था ग्रौर एक के बाद एक राकिया का ग़िलास खाली कर रहा था। लोग उससे पूछ रहे थे कि इस साल शिकार कैसा रहा, कितना उसने पकड़ा ग्रौर बेचा लेकिन ग्रधिकतर वास्तविक शिकारियों की तरह वह भी ग्रन्धविश्वासी था ग्रौर इस तरह के सवालों का जवाब टाल रहा था।

"मैंने सुना है तुमने बहुत कमाया है ग्रौर ग्रनीका के लिए कोई तोहफ़ा खरीदने जा रहे हो।" एक नवयुवक ने व्यंग्य किया।

"मैं, ग्रौर ग्रनीका के लिए तोहफ़ा ? मेरी बारी कभी नहीं ग्रायेगी—जब तक ग्राप लोग हैं।" उसने एक सिगरेट लपेटते हुए ग्रौर जाल के बोझ को एक पैर से दूसरे पैर पर साधते हुए जवाब दिया।

सच्चाई यह है कि वह भी उन तमाम लोगों में से ही एक था जो ग्रनीका तक पहुँचना चाहते थे लेकिन जिनकी दाल नहीं गली ग्रौर लोग इसलिए उसे चिढ़ा रहे थे जिससे कि वे खुद ग्रनीका के बारे में बातचीत चला सकें।

गाजिया ने पैसे चुकाये ग्रौर कहवाघर से ठंडक से काँपता ग्रौर बुदबुदाता चला गया :

"वह ग्राप लोगों के लिए है हज़रत। ऐसा माल मेरे लिए नहीं है। मैं पानी पर जिन्दगी बसर करता हूँ।"

ग्रौर लोगों में ग्रनीका के बारे में बात चलती रही। याक्षा ने उस रात उसे देखा। वह फिर दोब्रुन नहीं गये। वह सारी रात ग्रनीका के साथ गुजारते ग्रौर लगता कि वह भी केवल उन्हीं के लिए रहती। क़स्बे में कोई चर्चा नहीं थी सिवा पुरोहित के लड़के के। स्त्रियाँ उन्हें देखकर ग्रपना मुँह फिरा लेतीं ग्रौर ग्रादमी ग्रपना समय उन्हें समझाने में, उनके बारे में गप-शप करने में ग्रौर उनसे ईर्ष्या करने में बिताते।

पुरोहित ने ग्रपने लड़के को संदेश भेजे, धमकाया, ग्रनुनय-विनय की पर सब व्यर्थ रहा। यह देख कर कि किसी का कोई ग्रसर नहीं हो रहा है उन्होंने खुद विशेग्राद जाने का फैसला किया। उससे भी काम नहीं चला। फिर उन्होंने क़ायममुक़ाम विशेग्राद के मेयर से बातचीत की। उनका नाम ग्रलीबेग था।

वह धनाढ्य ग्रौर सम्भ्रान्त जेवाद पाशा प्लेवल्याक के बेटे थे। ग्रलीबेग को बड़ी ग्रासानी से ग्रौर ग्रधिक ऊँचा पद तथा ग्रौर ग्रधिक ग्रच्छी जगह रहने को

मिल सकती थी लेकिन उनको अपनी माँ का स्वभाव मिला था, जो कि प्रसिद्ध मुहम्मद पाशा सोकोलोविच के ख़ानदान की थीं जिन्होंने विशेग्राद का पुल बनवाया था, अतः हर चीज़ से विशेषकर मुनाफ़ाख़ोरी और सट्टेबाज़ी से उन्हें ऊँची और नेक उदासीनता थी। पच्चीस वर्ष पहले जब कि क़स्बे में गरमबाज़ारी की धूम थी, थोड़े समय तक ख़ुशहाली और समृद्धि थी, अलीबेग इक्कीस वर्ष की आयु में क़स्बे के पुलीस कमिश्नर नियुक्त हुए थे। उन दिनों विशेग्राद के पुल से बहुत व्यापार होता था और क़स्बे में सामान, पैसा और मुसाफ़िरों की बाढ़ लगी रहती थी इसलिए बहुत बड़ी तादाद में पुलीस, जिस सख़्त लेकिन सदाचारी आदमी की देख-रेख में तैनात रखी गयी थी वह अलीबेग ही थे।

समय का फेर—व्यापार ने पलटा खाया, विशेग्राद सड़क सूनी रहने लगी और परदेसियों का आना-जाना कम हो गया। पुलीसकी संख्या कम कर दी गयी, बहुत-से लोग चले गये। अलीबेग ही ऐसे थे जिन्होंने विशेग्राद नहीं छोड़ा, वह जमे रहे और वहाँ के मेयर या क़ायममुक़ाम बना दिये गये। अपने पिता के साथ वह दो बार युद्ध पर गये व्लास्का और सर्बिया, लेकिन दोनों बार वह फिर अपने उसी पद पर वापस आये।

उनके दो मकान थे। सबसे सुन्दर मकान क़स्बे में था। दोनों ही द्रिना नदी के तट पर थे और उनके बीच एक बड़ा भारी बग़ीचा था। क़ायममुक़ाम ने कई शादियाँ कीं पर उनकी सभी पत्नियों का देहान्त हो गया। स्त्रियों के प्रति उनकी कमज़ोरी किसी से छिपी नहीं थी, ज्यों-ज्यों उम्र बढ़ती जाती उनका पीना बढ़ता जाता लेकिन हमेशा शान्त और सुरुचिपूर्ण रहते। बढ़ती आयु और अनियमित जीवन के बावजूद वह इकहरे बदन के आदमी थे। युवावस्था की बेचैनी और तेज़ी अब एक शान्त और मुस्कराते हुए व्यक्ति में बदल गयी थी, भूरी मूँछों और लम्बी दाढ़ी में युवा लालिमा से भरे उनके होंठ साफ़-साफ़ अलग से दिखाई देते। वह बिना भंगिमाओं के बोलते लेकिन उनके स्वरों में स्नेह और उनकी आँखों में निष्कपटता होती। गर्म सोतों के लिए उनमें ललक थी और जब भी किसी नये सोते की उन्हें ख़बर मिलती तो वह उसे देखने जाते चाहे वह कितनी ही दूर क्यों न हो। अक्सर वह वहाँ अपने खर्चे पर एक फ़ौव्वारा बनवा देते।

क़स्बे में, जिसकी आबादी और व्यापार दोनों ही कम हो गये थे, बहुत दिनों से क़ायममुक़ाम के पास कम काम रह गया था। एक ऊँचे समृद्ध घराने के होने के

नाते बुढ़ापा उनके पास धीरे-धीरे ग्रा रहा था ग्रौर वह ग्रपने सुख ग्रौर दूसरों के सुख के लिए जीवन बिता रहे थे। वह ग्रपनी ज़मींदारी प्लेवल्ये चले जाते या दोस्तों के यहाँ बैठकबाज़ी करते।

क़ायममुक़ाम को दोब्रुन के पुरोहित जोलकड़ी के लट्ठे की तरह सीधे ग्रौर सख़्त थे, बहुत पसंद नहीं ग्राते थे। जब पुरोहित मिलने गये तो ग्रलीबेग बड़े ठंडे मन से मिले लेकिन ग्रनीका के बारे में उनकी शिकायत सुनी ग्रौर उन्हें यह वचन दिया कि वह मामले की छान-बीन करेंगे। उन्होंने स्वर्गीय क्नोयेलात्स की लड़की के बारे में भी शिक़ायतें सुनीं। उन्होंने पुरोहित को वचन दिया कि याक्षा को दोब्रुन भेजने की व्यवस्था की जायेगी ग्रौर ग्रनीका पर ग्रंकुश रखा जायेगा।

लज्जा में गड़े पुरोहित ने विशेग्राद में दो दिन ग्रौर बिताये। वह ग्रपने एक भयभीत ग्राधे ग्रन्धे पुरोहित मित्र के घर ठहरे रहे जिनका नाम योसा था। लेकिन जब उन्होंने देखा कि उनका लड़का उनके साथ घर वापस जाने को तैयार नहीं है ग्रौर क़ायममुक़ाम उनकी सहायता नहीं कर रहे हैं तो वह ग्रपने नेक काले घोड़े पर सवार होकर ग्रपनी ग्रात्मा में कटुता भरे हुए दोब्रुन वापस लौट गये।

ज्यों ही पुरोहित रवाना हुए क़ायममुक़ाम ने विशेग्राद पुलीस के प्रधान को जिनका नाम हेदो साल्को था बुलाया ग्रौर उन्हें यह ग्रादेश दिया कि उस मसीही ग्रौरत को जा कर धमकायें कि यदि वह ग्रपने पर ग्रंकुश नहीं रक्खेगी ग्रौर तुरत याक्षा को दोब्रुन वापस नहीं भेज देगी, तो उसे जेल भेज दिया जायेगा।

हेदो ने ग्रादेश का पालन किया। वह ग्रपने घोड़े पर सवार हुए जैसे किसी महत्त्वपूर्ण समारोह के ग्रवसर पर सवार होते थे, मैदान पार किया ग्रौर ग्रनीका के सहन में इधर से उधर ग्रकड़कर चक्कर लगाने लगे ग्रौर बग़ीचे में काम करती येलेंका से सख़्ती के साथ चिल्ला चिल्लाकर कहने लगे—"इस घर में ग्रब यह गोल-माल नहीं चलेगा ग्रौर यदि दोब्रुन पुरोहित का वह बेचारा लड़का तुरत घर नहीं जाता तो, मैं—हेदो साल्को उससे दो बात करना चाहता हूँ।" येलेंका दौड़ी-दौड़ी घर में गयी ग्रौर उसने सारी बात ग्रनीका को कह सुनायी। ग्रनीका तुरत ही दरवाज़े पर ग्रायी लेकिन हेदो जिसे इसका पूरा ग्रनुमान था ग्रपने ऊँचे घोड़े पर सवार पहले ही चला जा चुका था।

ग्रदालत के कानून की तरह सुस्त ग्रौर न्याय के शब्दों की तरह मुस्तैद हेदो ने तीस साल तक इसी तरह ग्रपने हर कर्त्तव्य का पालन किया था। उसका

चेहरा विचित्र था। असाधारण गहरी झुर्रियों से भरा हुआ जो इधर-उधर अप्रत्याशित रूप से पड़ी हुई थीं—उसका माथा, नाक, ठोढ़ी सब समेटे हुए, उसकी पतली मूँछों को छिपाये हुए और उसकी झुलसी हुई गरदन पर इस तरह उतरती हुई जैसे पानी की धाराएँ बह रही हों। झुर्रियों की रेखाओं की इस भूल-भुलैया से बिना बरौनियों के निकली हुई उसकी दो आँखें बूढ़े घोड़े जैसी लगती थीं। क़स्बे में तीन की सिपाहीगिरी ने उसका यह रूप कर दिया था।

क़ायममुक़ाम को अप्रीतिकर घटनाएँ पसन्द नहीं थीं यहाँ तक कि पड़ोस के कादीलुक में भी। हेदो की कभी हिम्मत नहीं पड़ी कि एक भी ऐसी ससस्या उन तक वापस लाये जिसका संतोषजनक हल न निकाल चुके हों। पुलीस के कितने ही लोग आये-गये; वे या तो बड़ी आसानी से रिश्वतखोर हो जाते थे या कर्त्तव्य-निष्ठ और उत्साही। इस तरह पिछले पच्चीस वर्षों में हर चीज़ बेचारे हेदो के ही सिर पर आ पड़ी थी, चाहे वह फ़सल की बरबादी हो चाहे शराबियों का उत्पात, चाहे पड़ोसियों के झगड़े हों चाहे क्रूर से क्रूर हत्याएँ या बड़ी से बड़ी डकैतियाँ। अपनी विशिष्टता के कारण वह साधारण पुलीस कर्मचारी से पुलीस के प्रधान अधिकारी हो गये। लेकिन शीघ्र ही वह इस नतीजे पर पहुँचे कि दंगे, हत्याएँ और मुसीबतें सहज और अवश्यम्भावी कुकृत्य हैं और उसके, हेदो के, हाथों और आँखों में इतनी सामर्थ्य नहीं है कि सभी से निपट सके, सभी को हल कर सके तथा अपराधियों को उनके अपराध के मुताबिक सजा दे सके। धीरे-धीरे अधिकार का भाव और अपने पद की शक्ति का अहसास होने के बजाय उनमें अपराध के प्रति एक अंधविश्वास जाग उठा और उस व्यक्ति के प्रति लगभग एक प्रकार की प्रतिष्ठा का भाव घर कर गया जो बुरा काम करता हो। अपना कर्त्तव्य मान कर वह हर मौके पर यन्त्रवत पहुँच जाते, अपराधी से झगड़ने नहीं बल्कि उसे अपने क्षेत्र से निकाल कर किसी दूसरे के क्षेत्र में कर आने के लिए। वर्षों से मानव-अपराध और मानव-पीड़ा के निरन्तर संसर्ग में रहने के कारण उन्हें एक विचित्र अनुभव हुआ था जिससे उन्होंने अपने सभी कर्मों के साथ अवचेतन मन से मेल बैठा लिया था। इस अनुभव के आधार पर वह प्रत्यक्षत: दो विरोधी सत्यों तक पहुँचे लेकिन दोनों ही समान रूप से संगत थे। प्रथम यह कि बुराइयाँ, विपत्तियाँ और गड़बड़ियाँ निरन्तर और शाश्वत हैं और उनसे सम्बन्धित कुछ भी परिवर्तित नहीं किया जा सकता। दूसरे यह कि हर अकेली समस्या किसी तरह

हल हो सकती है और सुलझ सकती है क्योंकि इस दुनिया में कुछ भी चिरन्तन या शाश्वत नहीं है : पड़ोसी शान्त हो जायेंगे, हत्यारा या तो आत्मसमर्पण कर देगा या दूसरे ज़िले में भाग जायेगा जहाँ दूसरी पुलीस होगी, उनके मुखिया होंगे; चोरी का माल देर-सवेर बरामद होगा ही क्योंकि लोग चोर ही नहीं होते, बकवादी और मुखबिर भी होते हैं; शराबी होश में आकर संजीदा हो जायेंगे और इसलिए उनसे जब तक वह पिये हों नहीं उलझना चाहिए और न ही यह जानने की कोशिश करनी चाहिए कि उन्होंने क्या किया।

हेदो अपने सभी सरकारी काम इन्हीं दो सिद्धान्तों पर करते थे। लेकिन जब किसी विवाद या अपराध में कोई स्त्री शामिल होती तब उनकी यह निष्क्रियता पूर्णतया जड़ता में बदल जाती। ऐसे मौकों पर वह उस आदमी की तरह लगते जिसकी गरदन पर एक बरैया बैठ गयी हो और वह अपनी गरदन कड़ी करके उसे ऊपर-नीचे रेंगने दे रहा हो और सर्वाधिक बुद्धिमानी के साथ यही प्रतीक्षा कर रहा हो कि कब वह अपने आप उड़ जाये। ज्यों ही हेदो साल्को का किसी पड़-ताल के दौरान किसी स्त्री से साक्षात् होता तो जब तक बहुत ही ज़रूरी नहीं होता वह ज़्यादा छान-बीन नहीं करते। निःसन्देह ऐसा वह जान-बूझकर नहीं करते। अनुभव ने उन्हें यह पाठ पढ़ाया था और सहज वृत्ति से वह ऐसा करते थे। ऐसे विवाद में जिसमें कोई स्त्री शामिल हो उसमें फँसने का अर्थ उँगली को दरवाज़े और चौखट के बीच रखना है।

जब याक्षा उस शाम अनीका के पास पहुँचे तो अनीका ने सारी मिन्नतों और बहस के बावजूद उन्हें अपने कमरे में नहीं आने दिया, उसने केवल यही तय कर लिया था कि वह उन्हें नहीं आने देगी और वह उसके बारे में कोई बात नहीं करना चाहती थी। उसके सारे उत्साह भरे शब्दों का उसने घृणापूर्वक जवाब दिया :

"तुम दोब्रुन क्यों नहीं जाते ? तुम्हारे पिता बुला रहे हैं।"

और याक्षा ने उत्तर दिया : "मेरा कोई बाप नहीं है। तुम जानती हो।"

"मुझे क्या मालूम ?" उसने आहिस्ता से जवाब दिया।

"तुम अच्छी तरह जानती हो मैंने तुमसे हर रात कहा है और मुझे भी सब मालूम है जो तुमने मुझसे कहा है।"

उसे सारा लाड़ प्यार और बहके-बहके शब्द याद आये; नज़दीक आती सुबह और उसकी हथेलियों से मुँदी उसकी आँखें।

यह देखना उपहासास्पद और दयनीय था कि एक आदमी स्त्री की तरह बीती हुई रात की बातें फिर-फिर याद कर रहा हो। लेकिन यह स्पष्ट था कि शब्द उसी तरह उसे मादक बना रहे थे जैसे प्रेम स्वयं और यह कि उसे कुछ पता नहीं कि वह क्या कर रहा है या कह रहा है। अनीका ने धैर्यपूर्वक उसकी बातें सुनीं बिना एक शब्द कहे, बिना करुणा के लेकिन बिना उपहास के भी। वह जानता था कि उसे जाना ही होगा लेकिन यह जानना चाहता था कि कब वह उससे फिर मिल सकता है। उसने मुस्कराते हुए जवाब दिया :

"ठीक है, शायद दोब्रुन के मेले में, माता मरियम के दिवस पर।"

"उस दिन से याक्षा ज़ारिए की सराय में ठहरा रहा। उसका स्वाभिमान उसे अनीका के दरवाज़े पर चक्कर लगाने से रोकता था। वह लोगों को शराब पिलाता था और ख़ुद पीता था, चुपचाप मेज़ पर मुट्ठियाँ बाँधे बैठा हुआ, अपने ख़ूबसूरत सिर को पीछे गिराकर दीवार से टिकाए हुए और चेहरे को ऊपर कालिख लगी छत की कड़ियों की ओर उठाए हुए जैसे कि उस पर लिखा कुछ पढ़ रहा हो। किसी की हिम्मत नहीं होती थी कि अनीका का नाम उसके सामने ले यद्यपि सब जानते थे कि उसने शराब पीनी क्यों शुरू कर दी है।

इस तरह छत की कड़ियों की ओर देखता वह घंटों बैठा रहता था, अनीका के शब्दों को नहीं बल्कि उसकी चुप्पियों को याद करता था। वह अनीका के उस मौन से भरा हुआ था और उसे अपनी आँतों तक में महसूस करता था। यहाँ तक कि बिना आँखें बंद किये हुए भी वह उसे नीचे मिन्देरलुक पर बैठा हुआ देखता था, एक सफ़ेद रूमाल उसके सिर पर कस के बँधा होता जिससे उसके बाल ही नहीं आँखों तक उसका माथा भी ढँका होता। उसके हाथ उसकी गोद में होते। अपनी एक हथेली दूसरी हथेली पर वह इस तरह कस कर दबाती जैसे कि वह भाग्य बता रही हो। उसका चेहरा लम्बा है सफ़ेद, उसके जबड़े उभरे हुए हैं, उसकी आँखें, जिनका रंग गहरा हो गया है, एक मुसकान से घिरी हुई हैं जिससे वे चमक रही हैं। उसकी चुप्पी उसकी साँसों को छोटा करती और दृष्टि को धुँधला। यदि वह एक बार भी उसकी बग़ल में बैठ पाता, तो वह उसके सिर को अपने दोनों हाथों से पकड़ लेता, उसे कसकर मरोड़ता और उसे नीचे झुका

कर बिस्तरे पर, फर्श पर, घास पर गिरा देता। और तब भी उसे उसका ठंडा उपेक्षा-भाव याद आता, जिसने उसे इतनी अधिक यातना दी है, इसलिए नहीं कि वह उसे नष्ट नहीं कर यकता बल्कि इसलिए कि उसे नष्ट करना कोई ज़रूरी नहीं था और तब वह चौंक पड़ता जैसे कि दीवार से टकरा गया हो, उसकी बड़ी मुट्ठियाँ मेज़ पर काँपने लगतीं।

याक्षा जब कि इस तरह ज़ारिए की सराय में शराब पी रहा था अनीका के घर के चारों तरफ़ हंगामा था जिसे हेदो साल्को न जानने का बहाना करता था। चूँकि वह नहीं चाहती थी कि लोग उसके यहाँ आयें, पियक्कड़ों की उसके दरवाज़े पर भीड़ लगी होती जब कि दूसरे लोग इस आशा से कि उसका मन जीत सकेंगे, उसके दरवाज़े पर से पियक्कड़ों को हटाने के लिए जुटे होते।

हेदो की दुर्बलता जानते हुए क़ायममुक़ाम ने अन्ततः यह निश्चय किया कि वह स्वयं अनीका के घर जायेंगे और पता लगाएँगे कि आखिर गड़बड़ी क्या है ? एक तीसरे पहर वह उसके यहाँ गये। उनके साथ सशस्त्र पुलीस का एक आदमी था जो शीघ्र ही अकेला वापस लौट आया। क़ायममुकाम रात तक वहाँ ठहरे रहे और दूसरे दिन वह फिर गये।

और वही हुआ जो होना था। क़ायममुक़ाम ने, जिन्होंने अपनी जिन्दगी में बहुत-सी औरतें देखी थीं और पसन्द के लिए जिनके सामने बहुत बड़ा क्षेत्र नहीं था, यह महसूस किया यहाँ कुछ असाधारण उन्हें मिला है—ऐसे हाव-भाव और ऐसी नजरों वाली औरत उन्होंने क़स्बे में तब से नहीं देखी जब से पहली बार क़स्बा विशेग्राद में संस्थापित हुआ या जब से आदमी और औरत ने एक-दूसरे को जाना और बच्चे पैदा किये। इस शरीर का जन्म या पोषण किसी चीज़ के घिरे होने से सम्बन्धित नहीं है, यह महज़ घटित हुआ है।

क़ायममुक़ाम इतने अपार सौन्दर्य के सामने विस्मय से ठिठक गये जैसे कि उन्हें बहुत दिनों से खोयी कोई परिचित चीज़ मिल गयी हो—उसकी त्वचा की विपुल सफ़ेदी ने उसकी रगों को पूरी तरह से छा रखा था और उसमें से उसके अधरों की गहरी लालिमा एक तीखी विषम रेखा से पृथक् होती थी; वही विपुल सफेदी धीरे-धीरे उसके नाखूनों और कानों के नीचे की लालिमा में इस तरह बदल जाती कि उसका बोध ही नहीं होता। सम्पूर्ण दीर्घ-सुव्यवस्थित-मधुर काया, अपनी कान्तिमयता में भव्य, गति में मन्थर, अपने आप में ही तन्मय,

दूसरों जैसा दीखने की न कोई कामना न अनिवार्यता—वह एक समृद्ध आत्म-निर्भर आत्मतुष्ट साम्राज्य की भाँति थी जहाँ कुछ छिपाने की जरूरत नहीं थी न ही अपने सम्पत्ति के प्रदर्शन की। वह चुपचाप जी रही थी और उन लोगों से नफ़रत करती थी जो उससे बातचीत के लिए और अपने को उसके सामने खोल कर रखने के लिए बेचैन रहते थे।

क़ायममुक़ाम ने यह सब, उस आदमी की दृष्टि से अपने भीतर उतार लिया जो प्रौढ़ हो रहा हो और मानता हो कि वह जीवन की पूरी क़ीमत जानता है और साथ ही साथ यह पहचानता है कि ज़िन्दगी उसके हाथों से फिसलती जा रही है। अनीका को छोड़कर कौन स्त्री इस व्यक्ति को, इस तुर्क को विरक्त करने का साहस कर सकती थी। लेकिन अनीका ने ऐसा करना हीं चाहा।

दूसरे दिन क़ायममुक़ाम के दूसरी बार आने के बाद अनीका ने ताने सुनार से मिलना चाहा जो जो इधर कई महीनों से उसके सहन में पड़ा रहता था।

"तुम लिख सकते हो ?"

"हाँ" ताने ने जवाब दिया और यह बताने के लिए उसने अपने दाहिने हाथ की उँगलियाँ फैला दीं, उसकी आँखें मारे खुशी के नम हो रही थीं।

ताने अपनी दुकान से रोशनाई, कलम और कागज़ ले आया। अब वह मिन्देरलुक पर अनीका के बग़ल में बैठा था।

"क्या तुम वह सब लिख सकते हो जो तुम्हें बताया जाय ?"

"हाँ, मेरा ख़याल है।"

हर ख़ाली स्त्री के मन में जो चोर रहता है वह अनीका को बोलता था और अनीका ताने के माध्यम से क़लम को। ताने लिखने लगा, उसका सारा शरीर एक तरफ़ को झुका हुआ था, धीरे-धीरे वह एक-एक अक्षर जोड़ रहा था, झुर्रियों पड़ा उसका जबड़ा बाहर निकला पड़ रहा था। क़लम की गति के साथ-साथ अनीका के स्वर चढ़ते-उतरते थे। अनीका ने लिखाया :

"तुम दोब्रुन के पुरोहित हो और मैं विशेग्राद की वेश्या। हमारी यजमानी अलग-अलग है और यह तुम्हारे हक़ में बेहतर है कि उसे अकेला छोड़ दो जो तुम्हारे लिए नहीं है।"

ताने ने, जो कुछ शब्द लिखने में हिचक रहा था, यहाँ पहुँच कर एकदम लिखना रोक दिया और अनीका की ओर उपहासास्पद परेशान दृष्टि डाली जैसे

कि वह यह सुनना चाहता हो कि यह सब मज़ाक है ग्रौर वह इस पत्र को दोब्रुन के पुरोहित को सचमुच भेजने की बात नहीं सोच रही है। बिना उसकी ग्रोर देखे हुए ग्रनीका ने तीखे स्वरों में कहा :

"लिखो।"

ग्रौर वह उसी तरह की उपहासास्पद परेशानी ग्रपने चेहरे पर लिए लिखने लगा।

"जब मैं पैदा भी नहीं हुई थी तुम नेदेल्कोवित्सा की चहारदीवारी लाँघ रहे थे ग्रौर उसके पति नेदेल्को ने तुम्हें ग्रनाज के खेत में ग्राया बिज्जू समझकर मार ही डाला था। ग्रौर ग्राज भी तुम्हारे पुरोहिती वस्त्रों में पैबन्द मित्र विधवाग्रों के घर लगाये जाते हैं। ग्रौर जहाँ तक मेरा सवाल है मैंने कभी न तो तुम्हारे स्वास्थ्य के बारे में जानना चाहा न यह ही कि तुम क्या-क्या करते हो। फिर भी तुमने क़ायममुाक़म ग्रौर पुलीस को मेरे घर भेजने की ज़रूरत समझी। इससे तो ग्रच्छा था कि तुम किसी चट्टान के नीचे छिपे साँप को छू लेते। पुरोहित जी, मैं चाहती हूँ कि ग्राप जान लें कि तब से क़ायममुाक़म दो बार मेरे पास ग्रा चुके हैं ग्रौर यह भी कि मैंने उन्हें इस तरह निरस्त्र कर दिया है जैसे कि वह कोई बच्चा हो, इतने बूढ़े होने पर भी वह मेरा हाथ धुलाने के लिए पानी ग्रौर तौलिया लिए खड़े रहते हैं; शायद तुम यह सब जानना चाहो। ग्रौर चूँकि तुम ग्रपने सुन्दर लड़के के बारे में चिन्तित हो, तो वह ज़ारिए की सराय में दूल्हे की तरह सजा हुग्रा है, यह सच है कि वह नशे में धुत है, लेकिन उससे क्या फ़रक़ पड़ता है, उसे शौक़ से घर ले जाइए, वह समझदार हो जायेगा, उसकी दाढ़ी उग ग्राएगी ग्रौर जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है वह बिशप भी हो ही सकते हैं।"

वह रुक गई। ताने ने साँस ली। वह बड़ी कठिनाई से उसकी बात समझ पा रहा था। यद्यपि उसने बहुत-से शब्द ग्रौर ग्रक्षर तक छोड़ दिये थे।

दूसरे ही दिन सारे क़स्बे में ख़बर फैल गयी कि ग्रनीका ने दोब्रुन के पुरोहित को पत्र लिखा है। लेकिन क़ायममुक़ाम के पहली बार ग्रनीका के पास जाने के बाद क़स्बे को कोई ग्राश्चर्य भी नहीं हो रहा था। यहाँ तक कहा गया कि सारी बात जान कर दोब्रुन के पुरोहित ने उलटे वस्त्र पहन कर सन्ध्या वन्दन किया, मोमबत्तियाँ उलटी जल रही थीं।

क़स्बे में लोगों का ख़्याल था कि किसी भी मानवीय कार्यवाही द्वारा इस

स्थिति में परिवर्तन नहीं लाया जा सकता, ईश्वर ही चाहे तो कुछ हो सकता है। इतना होने पर भी अनीका ने फिर एक बार क़स्बे को उलट कर रख दिया।

माता मरियम दिवस पर दोब्रुन के गिरजाघर में बहुत बड़ा मेला लगा जिसमें दूर-दूर के गाँवों से बहुत बड़ी संख्या में किसान आये।

अनीका ने भी मेले में जाने का फ़ैसला किया। एक दिन पहले दोपहर में वह दोब्रुन के लिए येलेंका के साथ एक स्वस्थ घोड़े पर रवाना हो गयी, उनके पीछे-पीछे एक नौकर था। वह मुख्य सड़क छोड़कर गलियों में होकर जा रही थी फिर भी चारों तरफ़ सारे क़स्बे में तेज़ी से यह ख़बर फैल गयी कि अनीका जा रही है। ज्यों ही वह स्त्राज़ीश्ते से नीचे ढालू सड़क पर पहुँची आदमी बाहर निकल आये और गरदन मोड़-मोड़ कर उसकी झलक लेने के लिए बेताब हो गए। शिक्षार्थी और नौसिखिए जो अटारियों पर अपने काम में प्रवीणता प्राप्त करने की धुन में थे ऊपर चढ़कर अटारी की खिड़की से अनीका को तब तक देखते रहे जब तक वह पहाड़ी की ओट नहीं हो गयी।

अनीका के पीछे-पीछे एक लँगड़े घोड़े पर ताने सुनार था, जिसे उसने जल्दबाज़ी में एक जर्कर से किराये पर लिया था। हमेशा की तरह पीला लम्बा चेहरा लिए वह अनीका के पीछे-पीछे बिना किसी शर्म या घबराहट के चारशिया के बीच से जा रहा था। उसे देखकर लोग हँस रहे थे, फब्तियाँ कस रहे थे लेकिन उसका उधर ध्यान नहीं था, शायद उनका चिल्लाना वह सुन भी नहीं रहा था। लेकिन जब वह भी पहाड़ी की ओर हो गया सारे क़स्बे पर बेचैन ख़ामोशी फैल गयी। अपनी दूकानें छोड़कर जो लोग निकल आये थे वे फिर दूकानों में जा कर काम में लगने की कोशिश करने लगे। और बहुत-से वह लोग जो कुछ देर पहले ताने पर हँस रहे थे अब कोई बहाना खोज रहे थे जिससे कि वह कह सकें कि उन्होंने उसे अनीका के पीछे-पीछे जाते नहीं देखा है। कुछ लोगों ने गाँवों में जा कर खाल ख़रीद लाने का फ़ैसला किया, कुछ ने किसी ज़रूरी काम से दोब्रुन जाने का और बाकी प्रिब्वाय के बाज़ार के लिए रवाना हो गये। और जब रात हुई तब नौजवान भी चुपचाप उसी दिशा में छोटे रास्तों द्वारा निकल गये जिधर उनके बड़े जा चुके थे। उनमें से बहुत-से अभी भी लड़के थे, अपने लिए उन्हें कोई उम्मीद नहीं थी। उनमें से बहुत-से खुश थे कि अनीका की वजह से उन्हें एक रात मिली जब कि वे रज़ाव के किनारे-किनारे पथरीली जगह पर चैन से

विचर सकते हैं।

ताने ने चेलिक के पुल पर पहुँच कर ग्रनीका ग्रौर उसकी ग्रनुरक्षिका का साथ पकड़ लिया। येलेंका ने उसे डाँटा लेकिन ताने टकटकी लगाये ग्रनीका की ग्रोर देखता रहा कि ग्राखिर वह क्या कहती है।

"मैंने तुम्हारा क्या नुकसान किया है?" ताने ने पूछा, येलेंका गुस्से में लाल हो गयी। उसने ग्रपना घोड़ा रोक लिया ग्रौर कहा :

"तुमने मेरा यह नुकसान किया है कि तुम मेरे सर पर ग्रब भी सवार हो। विशेग्राद में ही हम ग्रापसे भर पाये हैं। ग्रब तुम हमारा पीछा क्यों कर रहे हो? घर जाग्रो ग्रौर ग्रपनी बीवी का पालना झुलाग्रो।"

बहस करते हुए दोनों ही ग्रनीका को देख रहे थे लेकिन वह ग्रपने घोड़े पर सवार चुपचाप ग्रागे चली जा रही थी ग्रौर पीछे देख कर उन्हें यह भी ग्रहसास नहीं कराना चाहती थी कि वह उनकी बातें सुन रही है। येलेंका ने गुस्से में घोड़े को ऐंड़ लगायी ग्रौर ग्रनीका के साथ हो ली। ग्रौर ताने ग्रपना सिर झुकाए ग्रौर रास ढीली किये फिर पीछे लगा गया।

इस तरह वह कोई सौ क़दम चले होंगे कि ग्रनीका ने ग्रचानक ग्रपना घोड़ा रोका ग्रौर घूम पड़ी। ताने ने ख़ुद को उसके सामने पाया, उनके घोड़े एक दूसरे से टकरा रहे थे। गर्मी से ग्रनीका का चेहरा तमतमा रहा था, चेहरा एक सफ़ेद पतले रुमाल से बँधा हुग्रा था जिसके दोनों छोर कन्धों पर लटके हुए थे। वह बच्चों की तरह मुस्करा रही थी। ताने ने ग्रनुभव किया कि उसके चेहरे की खाल कुछ खिंची है। उसके दाँत ग्रौर उसके पीले मसूड़े दिखाई दे रहे हैं। उसकी उदास भूरी ग्राँखें नम हो गयी हैं।"

"ताने, मैंने मेजूसेलात्स से कुछ नींबू खरीदे थे लेकिन उन्हें दरवाज़े पर भूल ग्रायी हूँ। बड़ी मेहरबानी होगी यदि तुम विशेग्राद वापस जाकर उन्हें ले ग्राग्रो। तुम हमारा साथ दोब्रुन पहुँचने के पहले ही पकड़ लोगे।

खुशी में बावला ताने यह भी नहीं समझ पाया कि उसे क्या करने को कहा गया है।

"नींबू···मेजूसेलात्स से···मैं जा रहा हूँ···ग्रभी लाया।" उसने तुरत घोड़ा घुमाया ग्रौर विशेग्राद के लिए रवाना हो गया—बार-बार कंजर के उस घोड़े को ऐंड़ लगाता लेकिन उस पर उसका कोई ग्रसर नहीं पड़ता, उसकी ग्रपनी ही

रफ़्तार थी ! एक-दो बार उसने घूम कर अनीका के सफ़ेद लम्बे रूमाल को देखना चाहा जब कि अनीका और येलेंका दोब्रुन की दिशा में आँख से ओझल हो गयीं।

ज्यों ही ताने लौटा, येलेंका खिलखिला कर हँस पड़ी, उसे अनीका की चतुराई पर बड़ा मज़ा आया। लेकिन अनीका बिना कुछ कहे, केवल मुस्कराती हुई चलती रही। नौकर आगे निकल गया था और छाँह में प्रतीक्षा कर रहा था।

दूसरे दिन दोब्रुन का मेला शुरू हुआ और शीघ्र ही पूरे ज़ोर पर आ गया। चारों तरफ यह शोर था कि अनीका मेले में पहुँच गयी है लेकिन किसी ने उसे सबेरे प्रार्थना में या तीसरे पहर गिरजाघर के आस-पास नहीं देखा। खुशी से पागल उत्तेजित भीड़ में केवल ताने सुनार, इधर-उधर भटकता दायें-बायें देखता दिखाई दे रहा था। नशे में धुत किसान उसे धक्के देते उसके पैर कुचल देते लेकिन वह नींबू का झोला लादे सुबह से ही चलता रहा। नींबू उसने अपने पैसे से खरीदे थे जब उसे यह पता चला कि अनीका घर पर कुछ भूल नहीं गयी है। रात शुरू होते ही अनीका येलेंका के साथ दिखाई दी। वे गिरजाघर के आँगन के बीच में पहुँच कर ऊँचाई पर बने एक बड़े शामियाने में बैठ गयीं।

पुरोहित ने ज्यों ही अनीका के आने की बात सुनी, उसने मारे गुस्से के यह ऐलान किया कि मैं ख़ुद उसके पास जाकर उससे यह कहूँगा कि वह यहाँ से तुरत चली जाये। लेकिन गिरजाघर के अन्य गुरुजनों ने उन्हें रोका और कहा, हम लोग ख़ुद उससे बात कर लेंगे।

इस बीच आदमियों की काफ़ी बड़ी भीड़ अनीका के चारों तरफ़ लग गयी थी। जब ये गुरुजन दिखाई दिये तो पहले लोगों ने उनकी हँसी उड़ाई बाद में गालियाँ देने लगे। अनीका ने ऐसा दिखाया जैसे उसे इस हंगामे का पता ही नहीं चला। उसने न कुछ देखा न सुना। गिरजाघर के दूतों ने उस तक पहुँचने की कोशिश की जिससे कि वे उसे जबरदस्ती निकाल दें लेकिन शराबी युवा किसानों की एक दीवार तुरत ही उनके और इन दो औरतों के बीच खड़ी हो गयी। गुरुजन धक्के खाते-खाते चहारदीवारी के पास पुरोहित के मकान के सामने पहुँच गये और दरवाज़े से बड़ी मुश्किल से जान बचाकर निकल सके।

उस समय अँधेरा हो चुका था जब कि गुरुजन और पुरोहित स्वयं सीढ़ियों से नीचे आये। लेकिन भीड़ इतनी ज़्यादा थी कि रास्ता रुका हुआ था और दरवाज़े से बाहर ही नहीं आ सके।

जब मामला बहुत उलझा हुग्रा हो तो लोग यह नहीं समझ पाते कि वह क्या चाहते हैं। वे ग्रनीका के शामियाने से पुरोहित के घर के दरवाज़े तक जाते ग्रौर वापस ग्राते। सच्चाई तो यह थी कि सारी धका-पेल कुछ शराबी युवा व्यक्तियों के कारण थी। बाक़ी भीड़ तो रेले में जिधर बहजाते थे, उधर जाती थी। लिएस्को से ग्राये लोग जोगिरजाघर के हरपर्व पर झगड़े का कारण निकाल लेते थे सबसे ग्रधिक शोर मचा रहे थे ग्रौर गुस्से सेउ बल रहे थे। वे खुश थे कि इस बार ग्रपना गुस्सा दिखाने के लिए उन्हें एक ग्रच्छा मौका मिला। वह दुगने जोश से चिल्ला रहे थे :

''नहीं, हम तुम्हें नहीं जाने देंगे।''

''नहीं, हम नहीं।''

लिएश्तानी लोगों के बीच प्रसिद्ध लिमिच भाइयों ने ग्रपनी ग्रास्तीन चढ़ा लीं, पेटियाँ ढीली कर लीं, दाँत पीसने लगे ग्रौर बड़े-बड़े चाकू निकालकर बिना ज़रूरत एक-दूसरे को ग्राश्वासन देने लगे :

''भाईजान, मैं तुम्हारे साथ हूँ...''

रात पूरी तरह घिर ग्रायी थी। कुछ देर पहले याक्षा विशेग्राद से ग्राया था। सारे दिन उसके मन में संघर्ष चलता रहा, ग्रंत में वह ग्रपने को रोक नहीं सका ग्रौर दोब्रुन के लिए रवाना हो गया। सभी जगमगाते शामियानों या खुली जगहों में जलती ग्राग के चारों तरफ़ एकत्र थे। जो लोग बहुत पिये हुए थे खेतों में चले गये थे ग्रँधेरे में चहारदीवारी के साथ पड़े क़ै कर रहे थे, कराह रहे थे ग्रौर ख़ुद से बातें कर रहे थे। पुरोहित के मकान के दरवाज़े से लगातार शोर-गुल सुनाई दे रहा था जो साफ़ समझ में नहीं ग्राता था। पुरोहित वहाँ खड़े थे, गलियारे में कोई उनके पीछे मशाल लिये हुए था जिसकी रोशनी में वह काले-पीले दिखायी दे रहे थे। वह बोलने के लिए खड़े हुए, ग्रागे बढ़ने की कोशिश की लेकिन गिरजाघर के गुरुजनों ने उनको रोक लिया। शोर इतना था कि उन्हें ख़ुद ग्रपनी ही ग्रावाज नहीं सुनायी दे रही थी। उनके चेहरे पर भय ग्रौर उलझाव नहीं था केवल विस्मय ग्रौर रोज था। काफ़ी देर तक उन्होंने बोलने की ग्रौर पियक्कड़ों तक जाने की कोशिश की। ग्रचानक वहीं पर रुककर पंजों के बल उचककर उनकी दृष्टि भीड़ में एक खाली जगह से बीच के शामियाने पर पड़ी जहाँ सबसे ग्रधिक रोशनी थी। रोशनी की लाल चमक में उन्होंने ग्रनीका

की सीधी गर्व से तनी आकृति देखी जिसकी एक तरफ़ येलेंका थी और दूसरी तरफ याक्षा, जो अभी-अभी शामियाने में दाखिल हुआ था और अनीका की ओर बाँहें फैलाये झुका हुआ प्रेम में विभोर निहार रहा था जो उसके पिता की निगाह में लज्जास्पद और समझ में न आने वाला था।

पुरोहित अपने पास खड़े लोगों को ढकेलता हुआ आधी अँधेरीसीढ़ियों से होकर अपने कमरे की ओर भागे। उसकी पत्नी भी जो ड्योढ़ी में खड़ी काँप रही थी और निराशा, लज्जा तथा दोहरे दुःख से रो रही थी, सिर पटक रही थी पुरोहित के पीछे-पीछे ऊपर भागी और उसके पीछे-पीछे उसकी सहेलियाँ भी थीं। कुछ सम्बन्धी और गुरुजन भी कमरे में पहुँचे जब कि अन्य लोगों ने उत्तेजित भीड़ को मकान और ऊपर सीढ़ियों पर जाने से रोक रखा था। अँधेरे कमरे में लोगों ने देखा पुरोहित दीवार पर से अपनी लम्बी रायफ़ल उतार रहा है। लोगों ने उन्हें खिड़की तक पहुँचते ही पकड़ लिया जिससे उमड़ती भीड़ के बीच में अनीका का जगमगाता शामियाना दिखाई दे रहा था। याक्षा वहाँ उसी तरह झुका हुआ था और अनीका एक पूरी तरह सँवारी हुई प्रतिमा की तरह बैठी थी। गुरुजनों ने पुरोहित को कमर से पकड़ रखा था और उसकी पत्नी रायफ़ल छीन रही थी लेकिन वह उसे पूरी ताक़त और निश्चय के साथ पकड़े हुए थे। उन्हें रोकने के लिए खींच-तान करते हुए वह उन्हें समझा रहे थे :

"फ़ादर, फ़ादर : हम आपसे प्रार्थना करते हैं"

डरी और घबरायी उनकी पत्नी फटी आवाज़ में विसूर रही थी।

"मैं प्रार्थना करती हूँ, हमारे लिए, ईश्वर के लिए।"

अन्ततः वे उसे अंधेरे कमरे में खींच ले जाने में सफल हुए जहाँ से बाहर का दृश्य नहीं दिखाई देता था। उन्होंने राइफ़ल भी आखिरकार छोड़ दी जिसे वह अपनी बाँहों में उठाये हुए थे। उनकी पत्नी बेहोश हो गयी थी। औरतें जब कि उसके उपचार में लगी थी आदमी पुरोहित को पकड़कर घर के दूसरे छोर पर एक दूसरे कमरे में ले गये।

बाहर शोर-गुल कम हो गया था और भीड़ छँट रही थी। पियक्कड़ों की जमात पुरोहित को भूल गयी थी और उबलने के लिए कोई दूसरा कारण खोज रही थी, आपस में या अपने रिश्तेदारों से लड़ रही थी। रिश्तेदार उन नशों में धुत लोगों को सामान की तरह घोड़ों पर लाद रहे थे या उन्हें दोनों तरफ़ से

पकड़कर सड़क पर ले जा रहे थे। कुछ ही लोग शामियाने के सामने खड़े ग्रनीका को ग्राँख मार रहे थे ग्रौर घूर रहे थे। उनके माथे पर पसीना छलछला रहा था।

ग्रनीका भी जाने की तैयारी कर रही थी। उसने याक्षा का यह ग्रनुरोध कि वह उसे विशेग्राद तक पहुँचा ग्रायेगा, नहीं स्वीकार किया था, ग्रपनी ग्रसहायता ग्रौर विमूढ़ता में वह बार-बार कटुता में भरा पूछ रहा था :

''ग्रौर क़ायममुक़ाम तुम्हारे पास हर समय ग्राता है ?''

ग्रनीका ने सुना ग्रौर ग्रन्यमनस्क भाव से जवाब दिया जैसा कि वह कुछ ग्रोर सोच रही हो :

''हर शाम याक्षा। क्यों, ग्राग्रो, तुमने उसे नहीं देखा होगा। या शायद क़ायममुक़ाम तुम्हारे रास्ते में न ग्राता हो ?''

याक्षा इस ग्रपमान से चौंक गया। वह शान्त कोमल स्वरों में कहती रही :

''या शायद तुम उसके रास्ते में नहीं ग्राना चाहते ?''

जैसे कि वह क्या कह रही है यह न सोच रही हो, उसने कहा :

''वह कल मेरे पास ग्रायेगा ठीक ब्यालू के बाद।''

उस समय तक गिरजाघर के ग्रहाते से सभी जा चुके थे। सरायवाले, खोंचेवाले ग्रपने सामान ग्रौर बर्तन बक्सों में भर रहे थे जिन पर वह सजाये गये थे। चारों तरफ़ ग्राग बुझ गयी थी या तो उन पर पानी डाल दिया गया था या उन्हें यों ही छोड़ दिया गया था। ग्रँधेरे में कुछ पियक्कड़ों की ग्राहें ग्रौर कराहें ग्रभी भी सुनाई दे रही थी। ग्रौर ग्रब वे ग्रावाज़ें भी शान्त हो रही थीं। कुछ-एक पास के गड्ढों में पड़े थे जैसे लड़ाई में काम ग्रा गये हों।

पुरोहित के घर की खिड़कियों में रोशनी टिमटिमा उठती थी जब मशालें ग्रौर मोमबत्तियाँ एक कमरे से दूसरे कमरे में ले जायी जाती थीं; स्त्रियाँ एक-दूसरे से फुसफुसा रही थीं, ग्रादमियों को काफ़ी ग्रौर राकिया दे रही थीं। पुरोहित ने ग्रपने पर काबू पा लिया था ग्रौर ग्रब लोगों से बातचीत कर रहे थे लेकिन बातचीत रुँधी-रुँधी-सी थी जैसे कि शव दफ़नाने के बाद की जा रही थी। ग्रन्ततः बाकी ग्रतिथि भी उठे ग्रौर उन्होंने पुरोहित से विदा ली जो कि हर तरह से ग्रपने को नियन्त्रित ग्रौर शान्त रखने की कोशिश कर रहे थे। दो स्त्रियाँ रात भर के लिए उन की पत्नी के पास ठहरी रहीं।

जब सब लोग चले गये तो कुछ देर पुरोहित ग्रपने कमरे में रहे ग्रौर फिर,

घर पार करके उस खिड़की तक पहुँचे जहाँ से गिरजाघर का प्रांगण और तासिख परिवार का घर दिखायी देता था। उसके पगचाप सुन कर स्त्रियाँ अपशकुन से भर रही थीं। लेकिन पुरोहित की ओर से एक तिनका तक नहीं खटका। उन्होंने अनुमान लगाया कि वह बड़े कमरे में जो उनके कमरे से अधिक ठंडा और हवादार था, एक झँपकी लेने की कोशिश कर रहे हैं।

पुरोहित ने दरवाज़ा बन्द किया, एक मोमबत्ती जलायी और उसके सामने बैठ गये। मोमबत्ती का प्रकाश उनकी छाती, उनकी दाढ़ी और उनके चौड़े उदास चेहरे पर जिसमें आखें काले सूराख़-सी लग रही थीं, फैला हुआ था। बाहर कुत्ते भौंक रहे थे। गिरजाघर के प्रांगण में अँधेरा था, तासिख परिवार के घर के पास चश्मे के दूसरी तरफ़ कुछ मशालें अभी भी जल रही थीं। अपनी गोद में हाथ पर हाथ रखे पुरोहित इस तरह बैठे हुए थे जैसे किसी शव को देख रहे हों।

उनका गुस्सा शान्त हो चुका था, विचार व्यवस्थित हो गये थे लेकिन दर्द बढ़ गया था। जो कुछ जैसा घट रहा था वह उनके लिए असहनीय था अतः वह अतीत की स्मृतियों से सहारा ले रहे थे। कोई तीस साल से वह दोब्रुन में पुरोहित थे। गिरजाघर में और लोगों के साथ रहकर उन्होंने बहुत-से बुरे काम देखे थे और उन्हें याद भी थे लेकिन उन्होंने यह अनुमान कभी नहीं लगाया था—कि वह यह देखने के लिए जिंदा रहेंगे, कि उनके अपने ही खून में और उनकी अपनी ही देहरी पर इस प्रकार की चरित्रहीनता अदृश्य और अप्रत्याशित रूप से माता-पिता का हृदय विदीर्ण करती हुई आयेगी, उनके चेहरों पर थूक जायेगी, ऐसा अशुभ जिसे किसी भी तरह से न रोका जा सकता है न बचा जा सकता है न तो सीधे संघर्ष द्वारा न ही स्वयं मृत्यु द्वारा।

अचानक असीम करुणा से भरा एक नया और व्यथापूर्ण भाव, उस अथाह रिक्तता में जो उनके भीतर फैल रही थी, पैदा हुआ। मानव मात्र पर उनके मन में करुणा जगी, उस हवा के लिये जिसमें वह साँस लेता है, उस रोटी के लिये जिससे वह क्षुधा शान्त करता है। उनके करुणा की वह लहर पागल याक्षा तक पहुँची—उस कलंक और अपमान के लिए जिसके गर्त्त में वह गिर पड़ा था। एक अनाथ की तरह वह सन्दूक़ पर सिकुड़े हुए बैठे थे। हथेलियों में मुँह छिपाये जीवन में पहली बार वह बिलख-बिलखकर रोने लगे। इतने अधिक पाप, लज्जा और अन्याय के आगे अशक्त और निरस्त्र, उनका दम घुट रहा था, दाँत भींचे

वह अपने आँसू रोकने की असफल चेष्टा कर रहे थे। ऐसा लगता था कि उन आँसुओं ने हर चीज़ को जीवनमय कर दिया था और उनके भीतर सब कुछ हिला दिया था। दर्द की ऐंठन में उनका सिर घुटनों पर गिर पड़ता था। लेकिन यकायक वह बहुत अधिक बेचैन हो गये और अप्रत्याशित रूप से उठ खड़े हुए और अपने पूरे मन और आत्मा से उन्होंने वेश्या को श्राप दिया, लज्जा या विवेक से हीन उस भयावह जीव को।

४

उस रात अनीका विशेग्राद वापस आ गयी, उस समय चाँदनी थी। याक्षा तुरत उसके बाद आया। दूसरी शाम जबकि क़ायममुक़ाम अनीका के पास आये किसी ने उन्हें कुँदरू से लदीं झाड़ियों के पीछे से गोली मार दी। अलीबेग के दाहिने हाथ में कुछ चोट आयी; उसी शाम याक्षा क़स्बे से ग़ायब हो गया।

अनीका ने अपने कंजर को अलीबेग के घर उनका हालचाल जानने के लिए भेजा लेकिन नौकरों ने डंडों से कंजर को खदेड़ दिया। अनीका इससे ज़्यादा परेशान नहीं हुई। वह जानती थी कि क़ायममुक़ाम ठीक होते ही आयेंगे और यदि उनसे कहा जाये तो जल्दी भी आ सकते हैं। दोब्रुन की अपनी यात्रा से उसे यह यकीन हो गया था कि वह जो चाहे सो कर सकती है। क़स्बे को भी यह यक़ीन हो गया था।

सितम्बर का महीना था। याक्षा बन्पोल्ये से ऊपर जंगलों में भाग गया था और रात उसकी आग क़स्बे से देखी जा सकती थी। वह दोब्रुन वापस नहीं जाना चाहता था और विशेग्राद वापस आ नहीं सकता था। हेदो साल्को को उसे गिरफ़्तार करने के लिए भेजा गया लेकिन उसका पता नहीं चला। शीघ्र ही उसकी खोज बन्द कर दी गयी और याक्षा की आग बन्पोल्ये के ऊपर उसी तरह फिर जलती हुई दिखायी देने लगी जहाँ आधे घंटे में क़स्बे से पहुँचा जा सकता था। विशेग्राद में सभी जानते थे कि वह आग याक्षा जलाता है। कभी-कभी अनीका स्वयं बाहर आँगन में आकर अग्नि की पहली लपटों को देखती जो हमेशा

उसी समय दिखाई देती जिस समय आकाश में पहले सितारे निकलते। फिर आग फैलती जाती और लाल होती जाती और पहाड़ियों तथा ऊपर आकाश के अँधेरे पर विजय प्राप्त कर लेती।

इधर याक्षा जंगलों में छिपा हुआ था उधर दोब्रुन का पुरोहित अपने घर पर बिस्तरे में खामोश बीमार मुर्दे की तरह पड़े रहते थे। उनकी बीवी रात-दिन उनके पास बैठी रोती रहती थी। वह उनसे कहा करती थी कि कुछ कहें, कुछ माँगें लेकिन वह चुपचाप पड़े-पड़े अपने-अपने होंठ काटते रहते थे। उनकी सफ़ेद दाढ़ी और मूँछों में डूबी हुई उनकी दृष्टि निस्तेज हुई, अचल हुई और खो गयी।

क़ायममुक़ाम अपनी शामें द्रिना पर अपने बग़ीचे में दोस्तों के साथ पी कर गुज़ारते। वह पुलीस को हुक्म देते कि जाओ याक्षा को पकड़ो फिर दूसरे ही क्षण भूल जाते। उनका घाव शीघ्र ही भर गया। सरायेवो से दो मेहमान आये मोटे-तगड़े तुर्क।

दिन में तीनों नदी पर क़ायममुक़ाम के बग़ीचे में बैठे जुआ खेलते रहते। सिपाहियों को वे हुक्म देते कि नदी पर पीले कद्दू तैरायें जो चाँदमारी के काम आते। ज्यों ही अँधेरा होता कंजर संगीतज्ञ गाना-बजाना शुरू कर देते। मेहमान अपने साथ आस्ट्रिया से खरीदकर आतिशबाज़ी लाये थे जो रात में छुड़ाई जाती। इन नये और अनसुने खेलों से सारे क़स्बे में उत्साह था। बच्चे तब तक नहीं सोते जब तक बगीचे से छुड़ाई गयी आतिशबाज़ी खतम नहीं हो जाती। क़स्बे के लोग आशंका और विस्मय से ग्रीष्मकालीन आकाश में लाल-हरी चिनगारियों का फूटना और फिर झिलमिलाती वर्षा की बूंदों की तरह पृथ्वी पर बिखरना देखते जिससे धरती पहले से और अधिक अँधेरी हो जाती। और इधर याक्षा की आग पहाड़ों में जलती होती।

अनीका ने कुछ नहीं किया। अब वह किसी को नहीं आने देती। शाम होते ही वह बग़ीचे के दरवाज़े में ताला डलवा देती और येलेंका से कहती कि गाये वह सुनेगी। येलेंका की आवाज़ तेज़ थी, वह ऊँचे स्वरों में गाती जो इस पहाड़ी से उस पहाड़ी तक सारे क़स्बे में गूँजती। अनीका उसकी बग़ल में बैठी होती और भावहीन मुद्रा से बिना एक शब्द कहे सुनती रहती। लोग कहते कि यद्यपि अनीका ने पुरोहित को उसकी ही देहरी पर जाकर अपमानित किया था और सारे क़स्बे को अपने वश में कर लिया था फिर भी वह न खुश थी न शान्त ही। लोगों ने

उसके अगर कुछ शब्द सुने थे तो वे एक शराबी तुर्क के मुख से जो उसके घर के सामने डेरा डाले पड़ा था और हट नहीं रहा था। वे शब्द क़स्बे में आतंक और भय से दोहराए जाते।

यह तुर्क रूदो से आया हुआ था—धनी और उद्दंड। जब होश में रहता तो क़स्बे में दिखाई देता। लेकिन ज्यों ही पी लेता—और वह अक्सर ही पिये रहता—वह सीधे ऊपर मैदान में अनीका के द्वार पर जाता। दिन-प्रतिदिन वह घटिया और बदमिज़ाज होता गया। उसने येलेंका और सवेता को पीटा तथा अपनी ही तरह के अन्य आदमियों पर जो वहाँ आते और इन्तज़ार करते प्रहार करता। वह अनीका की खिड़की के नीचे खड़ा होकर चीख़ता, धमकाता और अपना बड़ा चाकू दरवाज़े में भोंक देता। एक शाम उसने फिर अपना चाकू आँगन में फेंका और अपनी पूरी शक्ति भर ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाया कि "आज शाम मैं किसी की जान लेकर रहूँगा।" अनीका स्वयं निकली, बिना स्लीपर के हल्के सफ़ेद मोज़े पहने हुए और तुर्क के पास आयी।

"क्या मामला है? तुम क्यों चीख़ रहे हो? तुम चाहते क्या हो?" उसने अपनी हल्की भारी आवाज़ में पूछा। उसका चेहरा शान्त था यद्यपि भौंहें तनी हुई थीं। "किसी की तुम जान लोगे? आओ मारो! तुम सोचते हो तुम्हारे चाकू से कोई डरता है, मूर्ख, गँवार! आओ मारो!"

तुर्क की आँखें ठगी-सी देखती रह गयीं। वह कुछ चबा रहा था और निगल रहा था जिससे कि उसकी लम्बी लाल मूछें और उसका नोकीला बिना हजामत किया टेंटुआ हिल रहा था। वह भूल गया कि उसके हाथ में चाकू है और उसने कभी कुछ कहा है और इस तरह खड़ा रहा कि वह स्वयं अनीका द्वारा मार डाले जाने की प्रतीक्षा कर रहा हो। अनीका ने उसे ढकेल कर आँगन से बाहर कर दिया और दरवाज़ा बन्द कर लिया।

कहा जाता था कि घर के भीतर वापस आते हुए—जब कि वह येलेंका, ताने और एक नवयुवक के बीच से होकर गुज़र रही थी—और उस शराबी तुर्क को कोसते हुए उसने स्वयं से ज़ोर से कहा:

"जो भी मुझे मार डालेगा वह मेरा बड़ा उपकार करेगा।"

बुराई और उलझन के इस दृश्य में दो दुखी ऐसे थे जिसके बारे में क़स्बे में कोई कुछ नहीं जानता था। दो व्यक्ति यातना-पीड़ित थे—अपने ही द्वारा अपने-

अपने ढंग से चुपचाप और गुप्त रूप से। यातना जिसमें सब हाथ बटा सकते थे लेकिन जो उनके लिए एक विशेष गहरायी और अर्थ रखती थी। उनमें से एक था लाले, अनीका का भाई, और दूसरा मिहाइलो।

लाले उसी समय घर छोड़ कर चला गया था जब पहली बार उसे अनीका के आचरण में उच्छृंखलता दिखाई दी थी। वह कभी चार्शिया में दिखायी नहीं दिया। वह अपनी नानबाई की दूकान में रहता और सोता। जब कोई अचानक उसकी बहन का नाम ले देता तब उसके दीप्त लड़कैंधे चेहरे पर बादल छा जाते और उसकी आँखें निश्चल रूप से किसी चीज़ पर गड़ जातीं। लेकिन तुरत ही वह अपना सुन्दर सिर झटकता, जिस पर आटा जमा होता और उसकी सामान्य दुर्बल मन की मुस्कान उसके चेहरे पर वापस लौट आती। खुद से धीरे-धीरे बुदबुदाता हुआ वह तेज़ी से यन्त्रवत् वही उबा देने वाले सांचों में अपनी रोटियाँ ढालने लगता जैसा कि उसके बाप ने उसके बचपन में उसे सिखाया था।

वह लाले था, अनीका का भाई। उसके मन पर क्या बीतती है, या वह दुर्बल मन वाला नवयुवक अपने आधे अँधेरे कमरे में बड़ी भट्टी के पीछे कितना कुछ झेलता है, कोई नहीं जानता था।

मिहाइलो चार्शिया से थोड़ी दूर मास्टर निकोला के घर पर रहता था जो कि ऋनोयेलात्स की नानबाई की दूकान से ज़्यादा दूर नहीं थी। क्योंकि अनीका ने ज़िन्दगी का रास्ता पकड़ लिया था, मिहाइलो जितनी जल्दी हो सकता उतनी जल्दी यात्रा की राह पकड़ता रहता लेकिन जब क़स्बे में रहता अनीका के बारे में होती चर्चा सुननी ही पड़ती और जो कुछ होता उसे सब मालूम रहता।

मास्टर पीटर फिलीपोवात्स, जिन्होंने अपने ही लड़के को अपने घर से निकाल दिया था और जिसकी बोलचाल उनकी पत्नी और लड़कियों तक से बन्द थी, मिहाइलो के अतिशय प्रेमी थे। वे अक्सर सुबह तड़के मास्टर पीटर की दूकान के साये के नीचे जाग जाते। चार्शिया की अधिकतर दूकानें उस समय बन्द होतीं। चारों तरफ़ शान्ति होती। उदास और धुआंए हुए मास्टर पीटर अपनी भर्राई आवाज़ में कहते :

"देखो! अभी तुम नौजवान हो लेकिन मैं तुमसे कहता हूँ कि बुजुर्गों की उक्ति आज भी सही लगती है। हर स्त्री में एक दानव होता है, उसको मारना ज़रूरी है चाहे कठिन परिश्रम से चाहे बच्चे पैदा करके। वह स्त्री जो इन दोनों

से बची हो उसे समाप्त हो जाना चाहिए।''

ग्रौर जैसे कि उन्होंने कभी इस पर विचार ही न किया हो, मास्टर पीटर की ग्रावाज़ ऊँची हो जाती ग्रौर वह मिहाइलो से वही एक शिकायत दोहराते।

मिहाइलो उन्हें तियाना या सवेता की याद दिलाते जो ग्रनीका से पहले इस बुराई के लिए प्रसिद्ध थी लेकिन मास्टर पीटर उन्हें रोक कर कहते :

''इसके मुक़ाबले में तियाना सन्त थी। यदि सवेता ही एकमात्र समस्या होती तो क़स्बा चैन की नींद सोता। उसकी जगह हमेशा कोई न कोई बंजारिन या कुतिया रहती है ग्रौर उनकी जगह भी सभी जानते हैं—सैनिकों के साथ गड्ढों में। कोई उनकी तरफ़ ग्राँख उठा कर भी न देखता न ध्यान ही देता। लेकिन यह ! देखते हो क्या हो रहा है ? उसने गिरजाघर को नीचा दिखाया, ग्रधिकारियों पर सिक्का जमाया ग्रौर हम सबको ख़त्म कर देगी। ग्रौर कोई उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकेगा।''

''कोई भी नहीं ?''

''ख़ुदा क़सम, कोई भी नहीं। हमारे क़स्बे में वही दोनों है—पाशा भी ग्रौर बिशप भी। हम सब नरक में भूने जायेंगे क्योंकि हममें से किसी में उसे मारने का साहस नहीं है। जो सड़क पर घात लगाये बैठे रहते हैं वह कम हानि करते हैं बनिस्वत इसके।''

एक बार फिर मास्टर पीटर ने उसके पापकर्मों ग्रौर बुरी हरकतों का वर्णन किया जिसमें उनके लड़के के दुर्भाग्य का भी हवाला था। वहाँ तक ग्राते-ग्राते वह केवल ग्रपना हाथ हिलाकर रह जाते थे ग्रौर चुपचाप कटुता पी जाते थे। मिहाइलो ने उन्हें दिलासा देने की कोशिश की :

''एक दिन ग्रायेगा जब उसका भी ग्रन्त होगा।''

''नहीं, ऐसी स्त्री का कोई ग्रन्त नहीं होता। वह जब तक चाहे तब तक हमारे साथ खेलती रहेगी। तुम हम लोगों को या इस क़स्बे को नहीं जानते। हम हर बुराई से लड़ सकते हैं लेकिन इससे नहीं। वह हमारे ऊपर सवार है ग्रौर हममें से कोई भी उससे मुक्त नहीं हो सकता।''

इस मुहावरे के साथ मास्टर पीटर ने सारी बात खतम की जिसे मिहाइलो विचारमग्न सुन रहा था।

यदि इस कटु वृद्ध को यह पता होता कि इस तरह की बातचीत से मिहाइलो

को कितनी गहरी तकलीफ़ होती है तो नि:सन्देह उसने कोई दूसरा साथी खोज लिया होता या अपने दुर्भाग्य को अकेले झेलता।

मिहाइलो को कभी-कभी आश्चर्य होता था कि इन लोगों के बीच घूमने, काम करने और बिना अपने पर नियन्त्रण खोए इन लोगों से बात करने की शक्ति उसमें कहाँ से आती है। सारे समय अनीका के बारे में सुन-सुनकर उसके उद्धार की क्षणजीवी और विश्वासघाती आशा एक बार पुन: उसे अपने ही विरुद्ध कर देती। अपने से ऊब कर अक्सर वह सोचता कि कैसे वह एक क्षण को भी यह मान पाता है कि जो कुछ घटा है वह मिट जायेगा और लोग उसे भूल जायेंगे।

वर्षों पहले सरायेवो में उसने एक सर्बी को एक मुसलमान को बीच सड़क पर छुरा मारते देखा था। बेचारा मुसलमान अपने हत्यारे को मुड़कर देख भी नहीं सका जिसका दूसरे लोग पीछा कर रहे थे लेकिन धीरे-धीरे सामने जो दरवाज़ा खुला था उस ओर बढ़ने लगा। बिना किसी की ओर देखे हुए वह इस तरह चल रहा था जैसे एक-एक क़दम गिन रहा हो; अपना घाव वह दोनों हाथों से दबाये हुए था, साफ़-साफ़ यह जानता हुआ कि वह तभी तक ज़िन्दा है जब तक छुरा घाव के भीतर है।

मिहाइलो ने क्रिस्तो की हत्या को अपनी ही मृत्यु की तरह देखा था; अवश्यम्भावी और आसन्न, और समझ गया था कि आठ वर्ष की यातना के बाद भी उसका निस्तार नहीं हुआ है। उस रात वह—मिहाइलो—सांघातिक रूप से घायल हुआ था। यह आठ वर्ष उन्हीं कुछ क़दमों की तरह रहे हैं जो उस मुसलमान ने सामने की दरवाज़े की ओर बढ़ाये थे, आँखें नीची किए और घाव को दोनों हाथों से थामे।

मिहाइलो को अपने ऊपर दया आयी।

"अब समय आ गया है जब घाव से छुरा निकालना पड़ेगा। अपने को छलते रहने से कोई फ़ायदा नहीं।"

वह याद नहीं कर सका कि कब पहली बार उसने अनीका और क्रिस्तिनित्सा में भेद करने की तमीज़ खो दी थी; उसके मस्तिष्क में एक लम्बे अरसे से दोनों ही स्त्रियाँ एक ही थीं। वस्तुत: जिस स्त्री की वह कामना करता या जिसे प्राप्त कर लेता वह एक ही स्त्री हो जाती : लम्बी, प्रसन्नचित्त क्रिस्तीनीत्सा, अपने लाल केशों बलिष्ठ भुजाओं और चमकदार आँखों के साथ।

ऊपर पहाड़ी पर, एक हाँक की दूरी पर, एक स्त्री रहती थी जो अन्य स्त्रियों से अधिक उसे क्रिस्तिनित्सा की याद दिलाती थी और क्रिस्तिनित्सा की ही तरह उसने उसमें आशा जगायी थी और फिर एक संक्षिप्त और यातनापूर्ण खेल के बाद उसने प्रकट किया कि वह क्या है, उसका पूर्वज्ञान उसने भी पुष्ट किया।

बुद्धिमान और ईमानदार पिता द्वारा पोषित, प्रकृति से अतिसंवेदनशील, कोमल फिर भी भीतर से सख्त, मिहाइलो बड़ी से बड़ी यातना झेलने में समर्थ थे। वह जानते थे कि किस तरह इन भावों को छिपाया जाये। लेकिन उनकी यातना अब ऐसे अनुपात में बढ़ गयी थी कि उसका छिपाना लगभग असम्भव हो गया था। लज्जा उसे प्रेत की तरह दिखायी देती और अधिक यातना भरी और स्वयं मृत्यु से भी अधिक भयावह। और यह यातना दिन-प्रतिदिन के जीवन में मामूली से मामूली बातों में पैठ जाती।

बच्चों जैसे हठ की कारण वह कुछ तफ़सील पर बार-बार पहुँचते। उदाहरण के लिए उन्हें यह यक़ीन था कि बेहतर होता यदि उन्होंने क्रिस्तिनित्सा के हाथों से छुरा जब वह उसे दे रही थी ले लिया होता। लेकिन छुरा वहाँ छोड़ कर, जैसे कि उसने उसे उसके पास बन्धक रख दिया हो, और अपने और सन्त्रास के बीच एक कड़ी जोड़ कर वह उस रात भाग आया था। और जब कि संयोग से वह 'छुरा' शब्द सुनता, जिसका उससे कोई सम्बन्ध भी नहीं होता वह अपने आप सोचता :

''मेरा छुरा अभी भी उसके पास है।''

चेतना के इस अबोध्य खेल ने धीरे-धीरे मिहाइलो के सम्पूर्ण अस्तित्व को जीत लिया।

अक्सर अपना लेखा-जोखा करते हुए एक ही विभीषिका ऐसी थी जिसे वह सम्भव नहीं मानता था : वही स्वप्न बार-बार देखना, निरन्तर इस पूर्ण जागरूकता के साथ कि उससे पहले स्वप्न का क्या हश्र हुआ। इस प्रकार के अपने पहले स्वप्न की उसे अब याद नहीं है लेकिन उसे यह भान है कि हर दोहराव यथार्थ में कुछ जोड़ता है, कुछ तफ़सील, कुछ छोटी-मोटी बातें एक बढ़ते हुए तीखे बिम्ब में। यह बिम्ब धीरे-धीरे गहन होता जाता है और अपने को उसके स्वप्न जगत् से पृथक कर लेता है, यथार्थ की ओर अग्रसर होता है और सूक्ष्म रूप में उसमें प्रवेश कर जाता है।

यह उसका सपना था : सुबह सुहावनी है। वह उसकी ताज़गी और शीतलता अपने चेहरे पर, अपने मुख में, अपने सारे शरीर में अनुभव करता है। वह सीधे, शान से किसी निर्णय के संघात से चलता जाता है जो इतना बड़ा है कि उसकी पूरी तरह समझ में नहीं आता; वह केवल उसका भारीपन महसूस करता है। ऐसा लगता है कि गलियाँ और चौक उसके खाली होते जा रहे हैं केवल उसके निर्णय का भार उसे आगे ढकेल रहा है। इस तरह वह क्नोएलात्स के नानबाई की दुकान से आगे बढ़ जाता है जहाँ से लाले का प्रसन्न गायन सुना जा सकता है। वह मैदान के ऊपर चढ़ जाता है। अनीका का आँगन ताज़े रंगीन फूलों से भरा हुआ है। घर का दरवाज़ा खुला जैसे किसी के आने की प्रतीक्षा कर रहा हो।

कितना घोर प्रयास मिहाइलो ने यथार्थ और स्वप्न दोनों में किया कि वह दरवाज़े के भीतर प्रयास न करे, देहरी न लाँघे। वर्षों से वह अपना काम खुद करता है, और यात्रा करता है यहाँ तक कि जब ज़रूरत नहीं होती तब भी। महज़ इसलिए कि वह इस आँगन से दूर रह सके। एक लम्बे अरसे से वह ऐसा करने में सफल रहा है लेकिन अब उसे लगता है वह अपने पर क़ाबू नहीं रख पायेगा। वह काम की बातें भी भूल जाता है, निर्धारित समय पर किसी के पास नहीं पहुँच पाता। यह जानकर कि वह लापरवाह और अन्यमनस्क हो रहा है, वह भय से भर गया जैसे कि उसे अपने भीतर किसी बीमारी का पता लगा हो।

शायद एक और रास्ता भी था : विनाश के पूर्व ही सब कुछ छोड़ दे, उस दुनिया में भाग जाये जहाँ आदमी बिना सम्मान के होता है, अपराधी। यदि यह समस्या वास्तविक होती, उसे अपने शत्रु दिखाई देते तो उसने ऐसा कर लिया होता। लेकिन जैसी स्थिति है उसमें वह कहाँ जाये। उसके भय का निवास सर्वत्र है, हर जगह उसे मिलेगा, हर सड़क पर, हर नगर में।

उसने यहाँ तक सोचा कि अनीका को एक पत्र भेजे, उसमें उसे धमकाये, अपनी ही ख़ातिर, क़स्बे की ख़ातिर, उसकी ख़ातिर यहाँ से चले जाने की प्रार्थना करे। लेकिन उसे तुरत ऐसे सन्देश की निरर्थकता समझ में आ जाती।

वह अक्सर लाले के बारे में सोचता। उस सुन्दर, सीधे सरल नवयुवक के प्रति हमेशा वह अनुरक्त रहा। उसके और अनीका के भाई के बीच हमेशा एक प्रकार का आकर्षण रहा जिसमें प्रेम, अविश्वास और रूखेपन का मिश्रण रहता। मास्टर पीटर की बातचीत के बाद अक्सर वह लाले के बारे में सोचता। उसे

लगता कि अनीका का भाई होने के नाते लाले सब देखता और सब समझता है और सम्भवत: उसे ही वह व्यक्ति होना चाहिए जो अनीका को निरस्त्र और पराजित करे। एक दिन तड़के नानबाई की उसकी दूकान से गुज़रते हुए मिहाइलो ने लाले से मुलाक़ात की। उसने देखा लाले ज़ोर-ज़ोर से गा रहा है और सफ़ेद रोटियों में बड़े काले चाकू से छेद कर रहा है। दोनों ने बातचीत की, उतनी जितनी लाले से कोई बात कर सकता था। मिहाइलो ने बातचीत के दौरान अनीका का नाम लिया लेकिन कोई नतीज़ा न निकला। लाले एक प्रसन्न मूर्ख की तरह मुस्कराता रहा और आटे, पानी और रोटी की बातें करता रहा।

इस प्रकार अनीका के भाई को अपनी यातना में शामिल कर पाने की सभी आशाएँ मिहाइलो ने छोड़ दी। हर व्यक्ति किनारा कसता जा रहा है और उसे अनीका के साथ अकेला छोड़ता जा रहा है। हर चीज़ उसे आगे ले जा रही है और कभी-कभी ही वह दो-एक कदम पीछे लौटता है यह नापने के लिए कि वह इस रास्ते का, जिस पर वह सूक्ष्म रूप से सरक रहा है, कितना सफ़र तय कर चुका है।

विशेग्राद की वह सुन्दर शरद् ऋतु थी। मिहाइलो को लगा, वह भी अतीन्द्रिय रूप से, कि वह शीघ्र ही यात्रा पर जायेगा। एक सुबह वह यात्रा के लिए प्रस्थान के विचारों से भरा हुआ उठा। आँगन में चश्मे से कुछ देर बाद अपना मुँह धोते हुए उसने यकायक अंजलि में शीतल स्फूर्तिदायक जल भर कर कहा, "अलविदा" और तुरत ही पानी गिरा दिया। बहते पानी के साथ उसके विचार भी बह गये।

मिहाइलो चारों ओर हर चीज़ से विदा ले रहा था। एक दिन वह अनीका के कंजरिन के पास गया जो अक्सर उसे चार्शिया में दिखायी दे जाती थी और उससे स्वाभाविक स्वरों में कहा :

"अनीका से पूछना क्या मैं कल सुबह उससे मिलने आ सकता हूँ। मैं तभी आऊँगा जब कोई और वहाँ न हो। मुझे उससे कुछ कहना है।"

कंजरिन चली गयी। मिहाइलो थोड़ा काँप उठा और चारों तरफ देखने लगा जैसे कि उसे मदद या सलाह चाहिये। लेकिन सारे दिन वह व्यवस्थित रहा। उसने ध्यान से हिसाब-किताब का अपना काम किया और चारों ओर से घर साफ़ किया। सूर्यास्त के ठीक पूर्व स्त्राज़ीस्ते की पहाड़ी की ओर रवाना हो गया, जिस

पर अनेकों बार उसने अपने दोस्तों के साथ शामें बितायी थीं।

वह धीरे-धीरे चढ़ा और तुर्कों के कब्रिस्तान से कुछ ऊपर एक खुली जगह में बैठ गया। उसकी बग़ल में ज़मीन पर कुछ खाने का सामान और राकिया का एक प्याला रखा हुआ था। उसने धीरे से लोहे का एक टुकड़ा चकमक पर रगड़ा और आहिस्ता से जली हुई सिगरेट अपने बायें हाथ की उँगलियों में थामे रहा। उसकी आँखों के सामने धुआँ उठता था, दृश्य को धुँधला करता था, फिर छल्लों की तरह चारों ओर उठ कर हवा में धीरे-धीरे खो जाता था। उसकी दृष्टि उससे बँधी थी। अभी भी देवदारु के वृक्षों के बीच सूरज की रोशनी की हल्की चमक थी। नीचे विशेग्राद के सफ़ेद मकानों की काले-लाल छतों से धुआँ धीरे-धीरे उठ रहा था। रिज़ाव नदी की एक बढ़ी हुई शाखा में आकाश और उसके तट पर उगी झाड़ियाँ प्रतिबिम्बित थीं।

मिहाइलो ने बहुत-सी ऐसी चीज़ें भी देखीं जो उस स्थान से दिखाई नहीं देती थीं; दूकानों के दरवाज़े, घरों के फाटक बड़े ओपदार पत्थरों के साथ, जिनके बाहर बच्चे खेलते हैं; आदमी, उनकी दृष्टियाँ और उनके अभिवादन।

उन्होंने एक प्याला राकिया पी लेकिन खाना भूल गये। धुआँ गुलाबी हो रहा था और उसके छल्ले हवा में बहुत देर तक चक्कर काटते थे और फिर धीरे-धीरे पतले होते जाते थे। उस झुटपुटे में हर चीज़ की आकृति देर तक बनी रहती। और मिहाइलो ने धुआँ और हवा अपने फेफड़ों में भर ली, विशेग्राद की हवा, घरों को, पहाड़ों की तीखी चोटियों को, और वनपथी को देखा, जिन सबसे अब तक अनेक वर्षों से वह जुड़ा हुआ था। सोचते-सोचते चोटियाँ खो गयीं; रात के पूर्व की काली-नीली चमक ने उन्हें छिपा लिया था।

इन पहाड़ियों और यहाँ के लोगों के बीच रहते उसे छः साल हो गये। यहाँ उसने एक बार फिर आदमियों के बीच अपना स्थान बनाया। यहाँ उसने अपनी जड़ें फैलायीं यहाँ उसका जीवन फिर से शुरू हुआ। अपनी आकृति बदलने और उसकी गति को एक बार फिर तोड़ने से उसे कितनी घृणा थी।

उसने सिगरेट की दो-एक कश ली और धुआँ क़स्बे पर मँडराने लगा जहाँ घरों में आग जलनी शुरू हो रही थी। वह एक के बाद एक सिगरेट पीता रहा और उसे लगा कि राकिया ने उसकी छाती में एक भनभनाहट पैदा कर दी है। क्षितिज के पास जहाँ सूरज डूबा था बादल जलते हुए सुर्ख़ रंग के दीख रहे थे

जिससे यानयात्स पर्वत के ऊपर एक निर्वृक्ष क्षेत्र दीप्त हो रहा था। इस वनपथ को मिहाइलो ने पहले कभी नहीं देखा था। इसे देखकर, जैसे किसी ने संकेत दिया हो, मिहाइलो उठ खड़ा हुग्रा ग्रौर ग्रँधेरे में उतर कर क़स्बे में चला गया।

वह सीधे घर गया। उसने ग्रहाते के फाटक को धक्का दिया ग्रौर उसके लकड़ी के ताले को टोटला—वर्षों से वह इस जर्जर दरवाज़े को खोल-बन्द कर रहा है जिसकी सारी कमियाँ ग्रौर विशेषताएँ उसे ग्रच्छी तरह मालूम हैं। घर का दरवाज़ा ग्राधा खुला था ग्रौर भीतर ग्राग जल रही थी। ग्रहाता पार करके वह ग्रचानक चौंक पड़ा जैसे वह किसी चीज़ से ठोकर खा गया हो। बखार के पास ग्रनीका की कानी कंजरिन खड़ी थी। भौचक्का-सा उसने पास जाकर पूछा कि वह क्या चाहती है। वह पहले बोली, लगभग फुसफुसाती हुई :

"ग्रनीका ने कहलाया है कि ग्राप कल सवेरे जितने तड़के हो सके उसके यहाँ ग्रायें।" तब वह धीरे-धीरे दबे पाँव चली गयी।

उस रात उसने ग्रपने सारे काग़ज़ात, ग्रपने साझेदार मास्टर निकोला के लिए व्यवस्थित किये। उस समय तक सुबह हो चुकी थी ग्रौर वह ग्रपनी तैयारियाँ पूरी कर चुका था। मिहाइलो सोया नहीं था। एक शान्त उल्लास ने, जो उस पर छाया हुग्रा था, रात छोटी कर दी थी ग्रौर हर यथार्थ को मिटा दिया था।

तीखी ढलान वाले ऊँचे पर्वतों से घिरे होने के कारण सूरज विशेग्राद में देर से निकलता है। लेकिन सूर्योदय के कहीं पहले क़स्बे में एक ग्रप्रत्यक्ष रोशनी भर जाती है जो लगता है कि ग्राकाश के मध्य से ही गिर रही हो। इस शान्त रोशनी में मिहाइलो ने ग्रहाता पार किया, कन्धे पर एक थैला डाला, जैसा कि वह ग्रक्सर यात्रा पर जाने के पूर्व करता था ग्रौर मैदान के लिए रवाना हो गया।

सड़कें उस समय वीरान थीं ग्रौर ग्रधिक चौड़ी तथा चमकदार लग रही थीं। वह लाले की रोटियों की दूकान के सामने से गुज़रा लेकिन वहाँ से गाने की ग्रावाज़ नहीं ग्रा रही थी जो दिन के इस समय के लिए ग्रसाधारण बात थी। वस्तुतः दूकान बन्द थी, वह किसी पुराने मक़बरे की तरह ग्रकेली ग्रौर ग्रँधेरी दिखाई दे रही थी। लेकिन क़स्बे में ग्रौर हर चीज़ ग्रपनी-ग्रपनी जगह बदस्तूर लगती थी।

ऊपर मैदान को जाने वाली पगडंडी सूनी थी। ग्राकाश जलते हुए खेत की तरह लग रहा था जिस में से शीघ्र ही सूर्य निकलने वाला था। घरों की ग्रोरियों

के नीचे फाख्ताएँ बोल रही थीं। अनेक घरों के दरवाज़े खुले थे और अँधेरे थे जैसे कि घरवाले चाहते हों कि अँधेरा दरवाज़ों पर पड़ा रहे।

अनीका का फाटक भी भट्टा-सा खुला था। घर के ऊपर ढलुआं बग़ीचे में येलेंका हरियाली में छिपी हुई केवाँच की फलियाँ तोड़ रही थी और झींगुर की तरह गा रही थी।

मिहाइलो ने ज्योंही घर के भीतर प्रवेश किया उसकी निगाह चूल्हे की ओर गयी। राख में एक काला नानबाई का चाकू पड़ा था जो मूठ तक खून से सना था। यह वही चाकू था जिसे उसने अक्सर लाले के हाथ में रोटियों की दूकान पर उससे बातचीत करते हुए देखा था।

आश्चर्य से भरा चकराया हुआ जैसे कि एक विचित्र स्वप्न के भीतर दूसरा विचित्र स्वप्न हो, मिहाइलो धीरे-धीरे अनीका के दरवाज़े तक गया, बेहिचक उसने दरवाज़ा खोला और खड़ा रहा। वह एक साफ़-सुथरा छोटा कमरा था जिसमें क़ालीन बिछा हुआ था। मिन्देरलुक से दो गद्दे हटे हुए थे। अनीका का शरीर फ़र्श पर पड़ा था। वह कपड़े पहने हुई थी; उसकी बंडी और कमीज़ में छाती के बीच सूराख़ था। उसे देखकर ऐसा लगता था जैसे वह बहुत शान्तिपूर्वक मरी हो; मौत की कोई यातना उसके चेहरे पर नहीं थी। सामान्यतया जैसी वह दीखती थी इस समय उससे बड़ी दीख रही थी, फ़र्श पर पसरी हुई, उसकी पीठ गद्दे पर थी और उसका सिर दीवार के सहारे रखे तोशकों पर। उसके बालों में एक फूल लगा था। कहीं भी ख़ून दिखायी नहीं दे रहा था।

भय से बर्फ़ हुए मिहाइलो ने प्रार्थना के लिए अपने हाथ सलीब की मुद्रा में उठाये फिर ठिठका और उन्हीं उठे हाथों से उसने अनीका के कमरे का दरवाज़ा भेड़ दिया। चलते समय उसने एक बार फिर ख़ून से सना चाकू राख में पड़ा देखा, वह इस तरह उस ख़ामोशी में पड़ा था जैसे सदियों से मृत चीज़ों के बीच कुछ पड़ा रहता है। वह घूमा और एक गहरी कँपकँपी के साथ उसने चाकू उठा लिया, पहले उसे उसी राख से पोंछा फिर चूल्हे के लकड़ी के चौखटे से और उसे अपनी पेटी के नीचे दूसरे बड़े चाकू के पास खोंस लिया जिसे वह उस सुबह खुद अपने साथ ले गया था।

बाहर सूर्योदय हो रहा था और येलेंका ऊपर बग़ीचे में गा रही थी। चश्मा ज़ोरों से कल-कल कर रहा था। पागल नज़ीफ़ खिड़की के तले एक नीची बेंच

पर दिन भर के लिए बैठ गया था। अपने में प्रसन्नचित मगन चारों तरफ़ चीनी की ढेरियाँ लगा रहा था ! यहाँ तक कि उसने पास से जाते हुए मिहाइलो की ओर देखा तक नहीं जो तेज़ी से चश्मे की ओर जा रहा था जिसमें अभी भी सुबह की छायाएँ मँडरा रही थीं।

अनीका की मृत्यु से विशेग्राद बदल गया जैसा कि होना ही था। जिस तेज़ी से सारी चीज़ें पुरानी गति में ढल गयीं उस पर वस्तुतः यक़ीन कर पाना कठिन था। कोई यह जानने का इच्छुक नहीं था कि वह स्त्री कहाँ से आयी थी, वह क्यों रही थी और क्या चाहती थी। वह हानिकारक थी और खतरनाक थी और वह मर गयी, दफ़ना दी गयी और भुला दी गयी। क़स्बा, जिसमें क्षणिक उलट-पुलट हुआ था अब फिर चैन की नींद सोने लगा था, निर्बन्ध घूमने लगा था और चैन की साँस लेने लगा था। यदि ऐसा अभिशाप फिर आयेगा—और कभी न कभी आयेगा ही—तो क़स्बा फिर उसका मुक़ाबला करेगा, पराजित होगा, लड़ेगा, उसे तोड़ेगा, दफ़ना देगा और भूल जायेगा।

हेदो साल्को ने हत्या की जाँच की। येलेंका, सवेता और कंजरिन से पूछताछ की गयी, उन्हें पीटा गया, निःसन्देह बेकार ही, क्योंकि वे सत्य कह रही थीं।

पता चला कि अनीका ने उस सुबह अकेले रहने की इच्छा व्यक्त की थी। उसने घर अच्छी तरह साफ़ किया था और सबको उसमें आने की मनाही कर दी थी। उसने दोनों कंजरों को और सवेता को वुशीन किसी औरत के पास भेज दिया था (जो कई घंटों का सफ़र था) और येलेंका को आदेश दे दिया था कि वह ऊपर बग़ीचे में केवाँच की फलियाँ तोड़े; उसे यह हिदायत थी कि जब तक बुलाया न जाये घर में न आये।

कंजरिन ने बताया कि उसी शाम जब उसने अनीका का निमन्त्रण मिहाइलो को दिया था उसने लाले को भी जाकर ऐसा ही निमन्त्रण दिया था :

"अनीका ने कहलाया है कि तुम कल सबेरे जितने तड़के हो सकता हो जरूर आओ।"

लाले ने उसे कोई जवाब नहीं दिया था।

अनीका ने क्यों उसी सुबह जब मिहाइलो को बुलाया था, अपने भाई को भी बुलाया था जिसे उसने इतने लम्बे अरसे में कभी देखा तक नहीं था ? क्या यह संयोग था या वह कोई जाल रच रही थी, अचरज में डालना चाहती थी ? और

इन दोनों में से किसने अनीका की हत्या की ? कंजरिन कुछ बता नहीं सकी न ही येलेंका या सवेता, क्योंकि अनीका उनसे बहुत कम बात करती थी और निश्चय ही अपनी योजनाएँ कभी उन्हें नहीं बताती थी।

येलेंका इतना ही बता सकी कि पहाड़ी पर से वह देखती रही थी कि घर में कौन आ-जा रहा है और उसने देखा था कि लाले पहले आया था और कुछ देर बाद उसने उसे घर से भाग कर जाते हुए देखा। उसे कोई आश्चर्य नहीं हुआ, क्योंकि वह जानती थी कि लाले थोड़ा सनकी है। लेकिन फिर इसके बाद मिहाइलो आया; वह घर में थोड़ी देर रहा और फिर घर से सधे हुए लम्बे-लम्बे डग भरता चला गया। यद्यपि वह यह जानने की बहुत इच्छुक थी कि लाले क्यों आया था जिससे अनीका का झगड़ा था, और उसे मिहाइलो से क्या काम हो सकता है, जिससे इधर उसे कोई मतलब नहीं था, परन्तु येलेंका की हिम्मत नहीं पड़ी कि वह बग़ीचे से बिना बुलाये हुए जाये। फिर जब उसने एक बूढ़ी औरत का, जो घर-घर कपड़ा बेचती फिरती थी और अचानक जिसने अनीका को मरा हुआ देखा, रोना-चिल्लाना सुना तो वह दौड़ी हुई गयी।

किसानों का कहना था कि उन्होंने लाले को दोब्रुन के ऊपर उज़ित्से की सड़क पर देखा है जब कि आम तौर पर यह जाना जाता था कि मिहाइलो बिल्कुल दूसरी दिशा में सरायेवो सड़क पर चला गया है। जिस चाकू से अनीका की हत्या हुई वह कभी नहीं मिला।

हर चीज़ अस्पष्ट थी, चकरा देने वाली थी, जिसकी कोई व्याख्या नहीं हो सकती थी। हेदो साल्को को अस्पष्टता पसन्द थी क्योंकि उसका मतलब था कि वह ऐसी जाँच ख़त्म कर सकता है जिससे रहस्य का कुछ पता ही न चलता हो, किसी बात की पुष्टि ही न होती हो, और यदि सत्य मालूम भी हो जाए तो किसी को उसकी ज़रूरत नहीं है और न ही कोई जानना चाहता है।

क़ायममुक़ाम ने दो-तीन सप्ताह प्लेवल्ये में अपने सम्बन्धियों के साथ गुज़ारे और बाद में विशेग्राद लौट कर हमेशा की तरह अपने सुख और दूसरों के सुख के लिए रहने लगे। यह सच है कि अपने उद्यान में बैठे, हुक्का गुड़गुड़ाते और तेज़ी से बहती द्रिना नदी को निहारते हुए, वह कभी-कभी मैदान की इस मसीही स्त्री के बारे में सोचते। "चमत्कार है! कि इतने अपार सौन्दर्य का कुछ भी शेष नहीं रहा।" जो भी हो यही उनके सोचने का विषय था। लेकिन वह यह नहीं मानते

थे कि क़स्बे में कोई भी ऐसा है जिसके साथ इस पर विचार करने से कोई फ़ायदा हो।

शेष क़स्बा तेज़ी से सँभल रहा था ग्रौर ग्रपने रीति के ग्रनुसार ढलता जा रहा था। स्त्रियाँ ग्रधिक प्रसन्न थीं ग्रौर पुरुष ग्रधिक शान्त।

मास्टर पीटर फ़िलीपोवात्स के लड़के का ग्रपने बाप से झगड़ा ख़त्म हो गया था। वह ग्रपना सिर झुकाए रखता, ग्रचानक मोटा हो गया ग्रौर पतली लम्बी मूँछें रख लीं; घुटनों के नीचे ग्रपनी मुड़ी हुई टाँगों से वह सारे क़स्बे का लड़खड़ाते हुए चक्कर लगा ग्राता था। क्रिसमस के बाद उसकी शादी कर दी जाएगी।

क़स्बे के ग्रादमियों में मास्टर पीटर ही ऐसे थे जो ग्रपनी दूकान में पहले की ही तरह चिड़चिड़ाते गुस्से में बैठे रहते। मिहाइलो के लिए उन्हें गहरा दुःख था, एक विलक्षण नवयुवक जिसने ज़रूर ग्रपने भीतर कोई बड़ा दर्द छिपा रखा था। ग्रौर जब चार्शिया के ग्रादमी कहते कि भाग्य की बात है कि क़स्बे को ग्रनीका से छुटकारा मिल गया तो वह केवल ग्रपना हाथ हिलाते :

"वह ग्रपनी मौत से भी हममें ज़हर घोलेगी ग्रौर यह ज़हर सौ वर्ष तक रहेगा। मेरी बात याद रखना, उसका ज़हर हममें सौ साल तक रहेगा।"

लेकिन वही एक ग्रादमी ऐसे थे जो इस तरह बोलते थे।

यहाँ तक कि दोब्रुन के पुरोहित के घर तक में स्थिति बेहतर हो गयी थी। ग्रनीका की मृत्यु के बाद याक्षा ने सर्बिया ग्राना-जाना शुरू कर दिया लेकिन रास्ते में उसने सुना कि उसके बाप मृत्युशय्या पर है। यकायक उसका मन बदल गया। रात में दोब्रुन पहुँचकर वह सीधे ग्रपने पिता के कमरे में पहुँचा; पिता के हाथ चूमे ग्रौर उनसे क्षमा ग्रौर ग्राशीर्वाद पा लिया। उसके पिता ने उसे सीधे त्रनावत्सी भेज दिया जहाँ उसे तब तक प्रतीक्षा करनी थी जब तक तूफ़ान ख़त्म न हो जाये। कुछ ही दिनों बाद पुरोहित इतने ठीक हो गए कि विशेग्राद जा सकें। वहाँ उन्हें पता चला कि क़ायममुक़ाम का ग्रब याक्षा को सज़ा देने का कोई इरादा नहीं है। हेदो ने, ग्रपनी ग्रोर से, यह बहाना बना रखा था कि उसे नहीं मालूम किसने क़ायमुक़ाम पर गोली चलायी। हर चीज़ जैसे किसी गुप्त समझौते द्वारा भुला दी गयी ग्रौर हर चीज़ इस तरह ग्रपने-ग्राप तय हो रही थी जैसे कि कोई चमत्कार हो।

ग्रगली गर्मियों में याक्षा का विवाह हो गया ग्रौर उनके पिता ने जीते जी

उनको अपना उत्तराधिकारी बनाया और दोब्रुन के पल्ली पुरोहित के रूप में उनका अभिषेक कर दिया।

लाले की रोटियों की दूकान और क्नोयेलात्स का घर म्यूनिसिपैलिटी ने अपने कब्ज़े में ले लिया और उन्हें किराये पर चढ़ा दिया। अब वहाँ और लोग रहते, काम करते। बहुत कम लोगों को अंजा विदिनका के बच्चों की याद रह गई और मिहाइलो को भी लोग भुला रहे थे। केवल मिहाइलो के भूतपूर्व मालिक और साझेदार निकोला सुबोतीख उनकी याद करते। मिहाइलो के न रहने पर उनके लिए यह ज़रूरी हो गया कि वह विशेग्राद में आकर स्थायी रूप से रहें क्योंकि उनकी जगह कोई दूसरा दूकान में बैठने वाला नहीं था। वह कम यात्रा करते हैं और कम जुआ खेलते हैं। ऐसा लगता कि अब वह अपने को कम क्षय कर रहे थे। अब वह मास्टर पीटर फ़िलीपोवात्स से गपशप करते जो अक्सर शाम होते ही जहाँ ज़रा गर्मी कम होती उनके पास आ जाते। एक बड़े ख़ूबसूरत अहाते में चश्मे के ऊपर कामिनी के पेड़ों के पास जलबेंत की चटाई बिछाकर वह राकिया पीते और अक्सर मिहाइलो की बात करते।

"वह आदमी जैसे कीचड़ में गिर गया" मास्टर निकोला अपनी रुख़्त कखर-खराती आवाज़ में कहते, "और यदि वह मेरा अपना लड़का होता, तो मुझे लगता है, मुझे ज़्यादा अफ़सोस नहीं होता।"

और वह सैकड़ों बार उस रोटी और नमक को धन्य मानते जो उन्होंने और मिहाइलो ने साथ-साथ खायी थीं। उनकी आँखों की कोरों में एक अचल चिनगारी चमकती है, एक आँसू जो कभी ढुलका नहीं लेकिन हर बार जब भी मिहाइलो की बात हुई छलका है जैसे कि हमेशा वह वही आँसू रहा हो।

जेपा पुल

'ज़ेपा ब्रिज' नामक कहानी का अनुवाद

अनुवादक

भारतभूषण अग्रवाल

अपनी वज़ारत के चौथे साल में वज़ीरेआज़म यूसुफ़ अपनी एक ग़लती से गहरी साज़िश के शिकार हो गये और अपनी इज़्ज़त गँवा बैठे। यह कशमकश जाड़ों के शुरू से अगले वसन्त तक चलती रही और वह वसन्त भी ऐसा नागवार और ठंडा था कि गर्मियों के सूरज को किसी तरह चमकने ही न देता था। पर मई के महीने में यूसुफ़ मुक़दमा जीतकर क़ैद से रिहा हो गये। ज़िन्दगी फिर अपने पुराने ढर्रे पर आ गयी—शानदार, स्थिर और एकतान। पर जाड़ों के उन चन्द महीनों ने, जब ज़िन्दगी-मौत का, इज़्ज़त-बेइज़्ज़ती का फ़ासला चाकू की धार की बराबर ही रह गयी थी, जीत के बावजूद वज़ीर को कुछ संजीदा और गुमसुम बना दिया। जिन लोगों ने बहुत दुनिया देखी होती है और तकलीफ़ उठायी होती है, उनमें कुछ ऐसी चीज़ आ जाती है जिसे वे भीतर ही भीतर संजोये रहते हैं और जो कभी अनजाने ही उनकी निगाह, चाल-ढाल या बातचीत में प्रकट हो जाती है। क़ैद और बेइज़्ज़ती की सूनी घड़ियों में वज़ीर को अपने वतन और अपने खानदान की बड़ी याद आती रही, क्योंकि सपनों के चूर-चूर हो जाने पर और मुसीबतों से घिर जाने पर इन्सान बीते दिनों की बातें सोचने लगता है। उन्हें अपने मां-बाप की याद आयी, जो दोनों के दोनों तभी गुज़र गये थे जब वज़ीर अभी शाही अस्तबल के नायब थे। निगहबान उनके मज़ार के चारों ओर उन्होंने संगमरमर का बाड़ा खिचवा दिया था। और हाँ, उन्हें बोस्निया और ज़ेपा गाँव की भी याद आयी जहाँ से वह नौ बरस की कच्ची उम्र में ही बुला लिये गये थे।

कितना अच्छा था अपनी मुसीबत के बीच अपने दूर वतन और कशमकश में

पड़े गाँव ज़ेपा को याद करना, जिसके घर-घर में कुस्तुन्तुनिया में कमायी हुई उनकी शोहरत और कामयाबी की चर्चा होती थी और जहाँ किसी को इस बात का गुमान तक न था कि इसका कोई दूसरा पहलू भी है या कि उन्हें यह कामयाबी किस क़ीमत पर मिली थी।

उन्हीं गर्मियों में उन्हें ऐसे कुछ लोगों से बातचीत करने का मौक़ा मिला जो बोस्निया से आये थे। उन्होंने उनसे बहुत-सी पूछताछ की, और वे लोग एक-एक बात का जवाब देते रहे। उन्होंने बताया कि किस तरह बग़ावत और लड़ाइयों के बाद गड़बड़ी, भुखमरी और बीमारियों का दौर आया था। यह सुनते ही उन्होंने ज़ेपा में रहने वाले अपने बिरादरी के लोगों के लिए अच्छी-खासी मदद पहुँचाने का हुक्म दे दिया साथ ही उन्होंने कहा कि इस बात की भी जाँच-पड़ताल होनी चाहिए कि वहाँ किस तरह की सरकारी इमारतों की सबसे ज़्यादा ज़रूरत है। उन्हें मालूम हुआ कि चार सेतकिच मकान अब भी खड़े हैं, पर गाँव में इनके सबसे ज़्यादा मालदार होने के बावजूद, गाँव और ज़िला दोनों का बुरा हाल है। मस्जिद टूट-फूट कर गिर गयी है, और सबसे बुरी बात तो यह कि नदी पर कोई पुल नहीं है।

वहीं पहाड़ी से सटा हुआ बसा ज़ेपा गाँव, ठीक जहाँ ज़ेपा नदी द्रीना में मिलती है, विज़ेग्राद जाने वाली एक मात्र सड़क संगम से कोई पचास क़दम ऊपर गाँव से गुजरती है। लकड़ी का कितना ही मजबूत पुल क्यों न बना दो, बाढ़ हर साल उसे बहा ही ले जाती है। या तो ज़ेपा सभी पहाड़ी नालों की तरह एकाएक तेजी से चढ़ती और तख़्तों को ढीला करके बहा ले जाती, या द्रीना में बाढ़ आ जाती जिससे ज़ेपा का पानी रुद्ध होकर चढ़ता और समूचे पुल को नींव पर से ऐसे उठा ले जाता मानो वह कभी रहा ही न हो। या फिर जाड़ों में तख़्तों पर बर्फ़ जम जाती और घोड़े और आदमी आफ़त में पड़ जाते। संक्षेप में यह कि गाँव के लोगों की सबसे बड़ी सेवा कोई यही कर सकता कि उनके लिए एक टिकाऊ पुल बनवा दे।

वज़ीर ने ज़ेपा की मस्जिद के लिए छह कालीन भेंट किये और उसके सामने एक तीन टोंटियों वाला फ़व्वारा बनवाने के लिए काफ़ी रक़म दान दी। पर साथ ही उन्होंने एक पुल बनवाने का निश्चय किया।

उन दिनों कुस्तुन्तुनिया में इटली का एक कारीगर रहता था जिसने उस शहर

के आसपास के इलाक़े में कई पुल बनाये थे और बड़ा प्रसिद्ध हो गया था। वज़ीर के ख़ज़ानची ने उसे बुलवाया और दो प्यादों के साथ बोस्निया भिजवा दिया। प्यादे उसके साथ विज़ेग्राद पहुँचे, और पके बालों और झुकी कमर वाले उस कारीगर की जिसके चेहरे पर अब भी जवानी की लाली थी, कार्रवाई की निगरानी करते रहे। कारीगर ने पुल के विशाल पत्थरों का मुआयना किया और उन्हें ठोक कर देखा। चूने के टुकड़े अपनी उँगलियों से मसले, उन्हें जीभ पर रख कर जाँचा, और तख़्तों की नाप-जोख की। उसके बाद वह कुछ दिनों के लिए बंजा चला गया जहाँ चूना पत्थर की खदान थी; विज़ेग्राद पुल के लिए पत्थर यहीं से लाया गया था। फिर उसने वहाँ मज़दूर लगवा कर उनसे खदान साफ़ करवाया, क्योंकि अब उसमें मिट्टी भर गयी थी और चारों तरफ़ झाड़-झंखाड़ उग आये थे। खदान की सफ़ाई करते-करते मज़दूर आखिर पत्थर की एक गहरी और लम्बी-चौड़ी पर्त तक पहुँचे जो विज़ेग्राद पुल में लगे पत्थर से ज़्यादा सफ़ेद और पुख़्ता था। अब वह खदान से चलकर द्रीना के किनारे-किनारे ज़ेपा तक गया जहाँ पत्थर की ढुलाई के लिए उसने घाट चुना। इतना काम हो जाने पर वज़ीर के कारिन्दों में से एक तख़मीनों और नक़्शों के साथ कुस्तुन्तुनिया लौट गया।

कारीगर उसके लौट आने की बाट देखता वहीं पड़ा रहा पर उसने न तो विज़ेग्राद में रहना मंज़ूर किया न ज़ेपा के किनारे के ईसाई घरों में। वरन् उसने वज़ीर के आदमी और विज़ेग्राद के मुंशी की मदद से अपने लिए उस पहाड़ी पर एक काठघर बना लिया जो द्रीना और ज़ेपा के संगम पर छायी हुई थी। उसमें रहता हुआ वह अपना खाना आप पकाता; किसानों से अंडे, मलाई, पनीर, प्याज़ और मेवा ख़रीदता। कहा जाता था कि मांस वह कभी नहीं ख़रीदता था। सुबह से शाम तक बैठा-बैठा वह पत्थर काटता रहता या नक़्शे बनाता या तरह-तरह के पत्थरों की जाँच करता या ज़ेपा नदी की धार और गति की पड़ताल करता रहता। आखिरकार कुस्तुन्तुनिया से वज़ीर का परवाना और तख़मीने की एक तिहाई रक़म लेकर कारिन्दा वापस आया और काम शुरू हुआ। पर जो अजीबो-ग़रीब कार्रवाई होने लगी लोग उसका सिर-पैर कुछ भी नहीं समझ पा रहे थे, क्योंकि जो चीज़ यहाँ खड़ी हो रही थी वह पुल जैसी बिल्कुल नहीं दीखती थी। पहले तो नदी की तह में चीड़ के भारी-भारी लट्ठे तिरछे गाड़ दिये गये; फिर इनके बीच खम्भों की दो क़तारें खड़ी की गयीं और उन्हें तरतों से कस कर मिट्टी

से लीप दिया गया। यों एक तरह का बाँध बन गया। इससे नदी का रुख़ बदल गया और नदी का आधा पाट सूख गया। यह काम अभी पूरा हुआ ही था कि ऊपर पहाड़ों पर बादल फट पड़े, ज़ेपा गंदली हो गयी और तेजी से चढ़ने लगी। उस रात बने-बनाये बाँध के बीच में दरार पड़ गयी, और पानी हालाँकि अगले दिन सुबह तक फिर उतर गया, पर तब तक पुश्ता टूट चुका था, खम्भे उखड़ गये थे और लट्ठे अपनी जगह से हट गये थे। आनन-फानन मज़दूरों और गाँव वालों में चर्चा होने लगी कि नदी अपनी छाती पर पुल कभी नहीं बँधने देगी। पर तीन दिन बाद कारीगर ने नये लट्ठे और भी गहरे जुड़वाये और बाक़ी के बड़े-बड़े शहतीर फिर से जगह पर जमा कर हमवार करा दिये। नदी की पथरीली तह की गहराइयाँ एक बार फिर मोगरों और काम में जुटे मजदूरों की लय-बद्ध थापों और पुकारों से गूँजने लग गयीं।

जब सारी तैयारी हो गयी और बंजा से पत्थर भी ढुल कर आ गया तब कहीं हर्जेगोविनी और दालमाती राज-मिस्त्री आये। उन्होंने अपने लिए झोंपड़ियाँ डाल लीं और उनके बाहर बैठ कर पत्थर तराशने में लग गये। पत्थर के चूरे में सने वे ऐसे दीखने लगे मानो आटा पिसाई में लगे हों। मैमार लगातार उनके बीच चक्कर काटता और झुक-झुक कर उनकी कारीगरी को पीतल के गोनिये और सीसे के हरी डोर वाले साहुल से नापता रहता। नदी के दोनों पथरीले कगारों की कटाई पूरी होते न होते पैसा चुक गया और मज़दूर-मिस्त्री बेचैन होकर बड़बड़ाने लगे कि पुल तो बन चुका। कुस्तुन्तुनिया से आने वाले मुसाफ़िर वज़ीर के बदलने की अफ़वाहें लाये। वज़ीर के हाल-चाल का तो किसी को पता न था, पर उन तक पहुँचना दिन-दिन मुश्किल होता जा रहा था और वह उन कामों को भी भूल रहे थे जो ख़ास कुस्तुन्तुनिया में ही हो रहे थे। फिर भी कुछ ही दिनों बाद वज़ीर का हरकारा बाक़ी रक़म ले कर आ पहुँचा, और काम फिर से चालू हुआ।

सन्त दिमित्रिये के पर्व के पंद्रह दिन पहले बाँध के ज़रा ऊपर से तख़्तों पर ज़ेपा पार करने वाले लोगों ने पहली बार देखा कि नदी के गहरे धूसर सलेटी किनारों से चिकने पत्थर की एक दीवार उठ रही है जिस पर मकड़ी के जाले की तरह पाड़ों की जाली लगी है। उस दिन से वह रोज बढ़ती गयी। पर इसके फ़ौरन बाद ही पहला पाला पड़ा और काम फिर रुक गया। राज-मज़दूर जाड़ा बिताने

अपने-अपने घर चले गये, और मैमार अपनी झोंपड़ी में दुबक कर बैठ गया। वह शायद ही कभी बाहर निकलता, हरदम नक़्शों और हिसाब-किताब के खातों पर जुटा रहता। बाहर उसका एकमात्र काम था बीच-बीच में अब तक के काम की जाँच करना। वसन्त ऋतु के ज़रा पहले जब बर्फ़ चटखने लगी तो वह परेशान होकर बाँध का और पाड़ों का मुआयना करता चक्कर लगाने लगा। कभी-कभी वह हाथ में टार्च लिये रात में भी गश्त लगाता।

सन्त जार्ज के त्योहार के कुछ पहले मज़दूर लौट आये और फिर से काम का लग्गा लगा। गर्मियों के ठीक बीचों-बीच काम पूरा हो गया। बड़ी धूमधाम से पाड़ें हटायी गयीं और लट्ठों और तख़्तों के जाल में से पुल प्रकट हुआ—कगार से कगार तक एक सफ़ेद इकहरी मेहराब।

उस मनहूस सुनसान में और चाहे जिसकी आशा की जा सकती हो, पर ऐसी अद्भुत रचना की नहीं की जा सकती थी। पुल क्या था मानो नदी के दोनों किनारों से फेनिल जल के फ़ुहारे छूट कर आकाश में धनुष-सा बनाते हुए मिले हों और फिर अधर में टँके रह गये हों। दूर, क्षितिज के नीचे परास्त ज़ेपा पछाड़ें खा रही थी। बड़ी सावधानी से रूपायित उस पतली मेहराब को देखने के आदी हो जाने में लोगों को वक़्त लगा। ऐसा लगता था मानो वह उड़ती हुई इन मरुवा और भाँग की बूटियों से लिपटी तीखी गहरी चट्टानों पर पल भर के लिए टिक गयी हो और किसी वक़्त भी फिर उड़कर ओझल हो जा सकती हो।

पुल को देखने के लिए आस-पास के गाँव से लोग उमड़ने लगे। विज़ेग्राद और रोगातिचा के क़स्बों से भी लोग आये। वे पुल को सराहते और शिकायत-भरे स्वर में कहते—"हमारे क़स्बे को छोड़ कर पुल बनाने के लिए यही ऊबड़-खाबड़ और सुनसान जगह रह गयी थी।"

जवाब में ज़ेपा के लोग पलट कर कहते—"पहले कोई वज़ीर तो पैदा करो।" और पत्थर की दीवार को थपथपाने लगते। दीवार इतनी सीधी थी और उसकी तराश इतनी साफ़-चिकनी थी, मानो वह पत्थर नहीं, पनीर काट कर बनायी गयी हो।

मुसाफ़िरों का पहला दल अभी पुल पार करके अचरज में आँखें फाड़े खड़ा ही था कि मैमार ने अपने आदमियों को हिसाब चुकाया, अपने औज़ार और काग़ज़ात बड़े-बड़े सफ़री सन्दूक़ों में भर कर लादे और वज़ीर के नौकरों के साथ

कुस्तुन्तुनिया को रवाना हो गया।

अब गाँव-गाँव में जगह-जगह मैमार की चर्चा फैल गयी। सलीम जिप्सी, जो अपने घोड़े पर विज़ेग्राद से मैमार का असबाब लाद कर लाया था और जिस अकेले को उसकी झोंपड़ी के भीतर जाने का मौक़ा मिला था, अब दूकानों पर बैठा सौवीं बार पुल के बारे में अपनी कहानी सुना रहा था—

"सचमुच, वह आदमी औरों जैसा न था। जाड़ों में जब काम खड़ा रहता तब मैं दस-दस, पन्द्रह-पन्द्रह दिनों तक उसके पास न जा पाता। फिर जब कभी मैं उसके यहाँ जाता तो देखता कि सारी चीज़ें ठीक वैसी की वैसी बिखरी पड़ी हैं। अपनी ठिठुरती झोंपड़ी में वह रीछ की खाल का टोपा पहने, बग़लों तक कम्बल लपेटे बैठा मिलता : सिर्फ़ उसके नीले पड़े हुए हाथ बाहर दीखते। वह उसी तरह अपने उन पत्थरों को छीलता दीखता; छीलना और लिखना, फिर छीलना और लिखना—बस, और कुछ नहीं। मैं जब कुछ सामान वहाँ उतारने जाता, तो वह अपनी भूरी आँखों से मुझे ताकता और उसकी भौंहें तन जातीं मानो मुझे खा जाएगा। मुँह से एक लफ़्ज तक न निकालता। मैंने ऐसा आदमी नहीं देखा। और जानते हो, भाई जान, यों जान खपा कर एक साल और छह महीने में सारा काम पूरा करते ही वह इस्ताम्बूल को रवाना हो गया। हमने उसे नाव में बिठा कर पार पहुँचाया और वह लपक कर अपने घोड़े पर यह जा, वह जा। आप क्या समझते हैं उसने पीछे मुड़ कर हमारी या पुल की तरफ़ देखा भी? जी नहीं।"

दूकानदार उस मैमार की और उसके रहन-सहन की बातें सुनते अघाते न थे। पर जितना ही वे सुनते जाते, उतना ही उन्हें अचरज होता, और उतना ही वे अफ़सोस करते कि जब यह शख़्स विज़ेग्राद की गलियों में चक्कर काटता फिरता था तब उसे पास से देखने-समझने से वे क्यों चूक गये।

उधर मैमार सफ़र करता जा रहा था। पर जब कुस्तुन्तुनिया सिर्फ़ दो दिन दूर रह गया तब उसे प्लेग ने धर दबाया। जब वह शहर में दाख़िल हुआ तो उसका बदन बुख़ार से जल रहा था और उसे घोड़े पर बैठे रहने में भी कठिनाई हो रही थी। वह सीधा इतालवी फ्राँसिस्कन मठ के अस्पताल में गया और वहीं दूसरे दिन तक़रीबन उसी समय एक बिरादर की गोद में उसने दम तोड़ दिया।

अगले दिन लोगों ने वज़ीर को मैमार की मौत की ख़बर की और पुल के नक़्शे और बचे-खुचे काग़ज़-पत्र उनके हवाले कर दिये। मैमार अपने पावने का

सिर्फ़ चौथाई हिस्सा ही ले पाया था। अपने पीछे वह न क़र्ज़ छोड़ गया था न पूँजी, न वसीयत न वारिस। काफ़ी सोच-विचार के बाद वज़ीर ने हुक्म दिया कि उसके पावने के तीन चौथाई में से एक हिस्सा अस्पताल को दे दिया जाये और दो हिस्सों से ग़रीबों के लिए सदावर्त खोल दिया जाये।

उतरती गर्मियों की खामोश सुबह थी। वज़ीर अपना यह हुक्म सुना चुके थे कि कुस्तुन्तुनिया में बसे हुए एक बोस्नियाई कवि की दरख़्वास्त उनके सामने पेश की गयी। यह जवान और सुशिक्षित कवि सुन्दर छन्द रचने में माहिर था और वज़ीर कभी-कभार उसकी मदद कर दिया करते थे या इसे कुछ भेंट देते रहते थे। उसने अर्ज़ी में लिखा था, 'सुना है, आपने बोस्निया में एक पुल बनवाया है। उम्मीद है कि और इमारतों की तरह आप इस पर भी प्रशस्ति-लेख खुदवा देंगे ताकि लोगों को पुल बनाने वाले का नाम और पुल के बनने की तारीख़ मालूम हो सके। इस काम के लिए मैं ख़िदमत पेश करता हूँ। मुझे उम्मीद है कि मैंने बड़ी मेहनत से जो मसविदा तैयार किया है और जो मैं हुज़ूर के पास इस अर्ज़ी के साथ भेज रहा हूँ उसे हुज़ूर क़ुबूल करने की इनायत फ़रमायेंगे।' पायेदार काग़ज़ पर लाल और सुनहरे अक्षरों में ये पंक्तियाँ बड़ी ख़ूबसूरती से लिखी हुई थीं :

उत्तम शासन और भव्य शिल्प-कौशल
सहयोग से
इस आलीशान पुल का निर्माण हुआ
ताकि लोगों को सुख मिले
और इहलोक-परलोक में
यूसुफ़ की कीर्ति का विस्तार हो।

इसी के नीचे दो असमान हिस्सों में बँटी हुई वज़ीर की अंडाकार मुहर थी। बड़े हिस्से में लिखा था : 'अल्लाताला का सच्चा ख़ादिम, यूसुफ़ इब्राहीम,' और छोटे में सूत्र: 'ख़ामोशी में ही हिफ़ाजत है।'

वज़ीर दरख़्वास्त सामने रखे बहुत देर तक बैठे रहे : एक हाथ इस इबारत पर था और दूसरा मैमार के नक़्शों और खातों पर। ऐसे मामलों का फ़ैसला करने में इधर उन्हें और भी ज़्यादा वक़्त लगने लगा था।

उनकी थोड़े दिन की तनज़्ज़ुली और क़ैद के बाद अब दो गर्मियाँ बीत चुकी थीं। दोबारा वज़ारत मिलने पर शुरू में उन्हें अपने भीतर कोई परिवर्तन नहीं दीखा।

वह अपनी शक्तियों के शिखर पर थे, उस आयु में जब लोग जीवन का भरपूर मोल जानते-भोगते हैं। उन्होंने अपने सारे विरोधियों को पछाड़ दिया था और अब उनकी ताक़त पहले से भी ज़्यादा हो गयी थी। कितना नीचे वह गिरे थे, यह जान कर ही वह पहचानते थे कि अब फिर उनका इक़बाल कितना है। पर ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, भूलने की बजाय अपनी क़ैद के दिनों को वह अधिकाधिक याद करने लगे। यहाँ तक कि वह इन विचारों को दबा देने में कभी सफल भी हो जाते तो सपनों पर उनका बस नहीं चलता था, सपनों में उन्हें क़ैद की बातें अक्सर दिखाई देतीं और इसकी यातना किसी भी नामहीन डर की तरह और कठोर यथार्थ बन कर उनके जीवन में कटुता का विष घोल जाती।

छोटी-छोटी बातों पर वह बिगड़ उठते। पहले जो चीज़ें उन्हें दिखाई भी न देती थीं, वे ही अब उन्हें परेशान करने लगीं। उन्होंने अपने महल में सब जगह से मख़मल हटवा कर सादा नम्दा लगाने का हुक्म दिया जिससे कि गुदगुदाहट न हो। सीप से उन्हें बड़ी वितृष्णा हो गयी, क्योंकि सीप उन्हें ठंडी वीरानगी और सूनेपन की याद दिलाता था। अगर वह कभी सीप छू क्या, देख भी लेते तो उनका मुँह किरकिरा जाता और सारा बदन सिहर उठता। इसलिए सीप की बनी या उससे अलंकृत हर चीज़ महल से हटवा दी गयी।

वह हर बात में शक करने लग गये—वह शक छिपा और गुपचुप होने पर भी गहरा था। न जाने क्यों उनके मन में यह बात बैठ गयी थी कि इन्सान का कोई भी काम या कोई भी बात अनिष्टकर हो सकती है, और वह जो कुछ भी सुनते, देखते, कहते या सोचते सब में उन्हें यह संभावना सताने लगती। जीत कर भी वज़ीर ज़िन्दगी से खौफ़ खाने लग गये। इस प्रकार अनजाने ही वह उस हाल में पहुँच गये जो मृत्यु का पहला चरण होती है। जब लोग चीज़ों की बजाय उनकी छाया से ज्यादा शंकित होने लगते हैं।

इस कष्ट से वह भीतर ही भीतर घुल रहे थे, पर किसी और को अपने मन की बात बताने या उससे सलाह लेने का ख़याल उन्हें सपने में भी न आता था। यह रोग किसी को भीतर से खोखला कर के सतह पर प्रकट होता है, और लोग उसका सही निदान नहीं कर पाते, वे उसे बस मृत्यु का नाम दे देते हैं। वे क्या जानें कि कैसे-कैसे बड़े और बली व्यक्तित्व इस रोग में घुल कर भीतर ही भीतर ख़त्म हो जाते हैं।

उस दिन सवेरे भी हमेशा की तरह वज़ीर नींद न ग्राने के कारण थके हुए थे, पर ऊपर से शान्त ग्रौर प्रकृतिस्थ थे। उनकी पलकें भारी थीं, उनके गाल सुबह की ताज़ी हवा के कारण ठंडे थे। उन्हें ग्रचानक उस मैमार का ख़्याल हो ग्राया जो परलोक सिधार चुका था, ग्रौर उन ग़रीबों का जो उसकी कमाई खायेंगे। उन्हें बोस्निया का ख़्याल हो ग्राया। सुदूर, पहाड़ी ग्रौर ग्रँधियारे बोस्निया का—न जाने क्यों उनकी कल्पना में बोस्निया हमेशा ग्रँधियारा ही ग्राता था—वह बोस्निया जिसे इस्लाम की रोशनी ग्रंशतः ही ग्रालोकित कर पायी थी, जहाँ की बेरौनक़ ग्रौर बेमुरव्वत जिन्दगी बड़ी ग़रीब, बाँझ ग्रौर रूखी थी। न जाने ग्रौर भी कितने ऐसे इलाक़े होंगे जिन पर ख़ुदा का ज़रे-करम नहीं है, न जाने कितने ऐसे दरिया हैं, जिन पर न पुल है न घाट। न जाने कितनी जगहें हैं जहाँ मीठा पानी नहीं है, कितनी मस्जिदें हैं जिनमें न ख़ूबसूरती है न सजावट।

इस तरह उनके मन के सामने एक ऐसी दुनिया का चित्र खिंच गया जो तरह-तरह की ज़रूरतों, ग्रभावों ग्रौर ख़तरों से भरी थी।

उनके बाग़ के कुंज की नन्हीं-नन्हीं खपरैलों पर धूप बरस रही थी। वज़ीर ने फिर एक बार कवि की पंक्तियों पर नज़र डाली, फिर धीरे-धीरे ग्रपना हाथ उठाया ग्रौर उन्हें काट दिया, धीरे-धीरे फिर ग्रपना हाथ उठाया ग्रौर कवि के शब्द दोबारा काट दिये। क्षण भर रुक कर उन्होंने मुहर के उस हिस्से पर भी एक लकीर खींच दी जिसमें उनका नाम था। बच गया सिर्फ़ उसका सूत्रः ख़ामोशी में ही हिफ़ाज़त है। कुछ देर तक वह उस पर भी सिर झुकाये बैठे रहे, तब एक बार फिर उन्होंने हाथ उठाया ग्रौर पक्की क़लम से वे शब्द भी काट दिये।

इस तरह ज़ेपा का पुल नाम या परिचय के बिना ही रह गया। सुदूर बोस्निया में वह धूप में चमकता ग्रौर चाँदनी में झिलमिलाता रहा ग्रौर हैवान-इन्सान सब उस पर चलते रहे। धीरे-धीरे करके खोदी हुई मिट्टी का ढेर ग़ायब हो गया, पाड़ों ग्रौर इमारती सामान का बचा-खुचा मलबा था तो लोग उठा कर ले गये या नदी बहा ले गयी। राज-मजदूरों के काम-धाम के रहे-सहे निशान मेंह ने पोंछ डाले। जो हो, गँवई-गाँव का वह इलाक़ा उस पुल को कभी नहीं ग्रपना पाया, न वह पुल ही गँवई-गाँव को ग्रपना सका। दूर से उसकी तनी हुई इकलौती चौड़ी सफ़ेद मेहराब हमेशा ग्रलग ग्रौर ग्रकेली दिखाई देती रहती ग्रौर मुसाफ़िरों को उसी तरह ग्रचरज में डाल देती जैसे चट्टानी

बियाबान में कोई बेमौक़े का बेढब ख़याल।

सबसे पहले इस कहानी के लेखक को ही यह सूझा कि इस पुल के आरंभ का पता लगाया जाए। क्योंकि एक बार ऐसा हुआ कि पहाड़ों से थक कर लौटते हुए एक शाम वह उसकी मुंडेर के पत्थरों के सहारे बैठा। मौसम ऐसा था कि दिन तो गर्म होते थे पर रात में बड़ी सर्दी पड़ती थी। पत्थर पर अपनी पीठ टिकाए वह अब भी उनमें दिन की गर्मी महसूस कर रहा था। उसे पसीना आ रहा था लेकिन द्रीना पर बहकर आने वाली हवा अभी से शीतल लग रही थी। तराशे हुए गर्म पत्थरों का वह स्पर्श सुखकर भी था और अनोखा भी। उन क्षणों में लेखक और वह पुल दोनों एक-दूसरे को समझ गये और तभी उसने उस पुल का वृत्तान्त लिपिबद्ध कर डालने का संकल्प कर लिया।

वज़ीर का फ़ीला

'दि वज़ीर्स एलीफ़ैंट' नामक उपन्यास का अनुवाद

अनुवादक

सच्चिदानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय'

बोस्निया के शहर और क़स्बे कहानियों से भरे पड़े हैं। प्रदेश का सच्चा और अलिखित इतिहास, गुज़रे हुए लोगों और पीढ़ियों का जीवन इन क़िस्सों में अजीब घटनाओं के भेस में और अक्सर नक़ली नामों के मुखौटे से छिपा हुआ रहता है। यही तुर्की कहावत के वे 'पूरबी झूठ' हैं जो 'सच्चाई से अधिक सच्चे' होते हैं।

इन कहानियों का एक अजीब गोपन जीवन होता है : बोस्निया की ट्राउट मछली की तरह। बोस्निया के निर्झर-नालों में एक विशेष प्रकार की ट्राउट मछली होती है जिसकी काली पीठ पर दो या तीन बड़ी-बड़ी चित्तियाँ होती हैं। यह असाधारण रूप से भुक्खड़, तेज़ और चालाक मछली होती है। कुशल मछेरे की बंसी के काँटे की ओर वह अंधी हो कर दौड़ती है; लेकिन उस पानी या उस प्रकार की मछली से जो लोग परिचित नहीं है उनकी पकड़ में वह नहीं आती—बल्कि उन्हें दीखती भी नहीं। अजनबी अनंत काल तक हाथ में वंसी थामे इन नालों में घुटने-घुटने पानी में भटकते रह सकते हैं और कुछ भी उनकी पकड़ में नहीं आयेगा। बल्कि यहाँ तक हो सकता है कि उन्हें पानी में चट्टान से चट्टान तक दौड़ने वाली एक काली बिजली की-सी रेखा के अलावा कुछ न दीखे—ऐसी रेखा के. जो मानो मछली के सिवा और कुछ भी हो सकती है।

ये कहानियाँ भी वैसी ही हैं। यह बिल्कुल संभव है कि आप बोस्निया के किसी क़स्बे में महीनों रह जायें और इनमें से कोई भी कहानी सच्चाई से या पूरी सुनायी गयी सुनने को न मिले; दूसरी ओर यह भी हो सकता है कि अकस्मात् कभी कहीं एक रात ही रहना पड़े और उसी में ऐसी अचरजभरी दो-

तीन कहानियाँ सुनने को मिल जायें जिनसे प्रदेश का और उसके लोगों का मानो सजीव चित्र आँखों के सामने आ जाये।

त्राब्निक के लोग बोस्निया भर में सबसे सयाने हैं और सबसे ज़्यादा ऐसे क़िस्से जानते हैं। लेकिन अजनबी को वे ऐसे क़िस्से कम ही सुनाते हैं—ठीक वैसे ही, जैसे अमीर लोग दान में धन देना नहीं चाहते। उनका एक-एक क़िस्सा दूसरों की तीन-तीन कहानियों के बराबर होता है, या कम से कम उनकी ऐसी ही राय है।

वज़ीर साहब के फ़ीले की कहानी भी ऐसी ही एक कहानी है।

त्राब्निक में यह ख़बर पहुँची कि उनके वज़ीर मुहम्मद सज़दी पाशा का तबादला होने वाला है, तब त्राब्निकियों को चिंता हुई जो अकारण नहीं थी। सज़दी पाशा मौजी और बेफ़िक्र आदमी थे; स्वभाव से ही लापरवाह और काम-काज में ढीले होने के कारण वह इतने अच्छे वज़ीर थे कि त्राब्निक के, बल्कि बोस्निया भर के, लोगों को उनकी मौजूदगी का एहसास तक न होता था। सयाने और समझदार लोग काफ़ी देर से इसी बात को लेकर चिंतित थे, क्योंकि उन्हें लगता था कि ऐसी परिस्थिति देर तक नहीं बनी रह सकती। तबादले की ख़बर से वे सचमुच परेशान हो गये, जिसके दो कारण थे : एक तो यह कि अच्छा वज़ीर विदा ले रहा था, दूसरे यह कि उसकी जगह न मालूम कैसा आदमी आ जायेगा। इसलिए वे सब नये हाकिम के बारे में जल्दी से जल्दी अधिक से अधिक जानकारियाँ पा लेने की कोशिश में जुट गये।

परदेसी लोगों को अक्सर अचंभा होता था कि त्राब्निकी लोग हर नये वज़ीर के बारे में इतनी जांच-पड़ताल क्यों करते हैं। कुछ यह समझ कर उनका मज़ाक भी उड़ाते थे कि उनके कौतूहल का कारण उनका अहंकार है या उनकी ख़ाहम-ख़ाह सरकारी मामलों में उलझ जाने की आदत। लेकिन असल में त्राब्निकी जो हर नये वज़ीर की बारीक से बारीक शारीरिक या मानसिक विशेषता के, उसकी हर आदत और हर सनक के बारे में पूछ-ताछ करते थे, उमका कारण न कौतूहल था न अहंकार। बल्कि लंबा अनुभव और भारी आवश्यकता ही उसकी जड़ में थी।

वज़ीरों की लंबी परंपरा में सभी तरह के लोग रहे थे, समझदार और दयावान, लापरवाह और उदासीन, विनोदशील और दुर्व्यसनी। लेकिन कुछ भारी दुष्ट भी रहे—ऐसे दुष्ट, जिनके बारे में बाद में जो क़िस्से चलते थे उनमें

सबसे बड़ी बुराइयों का महत्त्वपूर्ण ब्यौरा छिपा लिया जाता था, कुछ वैसे ही डर के भाव से जिससे अंधविश्वासी लोग महामारी या बुरी चीज़ों का नाम नहीं लेते। दुष्ट स्वभाव का वज़ीर यों तो सारे बोस्निया के लिए भार होता था, लेकिन राजधानी होने के कारण त्राब्निक पर उसका बोझ विशेष हो जाता था। क्योंकि बोस्निया में दूसरी जगहों में तो उसका शासन दूर परदेसी का शासन होता था लेकिन यहाँ त्राब्निक में उसका शासन ख़ास अपना शासन होता था; उसके अपने हाथ का, उसके अनजाने स्वभाव का, उसके अमले का, उसके नौकर-चाकरों का।

त्राब्निकी लोग अपने होने वाले वज़ीर के बारे में छोटी से छोटी बात जानने के लिए भी हर किसी से सवाल करते थे, पैसा ख़र्च करते थे, लोगों को शराब पिलाते थे। कभी-कभी वह ऐसे लोगों को अच्छी-खासी रक़म दे देते थे जिनसे बहुत-सी जानकारी मिलने की संभावना की जाती थी, पर जो अंत में झूठे और मक्कार सिद्ध होते थे। फिर भी त्राब्निकियों को यह नहीं लगता था कि उनका पैसा बेकार गया, क्योंकि कभी-कभी लोगों के बारे में प्रचलित झूठ से भी उतना पता चल जाता है जितना सच से। होशियार और तजुर्बे होने के कारण त्राब्निकी लोग झूठ के भूसे में से भी सच्चाई की ऐसी कनियाँ निकाल लेते थे जिनका पता खुद झूठ का प्रचार करने वालों को नहीं रहता था। और कुछ नहीं तो झूठ से इतना फ़ायदा तो होता था कि उस बिंदु से आरंभ करके नयी अटकलें लगायी जा सकती थीं; और एक बार सच का पता लग जाने पर झूठ को एक तरफ़ कर देने में क्या देर लगती थी?

पुराने त्राब्निकियों में कहावत है कि बोस्निया में तीन शहर हैं जिनमें सयाने बसते हैं। यह अकारण भी नहीं है। त्राब्निकी इस कहावत के साथ फ़ौरन इतना और जोड़ देते हैं कि तीनों शहरों में सबसे सयाना त्राब्निक है, लेकिन यह बताना उन्हें कभी याद नहीं रहता कि बाक़ी दो शहर कौन-से हैं।

इस बार भी त्राब्निकियों ने नये वज़ीर के बारे में बहुत-सी जानकारी हासिल कर ली।

एक तो उन्होंने यही जाना कि उसका नाम था सैयद अली जलालुद्दीन पाशा।

उसका जन्म अद्रियानोपल में हुआ और वह पढ़ा-लिखा था; पढ़ाई पूरी करके वह अद्रियानोपल में इमाम बनाया जाने वाला था कि एकाएक शहर छोड़ कर

इस्तांबूल चला गया और सैनिक प्रशासन में भर्ती हो गया। इस्तांबूल में ही चोरों और बेईमान व्यापारियों को होशियारी से पकड़ने और कड़ी से कड़ी सजाएं देने में वह बहुत प्रसिद्ध हो गया। आगे क़िस्सा यों सुनाया जाता था कि एक बार उसने एक यहूदी को सैनिक जहाज़ी अड्डे को मिलावटी और ख़राब अलकतरा बेचते हुए पकड़ा। जाँच-पड़ताल करके और सेना के दो विशेषज्ञ पूर्ति-अधिकारियों की राय लेकर उसने हुकुम दिया कि यहूदी को उसी अलकतरे में डुबा दिया जाये। लेकिन वास्तव में घटना यों नहीं हुई थी। यह सच था कि यहूदी का धोखा पकड़ा गया था और उसे एक जाँच अदालत के सामने पेश किया गया था जो मौक़े पर अलकतरे की परीक्षा करने वाली थी। अलकतरे से भरे हुए लकड़ी के नाँद के आसपास दौड़-धूप करता हुआ व्यापारी अपनी निर्दोषता की दुहाई दे रहा था और हाकिम जलालुद्दीन एफ़ेंदी निश्चल बैठा हुआ उसे एकटक घूर रहा था। जलालुद्दीन की नज़र से बचना या स्वयं उधर से नज़र हटाना असंभव पा कर घबड़ाये हुए व्यापारी की बात और चाल दोनों लड़खड़ा रही थीं; इसीमें वह एकाएक फिसल कर नाँद में गिरा और झट डूब गया—जिससे भी यह सिद्ध हो गया कि यह अलकतरा मिलावटी और पतला था।

वास्तव में घटना इसी प्रकार हुई थी; लेकिन इसके बारे में जो मनगढ़ंत और भयानक क़िस्से प्रचलित थे उन पर जलालुद्दीन एफ़ेंदी को कोई आपत्ति नहीं थी। उसे इससे भी शिकायत नहीं थी कि उसकी क्रूरता के बारे में तरह-तरह के क़िस्से प्रचलित हो जायें। उसने बड़ी होशियारी से यह हिसाब लगाया था कि इन क़िस्सों से उसे एक 'कठोर शासक' की ख्याति मिल जायेगी और इस प्रकार बड़े वज़ीर का ध्यान उसकी ओर आकृष्ट होगा। और उसका अनुमान ग़लत भी नहीं निकला।

सभी समझदार लोग सेना में उसका काम देखकर जल्दी ही पहचान गये कि जलालुद्दीन एफ़ेंदी को इनसाफ़ की ज़रूरत से ज़्यादा फ़िकर नहीं थी न ही शाही ख़ज़ाने की बहुत चिंता थी, कि वह जो कुछ करता था, उसके मूल में शासन की, दंड और यंत्रणा देने की और जान लेने की एक दुर्निवार सहज प्रवृत्ति थी, कि क़ानून और राज्य का हित इसके लिए एक बहाना-भर था। निस्संदेह इस्तांबूल में बड़े वज़ीर को जलालुद्दीन के चरित्र की इस विशेषता का पता रहा होगा; लेकिन ढहती हुई रक्तहीन शासन-व्यवस्था और जर्जर होते हुए दुर्बल राज्य-संगठनों

को ठीक ऐसे ही लोगों की ज़रूरत होती है।

यहीं से जलालुद्दीन का सितारा चमकना शुरू हुआ। यहाँ से आगे घटनाओं की प्रगति अपने सहज क्रम से होती गयी। जो शक्तियाँ एक दुर्बल और पतनशील समाज-संगठन को नीचे खींच रही थीं, वही जलालुद्दीन को सफलता की सीढ़ी पर दिन-दिन ऊपर चढ़ाती रहीं। शीघ्र ही वह बितोल का वज़ीर नियुक्त हुआ। बितोल में कुछ बड़े तुर्की घरानों ने सत्ता हथिया रखी थी और प्रत्येक अपने-अपने इलाक़े में बिलकुल मनमाना शासन कर रहा था। ये घराने आपस में लड़ते रहते थे, और अपने ऊपर किसी को नहीं समझते थे। बितोल में जलालुद्दीन का काम ज़रूर बड़े हाकिम की नज़रों में संतोषजनक रहा क्योंकि एक बरस बाद ही उसे बोस्निया का वज़ीर नियुक्त किया गया जहाँ के हारे और कुचले हुए सामंतों में एक अर्से से न तो शासन की शक्ति रही थी और न आदेश मनवाने की योग्यता। इस अव्यवस्थित लेकिन अभिमानी और विद्रोही वर्ग को जीतने और क़ाबू में लाने का काम ज़रूरी था और ठीक इसी काम के लिए जलालुद्दीन पाशा की नियुक्ति हुई थी।

त्राब्निक के सामंतों को इस्तांबूल से एक हितू सलाहकार ने यह संदेशा भेजा था कि "तुम पर एक तेज़ और बेरहम हाथ से एक धारदार तलवार गिरने वाली है।" सलाहकार ने इसका भी ब्यौरा दिया था कि बितोल के सामंतों से जलालुद्दीन पाशा ने कैसा बर्ताव किया।

"बितोल में पहुंचते ही जलालुद्दीन ने सारे मुखिया इकट्ठे किये और हुकुम दिया कि प्रत्येक बाँस की कम से कम तीन हाथ लंबी एक बल्लम काट कर उस पर अपना नाम लिख कर उसे जलालुद्दीन पाशा के ख़ेमे पर लाकर पेश करे। इस अपमानजनक आदेश को सामंतों ने ऐसे मान लिया मानो उन पर जादू हो गया हो। केवल एक ने जंगल में जा छिपना बेहतर समझा। लेकिन वज़ीर के सिपाहियों ने उसे वहीं जा घेरा और कोई उसकी मदद को पहुँच सके इससे पहले ही उसको मार कर टुकड़े-टुकड़े कर दिया। पाशा ने सब नाम लिखी हुई बल्लमें कतारों में अपने आँगन में गड़वा दीं। फिर उसने सब सामंतों को इसी आँगन में जमा किया और बल्लमों की बाड़ दिखा कर उनसे कहा कि हर कोई 'अपनी-अपनी जगह' पहचान ले। फ़र्मान हुआ कि इलाक़े में किसी ने चूं भी की तो सब को इन्हीं क्रम से लगी बल्लमों पर सूली चढ़ा दिया जायेगा।"

त्राब्निकियों ने इस कहानी पर विश्वास किया भी और नहीं भी किया। पिछले तीस बरस में उन्होंने बहुत-से अजीबोग़रीब और काले क़िस्से सुने थे और उनसे भी ज़्यादा अजीबोग़रीब काले कारनामे देखे थे। इसलिए उनके लिए कड़े से कड़े शब्दों का मानो अर्थ खो गया था और उन्हें किसी बात पर विश्वास नहीं होता था। विश्वास करने के लिए आँखों देखना ज़रूरी हो गया था।

नया वज़ीर जब आखिर त्राब्निक पहुँचा तब लोगों के मन इन्हीं सब सोचों से भरे हुए थे। यों नये वज़ीर की आमद के ढंग में तो ऐसा कुछ नहीं था जिससे उसके बारे में प्रचलित कहानियों को बल मिले। दूसरे ख़तरनाक वज़ीर बड़े शोर-शरावे और दिखावे के साथ शहर में आये थे, जिससे कि उनके आगमन से ही लोग डर के मारे अधमरे हो जायें। लेकिन जलालुद्दीन पाशा फ़रवरी की एक रात में अनदेखे ही आ पहुँचा और लोगों को सवेरे ही त्राब्निक में उसकी मौजूदगी का पता लगा। किसी ने उसे देखा नहीं, लेकिन सबको ख़बर हो गयी कि वह शहर में आ गया है।

लेकिन जब वज़ीर ने शहर के मुखियों को बुलाया और उन्होंने जब उसे देखा-सुना तब उन्हें और भी अचंभा हुआ। जैसा सुन रखा था उसके प्रतिकूल वज़ीर अब भी जवान था, उम्र पैंतीस और चालीस के बीच, बाल ललौहें भूरे, रंग गोरा, लंबे-छरहरे बदन पर छोटा सिर। उसका मुंड़ा हुआ चेहरा अंडाकार और कुछ बच्चों जैसा था, हल्की ललाही भूरी मूँछें और चिकने गोल गाल जिन पर रोशनी ऐसे चमकती थी मानो चीनी की गुड़िया के गाल हों। और इस गोरे चेहरे में दो गहरे रंग की बल्कि लगभग काली और कुछ असमान आँखें थीं जो अक्सर लम्बी लाल भवों के नीचे छिप-सी जाती थीं—इससे सारे चेहरे की भंगिमा ऐसी जड़ हो गयी जान पड़ती थी मानो हँसी में फूटती हुई अटक गयी हो। लेकिन भवें ऊपर उठते ही गहरी आँखों से यह साफ़ दीख जाता था कि हँसी का आभास धोखा था और चेहरे पर मुस्कुराहट का कोई लक्षण नहीं है। जब वह बोलता था तो छोटा ज़र्द ओठों वाला मुँह गुड़िया के मुँह की तरह थोड़ा-सा खुलता था और ऊपरी ओठ बिलकुल नहीं हिलता था, जिससे अनुमान होता था कि इसके पीछे ख़राब या टूटे हुए दाँतों की क़तार है।

वज़ीर से पहली मुलाक़ात के बाद जब तुर्की बेग अपनी-अपनी राय बताने और मिलाने के लिए इकट्ठे हुए तो बहुतों का ख़याल यह था कि पहले से दिये

गये ब्यौरे अतिरंजित हैं, इन सामंतों की राय में इस वज़ीर के बारे में (जिसे तक़दीर ने इमाम नहीं बनाया) कठोर राय रखने की ज़रूरत नहीं थी। लेकिन जो अधिक अनुभवी और बारीकी से देखने वाले थे, जो 'ज़माने को पहचानते थे,' वे सब चुप रहे, उनकी नज़रें भी स्थिर और भावशून्य रहीं। मानो वे अपने मन में भी साफ़-साफ़ किसी पक्के या अंतिम नतीजे पर पहुँचने का साहस नहीं जुटा पा रहे थे, लेकिन इतना पहचान रहे थे कि उनके बीच एक असाधारण आदमी और एक बहुत ही खास तरह का दुष्ट व्यक्ति आ धमका है।

जलालुद्दीन पाशा त्राब्निक में फ़रवरी के शुरू में दाखिल हुआ। बेगों की हत्या मार्च के मध्य में हुई।

सुल्तान के फ़र्मान का हवाला देकर जलालुद्दीन ने सारे बोस्निया के तुर्की बेगों, मुखियों और शहरी हाकिमों को एक जरूरी सभा के लिए त्राब्निक बुला भेजा। चालीस के नाम बुलावा गया। इनमें से तेरह नहीं आये, कुछ तो संकट के अंदेशे से सावधान होकर और कुछ खानदानी शान के कारण। कम से कम इस बार खानदानी गर्व होशियारी के बराबर साबित हुआ। जो सत्ताइस आये थे उनमें से सत्रह को उसी वक़्त वहीं जलालुद्दीन के आँगन में क़त्ल कर दिया गया; बाक़ी दस को अगले दिन सवेरे ही तौक़ और बेड़ियाँ डाल कर एक जंजीर से बाँध कर इस्तांबूल रवाना कर दिया गया।

घटना के कोई गवाह नहीं थे और यह जानने का कोई तरीक़ा नहीं रहा कि कैसे इतने सारे अनुभवी और प्रतिष्ठित आदमी एक साथ ही ऐसे जाल में फँस गये और बिना प्रतिवाद या विरोध के, भेड़ों की तरह त्राब्निक शहर के बीचों-बीच मौत के घाट उतार दिये गये। बेगों की यह हत्या इतने ठंडे दिल से सोच-विचार कर इतनी सफ़ाई से और खुद वज़ीर की आँखों के सामने की गयी थी कि उसकी कोई मिसाल नहीं थी। ऐसी बेमुरव्वती और क्रूरता इससे पहले कभी किसी वज़ीर ने नहीं दिखायी थी। लोग सोचते रह गये कि वह कोई बुरा सपना देख रहे हैं या कि कोई भयानक जादू। उस समय से जलालुद्दीन पाशा के, जो त्राब्निकियों में 'जलालिया' के नाम से प्रसिद्ध हो गया था, बारे में सब त्राब्निकियों की राय एक-सी हो गयी जो कि एक दुर्लभ घटना थी। इससे पहले हर बुरे वज़ीर को अब तक का सबसे बुरा वज़ीर कह कर बखाना जाता था—उनको भी जो इतने ज़्यादा बुरे नहीं थे। लेकिन इसके बारे में उस दिन से किसी ने कुछ कहना ही

छोड़ दिया। क्योंकि पहले के बुरे से बुरे वज़ीर और इस जलालिया के बीच एक भारी और भयानक फ़ासला था; और इस फ़ासले को पार करने में लोग सिट्टी भूल जाते थे—डर के मारे उनकी ज़बान बंद और याददाश्त बेहोश हो जाती थी। जलालिया कौन, क्या और कैसा है, तुलना करके यह बताने के लिए कोई शब्द उन्हें नहीं मिलता था।

अब क्या होता है, इसकी नीरव प्रतीक्षा में और एक ठंडे आतंकित अचंभे में अप्रैल का महीना बीत गया। क्या इस भयानक घटना के बाद और भी कुछ होने को रह गया है ?

मई के शुरू के दिनों में वज़ीर ने एक हाथी ख़रीदा।

तुर्की में लोग जब बड़े ओहदों पर पहुँच जाते थे और धन और शक्ति जुटा लेते थे तब अक्सर उनकी अजीब जानवरों में रुचि हो जाती थी। यह रुचि शिकार के शौक़ से मिलती-जुलती थी लेकिन थी एक विकृत रुचि जो शिकार के परिश्रम से बचाती थी। इससे पहले भी वज़ीर लोग त्राब्निक में कई ऐसे जानवर ला चुके थे जो पहले नहीं देखे गये थे; बंदर, तोता, ईरानी बिलार—एक ने तो एक गुलदार का बच्चा भी मँगाया था लेकिन त्राब्निक की आबोहवा शायद इस बनैले पशु के अनुकूल नहीं थी। शुरू-शुरू में तो बाघ ने बड़ा जोश दिखाया और अपने ख़ूँखार स्वभाव का परिचय दिया लेकिन फिर उसका बढ़ना ही बंद हो गया। ख़ैर, यों यह भी सच था कि वज़ीर के अमले के लोग और कोई शग़ल न पा कर बघेले को पानी की बजाय तेज़ राकिया (कच्ची शराब) पिलाते थे और अफ्यून मिली मिठाइयाँ खिलाते रहते थे। धीरे-धीरे बघेला रोगी हो गया और उसके दाँत झड़ गये। उसके बाल भी झड़ने लगे। बौना और मोटा हो कर वह आँगन में खुला पड़ा ऊँघता और घुरघुराता रहता; मुर्ग़ी तक आकर उसे चोंचें मार जाते और कुत्तों के हठीले पिल्ले भी उसे छेड़ते रहते। जाड़ों के आते ही बिचारा त्राब्निक की गली के बिलार की तरह एक अत्यंत साधारण और बेइज़्ज़त मौत मर गया।

हाँ, तो, पहले भी मनचले क्रूर वज़ीरों ने अजीब जानवर मंगाये या पाले थे। मनचलेपन और क्रूरता के हिसाब से तो इस जलालिये को ख़ूँख़ार दरिंदों का एक पूरा झुंड मँगाना चाहिए था—ऐसे जानवरों को जो सिर्फ़ क़िस्से-कहानियों या तस्वीरों में होते हैं। इसलिए त्राब्निकियों ने जब यह सुना कि वज़ीर का एक हाथी आने वाला है तब वे कुछ अचंभे में आ गये।

हाथी अफ़्रीका से आया था। अभी वह दो साल का लड़खड़ाता बच्चा ही था। यह ब्यौरा और कुछ और जानकारी हाथी से पहले ही त्राब्निक पहुँच गयी थी। बल्कि त्राब्निक को सब कुछ मालूम हो गया था; कैसे वह सफ़र कर रहा हैं, कैसे लंबा-चौड़ा अमला उसकी सेवा-टहल करता है, कैसे उसे खिलाया-पिलाया जा रहा है और कैसे रास्ते में अधिकारी उसकी अगवानी करते हैं। सभी त्राब्निकी तुर्की भाषा का सहारा लेकर उसे फ़ीला कहते थे।

फ़ीला अभी बच्चा ही था, क़द में अच्छे बोस्नियाई बैल से बड़ा न होगा। लेकिन फिर भी वह अपनी धीमी चाल से रास्ता तै करता आ रहा था। यों बच्चे हाथी के मनचलेपन से उसकी देखभाल करने वालों को मुसीबत कुछ कम नहीं थी। कभी-कभी फ़ीला खाना-पीना छोड़ कर चुप-चाप घास में लेट जाता और आँखें मूँद कर हिचकियाँ या हुंकार लेने लगता; तब उसकी टहल करने वाले एक-दम घबड़ा जाते कि कहीं वज़ीर के हाथी को कुछ हो न जाये। फिर वह मानो चालाकी से एक आँख खोल कर चारों ओर देखता और एकाएक उछल कर अपनी छोटी दुम ज़ोरों से हिलाता हुआ एक ओर को दौड़ पड़ता—इतनी तेज़ी से कि उसके पहरेदार बड़ी मुश्किल से उसके साथ रह पाते।

और फिर कभी-कभी वह एकाएक कहीं रुककर अड़ जाता। तब पहरेदार उसे ठेलते, खींचते, पुचकारते; जानी-अनजानी अनेक भाषाओं में निहोरे करते, बच्चों की तरह तुतलाते और दबी ज़बान से गालियाँ भी दे लेते; कोई-कोई चोरी-छिपे दुम के नीचे की नरम जगह में चुटकी भी काट लेते, लेकिन सब बेकार। अंत में हार कर उन्होंने आसपास के किसानों के कुछ बेली बेगार में पकड़ लिये और तख्तेरवाँ नाम की खास तरह की गाड़ी में जोत कर हाथी को लाद कर ले चले।

हाथी की तबीयत कोई पहचान नहीं पा रहा था और पहरेदारों में जो बोस्निया के निवासी थे वे सब अपना मुँह कस कर बंद किये रहते थे कि कहीं उनकी ज़बान से दुनिया के सब हाथियों और वज़ीरों के बारे में कोई बेजा बात न निकल जाये। मन ही मन वे लगातार उस घड़ी को कोस रहे थे जिसमें उन्हें ऐसे अजीब जानवर की रखवाली का काम मिला जो इससे पहले बोस्निया में नहीं देखा गया था।

हाथी की देखभाल करने वाली टोली में ऊपर से नीचे तक सब चिंतित थे

ग्रौर इसलिए चिड़चिड़े भी हो रहे थे। ग्रसफल होने पर वज़ीर जो करेगा उसकी कल्पना से ही वे डर से काँप जाते थे; उन्हें कुछ तसल्ली होती थी तो इसी बात से कि जहाँ-जहाँ वे ख़ुद जाते थे वहाँ उनके कारण भी तहलका मच जाता था, ग्रौर इसके ग्रलावा वज़ीर के नाम पर लूट ग्रौर दस्तूर में भी उन्हें कुछ न कुछ हासिल हो ही जाता था।

जिस भी गाँव या क़स्बे में से यह क़ाफ़िला गुज़रता था वहाँ एक-सा नज़ारा पेश आता था। जुलूस के क़स्बे में घुसते ही बच्चे लपककर देखने ग्राते थे ग्रौर फिर हँसते-चिल्लाते हुए ग्रौरों को जुटा लेते थे। बूढ़े भी इस ग्रजूबे को देखने के लिए चौक में इकट्ठे हो जाते थे, लेकिन पहरेदारों के गंभीर चेहरे देख कर ग्रौर जलालुद्दीन वज़ीर का नाम सुन कर ही उनकी ग्रावाज़ें दब जाती थीं ,चेहरे ग्रकड़ जाते थे ग्रौर हर कोई फुर्ती से घर का रास्ता नापता हुग्रा ग्रपने को यह विश्वास दिलाने की कोशिश करने लगता था कि उसने कुछ नहीं देखा ग्रौर कुछ नहीं सुना। स्थानीय हाकिम, सैनिक ग्रफ़सर, मुख़्तार ग्रौर पुलीस के सिपाही जो ग्रपनी नौकरी के कारण लाचार थे, डर से सहमे हुए वज़ीर के पोष्य पशु को सलाम बजाते थे। ग्रमला जो कुछ चाहता था, क़स्बे वालों से वह बड़ी मुस्तैदी से ग्रौर बेदर्दी से वसूल करके उन्हें सौंप देते थे, किसी को यह पूछने की हिम्मत नहीं होती थी कि यह क्यों ग्रौर किसलिए चाहिए। कोई-कोई तो सिर्फ़ रखवालों के सामने ही नहीं बल्कि हाथी के बच्चे के सामने भी एक ख़ुशामद भरी मुस्कान लेकर ग्राते थे; ग्रदब से हाथी की ग्रोर देख कर ग्रौर उसे क्या कहना चाहिए यह सोच न पा कर वे ग्रपनी दाढ़ियाँ सहलाते हुए धीरे-धीरे, लेकिन पहरेदारों को सुनाते हुए कहते थे :

"माशा ग्रल्लाह ! माशा ग्रल्लाह ! क्या बात है !"

लेकिन दिल में कहीं बहुत गहरे में यह डर उन्हें सताता रहता था कि हाथी को उनके इलाक़े में रहते हुए कहीं कुछ हो न जाये ग्रौर सब बड़ी बेचैनी से उस घड़ी की प्रतीक्षा करते रहते थे जबकि यह सारा काफ़िला उस मनहूस जानवर के साथ पड़ोस के ज़िले तक, यानी किसी दूसरे के इलाक़े में चला जाये। ग्रौर जुलूस के ग्रागे बढ़ जाने के बाद वे इत्मीनान की एक लंबी साँस लेते—वैसी लंबी साँस जो 'सुल्तान के ग्रादमी' कभी-कभी लेते तो हैं मगर ऐसे छिप कर कि वह किसी ख़ुदा के बंदे को तो क्या दूर हवा को भी सुनाई न दे।

और मामूली लोग भी, ऐसे लोग जिनके पास गँवाने को कुछ नहीं था बल्कि जो स्वयं कुछ नहीं थे, वे भी जो कुछ उन्होंने देखा था उसके बारे में खुलकर बात न करते। केवल अपने-अपने घर में, बंद दरवाज़ों की ओट में वे हाथी का मज़ाक़ उड़ाते और इस बात पर टीका-टिप्पणी करते कि कितना ख़र्चा उठाकर वज़ीर के फ़ीले को ले जाया जा रहा है— मानो वह कोई पवित्र वस्तु हो।

सिर्फ़ बच्चे ही, सारी चेतावनियों की उपेक्षा करते हुए उल्टी-सीधी बातें करते रहते थे; हाथी की सूँड़ की लंबाई, टाँगों की मोटाई या कानों की चौड़ाई के बारे में शर्तें लगाते रहते थे। खेल के मैदानों में, जहाँ नयी घास उगने ही लगी थी, बच्चे अक्सर 'फ़ीला और रखवाले' का खेल खेलते थे। एक बच्चा हाथी बन कर हाथों और पैरों के सहारे आगे-आगे सिर इधर-उधर झुलाता हुआ चलता; सूँड़ और पंखों जैसे कान कल्पना के सहारे ही जुड़ जाते। बाक़ी बच्चे उसके रख-वाले बनते, कुछ टहलुए, कुछ पहरेदार, लेकिन सभी चिड़चिड़े और बदज़बान। एक लड़का स्थानीय हाकिम की भूमिका में सच्चा डर और झूठी खुशी दिखाता हुआ नक़ली हाथी के पास आकर अपनी दाढ़ी पर हाथ रखता हुआ कहता :

"माशा अल्लाह ! माशा अल्लाह ! क्या खूब ! क्या बात है—खुदा की क़ुदरत !"

और वह अपनी भूमिका इतनी कुशलता से निबाहता कि और सब लड़के—यहाँ तक कि हाथी बना हुआ लड़का भी—खिलखिला कर हँस पड़ते।

जब फ़ीला और उसका अमला सरायेवो के पास पहुँचा तो उनकी अगवानी उसी ठाट से की गयी जिससे त्राब्निक की ओर जाने वाले वज़ीरों की अगवानी की जाती थी। वज़ीर शहर में प्रवेश न करके पास ही गोरित्सा नाम की जगह में दो-एक रात ठहरते थे; सरायेवो शहर वहीं उनकी ज़रूरत का सब सामान प्रस्तुत करता था—रसद-पानी, शराब, ईंधन, मोमबत्तियाँ वग़ैरह। फ़ीले और उसकी टोली ने भी गोरित्सा में एक रात बितायी। लेकिन सरायेवो के नागरिकों ने इस अद्भुत जंतु में कोई दिलचस्पी नहीं दिखायी। वहाँ के बहुत-से परिवार अभी वज़ीर की आज्ञा से की गई हत्याओं के कारण मातम में थे। सरायेवो के धनी-मानी नागरिकों ने, जो वज़ीर को और उससे संबद्ध हर चीज़ को संदेह और आशंका की नज़र से देखते थे, एक दूत भेज कर पुछवाया कि दल कितना बड़ा है ताकि उसीके अनुसार प्रबंध कर सकें। लेकिन हाथी के लिए उन्होंने कुछ नहीं भेजा

क्योंकि उन्होंने यह कहला भेजा कि 'हाथी का वज़ीर क्या खाता है यह तो हम जानते हैं लेकिन वज़ीर के हाथी को क्या खिलाया जाता है यह हम नहीं जानते। उसके स्वभाव का पता चल जाए तो जो ज़रूरी होगा भेज दिया जायेगा।'

इस प्रकार क़स्बे पर क़स्बा लाँघता हुआ हाथी आधा बोस्निया पार करके अंत में किसी दुर्घटना के बिना त्राव्निक पहुँच गया। क़स्बे के लोगों ने जिस ढंग से हाथी का स्वागत किया उससे वज़ीर के बारे में उनकी भावनाएँ स्पष्ट प्रकट होती थीं। कुछ ने पीठ फेर ली मानो वे न कुछ जानते हों न उन्होंने कुछ देखा हो; कुछ डर और कौतूहल के बीच डगमगाते रह गये, कुछ ने वज़ीर के हाथी का सम्मान करने के ऐसे तरीक़े ढूँढ़ने की कोशिश की जिनका ठीक हलके में ठीक असर पड़े। और जो ग़रीब थे, जिन्हें वज़ीरों और हाथियों की ख़ास परवाह नहीं थी, उन्होंने इस घटना को भी उसी नज़र से देखा जिससे और सब कुछ देखते थे; यानी इस नज़र से कि कैसे उन्हें ज़िन्दगी में कम से कम एक बार चाहे थोड़ी-सी देर के लिए ही वे सब चीजें मिल जायें जिनकी उन्हें या उनके आत्मीयों को बहुत अधिक ज़रूरत थी।

जो थोड़े-से उत्साही नागरिक वज़ीर के हाथी का सम्मान कर के वज़ीर को ख़ुश करना चाहते थे वे कुछ असमंजस में रहे; और अन्त में अधिकतर ने समझदारी से अपने-अपने घर ही रहने का फ़ैसला किया। क्योंकि उन्होंने सोचा, घटनाएँ कब कौन-सी करवट ले लें, इसका क्या भरोसा है; क्या जाने उत्साह दिखाने से क्या नया हंगामा खड़ा हो जाये क्योंकि सुल्तान के आदमियों की तबीयत और उनके मिज़ाज का क्या ठिकाना है। इसी लिए जिस दिन फ़ीले ने त्राव्निक में प्रवेश किया उस दिन सड़कों पर कोई ख़ास बड़ी भीड़ें नहीं दिखायी दीं।

चार्शिया यानी त्राव्निक के मुख्य लेकिन तंग बाजार में फ़ीला जितना वास्तव में था उससे कुछ बड़ा और अधिक डरावना दीखा, क्योंकि हाथी की ओर एकटक देखते हुए लोग हाथी की नहीं बल्कि वज़ीर की ही बात सोच रहे थे। बहुत-से लोगों ने तंग बाज़ार में से गुज़रते हुए जुलूस में नयी हरी डालियों की ओट में हाथी की एक झाँकी-भर देखी; लेकिन बाद में कहवाघरों में बैठ कर या घरों में सूत कातती हुई स्त्रियों के बीच वे बड़े विस्तार से वज़ीर के इस नये अजूबे की डरावनी सूरत और ग़ैर मामूली हरकतों के बारे में गप्प हाँकते रहे। यों इसमें कोई अचंभे की बात नहीं थी क्योंकि यहाँ भी, जैसा दुनिया में हर जगह

होता है, आँख ने सहज ही वही देख लिया जिसकी मन ने कल्पना की। और फिर यह भी है कि हमारे देश में लोगों को यथार्थ के बारे में अपनी गढ़ी हुई कहानियाँ ज़्यादा पसन्द आती हैं, जिस यथार्थ के बारे में कहानियाँ गढ़ी गयीं उसका महत्त्व उनके निकट कम होता है।

वज़ीर की कोनक (हवेली) में फ़ीला कैसे रखा गया है, या कि त्राब्निक में उसके पहले कुछ दिन कैसे गुज़रे इसके बारे में कोई कुछ नहीं जान सका। क्योंकि अगर किसीको इसके बारे में कुछ पूछने की हिम्मत होती भी तो जवाब देने की हिम्मत रखने वाला कोई न मिलता।

लेकिन त्राब्निक लोग जिस बात की सही-सही जानकारी नहीं पा सकते उसके बारे में मनमानी गढ़ लेना खूब जानते हैं और जो उन्हें खुल कर कहने की इजाज़त नहीं होती उसे वह लगातार और हठपूर्वक कानों-कान फुसफुसाते रहते हैं। लोगों की कल्पना में हाथी का आकार दिन-दिन बड़ा होता गया; उसे बहुत-से नाम भी मिलते गये जो फुसफुसाये जा कर भी न मधुर थे न शिष्ट—लिखे जा सकने की तो बात ही दूर। फिर भी हाथी के बारे में न केवल ज़बानी चर्चा हो रही थी बल्कि लिखा भी जा रहा था।

दोलोत्स के पादरी मातो मिकिच ने अपने दोस्त, गुचेगोर्स्की मठ के मठाधीश को हाथी के आगमन की सूचना दी लेकिन बड़े रहस्यपूर्ण शब्दों में और लातीनी भाषा में, बाइबल के कुछ उद्धरणों का सहारा लेते हुए।[1] साथ ही उसने वज़ीर की हवेली, त्राब्निक और साधारणतः बोस्निया के हालात का अपना नियमित ब्यौरा भी भेजा। पादरी मातो ने लिखा :

"जैसा कि आप जानते हैं, हमारे कुछ लोगों ने तुर्की बेग सरदारों की हत्या देख कर ऐसा मान लिया था कि इससे रियाया का कुछ भला होने वाला है— हमारे ये भोले लोग यही समझते हैं कि दूसरे की मुसीबत में ज़रूर उनकी सहूलियत होगी। आप अपने लोगों को साफ़-साफ़ बता दें कि उससे कुछ नतीजा निकलने वाला नहीं है—ताकि वे अगर यह बात अब तक नहीं जानते थे तो अब जान लें। नया समाचार इतना ही है कि 'एक जानवर ने एक और जानवर पाल लिया है' निठल्ले लोग इसी की चर्चा करते हुए बेपर की उड़ाया करते हैं। जहाँ तक सुधार और तरक्क़ी की बात है न कुछ हुआ है न कुछ होने वाला है।"

१. बाइबल के क्षेपक अंश में कुछ विशाल जंतुओं का वर्णन है।—अनु०

और चिट्ठी के अंत में पादरी मातो ने साधारण भाषा में लैटिन के पद मिलाते हुए सांकेतिक भाषा में लिखा "और इस प्रकार बोस्निया सदा की भाँति असंगठित और अव्यवस्थित भटक रहा है और क़यामत तक भटकता रहेगा।"

और सचमुच दिनों पर दिन बीतते गये लेकिन वज़ीर की ड्योढ़ी से समाचार का एक भी शब्द नहीं मिला—किसी भी विषय पर नहीं, यहाँ तक कि फ़ीले के बारे में भी नहीं। मानो त्राब्निक में प्रचलित क़िस्सों का वह दैत्याकार जंतु ड्योढ़ी पार करके पीछे फाटक के बंद होते ही हवेली के भीतर कहीं हवा हो गया; मानो उसका कोई निशान ही नहीं रहा—मानो वह भी अदृश्य वज़ीर के साथ एक जान होकर अदृश्य हो गया।

वज़ीर हवेली से शायद ही कभी बाहर निकलता था। त्राब्निकियों को उसकी झाँकी भी दुर्लभ थी। यह छोटी-सी बात ही अपने साथ में आतंक फैलाने वाली थी; इससे लोग अटकल लगाते रहते थे और अफ़वाहों के सहारे और भी आतंक फैलता रहता था। शुरू से ही चार्शिया (बाज़ार) में लोग इसके लिए बेचैन थे कि वज़ीर के, उसके रहन-सहन के, उसकी आदतों के, उसके व्यसनों के, उसकी पसन्द-नापसन्द के बारे में कुछ और जान सकें, यानी किसी भी ऐसे दरवाज़े तक पहुँच सकें जिससे वज़ीर तक पहुँचने का कोई रास्ता मिल जाये।

हवेली के एक मुख़बिर की हथेली गरम करने के बाद भी चुप्पे वज़ीर के बारे में इतनी ही जानकारी मिल सकी कि जहाँ तक व्यसनों का सवाल था, उसकी कोई ख़ास कमज़ोरी नहीं थी। वह साधारण संयत ढंग से रहता था, कम खाता था, तम्बाकू कम पीता था और शराब और भी कम; लिबास सादा रखता था; उसे न पैसे का लालच था न यश का और न ही उसकी तबीयत अय्याशी की तरफ़ थी।

इन बातों पर भरोसा करना उतना ही मुश्किल था जितना किसी भी सच्चाई पर होता है। यह ब्यौरा सुन कर त्राब्निकी लोग अधीर होकर पूछते; "हवेली में रहने वाला आदमी अगर ऐसा ही मासूम मेमना है तो बोस्निया भर में इतने लोगों का क़त्ल किसने कर दिया?"

लेकिन ख़बर थी सच ही। वज़ीर को अगर कोई व्यसन था—ऐसे शौक़ को अगर व्यसन कहा जा सके—तो वह बढ़िया काग़ज़ और क़लम-दवात इकट्ठा करने का शौक़ था।

उसके संग्रह में सारी दुनिया से लाये हुए काग़ज़ थे—चीन से, वेनिस से, फ्रांस से, हालैंड से, जर्मनी से। छोटी-बड़ी अनेक दवातें थीं—धातु की, हौलदिली की, विशेष रूप से पकाये हुए चमड़े की। वज़ीर लिखने में कुछ ख़ास पटु नहीं था इसलिए अपने हाथ से तो कम ही लिखता था लेकिन अच्छी लिपि का उसे बड़ा शौक़ था और सुन्दर लिखावट के अपने संग्रह को वह चमड़े के बेठनों में या बढ़िया काठ के डिब्बों में सँवार कर रखता था।

वज़ीर का क़लमों का भी बहुत बड़ा संग्रह था और इस पर उसे विशेष गर्व था। तरह-तरह के नरसलों या पतले बाँसों से बनी हुई ये क़लमें सावधानी से गढ़ कर और लिखने के लिए तैयार करके रखी रहती थीं।

अनमना और निश्चल बैठा हुआ वज़ीर जब-तब एक-एक क़लम उठा कर उँगलियों में उसे घुमाता हुआ एक हाथ से दूसरे हाथ में लेता रहता था। तरह-तरह की, अनेक रंगों की और विभिन्न आकारों की क़लमें, कुछ हल्की पीली, कुछ प्रायः सफ़ेद, कुछ ललछौंही और कुछ बैंगनी; कुछ काली और शोधे हुए फ़ौलाद की तरह चमकदार, सभी खुदरंग; कुछ पतली और इस्पात की पत्ती-सी चिकनी, कुछ अंगूठे जैसी मोटी और गठीली। कई क़लमें मानो प्रकृति के खिलवाड़ का नमूना पेश करती थीं; एक क़लम का सिरा खोपड़ी की तरह कल्लेदार दीखता था तो एक दूसरी की गाँठों पर ठीक इंसानी आँखों जैसे अँखुए नज़र आते थे। वज़ीर के आठ सौ से अधिक क़लमों के संग्रह में समूची तुर्की सल्तनत, फ़ारस और मिस्र के हर देश का कम से कम एक नमूना था, और कोई दो क़लमें एक-सी नहीं थीं। कोई वैसी मामूली क़लम नहीं थी जैसी दर्जन के हिसाब से ख़रीदी जा सकें, और कुछ तो रंगत या आकार में बिलकुल बेमिसाल थीं—इन क़लमों को वज़ीर हिफ़ाजत से लपेट कर चीनी लाख के ओपदार लम्बे ख़ास डिब्बों में रखता था।

सन्नाटे में डूबे हुए एक बड़े कमरे में घंटों तक काग़ज़ की सरसराहट या वज़ीर के हाथों में क़लम की सुरसुराहट या खनखनाहट के सिवाय कोई शब्द नहीं सुनाई देता था। वज़ीर उन्हें नापता, एक दूसरे से मिला कर देखता; रंग-बिरंगी रोशनाइयों से बड़े-बड़े अलंकृत अक्षर लिखता; फिर ख़ास गीले स्पंज से एक-एक क़लम को बड़ी सावधानी से पोंछ कर साफ़ करता और डिब्बों में रख कर संग्रह में यथास्थान सजा देता।

त्राब्निक में अपने लंबे दिन वज़ीर सैयद अली जलालुद्दीन पाशा इसी तरह

बिता रहा था।

और जब वज़ीर अपने दिन यों अपने क़लमों में गुज़ार रहा था, बाहर सारा बोस्निया प्रदेश एक अज्ञात डर से काँपता हुआ पूछ रहा था : 'वज़ीर आखिर क्या कर रहा है। क्या मनसूबे बाँध रहा है?' हर कोई बुरी से बुरी बात सोचने को तैयार था; हर किसी को वज़ीर के संयम और मौन में अपने और अपने परिवार के लिए भारी खतरा दीख रहा था। और क्योंकि हर किसी के मन में वज़ीर का चित्र अलग था, इसलिए हर किसी की कल्पना उसे अलग काम में जुटा हुआ देखती थी—लेकिन जो भी काम हो वह बड़ा और ख़ूनखराबे से भरा जरूर होता था।

लेकिन ये क़लमें वज़ीर का एक मात्र मनोरंजन नहीं थीं। रोज वह हाथी को देखने जाता था और उसके चारों ओर चक्कर काट कर उसका मुआयना करता था; कभी उसे मज़ाकिया नामों से पुकारता हुआ मुट्ठी-दो मुट्ठी घास या एक-आध फल उसकी ओर बढ़ा देता था लेकिन अपने हाथ से कभी हाथी को छूता नहीं था।

अदृश्य वज़ीर के बारे में चार्शिया को इतनी ही जानकारी मिल सकी थी। यह चार्शिया के लिए काफ़ी नहीं थी। और कागज़-क़लम के शौक़ पर लोगों को न तो विश्वास होता था, न ऐसा शौक़ उनकी समझ में आता था। हाँ, हाथी से उसका लगाव समझ में आने वाली बात भी थी और कुछ अधिक परिचित भी जान पड़ती थी। खास कर इसलिए कि जल्दी ही हाथी उनकी चकित आँखों के सामने प्रकट भी होने लगा।

२

जल्दी ही फ़ीले को बाहर लाया जाने लगा। लंबी यात्रा की थकान के बाद फिर ताज़ा होकर हाथी अच्छी तरह खाने-पीने लगा था और वज़ीर की ड्योढ़ी उसके लिए बहुत छोटी हो चली थी। यह तो सभी जानते थे कि हाथी को बछड़े की

तरह तबेले में नहीं रखा जा सकता; लेकिन यह हाथी कितना चंचल और मुँहज़ोर होगा इसका किसी ने अनुमान नहीं किया था।

फ़ीले को टहलाने के लिए बाहर ले जाना कठिन नहीं था क्योंकि खुली हरियाली की ओर तो वह ललकता था; लेकिन उसे सँभालना या रोकना मुश्किल काम था। दूसरी बार टहलाने लाया जाने पर वह एकाएक छिछली लाश्वा नदी के पार भाग निकला; सूँड़ ऊँची उठाकर कभी चिंघाड़ता और कभी सूँड़ से पानी इधर-उधर फेंकता हुआ। और एक अवसर पर बाग़ के जंगले के साथ-साथ चलते हुए उसने जंगले को टक्कर मारी मानो देख रहा हो कि खम्भों की झलाई कितनी मज़बूत है; फिर कभी उसने सूँड़ उठा कर पेड़ों की डालें तोड़ना-मरोड़ना शुरू कर दिया। टहलुओं ने फिर उसे खदेड़ना चाहा, लेकिन तब तक वह फिर लाश्वा के पानी में घुस गया था और अपने तथा अपने रखवालों के ऊपर पानी की बौछार करने लगा था। कुछ दिन बाद रखवालों ने तय किया कि फ़ीले को साँकल से बाँध कर टहलने ले जाया जाये; हाँ, साँकल देखने में अच्छी होनी चाहिए। यह निश्चय करके उन्होंने फ़ीले के गले में लाल अस्तरदार चमड़े का भारी पट्टा पहनाया जिसमें चमकीली घंटियाँ जड़ दी गयीं। पट्टे के दोनों तरफ़ दो लम्बी ज़ंजीरें लगायी गयीं जिन्हें दो-दो रखवाले थामकर चले। सामने एक संकर वर्ण का विदेशी दास अकड़ता हुआ चला, यही हाथी का महावत और शिक्षक था और इसी के हाथ या आँखों का इशारा हाथी कुछ मानता था। महावत का नाम लोगों ने 'फ़ील-फ़ील' रख छोड़ा था।

शुरू में फ़ीले को हवेली के आसपास की पहाड़ियों में ही घुमाया जाता था, लेकिन उसकी दौड़ धीरे-धीरे बढ़ती गई और अंत में उसे क़स्बे में से घुमाया जाने लगा। जब फ़ीले को पहली बार चार्शिया बाज़ार में से ले जाया गया तब लोगों का रवैया वही रहा जो त्राब्निक में उसकी पहली आमद के दिन रहा था; वे लोग कुछ सहमे हुए और तटस्थ थे लेकिन ऊपर से उदासीन दीख रहे थे। लेकिन धीरे-धीरे हाथी का आना-जाना बढ़ता गया और जल्दी ही उसकी सैर एक आम बात हो गई। धीरे-धीरे फ़ीला भी चार्शिया का आदी हो गया और अपनी असल तबीयत का परिचय देने लगा।

फ़ीला और उसके साथ की टोली जैसे ही चार्शिया के एक सिरे पर प्रकट होती, बाज़ार में सनसनी और आतंक फैल जाता। चार्शिया के असंख्य कुत्ते

एक अजीब और अजनबी जानवर को सूंघ कर बेचैनी और बौखलाहट से भर जाते और क़साई की दुकानों के आसपास अपना अड्डा छोड़ कर इधर-उधर बिखर जाते। जो कुत्ते बूढ़े और मोटे हो गए थे वे तो चुपचाप वहाँ से खिसक जाते लेकिन जो नये, दुबले और तेज़ थे वे जंगले के पार से या दीवार की ओट से बड़े ग़ुस्से से भौंकना शुरू कर देते, मानो अपने शोर में अपना डर डुबा देना चाहते हों। बाज़ार की बिल्लियाँ भी बेचैन हो उठतीं और सड़क के आर-पार दौड़ने लगतीं या दीवारों और बेलों के सहारे मकानों के छज्जों या छतों पर भी चढ़ जातीं। चौक में जुटी हुई जो मुर्ग़ियाँ देहाती घोड़ों के लिए फैलाये गये जौ के बोरों से चोंचें भरती रहती थीं वे भी कुड़कुड़ाती और पंख फड़फड़ाती हुई ऊँचे जंगले के पार उड़ने लगतीं। बत्तख़ें भी 'कें-कें' करती हुई अपनी बेढंगी चाल से बढ़कर दीवार पर से नदी में कूद पड़तीं।

देहातियों के घोड़े फ़ीले से खास तौर से डरते थे। बोस्निया के छोटे भूरे बालों वाले टट्टू, जो साधारणतः बड़े दीन और सब्र वाले होते हैं और जिनकी बड़ी-बड़ी आँखें लम्बे अयाल के बीच में से मानो संतोष से झाँकती रहती हैं, फ़ीले की झाँकी पाते ही या उसकी घंटियों को टुनटुनाहट सुनते ही मानो बिलकुल घबड़ा जाते थे। वे लगाम झटकने या अपना साज़ काटने लगते, बोझ या काठी उतार कर फेंकते, और अदृश्य शत्रु पर ज़ोरों से दुलत्तियाँ चलाते हुए भाग निकलते। घबड़ाये हुए किसान उनके पीछे-पीछे उनको पुकारते और उन्हें पुचकारते हुए दौड़ पड़ते कि किसी तरह उन्हें थाम कर शांत कर सकें। (एक तरफ़ बौखलाया हुआ घोड़ा और दूसरी तरफ़ हाथ-पैर फैलाये खड़ा, उतना ही बौखलाया हुआ घोड़े का मालिक किसान, जो अपनी थोड़ी-सी बुद्धि के सहारे अपने को घोड़े से ही नहीं, उन पागलों से भी जो सिर्फ़ घमंड के कारण इस मनहूस हैवान को चार्शिया में ले आए हैं, होशियार समझते! —बिचारे किसानों पर एकाएक दया आ जाती थी।) क़स्बे के बच्चे और खासकर जिप्सियों के बच्चे गलियों से दौड़े हुए आते और घरों की नुक्कड़ों की ओट से झाँकते हुए उस अद्भुत जानवर को भय-मिश्रित कौतूहल से देखते रहते। और दिन-ब-दिन बच्चों का साहस और शरारत की उनकी सूझ बढ़ती जाती थी। वे चीख़ते-चिल्लाते, सीटियाँ बजाते, एक दूसरे को आगे धकेलते, हँसी की किलकारियाँ मारते हुए हाथी का रास्ता काट कर सड़क के पार दौड़ जाते थे।

ऊपर अटारियों के छज्जों और गोखों से, काठ की जाली या झिलमिल की ओट से स्त्रियाँ और किशोरियाँ भी झाँक-झाँक कर नीचे से गुज़रते हुए सजे हुए हाथी और उसके वज़ीर के बने-ठने और क़द्दावर सिपाहियों को देखती रहतीं। एक-एक झिलमिल के पीछे तीन-तीन, चार-चार इकट्ठी होकर कानों-कान बातें करतीं, हाथी के बारे में हँसी-मज़ाक़ करतीं, एक दूसरे को गुदगुदातीं और कभी-कभी खिलखिला कर हँस पड़तीं। माँएँ और सासें गर्भवती बेटियों-बहुओं को इस डर से खिड़की के पास न फटकने देतीं कि कहीं कोख के बच्चे पर उस मनहूस जानवर की छाया न पड़ जाए।

पैंठ के दिन तो और भी बुरा हाल हो जाता। हड़बड़ाए हुए घोड़ों, मवेशियों और भेड़ों के अपनी टाँगें तुड़ा लेने की नौबत आ जाती थी। आसपास के गाँवों से आई हुई किसान औरतें अपनी लम्बी सफ़ेद पोशाकें और सिर पर बँधे हुए सफ़ेद रूमाल सँभालती हुई लम्बे डग भर कर गलियों में जा छिपती थीं और उत्तेजित स्वर से चीखती हुई सलीब का चिह्न बनाती जाती थीं।

और इस सारी हलचल के बीच से फ़ीला झूमता-झामता अपनी भारी मस्त चाल से बढ़ता चला जाता था और उसके रखवाले उसके आसपास उछलते-कूदते, हँसते-चिल्लाते जुटे रहते थे। सारे का सारा नज़ारा ऐसा असाधारण और अभूतपूर्व होता था कि जान पड़ता था, कि सारा जुलूस किसी अनसुने संगीत पर ताल देता हुआ बढ़ रहा है; कि फ़ीले के जुलूस के साथ सिर्फ़ घंटियाँ, जिप्सी बच्चों की हँसी और रखवालों की चीख-पुकारें ही नहीं बल्कि अदृश्य और अपरिचित प्रकार के ढोल, झाँझ और अन्य वाद्य चल रहे हैं।

और फ़ीला मंद गति से अपने मोटे, भारी पैरों पर झूमता हुआ धीरे-धीरे बढ़ता जाता था; मानो अंगों के संचालन या शरीर की गति के लिए जितनी शक्ति चाहिए उससे कहीं अधिक शक्ति पाकर वह सारी फ़ालतू शक्तियों को खेल और मनमानी में लगाना चाह रहा हो।

चार्शिया से पूरी तरह अभ्यस्त हो जाने पर फ़ीले की ढिठाई दिन-ब-दिन बढ़ने लगी और अपनी हर हरकत में वह अधिक हठ और चालाकी दिखाने लगा। अभी तक किसी को ऐसी सनक का अनुमान या संदेह नहीं हुआ था जिसमें इतनी गहरी शैतानी और बिल्कुल इन्सानों जैसा पाजीपन (ऐसा चार्शिया के घबड़ाये हुए और नाराज़ लोग कह रहे थे) भरा हुआ हो। अब चलते-चलते

हाथी कभी किसी बेचारे की अलूचों से भरी टोकरी उलटा देता, कभी बिक्री के लिए दीवार के साथ टेक कर सजाये हुए गैंती, बेलचे, बल्लम सूँड़ से लपेट कर इधर-उधर छितरा देता। लोग उसका रास्ता छोड़कर ऐसे भागते मानो क़यामत से बच कर भाग रहे हों; अपना ग़ुस्सा वह पी जाते और अपने माल का नुकसान चुपचाप सह लेते। नानखताई वाले वेसिल ने अपना बचाव करने की कोशिश की थी। जिस तख़्ते पर वह केक-नानखताइयाँ सजा कर बैठा था उसकी ओर फ़ीले ने सूँड़ बढ़ाया तो वेसिल ने फुर्ती से एक भारी बेलन उठा कर उसे धमकाया। हाथी ने तो अपनी सूँड़ खींच ली लेकिन तगड़े और ग़ुस्सैल फ़ील-फ़ील ने अपनी वनमानुष जैसी लंबी बाँह बढ़ा कर वेसिल के ऐसा थप्पड़ जमाया जैसा त्राब्निक में कभी किसी ने नहीं देखा-सुना था। खताई वाले को जब तक होश आया तब तक फ़ीला और उसका अमला आगे बढ़ कर ओझल हो चुके थे। होश में आने पर वेसिल ने पाया कि लोग उसे घेर कर उसके मुँह पर छींटे दे रहे हैं। थप्पड़ की मार से उसके चेहरे पर ल्हासें उभर आयी थीं और नीली पड़ गयी थीं; और फ़ील-फ़ील की भारी अंगूठी से एक घाव भी हो गया था जिससे ख़ून बह रहा था। लोग वेसिल को समझा रहे थे कि सस्ता ही छूट गया नहीं तो न जाने क्या हो जा सकता था।

सच बात यह थी कि फ़ीले के अजीब और नासमझ जानवर होने के बावजूद चार्शिया को उससे उतनी तकलीफ़ नहीं थी जितनी उसके ख़िदमतगारों से। लंबी बाँहों और अमानवीय चेहरे वाला फ़ील-फ़ील, जिसका असली नाम कोई नहीं जानता था, हमेशा साथ-साथ रहता था; फिर दो सिपाही तैनात रहते थे और हर बार दो-एक दरबारी डरी हुई भीड़ों का तमाशा देखने और गड़बड़ी पर होने वाले हँसी-मज़ाक़ में हिस्सा लेने आ जाते थे। छोटे ओहदेदारों और नायब अफ़सरों की नाराज़ी से चार्शिया बहुत दिनों से परिचित था। आततायी शासकों और रोज़ बदलने वाले क़ानूनों के इस देश में बूढ़े बुज़ुर्ग त्राब्निकी अक्सर कहा करते थे, "बुरा राजा तो बुरा होता ही है, लेकिन उसके नौकर और ख़ुशामदी और भी बुरे होते हैं।"

फ़ीले को कोई रोक-टोक नहीं सकता था; इसके प्रतिकूल गड़बड़ी फैलाने में उसे हर तरह का बढ़ावा दिया जाता था।

निठल्ले लोग और जिप्सी फ़ीले के जुलूस के लिए सवेरे से ही आ जुटते थे

और इंतज़ार में रहते थे कि उसके आने पर क्या तमाशा होता है। और उन्हें कभी निराश नहीं होना पड़ता था। एक दिन फ़ीला एकाएक रुककर थोड़ी देर कान हिलाता रहा मानो कुछ सोच रहा हो, और फिर अवदागा ज़लातारेविच की दुकान की ओर बढ़ा। ज़लातारेविच व्यौपारी तो छोटा था लेकिन नागरिक के नाते इज्ज़तदार था। दुकान के छज्जे के खम्भे के साथ पिछाड़ी टेक कर हाथी थोड़ी देर तक अपने को खुजलाता-सहलाता रहा। सारी दुकान हिल गयी और शहतीरों के जोड़ चरमरा उठे। अवदागा छोटे दरवाज़े से होकर अंदर मालखाने में चला गया जो पक्का पत्थर का बना हुआ था। अमला खड़ा रहा कि हाथी अपने को खुजला ले; आसपास के लोग हँसते और बोलियाँ कसते रहे। अगले दिन अवदागा ग़ुस्से से भरा हुआ फ़ीले के आने से पहले ही अपने मालख़ाने में जा बैठा। हाथी सीधा उसकी दुकान के सामने आया, उसी खंभे की ओर बढ़ा, लेकिन अपनी पिछाड़ी खुजलाने की बजाय उसने पिछली टाँगें थोड़ी फैलायीं और अवदागा की देहरी पर पेशाब कर दिया। देर तक और बहुत-सा पेशाब करने के बाद उसने कई बार अपनी पीठ हिलायी, कान डुलाये, और फिर धीरे-धीरे अपनी अभ्यस्त गति से आगे बढ़ गया।

दस क़दम पीछे आते हुए जिप्सी टिटकारियाँ मारते हुए और भद्दे मज़ाक़ करते रहे और ख़िदमतगारों ने हाथी की पिछाड़ी थपथपा दी।

कोई-कोई दिन ऐसा भी होता था जब हाथी के चार्शिया से गुज़र जाने पर भी कोई अजीब घटना नहीं होती थी। फिर किसी-किसी दिन उसे क़स्बे के किसी दूसरे हिस्से में भी टहलाने ले जाया जाता था। लेकिन चार्शिया के लोग हाथी की मनमानी हरकतों के और सनसनी के इतने आदी हो गये थे कि कोई घटना न होने पर भी वे एक-दूसरे को क़िस्से सुनाते रहते थे।

जो निठल्ले हाथी को देखने के लिए रोज़ जुटते थे, उनकी बातचीत का सिलसिला टूटता ही नहीं था।

एक ने कहा, "फ़ीला कल तो नज़र नहीं आया।"

और दूसरे, कारिशिक नाम के बातूनी शराबी ने जवाब दिया, "हाँ, नज़र तो नहीं आया लेकिन मालूम है जिप्सी मुहल्ले में क्या हुआ ?"

"नहीं तो। क्या हुआ ?" दो आदमियों ने एक साथ पूछा। वे यह भूल गये कि कारिशिक त्राब्निक और उनके आसपास के इलाक़े में सबसे बड़ा झूठा

ग्रौर गपोड़ी प्रसिद्ध था।

"ग्ररे एक गर्भवती जिप्सी ग्रौरत ने एक नज़र फ़ीले को देखा ग्रौर वहीं सड़क पर बच्चा जन दिया—ग्रौर क्या हुग्रा ! तुम मेरी बात का यकीन करो या न करो, हुग्रा सचमुच यही ! उसका ग्राठवाँ महीना था, ग्रौर वह एक बर्तन धोने के लिए गली में ग्राई थी। एकाएक उसने नज़र उठायी तो देखा, फ़ीला उसकी ग्रोर बढ़ा चला ग्रा रहा है। हाँडी उसके हाथ से छूट गयी ग्रौर वह चीखी, 'हाय !' ग्रौर वहीं ढेर हो गई। खून से लथपथ उसको ग्रौर ग्रकाल जन्मे बच्चे को घर के भीतर ले जाया गया। ग्रौरत को तो फिर होश नहीं ग्राया, बच्चे को ग्राया; वह ज़िंदा है ग्रौर बच जायेगा लेकिन गूँगा है—एकदम गूँगा। डर से गूँगा हो गया ! हाँ, तो मेरे भाई, यह बात हुई।"

कारिशिक के सबके सब क़िस्से इसी तरह, 'हाँ तो, मेरे भाई !' के साथ समाप्त होते थे। यह मानो उसकी खास मुहर थी जिससे उसकी गप्पें पहचानी जाती थीं।

निठल्ले लोग इधर-उधर बिखर गये ग्रौर इस क़िस्से का प्रचार करने लगे—इस बात का ज़िक्र करना उन्होंने ज़रूरी नहीं समझा कि यह क़िस्सा उन्होंने पहले-पहल जिप्सी कारिशिक से सुना। ग्रौर चार्शिया के लोग ग्रौर भी उत्तेजित होकर फ़ीले की ग्रगली सैर की या कम से कम उसके बारे में एक नयी झूठी-सच्ची कहानी की प्रतीक्षा करने लगे।

त्राब्निक के सौदागरों के मन की हालत की कल्पना ही की जा सकती है। वे बोस्निया भर के सबसे ग्रधिक शांत ग्रौर शालीन व्यापारी माने जाते थे—गंभीर ग्रौर ग्रहंमन्य, ग्रौर ग्रपनी बिरादरी की सफ़ाई, संजीदगी ग्रौर व्यवस्था-प्रेम पर गर्व करने वाले।

फ़ीले की समस्या बढ़ती ही गयी : उसका ग्रंत कहाँ होगा, कोई सोच ही नहीं सकता था। एक जानवर के मन के भीतर क्या गुज़र रही है, यह तो ग्रपने बोस्निया के जानवरों के बारे में भी नहीं बताया जा सकता; फिर दूर-दूर प्रदेश से लाये हुए जानवर के बारे में कोई क्या कहेगा ? फ़ीले ने भी क्या-क्या तकलीफ़ें सही होंगी, कौन समझ सकता है ? लेकिन दूसरों की समस्याग्रों के बारे में फ़लसफ़ा बघारने की ग्रादत चार्शिया को नहीं थी। वह ग्रपने विचार ग्रपनी ज़रूरतों ग्रौर स्वार्थों तक ही सीमित रखता था। जब कि साम्राज्य चरमरा कर

टूट कर चारों तरफ़ से बिखरने लगा था और बोस्निया डर और दुश्चिंता से भरा हुआ जैसे-तैसे दिन गुज़ार रहा था, बेग हताश होकर बदला लेने की योजनाएँ बना रहे थे, तब यह चार्शिया फ़ीले के आलावा कुछ नहीं सोच पा रहा था। फ़ीला ही उसे अपना सबसे बड़ा दुश्मन दीखता था।

परंपरा से और विश्वास के कारण भी ये लोग सभी जानवरों की रक्षा करते थे—यहाँ तक कि हानि पहुँचाने वाले जानवरों की भी; वे कुत्ते-बिल्लियों और कबूतरों को खिलाते थे और कीड़े-मकोड़े भी कभी नहीं मारते थे। लेकिन वज़ीर के हाथी पर यह नियम नहीं लाग़ू होता था; उससे सबको वैसी सांघातिक घृणा थी जैसी किसी मानवी दुश्मन से हो सकती है और सभी उसकी जान के गाहक हो रहे थे।

लेकिन दिन और सप्ताह बीतते जा रहे थे और फ़ीला दिन-ब-दिन बड़ा और तगड़ा होता हुआ और भी चंचल और शैतान होता जा रहा था।

कभी-कभी वह आह्निक के चार्शिया से वैसा ही दौड़ता हुआ गुजर जाता जैसा कभी बचपन में अफ्रीका के सपाट मैदानों में दौड़ता होगा, जहाँ कि लंबी और तीखी घास उसके किशोर पौरुष को और उसकी तीखी भूख को चुनौती देती होगी। चार्शिया के आसपास भी वह मानो कुछ खोजता हुआ दौड़ता जिसे न पाकर वह मुड़ कर सारे बाज़ार में तोड़-फोड़ करता हुआ तहलका मचा देता। फ़ीले को मानो किसी चीज़ की तलाश थी; शायद अपनी ही उम्र के और ताक़तवाले सहचरों की। उसकी दाढ़ें भी निकलने लगी थीं जिससे वह और भी बेचैन हो गया था और मानो विवश प्रेरणा से सामने पड़ जाने वाली हर चीज़ को चबाने लग जाता था। उसकी इस आदत में चार्शिया के लोगों को जलालिया की और न जाने किन-किन शैतानों की तबीयत की प्रतिच्छाया दीखती थी।

कभी-कभी फ़ीला बहुत ही शांत और प्रसन्न भाव से टहलता हुआ निकल जाता, बिना किसी की ओर ध्यान दिये या किसी चीज़ को छुए, केवल जब-तब अपनी सूँड़ से मानो अपना ही माथा पीटता हुआ। फिर कभी वह चार्शिया के बीचों-बीच रुक कर अपनी सूँड़ उदास भाव से लटका कर और आंखें झुका कर मानो हताशा की मूर्ति बनकर खड़ा हो जाता। लेकिन ऐसे अवसरों पर भी आसपास दुकानों के सामने खड़े हुए लोग कोहनी से एक-दूसरे को ठेल कर इशारों

ही इशारों में बातें कर लेते।

सुनार ने एक दिन अपने पड़ोसी से पूछा, "जानते हो, फ़ीला मुझे किसकी याद दिलाता है?"

"किसकी?"

"वज़ीर की! हू-ब-हू वही शक्ल है।" सुनार ने आग्रहपूर्वक कहा, हालाँकि जब कभी वज़ीर उसकी दुकान के सामने से गुज़रा तो उसकी नज़र उठाकर वज़ीर का चेहरा देखने की हिम्मत कभी नहीं हुई थी। और उसकी बात से पड़ोसी ने बिना हाथी की ओर नज़र डाले यह नतीजा निकाल लिया कि ज़रूर ऐसी ही बात होगी और एक तरफ़ को थूकते हुए दबे स्वर में वज़ीर को फ़ीले की माँ से जोड़ते हुए गाली दी।

ऐसी थी उन सबकी घृणा। और चार्शिया की यह ख़ूबी थी कि एक चीज़ पर केंद्रित हो जाने पर वह कभी उसका पीछा नहीं छोड़ती थी बल्कि दिन-ब-दिन घनी होती हुई बढ़ती जाती थी। यहाँ तक कि घना होते-होते उसका रूप ही बदल जाता था, अपने मूल से अलग होकर घृणा एक स्वतंत्र जीवन जीने लगती थी। घृणा का लक्ष्य नाम मात्र रह कर ओट हो जाता था; घृणा ठोस होकर अपने ही नियमों के अनुसार अपने ही पर पलती हुई और भी तीखी, बलवती और दुष्कर होती जाती थी। मानो कोई पाप वासना भरा प्रेम हर चीज़ से प्रेरणा और प्रोत्साहन पाता हुआ अपने लिए नित्य नये आधार पैदा करता चले। जो भी एक बार चार्शिया की घृणा का लक्ष्य बन जाता उसका पतन आगे-पीछे अवश्यंभावी हो जाता था—घृणा के अदृश्य लेकिन घातक बोझ से निस्तार का कोई उपाय नहीं था—सिवाय इसके कि चार्शिया को ही मलियामेट कर दिया जाये और उसके निवासियों को भी नष्ट-निर्मूल कर दिया जाये।

चार्शिया की घृणा अंधी और बहरी है, लेकिन गूँगी नहीं है। चार्शिया में बैठे हुए तो कोई कुछ नहीं कहता क्यों कि जलालिया आख़िर जलालिया है; लेकिन शाम को अपने-अपने घरों के सामने इकट्ठे होने पर लोगों की ज़बान की लगामें ढीली हो जातीं और कल्पना उड़ान भरने लगती। और मौसम भी इसमें योग देने लगा था: शरद् ऋतु आ गयी थी। रातें अब भी सुंदर थीं, अँधेरा आकाश तारों से भर गया था। इसमें जब-तब तारे टूट कर एक फुलझड़ा-

सी छोड़ते हुए क्षण भर सारा आकाश आलोकित कर के क्षितिज की ओर बढ़ जाते थे। पहाड़ों की उपत्यकाओं में अलाव जलने लगे थे : फल पका कर जाड़ों-भर के लिए रखे जा रहे थे। अलाव के आसपास चक्कर काटते या बैठते लोग अपना-अपना काम करते या बातचीत, क़िस्से-कहानी, हंसी-मज़ाक़ में जुट जाते। फल और मेवे कहवा और तम्बाकू के दौर चलते रहते और लगभग सभी जगह राकिया (कच्ची शराब) के प्याले घूमते रहते। लेकिन ऐसा कोई अलाव या जमाव न होता जिसमें बात घूम-फिर कर वज़ीर और उसके फ़ीले पर आ कर न अटक जाती।

"बस, बहुत हो गया ! अब और नहीं सहा जाता !"

अक्सर बातचीत इसी वाक्य से शुरू होती। त्राब्निक के चार्शिया में बीते वर्षों और शताब्दियों में यह वाक्य बहुत बार सुना गया होगा; शायद ही कोई पीढ़ी ऐसी हुई होगी जिससे और सहा जाता रहा होगा, बल्कि एक-एक पीढ़ी के जीवन में कई-कई बार ऐसे मौक़े आये होंगे जब बहुत हो चुका होगा। यह ठीक-ठीक निश्चय करना बहुत कठिन था कि ठीक किस बिंदु पर आ कर बहुत हो चुका होता था या और सहना असंभव हो गया होता था; कि ठीक किस बिंदु पर आ कर उस पीढ़ी को ये शब्द कहने का अधिकार मिल जाता था। लेकिन जब भी ये शब्द कहे जाते थे, एक लम्बी साँस के साथ या भिंचे हुए दाँतों में से गुज़रती हुई एक लंबी सिसकी की तरह, और हमेशा ये शब्द कहने वाले के लिए बिल्कुल कठोर सच होते थे।

अलग-अलग जगह अलग-अलग अलावों के आसपास अलग ढंग से एक ही समस्या की चर्चा होती थी। कहीं पर अलाव के चारों ओर बैठे हुए नौजवान लड़कियों की और सगाइयों की, खेलों की या शराबघरों में अपनी-अपनी बहादुरी की चर्चा करते थे। कहीं किसी दूसरे अलाव के आसपास चार्शिया के सौदागर या छोटे शिल्पी जुटे हुए थे। कहीं और बड़े ज़मींदारों, अमीर व्यापारियों और ख़ानदानी रईसों की टोलियाँ थीं।

एक आग के पास दो नौजवान बैठे थे। मेहमानदार शहरागिच और उसका मेहमान था गुलबेगोविच। मेहमानदार परिवार का इकलौता बेटा था; बीस बरस का दुबला-पतला बीमार युवक, कंधे झुके हुए। मेहमान की उम्र भी यही थी, लेकिन उसका बदन गठीला, लंबा और तीर-सा सीधा था, आँखें

तीखी और नीली, जिनके ऊपर पतली सीधी भँवें ऐसी तनी हुई थीं मानो लोहे की पत्तियाँ रख कर उनके दोनों सिरों पर धार कर दी गयी हो। शक्ल-सूरत में इतने भिन्न होते हुए भी दोनों नौजवान पक्के दोस्त थे और उन्हें अपने हमउम्र लोगों से अलग बैठकर उन बातों की निजी और खुली चर्चा करनी अच्छी लगती थी जिनमें इस उम्र के लोगों की दिलचस्पी होती है।

शुक्रवार था। उनके सब साथी क़स्बे की तरफ गये हुए थे इस उम्मीद में कि फाटकों की दरारों में से या जंगले के आरपार लड़कियों से कानाफूसी करने का अवसर मिल सकेगा।

दोनों नौजवान तम्बाकू पीते बैठे हुए धीरे-धीरे बातें कर रहे थे। आग पर कड़ाहों में मुरब्बे के लिए फल पक रहे थे और छोटी-छोटी लड़कियाँ उन-के आसपास मँडरा रही थीं। एक सेवक जब-तब चाशनी को हिला रहा था।

आग की ओर एकटक देखता हुआ और मानो अपने ही विचारों में डूबा हुआ झुके कंधों वाला युवक अपने दोस्त से कह रहा था:

"लोगों के पास वज़ीर और उसके फ़ीले के अलावा कोई बात ही नहीं है।"

"ठीक तो है। बहुत हो चुका, लोग अब और नहीं सह सकते!"

"मैं तो बार-बार वही एक बात सुनते-सुनते तंग आ गया हूँ: वज़ीर-फ़ीला; फ़ीला-वज़ीर! मैं तो जब इस बारे में सोचता हूँ, मुझे बेचारे जानवर पर दया ही आती है। उस बिचारे ने क्या क़सूर किया है? लोगों ने उसे कहीं समुंदर पार जंगल में घेर कर पकड़ लिया, बाँध कर ले आये और बेच दिया:, और वज़ीर ने उसको यहाँ परदेस में अकेला कष्ट भोगने के लिए मँगा लिया। फिर मुझे यह भी ख़्याल आता है कि वज़ीर भी तो यहाँ ज़बरदस्ती ही लाया गया; दूसरों ने बिना उसकी पसंद-नापसंद की बात पूछे उसको यहाँ भेज दिया। और जिस किसी ने भी उसको यहाँ भेजा वह भी लाचार था कि बोस्निया में शांति और व्यवस्था स्थापित करने के लिए किसी को भेजे। इस तरह मुझको लगता है कि हर जगह कोई किसी दूसरे की इच्छा और जरूरत के लिए जहाँ-तहाँ ठेल दिया जाता है; कोई भी जहाँ रहना चाहता है या जहाँ उसको पसंद किया जाता है वहाँ नहीं रह सकता।"

गुलबेगोविच ने उसकी बात काटते हुए कहा:

"बस करो दोस्त ! इतनी दूर-दूर तक सोचने से कुछ हाथ ग्राने वाला नहीं है । तुम यही पता लगाते रह जाग्रोगे कि किसने किसको कहाँ भेजा ग्रौर हाथी तुम्हारे सिर पर ग्राकर बैठ जायेगा । कुछ समझने-समझाने की कोशिश छोड़ो, ग्रपनी जान बचाग्रो ग्रौर जब जिस पर तुम्हारा दाँव चले गहरा हाथ मार दो ।"

कुबड़े युवक ने लम्बी साँस ले कर कहा, "लेकिन हर कोई हर किसी पर या जो सामने ग्रा जाये उसपर हाथ चलाने लगे तो हमेशा लड़ाई ही होती रहेगी—इसका ग्रंत कहाँ होगा ?"

"होती रहे ! ग्रंत की फ़िक्र मुझको क्यों हो !" शहरागिच ने कोई जवाब नहीं दिया; ग्रपने ही भीतर ग्रौर सिमट कर ग्रौर भी ग्रधिक एकाग्र दृष्टि से ग्राग की ग्रोर देखने लगा ।

ग्रलावों के ग्रासपास की इन बातों का क़स्बे या फ़ीले के जीवन पर न कोई ग्रसर हुग्रा, न हो सकता था; निरी बातों से कोई काम थोड़े ही होता है ।

कुछ दूर पर एक दूसरी ग्राग के ग्रासपास एक दूसरे ढंग की भीड़ का जमाव था ग्रौर बातचीत का रंग-ढंग भी बिल्कुल दूसरा था । यह जमाव बड़ा था । कोई एक दर्जन छोटे सौदागर बैठ कर राकिया पी रहे थे । कुछ चुपचाप ग्रौर पूरी तरह डूब कर, कुछ दूसरे सोच-समझ कर ग्रौर निरंतर बातें करते हुए । बातचीत बढ़ती हुई चुटकुलों, फिर तीखी व्यंग्योक्तियों, लम्बे एकालापों, भारी गप्पों ग्रौर उससे भारी डींगों में बदल गयी; फिर छोटी-छोटी बिजली-सी तेज़ सच्चाइयों में । राकिया से लोगों में तरह-तरह के विचार उमड़ते हैं, नयी ग्रौर ग्रभूतपूर्व कल्पनाएँ जागती हैं, नये शब्द सूझते हैं, नया साहस पैदा होता है । एक तरफ़ ग्राग की प्रसन्न लपटों ग्रौर दूसरी तरफ ग्रँधेरे में डूबी हुई सोती दुनिया के बीच की स्थिति में ये सब बातें सहज ग्रौर स्वाभाविक जान पड़ती हैं ।

ग्रवदागा ज़लातारेविच ने दाँत पीसते हुए कहा, "दोस्तो, वज़ीर के उस हैवान की याद से तो मेरे तन में ग्राग लग जाती है—मेरे ही क्यों, सारे चार्शिया के । मैं इस ज़िंदगी से तंग ग्रा गया हूँ ।"

ग्रौर उसके यह कहते ही चारों ग्रोर धीमे स्वर से लेकिन गर्मागर्म चर्चा ग्रारम्भ हो गयी । हर कोई उसमें भाग ले रहा था; हर कोई ग्रपने ढंग से,

अपनी तबीयत और अपनी आमदनी के अनुसार—या कि राकिया के असर की गहराई के अनुसार—अपना गुस्सा प्रकट कर रहा था। कुछ लड़ाई-झगड़े पर उतारू थे और कड़े तथा ज़ोरदार प्रस्ताव रख रहे थे, कुछ बहुत सतर्क थे और लक्ष्य तक पहुँचने के लिए बिना शोर और धूम-धड़क्के के चारों रास्तों से बढ़ने की बात सुझा रहे थे।

नाटे क़द के, लाल बाल, तीखे नक़्श और छटी हुई मूँछों वाले एक लड़ाकू आग़ा ने सब बातों से सहमत होते हुए कहा कि धरती पर और अपने ही क़स्बे में अपनी ऐसी बेइज़्ज़ती देख कर बड़ी शर्म आती है। त्राब्निक को और उसे बनाने वाले को कोसते हुए वह बोला, "क़स्बे को आग लगा देनी चाहिए जिससे कि दीवारों में बसे हुए चूहे तक जल मरें!" फिर वह सारे बोस्निया को कोसने लगा। गुस्से से लाल होते हुए उसने कहा, "सचमुच यह देश और देशों से बिल्-कुल अलग है। दुनिया में ऐसा कोई नहीं होगा जिसने इसे पैरों तले न रौंदा हो। एक हाथी की कसर थी, सो वह भी आ गया। उसको ये इसीलिए यहाँ ले आए कि यह अजूबा भी हमें देखने को न रह जाये। मैं तो—मैं तो बदूक़ लेकर बैठूँगा और फ़ीला जब मेरी दुकान के सामने आयेगा मैं पूरे बीस ड्राम सीसा उसकी खोपड़ी में दाग दूँगा; फिर वे मुझे चाहे चौक में सूली देते रहें।"

आग़ा की बात का सिर्फ़ एक आदमी ने रुँधे गले से अनुमोदन किया—और वह भी जब आ कर बैठा था तभी नशे में। और सबने बिल्कुल चुपचाप नाटे आग़ा की बात सुन ली। उससे और उसकी धमकियों से सब अच्छी तरह परिचित थे। वही बीस ड्राम सीसा वह और भी अनेकों की खोपड़ी पर दाग चुका था, लेकिन उसका निशाना बने हुए सब लोग जीवित थे, हँसते, खाते थे और इत्मीनान से धूप सेंकते थे। सब लोग यह भी जानते थे कि त्राब्निक की बंदूक़ का घोड़ा आसानी से नहीं उठाया जाता, लेकिन बंदूक़ जब चलाई जाती है तो बड़े गुप-चुप ढंग से।

लेकिन नाटा आग़ा सबकी चुप्पी से ज़रा भी नहीं सकपकाया और बढ़-बढ़ कर धमकियाँ देता रहा। धीरे-धीरे कुछ और लोग भी बातों में शामिल हो गये, लेकिन अधिक संयत स्वर से, और बोस्निया तथा उसके वज़ीर को गालियाँ देने लगे। अन्त में षड्यंत्र रचने का समय आ गया। अनेक प्रस्ताव सामने आये। कुछ लोग फ़ौरन किसी ज़ोरदार कार्रवाई के पक्ष में थे, यद्यपि ठीक-ठीक

नहीं बता सकते थे कि क्या कार्रवाई की जाये। कुछ दूसरे धीरे-धीरे सतर्कता से चल कर कुछ दूर भविष्य के बारे में निर्णय करना चाहते थे; तब तक के लिए उनकी राय थी कि त्राब्निक धीरज रखे और सब कुछ सहता चले।

किसी ने बात काटते हुए बिगड़ कर कहा, "कब तक धीरज रखते चलें? जब तक कि फ़ीला और बड़ा होकर हमारे घरों में घुस कर स्त्रियों पर हमला न करने लगे? जानते हो, हाथी की उम्र सौ बरस से भी ज़्यादा की होती है? कुछ समझते हो?"

एक पीले चेहरे वाले बुज़ुर्ग सौदागर ने शांत स्वर से कहा, "हाथी की होती होगी, उसके मालिक की तो नहीं होगी।"

इस बात पर कुछ सौदागरों ने गंभीरता से सिर हिला दिया। बाक़ी जो ज़्यादा गर्म हो रहे थे क्षण भर के लिए निरुत्तर हो गये। बातचीत फिर षड्यंत्रों की ओर मुड़ गयी।

लेकिन इस मजलिस में भी, एक तरफ़ बड़ी-बड़ी डींगों और दूसरी तरफ़ गुपचुप धमकियों के बावजूद कोई गंभीर या कारगर तरकीब नहीं सोची जा सका। जितने प्रस्ताव आये सभी ऐसे साहसभरे थे कि प्रस्तावकों को और कभी-कभी सुनने वालों को भी ख़ुश कर जाते थे; लेकिन निश्चय था कि अगले दिन सवेरे, दिन के खुले प्रकाश में, किसी को उनपर अमल करना न सूझता। और अगली शाम को बातों का और मनगढ़ंत योजनाओं का क्रम फिर चालू हो जाता। अगर कोई संयोगवश पिछली रात की योजना की याद दिला भी देता तो उसकी किसी को परवाह न होती; बल्कि याद ताज़ा हो जाने से और नयी योजनाएँ गढ़ने का मानो रास्ता खुल जाता। इसी तरह आल्यो और फ़ीले की कहानी का भी विकास हुआ।

सितम्बर की वह रात विशेष निर्मल और स्निग्ध थी। स्त्रियाँ मुरब्बे पका रही थीं और पुरुष आग के आसपास कहवा, राकिया और तम्बाकू लिये बैठे थे। अपना कहा हुआ हर शब्द उन्हें मीठा लग रहा था, जो कुछ वह आँखों से देख या हाथों से छू रहे थे सब उन्हें बड़ा प्यारा लग रहा था। जीवन आसान नहीं था, आज़ाद नहीं था और सुरक्षित तो बिलकुल नहीं था; फिर भी उसे भरा-पूरा बनाया जा सकता था, उसके बारे में सयानी और मज़ेदार बातें का जा सकती थीं।

एक ग्राग के ग्रासपास ग्रसाधारण शोर था। यहाँ कोई एक दर्जन दुकानदार जुटे हुए थे—सभी छोटे सौदागर ग्रौर इसीलिए सबसे ग्रधिक लड़ाकू तबीयत के! ग्राल्यो कज़्ज़ाज़ चार्शिया की एक छोटी लेकिन प्रसिद्ध रेशम की दुकान का मालिक था। दुकान में रेशमी थैले, कमरबंद डोरे ग्रौर रिबन बिकते थे; कुछ की बुनाई भी दुकान में ही होती थी। कज़्ज़ाज़ एक बड़े पुराने नामी ग्रौर शक्तिशाली ख़ानदान शाहबेगोविच की एक शाखा थे। लेकिन यह ख़ानदान ग्रब मिट चुका था। घटनाग्रों के फेर से कज़्ज़ाज़ परिवार की ज़मीन छिन गयी थी ग्रौर उन्हें शिल्प ग्रौर व्यवसाय में हाथ लगाना पड़ा था। पिछले पचास बरस से यह परिवार रेशम के सौदागर कज़्ज़ाजियों के संघ का सदस्य था, इसीलिए शाहबेगोविच के बदले उनका नाम ही कज़्ज़ाज़ हो गया था। वे लोग भलेमानुस ग्रौर कुशल कारीगर प्रसिद्ध थे। ग्राल्यो की भी ऐसी ही ख्याति थी लेकिन वह थोड़ा मनचला ग्रौर ज़िद्दी भी था। लम्बा ग्रौर गठीला बदन, पका लाल चेहरा, काली ग्राँखें ग्रौर महीन ग्रसमान दाढ़ी; ग्राल्यो एक साथ ही सीधा ग्रौर चालाक था; वह मज़ाक़िया प्रसिद्ध था; साहसपूर्वक ऐसी बातें कह जाता जो दूसरे कभी न कह पाते, ऐसे काम कर बैठता जिनका दूसरों को कभी साहस न होता; फिर भी कोई कभी ठीक-ठाक यह न तय कर पाता कि कब वह मज़ाक़ कर रहा है या कि कब दूसरे भी उसके साथ मज़ाक़ कर सकते हैं। कब वह चालाकी से सच कह रहा है ग्रौर कब वह सच के साथ खेलवाड़ करने की चालाकी दिखा रहा है।

बहुत दिन पहले, जवानी में मांटेनिग्रो की लड़ाई में उसने सुलेमानपाशा की सेना में काम किया था। उसकी बहादुरी ग्रौर उसकी चतुराई दोनों प्रसिद्ध थे।

ग्राल्यो ग्राकर ग्राग के पास बैठा ही था कि लोगों ने उससे सवाल पूछने शुरू कर दिये।

"ग्राल्यो, हम लोगों में यह बहस हो रही थी कि दुनिया में सबसे बुरी ग्रौर भयानक बात क्या है; सबसे ग्रच्छी ग्रौर मीठी बात क्या?"

"सबसे बुरी बात है ग्राँधी की रात में मांटेनिग्रो की पहाड़ियों में मांटेनिग्रो सिपाहियों से घिर जाना—उनकी एक टुकड़ी सामने ग्रौर दूसरी टुकड़ी पीछे।"

इतना तो श्राल्यो बिना सोचे-समझे ऐसे कह गया मानो उसे ज़बानी याद हो। फिर वह एकाएक रुक कर चुप हो गया श्रौर उसके माथे पर सोच के बल पड़ गये। लोगों ने हठ किया कि वह दूसरे सवाल का जवाब दे लेकिन श्रपनी काली चमकती हुई श्राँखों में शरारत-भरे हुए वह उनकी श्रोर देखता रहा। फिर सँभल कर बोला :

"सबसे मीठी बात ?…सबसे मीठी बात ?…तुम्हीं बताश्रो…सबसे मीठी बात क्या हो सकती है -- कोई बेवकूफ़ ही ऐसा सवाल पूछ सकता है; हर समझदार श्रादमी जानता है कि सबसे मीठी बात क्या है। वह कोई पूछता नहीं। वह तो जानी हुई बात होती है। यह भी कोई पूछने की बात है भला ?"

लेकिन इस थोड़े-से हँसी-मज़ाक़ के बाद बात फिर फ़ीले पर श्रा कर टिक गयी। वही रोज़ वाली शिकायतें, धमकियाँ, डींगें। किसी ने राय दी कि चार्शिया के पाँच प्रतिनिधि जाकर वज़ीर से फ़ीले श्रौर उसके श्रमले की शिकायत करें।

दुबले-पतले दर्ज़ी तोसुन श्राग़ा ने जल्दी से राकिया का प्याला चढ़ा कर भारी साँस लेते हुए (राकिया की साँस बड़ी-बड़ी बातों के साथ मेल खाती है) कहा :

"चलो, सबसे पहले मैं जाने को तैयार हूँ।"

तोसनु श्राग़ा श्रादमी की परछाईं-भर था, पुराना पापी श्रौर ऊपर से बदनाम भी; पर उसका श्रहंकार इतना बड़ा था कि हर भावना पर छा जाता था, यहाँ तक कि डर पर भी। श्राग की लाल रोशनी में वह श्रौर भी थका-हारा, पीला श्रौर निर्जीव-सा दीख रहा था।

"श्रच्छी बात है, श्रगर तुम सबसे पहले हो तो, चलो, मैं कम से कम तीसरा तो हो ही जाऊँ !" श्राल्यो ने हँसते हुए कहा। श्रौर कई भी जल्दी-जल्दी राकिया के प्याले खतम करके एक दूसरे से होड़ करने लगे।

"मुझे भी शामिल कर लो।"

"मुझे भी !"

इस प्रकार थोड़ी देर सब डींगें हाँकते रहे श्रौर रोब गाँठते रहे। देर रात को जब सभा भंग हुई तब तक पक्की योजना बन गई थी श्रौर क़समें भी खा ली गई थीं कि श्रगले दिन पाँच चुने हुए श्रादमी तोसुन श्राग़ा की दुकान के सामने

मिलेंगे और साथ जाकर वज़ीर से मिलने की अनुमति चाहेंगे; वज़ीर को सारी बात बता कर फ़ीले और उसके ज़ालिम रखवालों के बारे में चाशिया की सच्ची भावनाएँ बतायेंगे और प्रार्थना करेंगे कि यह बोझ उनकी पीठ पर से उठा लिया जाये।

उस रात डींगें हाँकने वाले बहुत-से लोग अपने-अपने बिस्तर पर पड़े यह सोचते-सोचते जाग कर रात काट रहे थे कि क्या सचमुच उन्होंने नशे की झोंक में क़सम खा ली थी कि जलालिया का सामना करेंगे, या कि सब एक सपना था।

३

अगले दिन सवेरा हुआ और नियत समय हो गया तो पाँच में से केवल तीन आदमी तोसुन आग़ा की दुकान के सामने इकट्ठे हुए बाक़ी दोनों का कहीं कोई पता नहीं लगा। वज़ीर की डयोढ़ी के रास्ते में तीन में से भी एक के पेट में इतने ज़ोर का दर्द हुआ कि वह सड़क के किनारे के घने बाग़ के झुरमुट में घुस गया—और फिर दोबारा दिखाई नहीं दिया बाक़ी रह गये आल्यो और उसके साथ तोसुन आग़ा।

दोनों साथ-साथ एक ही बात सोचते हुए चल रहे थे : कि उन्हें इस खतरनाक और बेवक़ूफ़ाना रास्ते से लौट जाना चाहिए। लेकिन कोई भी अपना विचार शब्दों में प्रकट करने को तैयार नहीं था, इसलिए दोनों बढ़ते चले जा रहे थे। इस प्रकार मन ही मन एक दूसरे के प्रति खीझ और संदेह से कटे हुए दोनों लाश्वा के पुल तक पहुँच गये : पुल के पार डयोढ़ी थी। तोसुन आग़ा थोड़ी देर हिचकिचाया और रुक गया; आल्यो पुल की ओर बढ़ता गया। उसने सोच रखा था कि पुल तक पहुँच कर ही रुकेगा ताकि दोनों एक बार फ़ैसले पर नये सिरे से विचार कर सकें जिसके कारण उन्हें अपनी जान से हाथ धोना पड़ सकता है। ऊँची आवाज़ें सुन कर वह चौंक कर अपने विचारों से जागा। पुल के दूसरे छोर

पर खड़े हुए दो पहरेदार एक साथ ही चिल्लाकर कुछ कह रहे थे।

पहले तो आल्यो ने समझा कि वे उसे पुल पर से पीछे हट जाने को कह रहे हैं। इससे खुश हो कर वह मुड़ने ही जा रहा था कि उसने देखा, वे लोग इशारों से उसको बुला रहे हैं :

"ए ! इधर आओ।"

ड्योढ़ी पर पहरा बढ़ा दिया गया था मानो किसी का इंतजार हो। दाढ़ी-मूँछ मुड़ाये हुए दोनों पहरेदार आल्यो की ओर बढ़ आये। वह डर गया, लेकिन अब कोई चारा नहीं था; चारा नहीं था इसलिए वह दोस्ती दिखाता हुआ तेज़ी से उन दोनों की ओर बढ़ने लगा।

उन्होंने कड़ककर पूछा, "कहाँ जा रहे हो ? क्या चाहिए ?"

आल्यो ने सहज और मासूम स्वर में जवाब दिया कि मैं तो अपने दोस्त आलोविच परिवार से मिलने जा रहा था—कुछ खूबानियों के लिए—लेकिन रास्ते में एक पड़ोसी मिल गया था, उसके साथ बातें करते-करते अनजाने ही इतनी दूर इधर निकल आया। और यह कहानी सुनाकर वह मानो अपने पर और अपनी बेवकूफ़ी पर हँस दिया; एक खुली और ज़रूरत से ज़्यादा आत्मीयता-भरी हँसी। पहरेदारों ने क्षण भर संदेह से भरे उसकी ओर देखा, फिर दोनों में जो उम्र में बड़ा था उसने कुछ नर्म पड़ कर कहा, "चलो, अपना रास्ता देखो !"

आल्यो अब तक अपने आरंभिक डर से छुटकारा पा कर सँभल गया था। उसका मन हो रहा था कि इन जवानों से थोड़ी बातचीत करे; जिस ख़तरे से वह बच गया था उस पर थोड़ा हँस ले।

"अच्छा, दोस्तो, अपना ख़याल रखो और फ़र्माबरदार बने रहो ! ख़ुदा आपके मालिक को लंबी उम्र दे !"

जलालिया के सिपाही, जिन्हें किसी की जान लेने में ज़रा भी झिझक नहीं रही थी, अपने रूखे चेहरों पर एक मुस्कान फैलाये उसकी ओर ताकते रहे।

वज़ीर के बाग़ के बाहर की दीवार के पास से पहाड़ी पर चढ़ते हुए आल्यो ने एक बार फिर मुड़कर सिपाहियों की ओर देखा और मुस्करा दिया लेकिन सिपाही उसकी तरफ़ नहीं देख रहे थे। फिर आल्यो ने लाश्वा नदी के दूसरे किनारे पर नज़र डाली जहाँ से तोसुन आग़ा पिछली रात की सब प्रतिज्ञाएँ तोड़

कर श्रौर श्रपने दोस्त को मुसीबत में छोड़ कर रफ़ू चक्कर हो गया था।

दोनों श्रोर ऊँची बाड़ के बीच से गुज़रती हुई ऊबड़-खाबड़ पगडंडी के सहारे चढ़ता हुश्रा श्राल्यो पहाड़ी की चोटी पर पहुँच गया। वहाँ नाशपाती के एक लंबे पेड़ के नीचे, जिसकी पत्तियाँ श्रभी से पीली हो गयी थीं, थोड़ी-सी समतल जगह थी। वहाँ बैठ कर श्राल्यो ने तंबाकू की थैली निकाली श्रौर बट कर एक सिगरेट तैयार किया। नीचे वज़ीर का महल लाश्वा नदी के दाहिने किनारे की घाटी में छिप गया था। त्राव्निक दूर पर एक काली श्रौर भूरी छतों का बेतरतीब ढेर-सा दीख रहा था जिसकी चिमनियों से धुएँ के नीले श्रौर सफ़ेद डोरे बल खाते हुए उठ रहे थे। कभी दो-तीन डोरे मिल कर, एक दूसरे से उलझ कर फैलते-सिकुड़ते श्राकाश में घुल जाते थे।

सिगरेट के कुछ कश लगा लेने के बाद ही श्राल्यो कुछ शांत हुश्रा; तब उसे ध्यान श्राया कि सवेरे उसके साथ कितना बड़ा धोखा किया गया श्रौर चार्शिया ने उसे श्रकेले इतने बड़े जोखम में डालकर उसके साथ कितना बुरा किया।

सारे मामले से कुल मिलाकर उसका कोई वास्ता नहीं था, फिर भी सबने मिलकर उसी को फँसा दिया श्रौर जिसका सामना वे ख़ुद नहीं कर सकते थे उसका सामना करने की ज़िम्मेदारी उसके सिर मढ़ दी।

इस ढाल की इस ऊँचाई पर इस छोटी-सी खुली जगह बैठे-बैठे श्राल्यो ने श्रपने गाँव को नयी श्राँखों से देखा। दिन में ऐसे वक़्त श्रपनी दुकान के श्रलावा श्रौर किसी जगह गये उसे वर्षों हो गये थे; वर्षों बाद वह इस तरफ़ श्राया या इस पहाड़ी पर चढ़ा था। सब कुछ दूर श्रौर श्रपरिचित दीख रहा था श्रौर निरंतर नये श्रौर श्रसाधारण विचार उसके मन में उमड़ रहे थे; उसकी भावनाश्रों पर बलपूर्वक छा रहे थे। समय श्रलक्षित तेज़ी से बीता जा रहा था। श्राल्यो सारी दोपहर श्रौर तीसरे पहर भी वहीं बैठा रहा। कौन कह सकता था कि सितंबर के इस मधुर दिन में क्या-क्या विचार उस कज़्ज़ाजी खोपड़ी में से गुजर रहे हैं जिसमें साधारणतया सच्चाई श्रौर मज़ाक़ लगातार ज्वार-भाटे की तरह उमड़ते-उतरते एक दूसरे की निशानियाँ मिटाते रहते थे। श्राल्यो गंभीरता से सोच रहा था, जैसा उसने पहले कभी नहीं किया था: उस दिन सवेरे की घटनाश्रों के बारे में, फ़ीले के बारे में, चार्शिया के, बोस्निया के, साम्राज्य के बारे में।

उसकी खोपड़ी गहरे चिंतन की आदी नहीं थी; लेकिन आज मानो बिजली की एक हल्की कौंध उसके मस्तिष्क को भेद गई थी और उसके सामने एकाएक स्पष्ट कर गयी थी उसके क़स्बे की, देश की, और साम्राज्य की यथार्थता—जिस क़स्बे, देश, और साम्राज्य में वह, आल्यो, और उसके जैसे हज़ारों प्राणी रहते थे, कुछ उससे थोड़े और बेवकूफ़ या थोड़े समझदार, बहुत-से उससे भी कहीं ज़्यादा ग़रीब और कुछ थोड़े अमीर। क्या ज़िंदगी थी उनकी ! सूनी, प्रतिष्ठारहित ज़िंदगी, बेवकूफ़ों की तरह जी गयी और बहुत महँगे दामों पाई गयी—और सच पूछो तो उस क़ीमत के लायक बिल्कुल नहीं, बिल्कुल नहीं···और ये सब विचार मिलकर एक सिद्धांत का सूत्र बन गये : लोगों में न दम है न हौसला।

इन्सान डर से अभिशप्त है, और इसलिए कमज़ोर है। चार्शिया में हर कोई डरा हुआ है, कोई ज़्यादा, कोई कम; लेकिन लोगों के पास अपना डर छिपाने की, अपने या दूसरों के सामने उसकी सफ़ाई देने की सैकड़ों तरकीबें हैं। और इन्सान को ऐसा डरपोक नहीं होना चाहिए--कभी नहीं होना चाहिए। उसे होना चाहिए निडर, अभिमानी, हमेशा अपनी ताक़त पहचानने वाला; उसे कभी किसी के हाथों बेवकूफ़ नहीं बन जाना चाहिए। एक बार भी वह बिना भड़के (क्योंकि आग उसके भीतर है ही नहीं), एक मामूली-सी बेइज़्ज़ती भी सह ले, बस इसी से वह ख़त्म हो जायेगा। हर कोई उसके सिर पर सवार हो जायेगा—सिर्फ़ सुल्तान और वज़ीर ही नहीं, वज़ीर के प्यादे और फ़ीले भी और अदना से अदना जानवर—यहाँ तक कि जूँ और खटमल भी। बोस्निया का कभी कुछ नहीं हो सकता। जब तक उस पर किसी जलालुद्दीन का राज्य रहेगा। आज जलालुद्दीन है कल कोई दूसरा हो जायेगा, उससे भी बुरा और काले दिल का। इन्सान को चाहिए कि बुराई को मार गिराये, तन कर खड़ा हो और किसी को पास न फटकने दे। किसी को ! लेकिन ऐसा क्या हो सकता है ? इस चार्शिया में जिसमें ऐसे पाँच आदमी नहीं मिल सकते जो वज़ीर के मुँह पर एक साफ़ बात कह दें ? नहीं, कुछ नहीं हो सकता ! और न जाने कब से यही हाल चला आ रहा है; जो अभिमानी हैं उनकी रोज़ी और आज़ादी बहुत जल्दी छिन जाती है; और जो सिर झुका कर अपने को डर को सौंप देते हैं वे वैसे ही मिट जाते हैं—उनका डर ही उन्हें खा जाता है। जो लोग संयोग से जलालिया के ज़माने में जी रहे हैं उन्हें दोनों में से एक चीज़ चुननी होगी। यानी उनको,

जिनमें चुनने का दम है।

और इतना दम किसमें है ?

तो यह है असली सवाल। और वही, जो यहाँ बैठा यह सब सोच रहा है, वह भी इसका क्या जवाब दे सकता है ? वह हमेशा अपनी बहादुरी पर ज़ोर देता रहा है, डींग हाँकता रहा है कि वह निडर होकर तीन आदमियों का, दस आदमियों का, आधे त्राब्निक का मुक़ाबला कर सकता है, और त्राब्निक के भी दिलेर आधे का। दूसरे भी उसकी तारीफ़ करते रहे हैं। तो फिर ? रात भी आग के पास बैठा हुआ वह निडर था और इस समय भी वह अपने को उतना ही निडर समझ रहा है। तो फिर जब वह पहरेदारों से बात कर रहा था तब उसका साहस कहाँ गया था ? उस समय तो एक डर का भूत उसके सिर पर सवार हो गया था और उसकी लड़खड़ाती टागें बड़ी मुश्किल से उसकी पिछाड़ी का बोझ पहाड़ी के ऊपर तक ढो सकी थीं ! चारों निकम्मे एफ़ेंदी उसे दग़ा दे गये थे—तो क्या इसी से सच सच नहीं रहा था, या कि इन्साफ़ नहीं रहा था ? नहीं; बात यही है कि त्राब्निक में या उसक चार्शिया में अब न हौसला रह गया है न दम, जो थोड़ी-सी साँस बाक़ी है वह भी हा-हा, हू-हू में, या अपने पड़ोसियों को धोखा देने, देहातियों को उल्लू बनाने और टके जोड़ने में ख़र्च हो जाती है। इसीलिए वे सब जैसे जी रहे हैं जी रहे हैं; इसीलिए उनकी ज़िदगी इतनी घटिया है, ज़लील है ··

इन सब, और ऐसे ही अनेक विचारों के पीछे आल्यो मन की कई अँधेरी गलियों में बहुत देर तक भटकता रहा; किसी प्रश्न का कोई हल उसे नहीं मिला।

भेड़ों की गल-घंटियों की आवाज़ से ही वह विचारों से चौंक कर जागा। गड़रिये अपने रेवड़ पहाड़ी से नीचे क़स्बे की ओर ले जा रहे थे। धुँधलके में वह भी धीरे-धीरे उतरता हुआ क़स्बे की ओर चला। पहाड़ी से उतरते-उतरते उसके उलझे हुए विचारों का ज्वार भी मानो उतर गया। वह फिर वही पुराना आल्यो रह गया, चार्शिये का पुराना दिल्लगीबाज़। हर क़दम के साथ एक तीव्र इच्छा उसके मन में उभरने लगी कि ईंट का जवाब पत्थर से दे, चार्शिया वालों को उनकी थोथी शेख़ियों और डरपोकपने का पूरा मज़ा चखाये। इस विचार से ही उसके चेहरे पर उसकी पुरानी शरारत-भरी मुस्कान फैल गयी।

कुछ छिप कर अपने घर तक पहुँचने के लिए वह तंग गलियों में से गुज़रता हुआ बढ़ने लगा। सबको बेवकूफ़ बनाकर बदला लेने की एक योजना उसके मन में पक रही थी।

घर पर उसकी पत्नी और बच्चों ने आँसूभरे आनंद के साथ उसका स्वागत किया। उनका दिन गहरी चिंता में बीता था। आल्यो ने डटकर खाना खाया और गहरी नींद सो गया। अगले दिन सवेरे जब वह घर से निकला तो पिछली शाम की चिंताओं की कोई छाप उसके चेहरे पर नहीं थी। बल्कि तब तक वह वज़ीर की ड्योढ़ी की अपनी सैर और वज़ीर के साथ अपनी मुलाक़ात की पूरी कहानी तैयार कर चुका था।

चार्शिया के व्यापारियों ने उससे पहले दिन सवेरे अपनी-अपनी दुकानें खोलते ही लक्ष्य किया था कि आल्यो कज़्ज़ाज़ अपनी दुकान पर नहीं आया है। थोड़ी ही देर बाद उन्हें यह खबर भी मिल गयी थी कि तोसुन आग़ा भी लाश्वा नदी के पुल से अधमरा-सा वापिस आ गया था और आल्यो आगे बढ़ कर वज़ीर के सिपाहियों के बीच ओझल हो गया था। सभी सौदागर पड़ोसी बहुत घबराये हुए-से रह-रह कर आल्यो की दुकान की ओर झाँकते रहे थे: कुछ कारीगरों ने अपने शागिर्दों को पड़ताल करने भी भेजा था।

शाम को चार्शिया बंद हुआ तो सब लोग आल्यो के बारे में गंभीर दुश्चिंताएँ कर रहे थे, इसलिए सवेरे ही जब स्वस्थ और मुस्कुराता हुआ आल्यो उनकी नज़रों के सामने से गुज़रा और दुकान खोल कर रोज़ की तरह शांति से पीले रेशम का थान खोल कर दुकान के सामने फैलाने लगा तो सबको बड़ी सांत्वना मिली। इतना ही नहीं, कल सब लोग आल्यो के भाग्य (यानी अपने भाग्य) के बारे में जैसे चिंताओं से भरे हुए थे वैसे ही आज सब दावा कर रहे थे कि उन्हें शुरू से पता था कि परिणाम अच्छा होगा क्यों कि पागल के कंधों पर पागल का सिर ही सुरक्षित रहा करता है। कौतूहल से भरे निठल्ले लोग आल्यो की दुकान के सामने चक्कर काट रहे थे। हर किसी से आल्यो ने मुस्कुरा कर दुआ-सलाम की, लेकिन उस चालाकी-भरी भोली मुस्कान से अधिक किसी को कुछ नहीं मिला। सारा दिन बीत गया। चार्शिया कौतूहल से भरा जा रहा था, लेकिन आल्यो चुप्पी साधे था। जब दिन ढलने लगा तभी जा कर आल्यो ने अपने एक पड़ोसी को बड़े गुपचुप ढंग से

ग्रौर गोपनीयता की शपथ दिला कर पिछले दिन का क़िस्सा बताया। फुस-फुसाते स्वर में ग्राल्यो ने कहा, "तुम्हें मैं सारी बात बता सकता हूँ क्यों कि मुझे पूरा भरोसा है कि तुम किसी को बताग्रोगे नहीं। सच कहूँ तो जब मैंने देखा कि इधर मैं सिपाहियों के साथ उलझ गया हूँ ग्रौर उधर तोसुन ग्राग्रा नुक्कड़ से ही खिसक गया है तब मैं थोड़ा घबड़ा तो गया, लेकिन फिर मैंने देखा कि ग्रब कोई छुटकारा नहीं है। इसलिए मैंने बहाना किया कि मैं तो ग्रपने ही काम से ग्रपने दोस्त ग्रालोविच परिवार से मिलने जा रहा था। लेकिन वे माने ही नहीं। बोले, 'हम सब जानते हैं; तुम ड्योढ़ी के भीतर जाने के लिए ग्राये थे ग्रौर इसलिए ड्योढ़ी का फाटक भी खुलवाया गया है।' वे मुझे हवेली के भीतर ले गये, पहले एक फाटक के पार, फिर दूसरे के, ग्रौर फिर एक बड़े ग्रँधेरे कमरे में। मैं हक्का-बक्का चारों ग्रोर देखता रहा, सोचता रहा कि किस तरह यहाँ से निकल सकूँ। वे लोग मुझे ग्रकेला छोड़ गये। मैं बड़ी देर तक इंतज़ार करता रहा, तरह-तरह के विचार मन में उठते रहे, मैं सोचता रहा कि न जाने कभी फिर ग्रपने घर की देहरी देखना भी नसीब होगा या नहीं। दो-तीन दरवाज़े मुझे दीख रहे थे लेकिन सब बंद थे। एक में चाबी के सुराख़ से धूप जैसी तेज़ रोशनी ग्रा रही थी। मैं इसी दरवाज़े की ग्रोर बढ़ कर सुराख़ में से झाँकने के लिए झुका; सुराख़ से मैंने ग्राँख लगायी ही थी कि दरवाज़ा एकाएक खुल गया ग्रौर मैं मुँह के बल एक बड़े जगमग कमरे में जा गिरा। फिर उठ कर देखा : क्या ठाठ थे उस कमरे के! शानदार कालीन ग्रौर ऐश-ग्राराम के सारे इंतज़ाम। मुश्क ग्रंबर की ख़ुशबू से कमरा भर रहा था, झलमल पोशाक पर बख़्तर पहने दो पहरेदार खड़े थे; उनके बीच में कुछ दूरी पर जलालुद्दीन बैठा था। मैंने फ़ौरन पहचान लिया। उसने मुझसे कुछ पूछा लेकिन मैं इतना घबराया हुग्रा था कि सुन कर भी कुछ सुन नहीं पाया। उसने फिर रेशम जैसी चिकनी ग्रावाज़ में पूछा, 'तुम कौन हो, क्या चाहते हो?' मैं लड़खड़ाती हुई, मानो मँगनी की ज़बान से टूटा-फूटा कुछ कहने लगा, 'सरकार, देखिए सरकार, फ़ीले के कारण, बात यह है, सरकार, कि हम लोगों ने तय किया था, कि ग्रापके सामने हाज़िर हो कर फ़रियाद करेंगे...'

"वज़ीर ने उसी चिकनी ग्रावाज़ में मानो बड़ी दूर से बोलते हुए, पूछा,

'तुम्हारे साथ और कौन है ?' वह एकटक मेरी ओर देख रहा था।

"मेरा तो सच, लहू जम गया। मैंने मुड़ कर देखा कि कम से कम वह कमबख्त तोसुन तो मेरे साथ हो, हालाँ कि मैं जानता था कि कोई नहीं है और सब मुझे दग़ा देकर अकेला छोड़ गये हैं, कि इस मुसीबत का सामना मुझे अकेले ही करना पड़ेगा। फिर मेरे भीतर कुछ हो गया। मैंने हौसला बाँधकर वज़ीर की ओर देखा और फिर सीने पर हाथ रखते हुए सिर झुका-कर (मानो बहुत दिन से अभ्यास कर रखा हो) कहना शुरू किया :

" 'हुज़ूरे आला, मुझे सारे चार्शिया ने इसलिए भेजा था कि आपके कारिन्दे से कहकर आप तक अपनी फ़रियाद पहुँचायें (आपको तकलीफ़ देने के लिए उतनी जुर्रत कोई कैसे कर सकता ?) कि आपका यह फ़ीला हमारे क़स्बे की शान और रौनक़ है और चार्शिया को इस बात से बड़ी ख़ुशी होगी कि आप उसकी जोड़ी भी मँगवा लें ताकि सारे बोस्निया के आगे हम फ़ख्र कर सकें। और यह भी होगा कि फ़ीला भी इतना अकेला और उदास नहीं रहेगा। हम लोग तो उससे इतने हिल-मिल गये हैं कि ख़ुद अपने पालतू जानवरों को इतना प्यार नहीं करते जितना उसको। चार्शिया ने यही कहने और फ़रियाद करने के लिए मुझे भेजा था। क्या करना ठीक होगा यह तो हुज़ूर ज़्यादा जानते हैं और हुज़ूर फ़ैसला करेंगे। लेकिन चार्शिया की ओर से मुझे यह अर्ज़ करना है कि आप दो या तीन या चार भी और मँगा लें तो हम पर कोई बोझ नहीं पड़ेगा। और हम लोगों की यह फ़रियाद है कि आप हम लोगों के बारे में झूठे या हमारा बुरा चाहने वाले लोगों की फैलायी हुई अफ़वाहों पर यकीन न करें। ऐसे लोगों से चार्शिया का कोई वास्ता नहीं है और न ही होगा। मैंने आपके सामने पेश होकर आपको बिला वजह तकलीफ़ दी इस कुसूर के लिए हुज़ूर माफ़ फ़रमायें।'

"और भी बहुत कुछ मैंने कहा—न जाने कहाँ से मुझको इतनी बातें आ गयीं। और अपनी बात पूरी करके मैंने फ़र्श तक झुककर वज़ीर का पहुँचा चूमा। वज़ीर ने अपने प्यादे से कुछ कहा जो मैं ठीक सुन नहीं पाया और उठकर भीतर चला गया। लेकिन उसने कुछ अच्छा ही कहा होगा क्योंकि सिपाही जब मुझे उस अँधेरे कमरे और फिर आँगन में लाये तो मुझसे बड़ी अच्छी तरह पेश आये। आँगन में वज़ीर के दस-बारह कारिंदे थे जो सब

मेरी ओर देख कर मुस्करा दिये मानो मैं कोई जज होऊँ। दो ने आगे बढ़कर मेरे एक हाथ में अच्छे तम्बाकू का डिब्बा और दूसरे में मिठाइयों की पोटली पकड़ा दी और इस तरह मुझे सदर फाटक तक ले आये।

"सच मानो, दोस्त, पुल को और लाश्वा नदी को देखकर मुझे लगा कि मुझे दूसरी ज़िंदगी मिल गयी है! यों मैंने अपनी जान बचायी। अगर बात चार्शिया वालों के या उनके साथ होती जो मेरे साथ चले थे तब तो मुझे दुबारा सूरज की रोशनी देखना नसीब न होता, न मेरी दुकान के किवाड़ फिर कभी खुलते! लेकिन यह सब किसी को बताना नहीं, तुम्हारी जान की क़सम··· लोग कैसे हैं, तुम तो जानते ही हो।"

पड़ोसी ने कहा, "ख़ूब जानता हूँ! तुम इत्मीनान रखो। लेकिन तुम्हारा क्या ख़्याल है, वज़ीर सचमुच एक और हाथी मँगवा लेगा?"

आल्यो ने कंधे सिकोड़ कर दोनों हाथ फैला दिये।

"अब मैं क्या जानूँ। यह तो ख़ुदा ही जानता है। और इसकी फ़िक्र भी चार्शिया करे, मुझे क्या! मेरे साथ जो गुज़री उसके बाद मैं तो कभी वज़ीरों और फ़ीलों से कोई वास्ता रखने से रहा।"

"हाँ, हाँ, सो तो है," लंबी साँस लेकर पड़ोसी ने कहा। उसने कोशिश की कि आल्यो कुछ और भी कहे लेकिन आल्यो मुस्कुरा कर चुप हो गया।

कहानी समाप्त कर के आल्यो जब अपने दोस्त से अलग हुआ तब वह जानता था कि जो कुछ उसने किया है वह चार्शिया में ढिंढोरा पिटवा देने से कुछ कम नहीं होगा। और उसका अनुमान ठीक भी था। दिन छिपे तक चार्शिया में शायद ही कोई दुकान बची होगी जिसे वज़ीर से आल्यो की मुलाक़ात का पूरा ब्यौरा सुनने को न मिल गया हो।

अगले कई दिनों में आल्यो की कहानी दुकानों में और शरत् कालीन साँझ के अलावों के आसपास न जाने कितनी बार सुनायी और दोहरायी गयी होगी। कुछ इस बात पर नाराज़ होते थे कि इस पागल और कीना रखने वाले आदमी ने सारे चार्शिया को मुसीबत कर दी; कुछ आल्यो की तारीफ़ करते हुए उनको कोसते थे जिन्होंने पहले तो योजना बनायी और फिर ऐन मौक़े पर दग़ा दे गये। कुछ दूसरे अपने को सारी बात से अलग रखना चाहते हुए फ़ैसला देते कि जब ऐरे-गैरे दर्ज़ी तक सार्वजनिक मामलों में टाँग अड़ाने लगे, यहाँ की फ़रि-

याद लेकर वज़ीर के पास तक पहुँचने लगे, तब ऐसी हरकतों पर अचंभा नहीं होना चाहिए।

कानों-कान फैलती हुई कज्ज़ाज़ की कहानी हर बार बदलती हुई हर किसी तक पहुँच गयी। और आल्यो खुद चुप लगाये रहा; वह न किसी की बात काटता, न किसी की ताईद करता। अलाव के पास कभी कोई उसे टोककर पूछता भी तो वह दाढ़ी पर हाथ फेरता हुआ मुस्कुरा देता और कहता :

"चार्शिया ने मुझे एक सबक सिखाया। मैं अपने ढंग से उसका शुक्रिया अदा कर रहा हूँ।" और वह सीने पर हाथ रखकर झुककर सलाम करता। लोग इससे और कुढ़ते और वह सुन न रहा होता तो यह भी कहते कि आल्यो बड़ा बेवकूफ़ है और उसके साथ गंभीर बातचीत हो ही नहीं सकती।

जब त्राब्निक के छोटे सौदागर आग के आसपास बैठ कर आल्यो और उसकी साहस-यात्रा की चर्चा कर रहे थे, तब एक दूसरे अलाव के आसपास अधिक अमीर और प्रतिष्ठित बड़े व्यापारियों का एक और दल इन्हीं मामलों पर अपने ढंग से बातचीत कर रहा था। यह मंडली चार्शिया के मुखियाओं की थी।

यहाँ न राकिया चल रही थी, न हँसी-मज़ाक़ था; यहाँ नपे-तुले फ़िकरे कहे जा रहे थे जिनके शब्दार्थ से कहीं अधिक महत्व बातचीत की चुप्पियों, इशारों और ओठों के कसाव का था। इस मंडली के सभी लोग अधिक उम्र के, पके बालों वाले, शांत और सबके सब बहुत संपन्न थे।

यह मंडली भी फ़ीले को लेकर ही परेशान थी। लेकिन उनकी बातचीत के शब्द साधारण और मधुर थे, ऐसे जिनका अपने आप कोई ख़ास अर्थ नहीं था और जिनका आशय उसके साथ के इशारों और मुद्राओं से ही समझा जा सकता था। चार्शिया के ऊँचे वर्ग की असली भाषा यही मुख-मुद्राओं और इशारों की भाषा थी।

चार्शिया फ़ीले से अपने बचाव के लिए जो निर्णय करेगा वह बिना धमकियों और शपथों के इन्हीं लोगों के द्वारा किया जायेगा। फ़ीले की समस्या का अगर कोई हल हो सकता था तो उसे चार्शिया के ये बुज़ुर्ग अमीर लोग ही पा सकते थे। क्योंकि इस समस्या के हल के लिए चालाकी की ज़रूरत थी; और चालाकी और समृद्धि का पुराना साथ है; चालाकी संपत्ति के आगे-आगे

चलती है और साथ-साथ भी।

४

इस तरह चार्शिया के लोग अपनी दुकानों में, बग़ीचों में और अलावों के आसपास हँसी-मज़ाक़ करते और क़िस्से-कहानियाँ सुनाते हुए फ़ीले को और जो उसे त्राव्निक लाया उसको कोसते हुए दिन काट रहे थे। और रोज़ हत्या की नयी-नयी तरकीबें सोचा करते थे।

अकेले बोस्निया में ही क्यों, दुनिया में ऐसी गालियाँ और गुपचुप साज़िशें कहीं भी बहुत दिन बातों तक सीमित नहीं रह सकतीं। कुछ दिन निरी बेकार जान पड़ने वाली बातचीत होती रहती है; निरे शब्द, हाथों के इशारे, जबड़ों या ओठों का फड़कन, भिचे हुए दाँतों की किचकिचाहट। लेकिन फिर एक दिन एकाएक न जाने कब और कैसे यह सारा ज़बानी जमा-खर्च घना होकर एक हरकत का, घटना का रूप ले लेता है। अक्सर ऐसा होता है कि सयाने समझदार बुज़ुर्गों के सतर्क विचारों और इरादों को किसी नौजवान का जोश और हौसला अभिव्यक्ति दे देता है।

अखरोट पकने लगे थे। पाया गया कि फ़ीले को त्राव्निक के ताज़ा रसीले अखरोट बहुत पसन्द हैं। वह आकर डालें पकड़ कर हिलाता, नीचे गिरते हुए हर छिलके के भीतर से गिरी निकल कर बाहर गिर पड़ती; फ़ीला उन्हें सूँड़ से उठाकर चबाता और बड़ी सफ़ाई से बचा हुआ छिलका अलग करके थूकता हुआ दूधिया गिरी को फिर से चबाकर निगल लेता।

लड़के अक्सर सड़क पर अखरोट फेंकते; फ़ीला अपना बेडौल बड़ा सिर झुका कर बड़ी सफ़ाई से उन्हें उठा लेता। फिर एक दिन एक अजीब घटना हुई। एक लड़के ने एक अखरोट तोड़ कर आधी गिरी निकाल कर उसकी जगह एक ज़िंदा मधुमक्खी रख कर दोनों आधों को फिर जोड़ दिया और फ़ीले के आगे फेंक दिया। फ़ीले ने अखरोट उठा कर तोड़ा और एकाएक अजीब आवाज़ें

निकालता हुआ सिर इधर-उधर झटकता भागने लगा। रखवाले पीछे रह गये; फ़ीला लाश्वा नदी तक पहुँच कर बहुत देर तक पानी पीता रहा। और उसके बाद ही कुछ शांत हुआ। रखवाले यही समझते रहे कि उसे किसी मक्खी ने काट खाया है। इस प्रकार यह क्रूरता और चालाकी-भरी चाल अकारथ गयी। अक्सर ऐसा होता कि फ़ीला अखरोट के साथ मधुमक्खी को भी चबा डालता और बेझिझक निगल जाता। लेकिन यह तो शुरुआत थी; लोगों की घृणा दिन-दिन भयानक होती हुई नये उपाय खोज रही थी।

बच्चों की इन शरारतों में बड़े भी दिलचस्पी रखते थे। लेकिन बड़ी होशियारी से और अपनी ओर ध्यान खींचे बिना।

जिस रास्ते से फ़ीला गुज़रता था उस पर अब लोग सेब फेंकने लगे—ऐसे-वैसे सेब नहीं बल्कि बड़े-बड़े सुन्दर सुनहरी सेब। लेकिन इनमें से किसी-किसी सेब में त्राव्निकियों ने एक टुकड़ा काटकर भीतर का हिस्सा निकालकर उसकी जगह पिसा हुआ शीशा और संखिया भर दिया था और ऊपर से कटा हुआ टुकड़ा फिर ऐसे जमा दिया था कि सेब साबुत दीखे। काँच बहुत बारीक पिसा हुआ होता था और संखिया की मात्रा भी थोड़ी होती थी। दूकान के दरवाज़ों से और बंद खिड़कियों से लोग फ़ीले पर नज़र रखते थे और ज़हर का असर होने का इंतज़ार करते थे। उन्हें बताया गया था कि यह ज़हर धीरे-धीरे असर करता है लेकिन इतना अचूक है कि बड़े से बड़े जानवर को भी चित्त कर देता है। त्राव्निकी लोग यह देखकर चकित थे कि एक हाथी को मारने के लिए कितने विष की ज़रूरत पड़ती है; फ़ीला मानो सब तरह का ज़हर पचा जाता था। रोज़ विष दिया जाने पर भी फ़ीला कुछ समय तक त्राव्निक के चार्शिया की सैर करने के लिए आता रहा। लेकिन सर्दियाँ शुरू हो जाने पर धीरे-धीरे फ़ीले का वज़न कम होने लगा और उसके पेट और अँतड़ियों में कष्ट के लक्षण भी दीखने लगे।

त्राव्निकियों को फ़ीले के आगे फल और मेवे डालने की मनाही कर दी गयी और कुछ दिन के बाद उसका चार्शिया की तरफ़ आना बिल्कुल बंद हो गया। उसे वज़ीर की ड्योढ़ी के आसपास ही थोड़ी देर टहलाया जाने लगा। इससे वह थोड़ा प्रसन्न होता दीखता; सावधानी से बर्फ़ पर पैर रखता हुआ वह गंभीरता से थोड़ी-सी बर्फ़ सूँड़ से उठा कर मुँह तक लाता और फिर ग़ुस्से

से फुंकार कर ग्राकाश की ग्रोर फेंक देता। धीरे-धीरे यह सैर भी छोटी होती गयी; रखवालों के उसे लौटाने की तैयारी करने से पहले ही फ़ीला ग्रपने-ग्राप तबेले की ग्रोर लौट कर पुग्राल पर लेट जाता ग्रौर बराबर पानी पीता हुग्रा कराह के स्वर निकालता रहता।

वज़ीर की ड्योढ़ी के भीतर क्या हो रहा है यह जानने को चार्शिया बहुत उत्सुक था। सीधे ख़बर पाने का कोई तरीक़ा नहीं था लेकिन एक मुख़बिर को बहुत-सी रिश्वत देकर उन्हें जो कुछ पता लगा वह यों था :

पहली बात यह कि फ़ीला दिन-रात लेटा रहता है ग्रौर 'ग्रगाड़ी ग्रौर पिछाड़ी दोनों से बह रहा है'। दूसरी बात यह कि ड्योढ़ी में नौकर-चाकर यह चर्चा कर रहे हैं कि 'हाथी की खाल की क़ीमत क्या होती होगी'; कुछ की राय थी कि वह हज़ारों की बिकेगी, लेकिन कुछ दूसरों का ख्याल था कि चमड़ी कमाने में ही एक साल लग जायेगा। चार्शिया के लोग ग्रसल बात पहचानने में बहुत तेज़ थे ग्रौर उन्होंने इस ब्यौरे का भी ग्रर्थ लगा लिया। इस ग्रच्छी ख़बर के लिए उन्हें जो खर्चा उठाना पड़ा उसमें उन्होंने कोताही नहीं की; ग्राशा भरी नज़रों से एक दूसरे की ग्रोर देखते हुए चुपचाप प्रतीक्षा करने लगे। उन्हें ग्रधिक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। एक दिन चार्शिया में एकाएक ग्रफ़वाह फैल गयी कि फ़ीला चल बसा।

'फ़ीला मर गया।'

ये शब्द पहले पहल किसने कहे, इसका किसी तरह पता नहीं लग सकता, चाहे कितनी पड़ताल कर ली जाये। यह वाक्य जैसे सामने रखा गया है उससे कोई समझेगा कि कभी ऐसी कोई साफ़ दो टूक घोषणा हुई होगी ग्रौर इसका स्वागत उत्साह के साथ किया गया होगा। लेकिन नहीं; चार्शिया के लोग कभी ग्रपने मनोभाव इस ढंग से नहीं प्रकट करते थे, कम से कम जलालिया के ग्रौर उसके फ़ीले के ज़माने में तो कभी नहीं। ऐसी ग्रभिव्यक्ति मानो उनके स्वभाव में ही नहीं थी, वे चाहते भी तो जानते ही नहीं कि यह कैसे किया जाये। पहाड़ों से घिरे हुए इस क़स्बे में, जिस पर जहाँ तक लोगों की स्मृति जाती थी तभी से किसी वज़ीर ग्रौर उसके ग्रमले का राज रहा, सीलन ग्रौर ठंडी हवाग्रों के बीच जन्म लेकर ग्रौर पल कर, निरंतर एक ऐसे डर की छाया में दिन काटते हुए, जिसका नाम-धाम तो बदलता रहता था लेकिन जिसका स्वभाव कभी नहीं

बदलता था, त्राब्निकी लोग चार्शिया के सैकड़ों रीति-रिवाजों के नीचे पीढ़ियों से दबे हुए थे। समय की गति का कोई ग्रसर इन पर नहीं पड़ता था। यहाँ तक कि कभी उनके दिलों में जीत की उमंग उठती भी थी तो एक ख़ास ऊँचाई तक ही उठ सकती थी; किसी-किसी में गले तक ग्राकर भी उमंग ग्रपनी जगह लौट जाती थी ग्रौर उसी एक पुरानी क़ब्रगाह में ग्रनंत काल से दबी हुई ग्रनेक दूसरी उमंगों, ग्ररमानों ग्रौर विरोध के प्रकारों के साथ पड़ी रह जाती थी।

यह भी इसी तरह हुग्रा कि ऐसे ही सुर में कहीं किसी ने फुसफुसा कर कहा कि फ़ीला मर गया, ग्रौर किसी छिपे हुए चश्मे के चट्टानों के भीतर ही भीतर बहने वाले ग्रौर सिर्फ़ ग्रावाज़ से पहचाने जा सकने वाले पानी की तरह ये शब्द चार्शिया में एक कंठ से दूसरे कंठ तक, एक मुँह से दूसरे मुँह तक बहते चले गये। खबर इसी तरह फैली; बोस्निया के इन रुँधे हुए गलों ग्रौर हमेशा के लिए भिंचे हुए ग्रोठों ने सारे शहर को सूचना दे दी: "फ़ीला मर गया।"

"मर गया?"

"मर गया, मर गया!"

जैसे गर्म तवे पर पानी की बूँद छनछनाती है उसी तरह ये शब्द चार्शिया में एक सनसनी-सी फैलाते हुए दौड़ गये। हर कोई सब कुछ जान गया; ग्रौर कुछ पूछने की ज़रूरत न रही। एक ग्रौर मुसीबत कहीं दफ़न हो गयी।

लेकिन चार्शिया जब इस सवाल के साथ उलझ रहा था कि फ़ीला कहाँ दफ़नाया जायेगा ग्रौर चिंतित होकर ग्रनुमान लगा रहा था कि इस सबकी प्रतिक्रिया वज़ीर पर क्या होगी तब एक दूसरे मुख़बिर ने, जो पहले विश्वस्त मुख़बिर से ज़्यादा विश्वस्त लेकिन कम महँगा था, एक रक़म लेकर चार्शिया को फ़ीले के बारे में एक दूसरा संवाद दिया। ग्रौर यह संवाद सच्चा था। फ़ीला ग्रभी जीवित है ग्रौर तेज़ी से स्वास्थ्य-लाभ कर रहा है। कई दिन पहले सच-मुच उसकी हालत बहुत ख़राब हो गयी थी लेकिन फिर वज़ीर के किसी चाकर ने उसे बन-तुलसी, चोकर ग्रौर तेल खिला कर ठीक कर दिया। ग्रब हाथी ठीक हो रहा था ग्रौर चल-फिर रहा था। वज़ीर की ड्योढ़ी में कारिंदे-कर्म-चारी बहुत ख़ुश थे; क्यों कि जैसे-जैसे हाथी जहर से मर रहा था वैसे-वैसे वे सब डर से मरे जा रहे थे। नये मुख़बिर ने, जिसकी सच्चाई के दाम पहले

मुख़बिर के झूठ से कम ही थे, ड्योढ़ी में मनायी जाने वाली इसी ख़ुशी का समाचार चार्शिया को दिया।

ख़ैर, यह तो हो ही सकता है कि चार्शिया कभी धोखा खा जाये।

जैसे पहली अच्छी ख़बर बिना किसी के कुछ कहे बड़ी तेज़ी से शहर में फैल गयी थी वैसे ही यह बुरी ख़बर भी फैल गयी। लोग एक दूसरे की ओर देखते और मुँह तनिक-सा बिचका कर आँखें झुका लेते।

केवल कोई-कोई नौजवान कड़ुवाहटभरे अचरज से पूछ बैठता, "ज़िंदा है?" जवाब में केवल हाथ का एक उलाहना-भरा इशारा ही मिलता, जवाब देने वाला मुँह फेर लेता।

हाथी सचमुच जीवित था। मार्च के शुरू में कई महीनों बाद पहली बार वह अपने तबेले से बाहर निकाला गया। चार्शिया ने एक दूत को नियुक्त किया कि वज़ीर की ड्योढ़ी तक जाकर हालात का सही-सही पता लगाये। यह दूत देखने में भोला था लेकिन यों बहुत होशियार और विश्वसनीय था। उसने हाथी को अपनी आँखों से देखा और लौटकर खबर दी कि वह सिकुड़ कर आधा हो गया है, उसका सिर भी छोटा और कोनेदार दीखने लगा है, चमड़ी के नीचे हड्डियाँ दीख रही हैं, आँखों के आसपास गहरे गड्ढे पड़ गये हैं जिससे आँखें बड़ी-बड़ी दीखने लगी हैं; चमड़ी झूल कर एक लबादे-सी दीखती है और लोम विरल होकर पीले-से दीखने लगे हैं। कई टहलुए हाथी के आसपास चक्कर काट रहे थे लेकिन वह वसंती धूप की ओर पीठ फेरे हुए ऐसे बैठा था मानो उसे चारों ओर की चहल-पहल से कोई मतलब न हो। तेज़ी से पिघलती हुई बरफ़ के बीच जहाँ-तहाँ सूखी पीली घास के चकत्ते दीखने लगे थे, इन्हीं को सूँघता हुआ हाथी लगातार अपना सिर इधर से उधर हिलाता बैठा था।

त्राव्निक में वसन्त के आगमन के साथ-साथ फ़ीला भी बाहर दीखने लगा, उसकी हालत धीरे-धीरे लेकिन निश्चित रूप से सुधर रही थी। दुगुनी घृणा से भरे हुए निराश चार्शिया के लोग उस दिन की प्रतीक्षा करने लगे जब फ़ीला पूरी तरह स्वस्थ होकर अपनी सैर फिर शुरू कर देगा और न जाने क्या-क्या नये उपद्रव करेगा।

फ़ीले के रखवालों ने, और ख़ास तौर से उसके काले महावत ने शुरू से मान रखा था कि चार्शिया के लोग जान-बूझ कर और लगातार फ़ीले को

ज़हर देते रहे हैं। जब वे दुबारा हाथी को टहलाने ले जाने लगे तो उनके चेहरे पर विजय का भाव स्पष्ट था। चार्शिया की ओर विषभरी आँखों से देखते हुए वे बदला लेने की अपनी योजनाएँ बना रहे थे। जाड़ों में फ़ीले की बीमारी के दौरान महावत ने वज़ीर से कहकर चार्शिया को सज़ा दिलाने की कोशिश भी की थी—इसीलिए कि इस तरह वज़ीर का अपना अमला सज़ा से बच जायेगा। लेकिन वज़ीर का ध्यान इस सबकी ओर नहीं था। कई दिनों से उसका ध्यान एक और ही स्थल पर केंद्रित था—सल्तनत के दूसरे छोर पर; और उसे फ़ीले की जान की उतनी चिंता नहीं थी जितनी खुद अपनी जान की।

जलालुद्दीन ने हुकूमत करने, फ़ैसले सुनाने, दंड देने और क़त्ल करने की अपनी अदम्य इच्छाएँ पूरी कर ली थीं। अगर बोस्निया के या उतमानी सल्तनत के सब जटिल प्रश्न बल से, रक्तपात से या आतंक से हल हो सकते तो जलालुद्दीन का शासन भी सफल माना जाता। लेकिन सल्तनत की समस्याएँ हल करने के लिए दूसरे गुणों की ज़रूरत थी, और ये गुण सल्तनत में कहीं भी दुर्लभ हो गये थे—कम से कम जलालुद्दीन में तो नहीं थे।

और बल जब असहाय हो जाता है, अपने सामने रखी गयी समस्याओं का हल नहीं निकाल पाता, तब बली के, अत्याचारी के ही विरुद्ध हो जाता है। उतमानी सल्तनत में हमेशा ऐसा ही हुआ और सन् १८२० में तो विशेष रूप से, जिस समय जलालुद्दीन त्राव्निक का वज़ीर था और जब सल्तनत मानो सिर्फ़ एक फेफड़े के एक तिहाई से साँस ले रही थी और भीतर-बाहर सैकड़ों शत्रुओं से आक्रांत थी।

ये जटिल शक्तियाँ अब जलालुद्दीन पर ही अपना असर दिखा रही थीं। जलालुद्दीन वैसा आततायी था जो बुनियादी तौर पर एक भाड़े का हत्यारा भर होता है—यानी जिससे एक ही बार काम लिया जा सकता है। वह काम सही ढंग से पूरा न हो तो ऐसे लोगों का बदल उनको ही नष्ट कर देता है।

शुरू-शुरू में जलालिया ने यह बात अच्छी तरह नहीं समझी थी। अब भी इसका पूरा आशय तो उस पर स्पष्ट नहीं था लेकिन इतना वह समझ रहा था कि उसकी चालों से न तो तुर्की सामंतों की शक्ति नष्ट हुई थी, न बोस्निया में शांति स्थापित हो सकी थी। और अब अपने सारे साधन चुका लेने के बाद उसके पास परिस्थिति का सामना करने का कोई उपाय नहीं था।

अब बोस्निया पर शासन के लिए एक नया कार्यक्रम निर्धारित करना होगा—और उसके लिए एक नये वज़ीर की ज़रूरत होगी। और यह तो साफ़ ही था कि अगर नये वज़ीर की नियुक्ति होती है तो पुराने वज़ीर के लिए इस दुनिया में बहुत कम जगह रह जायेगी—उसके लिए क़ब्र, या क़ब्र के बराबर देश-निकाला ही रह जायेगा।

इतना जलालिया साफ़-साफ़ देख सकता था, क्योंकि इतने के लायक जानकारी उसे थी।

दूसरे वज़ीरों के साथ कभी-कभी ऐसा भी होता था कि वे निर्वासन से लौट-कर फिर प्रतिष्ठा पा लें, लेकिन जलालुद्दीन ऐसी कोई आशा नहीं कर सकता था, क्योंकि इस्तांबूल में उसकी कोई बनी-बनाई जगह या ताल्लुकात नहीं थे। उस जैसे आत्म-केंद्रित स्वेच्छाचारी के लिए देशनिकाले का मतलब था सब कुछ का अंत—धीरे-धीरे, भद्दे और प्रतिष्ठा-रहित ढंग से घुल-घुल कर मर जाना। जलालुद्दीन को इसमें ज़रा भी शक नहीं था कि इससे तो एकाएक अपनी मर्ज़ी से मर जाना अच्छा है। स्वभाव से ही अत्याचारी और उत्पीड़क जलालुद्दीन दूसरों को सताने की ताक़त के बिना जी नहीं सकता था, लेकिन दूसरी ओर इतना भी नैतिक बल उसमें नहीं था कि दूसरों के द्वारा सताया जाना सह सके।

मार्च में ही इस्तांबूल से एक विशेष दूत फ़रमान लेकर आया कि बोस्निया के लिए नया वज़ीर नियुक्त हो गया है। जलालुद्दीन पाशा को हुक्म हुआ कि वज़ारत शाही पाशा को सौंप कर अद्रियानिया चला जाये और वहाँ नये शाही फ़रमान का इंतज़ार करे।

संदेशवाहक ने निजी तौर पर और पूरे निश्चय के साथ जलालुद्दीन को बताया कि आगे चलकर जलालुद्दीन को रुमीलिया का हाकिम बनाया जायेगा; कि इस बीच उसे कोरिया द्वीप के एक विद्रोह का दमन करने भेजा जायेगा। उसने इन नयी नियुक्तियों पर जलालुद्दीन को बधाई भी दी। ये सब बातें उसने बड़ी तेज़ी से और यंत्रवत् कह डालीं मानो रट कर आया हो।

शराब और रिश्वत के सहारे संदेशवाहक से यह कहला लेने में जलालुद्दीन को अधिक देर नहीं लगी कि उसे खास तौर से यह आदेश किया गया था कि इन संभाव्य नियुक्तियों की बात किस गोपनीय ढंग से वज़ीर को बताए। सच्चाई यह थी कि रुमीलिया के हाकिम के पद पर पहले ही एक 'तगड़े' आदमी

की नियुक्ति हो गयी थी। अर्थात् जलालिया के लिए जाल बिछा दिया गया था। जलालिया ने जान लिया कि फ़ैसले की घड़ी आ गयी है, कि उसके अंतर्मन की प्रेरणाएँ उसे जिस रास्ते पर चला रही थीं, त्राब्निक उसकी आख़िरी मंज़िल थी।

और एकाएक जलालुद्दीन ने साफ़-साफ़ देख लिया कि मृत्यु का विचार हमेशा उसके कितना निकट रहा है—सिर्फ़ दूसरों की मृत्यु का नहीं बल्कि ख़ुद अपनी मृत्यु का भी।

जलालुद्दीन ने बड़ी एकाग्रता और होशियारी से अपनी वसीयत लिखकर अपनी सारी संपत्ति अपने साथियों और सहायकों के बीच बाँट दी, जो सब उसी की तरह हत्यारे थे। एक बड़ी रक़म उसने अपनी क़ब्र पर एक शानदार स्मारक बनाये जाने के लिए निर्धारित कर दी और मदफ़न के छोटे से छोटे ख़र्च की व्यवस्था भी कर दी। क़ब्र पर क्या शिलालेख हो यह भी उसने बता दिया: क़ुरान की वह आयत 'हुवल हय्यूल क़य्यूम' (वह सनातन जीवन है)। क़लमों का अपना भारी संग्रह उसने अपने हाथों एक-एक कर के आग में झोंक कर जला दिया: पिछले कई दिनों से लगातार उसके कमरे में आग जल रही थी मानो यह मार्च का महीना न हो, आधा जाड़ा अभी बाक़ी हो। क़स्बे में किसी को इन बातों की ख़बर नहीं थी, जैसे यह भी कोई नहीं जानता या सोच सकता था कि उसने अपने सहायक उमर एफ़ेंदी को एक हाथ का लिखा हुआ प्राचीन और अत्यंत मूल्यवान् काव्य-ग्रंथ वसीयत कर दिया है। इस ग्रंथ में फ़ारसी और अरबी कवियों को बत्तीस सर्वश्रेष्ठ ग़ज़लें अलंकृत लिपि में लिखी गई थीं। गुलाब, गुललाल, शराब, साक़ी, चश्मे, अलग़ोज़े और बुलबुलों की भरमार इन ग़ज़लों को रौनक़ दे रही थी; उस काली मिट्टी और उजली धूप का भी गुणगान इन ग़ज़लों में था जो बड़ी दरियादिली से ये सब नियामतें इन्सान को देती हैं, और फिर उससे वापिस लेकर किसी दूसरे शख़्स को दे देती हैं।

यह सब काम पूरा कर चुकने के बाद वज़ीर अपनी आरामगाह में चला गया। नौकरों को उसने यह हिदायत कर दी कि एक घंटे बाद, दोपहर के खाने के लिए उसे जगाया जाये। त्राब्निक के ठंडे पानी के एक गिलास में उसने एक पुड़िया से एक चम्मच भर सफ़ेद चूर मिलाया और कड़वी दवा की तरह पी

गया। यों जिस शांत और अलक्षित ढंग से कुछ बरस पहले वह त्राव्निक में प्रकट हुआ था, उसी ढंग से वह दुनिया से चला गया।

दोपहर से ठीक पहले त्राव्निक की मस्जिदों की मीनारों से मुअज़्ज़िम अज़ाँ देने लगे। थोड़ी ही देर में क़स्बे वालों ने पहचाना कि दोपहर की नमाज़ नहीं पढ़ी जा रही है, बल्कि जनाज़ा पढ़ा जा रहा है। प्रार्थना की लंबाई और मौलवी के उत्साह से उन्होंने नतीजा निकाला कि जिसका फ़ातिहा पढ़ा जा रहा है वह ज़रूर कोई अमीर और बड़ा आदमी रहा होगा।

वज़ीर की मौत की ख़बर बड़ी तेज़ी से फैल गयी। जलालिया के बारे में यह पहली ख़बर थी जिस पर चार्शिया में कोई टीका नहीं हुई। इसी सन्नाटे के वातावरण में उसे उसी दिन दफ़ना दिया गया। चार्शिया के सभी लोग चुप-चाप जनाज़े के साथ गये। उस मौक़े पर या उसके बाद कभी किसी ने वज़ीर के बारे में अच्छा या बुरा कोई शब्द नहीं कहा (यह इतनी बड़ी जीत थी कि इसकी ख़ुशी मनाने की भी कोई ज़रूरत नहीं थी)।

इस बात की लोगों को परवाह नहीं थी कि जलालुद्दीन त्राव्निक में ही दफ़नाया जाएगा। उनके क़स्बे में दो गज़ मिट्टी के नीचे अचल और असहाय वह शांति से सो सकेगा; दिन-ब-दिन छोटा होता हुआ बहुत जल्दी ही वह जीवित इन्सान से किसी तरह की भी समानता खो बैठेगा।

नया वज़ीर शाही पाशा मदफ़न के दिन ही ड्योढ़ी में पहुँच गया। उस समय जलालिया का अमला सज़ा के डर से जल्दी से जल्दी कहीं छिप जाने की चिंता में तेज़ी से इधर-उधर बिखरा जा रहा था।

अपनी वसीयत में जलालिया ने फ़ीला उसी काले महावत को दे दिया था जो इतने दिनों से उसकी देख-भाल करता आ रहा था—उसी फ़ील-फ़ील को, जिससे चार्शिया फ़ीले से भी ज़्यादा घृणा करता था। वज़ीर ने यही लिखा था कि फ़ीले को ले कर फ़ील-फ़ील इस्तांबूल वापस चला जाये और इस सफ़र के लिए ज़रूरी रक़म भी उसके नाम छोड़ गया था। लेकिन इस आदेश का पालन फ़ील-फ़ील के लिए आसान नहीं था क्यों कि उसे अपनी ही जान के लाले पड़े हुए थे। ऐसे अवसरों पर बोस्निया से एक सुई भी छिपा कर निकाल ले जाना संभव नहीं था, हाथी की बात तो दूर; और फिर ऐसे हाथी की जो अब वज़ीर का नहीं था। इसलिए सबकी घृणा का पात्र फ़ील-फ़ील तो मालिक की मृत्यु के

बाद की रात में ही त्राव्निक से निकल भागा। और उसी रात चार्शिया के लोगों ने ड्योढ़ी में घुस कर फ़ीले को सेबों में छिपाये गये पिसे काँच और संखिया से कहीं अधिक मात्रा में एक दूसरा और कहीं अधिक तेज़ ज़हर दे दिया।

जलालिया के मदफ़न के चार दिन बाद फ़ीला भी मर गया। उसने फाटक के पास की अपनी पुआल बिछी जगह छोड़ दी थी और तबेले के सबसे अँधेरे कोने में जा छिपा था। यहीं अगले दिन सवेरे वह लिपट कर पड़ा मरा हुआ पाया गया। उसे फ़ौरन दफ़ना दिया गया, लेकिन यह किसी ने नहीं पूछा कि कैसे और कहाँ। चार्शिया का नियम था कि कोई बला टल जाये तो कुछ समय तक वे उसका नाम भी नहीं लेते थे। बहुत दिन बाद ही, जब घटना कहानी बन चुकी होती थी, तब वे उसकी बात करना शुरू करते थे और तब इस ढंग से मानो वह इतनी दूर की घटना हो कि उसे हँसी-मज़ाक़ के साथ और नयी मुसीबतों के बीच कुछ मुसर्रत पाने के लिए सुनाया जा सकता हो।

यों फ़ीला भी वज़ीर के साथ दफ़ना दिया गया। इस धरती के नीचे हर एक के लिए जगह है।

फिर वसन्त आया; जलालिया के बिना पहला वसन्त। डर अपने चेहरे बदल लेता है, चिंता अपने नाम। एक वज़ीर के बदले दूसरा वज़ीर आता है; जीवन चलता जाता है। सल्तनत विनाश की ओर बढ़ रही थी। त्राव्निक उजड़ रहा था, लेकिन चार्शिया आँधी से गिरे हुए फल के भीतर के कीड़े की तरह जिये जा रहा था। ख़बर आयी कि अर्नूसबेगज़ादा शरीफ़ सीरी सलीमपाशा बोस्निया का नया वज़ीर नियुक्त हुआ है। जो पहली अफ़वाहें पहुँचीं उनके अनुसार नया वज़ीर अच्छा और पढ़ा-लिखा आदमी था और जन्म से बोस्निया का ही था। लेकिन चार्शिया के बुज़ुर्गों ने सिर हिलाते हुए चिंता भरे स्वर में पूछा, "अगर अच्छा आदमी है तो नाम इतना लंबा क्यों है ?"

"अरे भाई, कौन जाने उसके मन में क्या होगा और वह अपने साथ क्या लायेगा ?"

इस प्रकार फिर चार्शिया नयी ख़बर और विश्वस्त सूचना की प्रतीक्षा में दिन काटने लगा। तकलीफ़ें भुगतते हुए लोग कानाफूसी करते, अपने बचाव के रास्ते सोचते और जब कोई रास्ता न दीखता तो एक-दूसरे को क़िस्से सुनाते जिनमें उनकी इन्साफ़ की अस्पुष्ट लेकिन कभी नष्ट न होने वाली माँग,

एक नये जीवन और अच्छे ज़माने की उनकी आकांक्षा, प्रकट होती रहती। कारीगर जलालुद्दीन की क़ब्र पर मक़बरा खड़ा कर रहे थे। संगतराश चिकने पत्थर पर शिलालेख खोदने में जुटे हुए थे—पहली पंक्ति उकेरी भी जा चुकी थी। और आल्यो की और वज़ीर के फ़ीले की कहानी बोस्निया भर में फैल रही थी और फैलते-फैलते लंबी होती जा रही थी।

ज़ेको

'ज़ेको' नामक उपन्यास का अनुवाद

अनुवादक

रघुवीर सहाय

पहले महायुद्ध के कुछ वर्ष बाद सारायेव्स्का और क्नेज़ा मिवोशा राज-मार्ग को मिलाने वाली अनेक ढालू गलियों में से एक में एक नयी सुन्दर पँच-मंज़िली इमारत खड़ी की गयी। अपनी तिरछी छत के कारण ईर्ष्याभरे पड़ौसियों को वह छः मंज़िली दीखती थी। उसका साज़-सामान ऐसा तो नहीं था कि पूरी तरह माडर्न नाम की पात्रता पा सके, लेकिन इमारत अच्छी-ख़ासी बनायी गयी थी और साफ़-सुथरी रक्खी जाती थी। नींव से लेकर छत तक उसकी धुली-पुती सफ़ाई देखकर अधिक बच्चों वाले या मामूली आमदनी वाले किरायेदार उधर आने का हौसला नहीं करते थे।

घर का मालिक···लेकिन इस बात को छोड़ें, क्योंकि यह बताना बहुत मुश्किल होगा कि घर का असल मालिक कौन था। एक तो यह सवाल यों ही बहुत पेचीदा था, दूसरे बहुत-से और सवालों ने उसे और पेचीदा बना दिया था, जैसे आचार, विवाह, जवानी के सपने, और युद्ध से पहले के बेलग्राद नगर के जीवन के बारे में विलम्बित पश्चात्ताप। मिल्कियत का सवाल तो यहाँ हल नहीं किया जा सकता; लेकिन इमारत का शासन असंदिग्ध रूप से मदाम मार्गरीटा कटानिच के हाथ में था—वह सारी इमारत में 'काला साँप' के नाम से प्रसिद्ध थीं। वही फ़्लैट किराये पर उठाती थीं, किराया वसूल करती थीं; किरायेदारों से लड़ती, झगड़ती और सुलहनामे करती थीं, टैक्स चुकातीं और सरकारी अधिकारियों के सवालों का जवाब देती थीं। और व्यावहारिक रूप से वही इमारत की मैनेजर-निरीक्षक भी थीं, क्योंकि निचली मंज़िल में जो

वश्का से आया हुआ निमुच्छा 'मैनेजर' रहता था और जिसकी शक्ल ठीक ऐसी थी मानो एक मुर्ग़ी का चूज़ा गरदन काटी जाने से बचकर भाग आया हो, वह केवल मदाम मार्गरीटा का वेतनभोगी कारिन्दा था। सच बात यह है कि हर मामले की बागडोर उन्हीं समर्थ हाथों में थी।

मदाम मार्गरीटा अपने पति और बेटे के साथ इमारत की दूसरी मंज़िल में छ: कमरों के एक बड़े फ़्लैट में रहती थीं। लेकिन पति और लड़के की कुछ और बात करने से पहले मदाम मार्गरीटा के बारे में कम से कम कुछ और बता देना ज़रूरी है। उनकी उम्र पचास के पास पहुँच रही थी, वज़न एक सौ अट्ठानवे पाउंड था, क़द नाटा, बाल बिल्कुल भूरे और बादशाही ज़माने के ढंग से ऊँचे काढ़े हुए होने के बावजूद हमेशा—यहाँ तक कि क्रिसमस के दिन भी—बेतरतीब दीखने वाले। एक अजीब और आक्रामक उत्साह से भरे रहने के कारण उनका सारा शरीर मानो फड़कता और झटके खाता रहता था। यह उत्साह उनके स्वभाव का असल निचोड़ था। यह तो था कि हथिनी जैसी मोटी टाँगों की जोड़ी के कारण उन्हें चलने-फिरने में कठिनाई होती थी, लेकिन टाँगों से ऊपर का उनका शरीर बड़ा जीवन्त और उद्यमी था। और इस जीवन्तता की एक चरम अभिव्यक्ति उनके मुटाये हुए पीले चेहरे में दीखती थी, जिस पर एक असम गहरी रेखा-सा उनका बड़ा मुँह चिपका हुआ था जिसके भीतर से बत्तीस नक़ली दाँत एक मिनट में एक सौ बीस शब्द दागते रहते थे। दो बड़ी-बड़ी गोल आँखें, जिनकी काली पुतलियाँ थोड़ी-सी पपोटे में फैल गई थीं, अपनी अविश्वासी-लालची-भयानक-तीखी चितवन में इस भारी-भरकम शरीर की रक्षा और आघात के लिए हर वक़्त तैयार सारी शक्ति और एकोन्मुखता प्रतिबिंबित करती रहती थीं।

भारी शरीर और आधी दर्जन यथार्थ और कल्पित बीमारियों के बावजूद मदाम मार्गरीटा हर वक़्त हर जगह मौजूद रहती थीं। अपने ही बड़े फ़्लैट में एक गोलाई में बने हुए कमरों में वह एक महाकाय मकड़ी की तरह घूमती रहती थी, कभी गली की, कभी बग़ीचे की और कभी इमारत के मुख्य गलियारे की ओर झाँकती हुई। किस तरह वह सब कुछ देख लेती थी, हर किसी से जवाब-तलब कर लेती थी और हर किसी पर हकूमत कर लेती थी! लेकिन इतना भी काफ़ी नहीं था। हकूमत करने, प्रतिबन्ध लगाने, लोगों को वश

करने और कुचलने की आकांक्षा उनमें इतनी अदम्य थी कि उनकी शक्ति के सामने एक पूरा फ़ौजी रेजीमेण्ट भी नगण्य हो जाता। और जब भाग्य ने उनके अपनी इस शक्ति के उपयोग का घेरा इतना छोटा कर दिया था तब जो भी इस घेरे के अन्दर आता था—पति, लड़का, किरायेदार—सबको उनकी इस शासन की अदम्य इच्छा का पूरा दबाव सहना पड़ता था।

और इस स्त्री को जीवन ने एक पति दिया था जो उससे हर बात में भिन्न था—एक शांत, छोटा-दुबला आदमी जिसका सब कुछ पालतू और मँजा हुआ जान पड़ता था—उसका चेहरा, उसकी चाल, उसकी पोशाक, उसकी बात-चीत। असल में यह पति उसे उसके मिल-मालिक पिता की एक सहेली ने दिलाया था जो मिल-मालिक के घर महायुद्ध से पहले के तीन साल रही थी : उसकी पीढ़ी की भाषा में महायुद्ध से पहले का मतलब था १९१४ से पहले। अपनी उलझी हुई वसीयत में मिल-मालिक ने और अनेक चीज़ों के साथ यह शानदार इमारत भी—लड़की के नाम 'ऐश-आराम के लिए' वसीयत कर दी थी। और इस जवान मार्गरीटा के समर्थ, इस्पात जैसे कड़े शरीर की और कभी न हँसती आँखों वाले अजीब चेहरे की ओर यह छोटा-सा पालतू आदमी आकृष्ट हुआ था जो अनन्तर उसका पति बना।

उसका जन्म पांचेवो में हुआ था लेकिन वास्तव में जन्मभूमि बेलगराद ही थी। वह दो बरस का था जब उसका बाप, जो एक मामूली संगीत-शिक्षक था, परिवार को लेकर बलगराद आ गया और स्थायी रूप से वहाँ बस गया। उसकी माँ उसके बचपन में ही मर गयी और उसका पालन, पोषण और शिक्षा पिता के द्वारा ही हुई जो कि इतना गम्भीर और चुप्पा था कि कोई उसे गूँगा भी समझ ले सकता था।

पेशे से मार्गरीटा का पति कातिब था और शाही फ़रमानों के दफ़्तर में काम करता था। इसके अलावा कई दूसरी और निजी संस्थाओं के लिए भी दस्तावेज़ों की किताबत करता था क्यों कि ऐसा हुनर और ऐसे सुन्दर अक्षर सारे बेलगराद में दुर्लभ थे। यों तो उसका अच्छा-खासा मर्दाना नाम था—इसीडोर लेकिन पत्नी ने उसे ज़ेको (खरगोश) नाम दे रखा था, और परिवार में तथा दोस्तों में वह इसी नाम से पुकारा जाता था। यहाँ तक कि उसका लड़का भी उसे 'पापा' न कह कर ज़ेको ही पुकारता था और बचपन से, यानी जब से उसने

बोलना सीखा था तब से यही पुकारता आया था और हर जगह हर कोई हमेशा उसे ऐसे ही नामों से पुकारता था—ज़ेको, ज़ेकानि, ज़ेचको।

गम्भीर, प्रतिदिन ताज़ा हजामत बनाने वाला और बड़ी नफ़ासत से कपड़े पहनने वाला, यह भला और दयावान व्यक्ति पिछले लगभग बीस बरस से पत्नी रूपी अजगर को खींचता चला आ रहा था। (एक बोस्नियायी किरायेदार का तो कहना था कि वह समुद्री नाव को किनारे की सूखी रेती पर खींचता चल रहा है।) अपनी जवानी की इस दुर्दम लेकिन आश्वस्त वासना का—मिल-मालिक की सौतेली लड़की के कोरे पहलवानी शरीर पर अधिकार करने की कामना का मूल्य वह इस ग़ुलामी में चुका रहा था जिसका अब उसे कोई अंत नहीं दीखता था।

इस जोड़े की केवल एक संतान हुई, एक लड़का जिसका जन्म उन्नीस सौ पन्द्रह में उनके विवाह के आरम्भिक महीने में और महायुद्ध की विकट परि-स्थितियों में हुआ। यह लड़का अब बीस बरस का लम्बा-तगड़ा जवान था, गोरे, घुँघराले बाल, शहर का जाना-माना खिलाड़ी और टेनिस का चैम्पियन, अनेक व्यायाम समितियों और खेल-कूद परिषदों का सदस्य, बिगड़े दिमाग़ का और आवारा, जिसमें माँ के दर्प के साथ सब कुछ के प्रति एक अजीब जानवर-सी उदासीनता मिली हुई थी। उसका सुन्दर रूप उसे किससे मिला था यह कोई नहीं जानता था। उसका नाम था मिहाइलो। माँ उसे मिशेल पुकारती थी, दोस्तों ने उसे टिगार (बाघ) नाम दे रखा था और बेलगराद के समाज में या खेल-कूद प्रेमी जनता में वह इसी नाम से प्रसिद्ध था। और उसकी आँखों की पुतलियों में एक पीली चमक इस नाम को सार्थकता भी देती थी। कुछ-कुछ अपनी माँ की तरह, जो इतनी मोटी हो जाने से पहले अपनी आँखों और अपनी अप्रत्याशित तेज़ हरकतों के कारण गर्म प्रदेशों के किसी बड़े गेहुँअन साँप की याद दिलाती थीं।

यह सुन्दर और अत्यन्त आत्म-केन्द्रित युवक, जिसका न कोई खास पेशा था न समाज में कोई विशेष स्थान, जिसमें न कोई नैतिक भावना थी और न रत्ती भर वह चीज़ जिसे उसका पिता 'मानवीय संवेदना' कहता, एक मात्र जीवित व्यक्ति था जो मदाम मार्गरीटा की मर्ज़ी के ख़िलाफ़ जा सकता था, यहाँ तक कि मदाम मार्गरीटा का बचाया हुआ अंतिम पैसा तक उससे ले सकता था।

उसकी फ़िज़ूलख़र्ची और आवारगी पर उसकी माँ बिगड़ती थीं, उसे फटकारती थीं और कभी उस पर बुरी तरह बरस पड़ती थीं, लेकिन फिर भी किसी बात के लिए न नहीं कर सकती थीं। और अंत में उसकी हर हरकत क्षमा भी कर देती थीं।

जो हो, उस घर में जो कुछ होता था वह माँ-बेटे के बीच ही होता था। दोनों मिल कर पिता की तो हर मामले में संपूर्ण उपेक्षा ही कर देते थे। ज़ेको कभी कुछ कहता-कहता भी रुक जाता था क्योंकि उसे ख़ुद अपने विचार बेकार, अर्थहीन और बेवक़ूफ़ी भरे लगने लगते थे। यों उसका वेतन, जो वह लाकर समूची गृहस्थी के लिए दे देता था, नगण्य नहीं था, लेकिन इससे भी घर में उसकी इज़्ज़त बढ़ती नहीं थी। कभी बहुत ज़रूरत होने पर उसे लाचार मार्गरीटा से अपना ही पैसा माँगते हुए भी बड़ी झिझक होती थी इस डर से कि कहीं वह साफ़ जवाब न दे दे।

तो खरगोश इसीडोर, काला साँप मार्गरीटा और बाघ मिहाइलो का परिवार उस छः मंज़िली इमारत के किरायेदारों को इसी रूप में दीखता था। कुनबे को सब किरायेदार 'चिड़ियाघर' कहते थे, और हर नया किरायेदार फ़्लैट की चाबियों और मार्गरीटा की अनगिनती निर्मम शर्तों के साथ ही यह नाम भी स्वीकार कर लेता था। लेकिन सच्चाई यह है कि किसी भी परिवार का असली जीवन न तो उतना जटिल होता है न उतना सरल जितना वह पड़ोसियों को दीखता है या जैसा उसे पड़ोसी बखानते हैं। थोड़ी-सी भी बदली हुई परिस्थिति में परिवार के लोग भी और उनके आपसी सम्बन्ध भी एक बिल्कुल दूसरी रोशनी में दीखने लगते हैं, और यह रोशनी उन्हें पड़ोसियों के परिचित रूप से बिल्कुल भिन्न रूप में दिखाने लगती है।

सड़क पर हमारे पास से गुज़र जाने वाले और बहुत-से लोगों की तरह इसीडोर कटानिच भी जितना वह दीखता था उससे कहीं अधिक भला भी और दुःखी भी था। हाँ, शक्ल-सूरत से दुःखी दीखने पर भी वह उससे कहीं अधिक दुःखी था। वास्तव में वह उन लोगों में से था जिनका जीवन जितनी ही तेज़ी से वह अंत की ओर बढ़ता जाता है उतना ही अपने आरम्भ से बेमेल दीखने लगता है।

बचपन में वह बड़ा प्रतिभाशाली बालक समझा जाता था: तेज़ आँखें,

भरे सुन्दर ओठ, अच्छी स्मरणशक्ति और एक अत्यंत सुरीला गला जिसे उसका संगीत-शिक्षक 'देवता का-सा' कहा करता था। हाई स्कूल में भी वह उन गिने-चुने लड़कों में से था जो अपने अध्यापकों का भी और अपने सहपाठियों का भी प्यारा था। स्कूल की साहित्य-सभा में वह अपनी कविता और गद्य दोनों सुनाता था और दोनों में एक गम्भीर उदीयमान प्रतिभा दीखती थी। प्यानो बजाने में भी वह कुशल था और चित्रकला में और भी कुशल। वास्तव में उसकी विशेष प्रतिभा चित्रकला में ही थी लेकिन सन् उन्नीस सौ आठ में जब आस्ट्रिया के बोस्निया और हर्ज़ेगोविना पर कब्ज़ा करने के बाद से संकटों का आरम्भ हुआ और बेलगराद के जीवन में उथल-पुथल मच गयी, तब विद्यार्थियों का जीवन भी अव्यवस्थित हो गया। इस प्रतिभाशाली लड़के के जीवन पर इस उथल-पुथल की चोट ठीक उस समय हुई जब उसके ये सारे गुरुमंत्र समन्वित हो सकते थे! उसके साथी जैसे कर्म और अध्ययन से गप्पबाज़ी और आवारागर्दी को अधिक पसंद करते थे, और अपने को ठीक-ठीक अभिव्यक्त करने का कोई तरीका न जानते थे, न खोजते थे, उन्हीं का अनुकरण वह भी करने लगा। मैट्रिक तो उसने जैसे-तैसे कर लिया लेकिन उसके बाद से ही उसे वह भीतरी शून्य सताने लगा जिसमें और आसपास की चहल-पहल और तेज़ ज़िन्दगी में एक अजीब और बड़ा दुःखद विरोध उसे दीखता था। उसे ऐसा जान पड़ने लगा कि चित्रकला, कविता और संगीत की सब प्रतिभाएँ उसके भीतर कहीं उलझ गयी हैं जैसे धरती के नीचे मीठे पानी के सोते कहीं मिलें और किसी अदृश्य टूटन में डूब कर सूख जायें। उसके पेंसिल और क़लम के रेखाचित्र न केवल उसके स्कूल के साथियों में प्रसिद्ध थे जिन्होंने अपनी पत्रिका में 'युवा कलाकार के हल्के स्पर्श और सुघड़ रेखा' की प्रशंसा की थी, बल्कि पेशेवर चित्रकारों में भी प्रसिद्ध थे। लेकिन ज्यों-ज्यों दिन बीतते गये, यह 'सुघड़ रेखा' स्वयं उसी के लिए कम स्पष्ट और अर्थवान् होती गयी और उसकी धारणा पक्की होती गयी कि उसके रेखाचित्रों की सारी प्रशंसा ग़लत थी, ठीक वैसे ही जैसे एक ज़माने की उसके संगीत-शिक्षक द्वारा उसकी संगीत-प्रतिभा की प्रशंसा ग़लत थी। अंततः जब आगे पढ़ने का सवाल उठा तब उसके पिता को, जो पहले ही कला सम्बन्धी हर बात को संदेह की दृष्टि से देखता था, उसे क़ानून पढ़ने के लिए मजबूर कर देने में विशेष कठिनाई नहीं हुई। जवान

इसीडोर सब कुछ एक स्वप्न-से में करता गया मानो इन सब बातों का अब उसके जीवन और उसके भाग्य से कोई सम्बन्ध ही न रहा हो। एक ओर अपने में विश्वास खोकर और दूसरी ओर अपने आसपास के जीवन को समझना असंभव पाकर वह क़ानून विद्यालय में उसी ग़ैर ज़िम्मेदारी भाव से जा भर्ती हुआ जैसे कोई एक दिन एकाएक उठकर विदेशी सेना में भर्ती होने चला जाय।

उसने अपनी नई पढ़ाई शुरू ही की थी कि १९१२ के शरत् में पहला बालकन युद्ध शुरू हो गया। इसीडोर कटानिच का भीतरी सूनापन एकाएक समाप्त हो गया : वह भर्ती हो गया और फिर एक व्यापक उत्साह की प्रेरणा पाकर इस विश्वास में डूब गया कि युद्ध में उनका पक्ष न्याय और सत्य का पक्ष है। लेकिन जवानी और उत्साह युद्ध की बर्बरता को नहीं छिपा सकते और वह सोचने और सवाल पूछने को फिर बाध्य होता रहा। युद्ध में क्रियात्मक भाग लेने का अवसर उसे थोड़ा ही मिला क्योंकि उसे बार-बार टाइफ़स ज्वर का शिकार होना पड़ा। बेलगराद लौटने तक वह बहुत दुबला और गंजा हो गया था। थोड़े दिन घर रहने पर धीरे-धीरे उसके बाल फिर उग आये, नवजात शिशु की तरह बारीक और नरम। सुधरते स्वास्थ्य के साथ जीवन का एक आनन्द भी उसमें फिर से जागने लगा, जो कुछ उसके सामने था उस सबके लिए एक हल्की-सी कृतज्ञता की भावना, यहाँ तक कि छोटी से छोटी चीज भी उसके इस कृतज्ञ भाव को जगा देती थी।

उसकी यह मनस्थिति बहुत दिन रही और इसके कारण युद्ध और हार-जीत की बातों का गम्भीरतर चिंतन टलता रहा। मार्गरीटा से उसका परिचय हुआ तो वह इसी मन:स्थिति में था और तब से हर काम और हर विचार मार्गरीटा से ही जुड़ गया। प्रेम के आवेग ने उसे एक रोग की तरह जकड़ लिया और जो दबे हुए राग कविता, संगीत और चित्रकारी में अभिव्यक्ति नहीं पा सके थे सब इसके साथ जुड़ गये।

उन्नीस सौ तेरह के शरत्काल में उसने शाही फ़रमानों के दफ़्तर में इस आशा के साथ नौकरी कर ली थी कि अगले बरस विश्वविद्यालय में अपनी आखिरी क़ानूनी परीक्षा दे सकेगा। लेकिन यहाँ उसे काम मिला किताबत का ही : तमगों के साथ की जाने वाली प्रशस्तियों में नाम आदि लिखने का काम। उसके हाथ के अक्षर मकड़ी के जाले-से बारीक होते थे और आद्याक्षरों का रंजन

और अलंकरण भी वह बड़े सुन्दर ढंग से कर सकता था, जिससे कि दफ़्तर के उच्च अधिकारी, कर्नल, दरबार के सहायक सभी प्रसन्न थे।

उसके कमरे से अपनी सैनिक वर्दियों में अकड़ से गुज़रते हुए सैनिक अधिकारी हाथ में चाबुक लिये और सीने पर तमगे सजाये हुए, युद्ध से नये-नये लौटे होने के कारण सधे पैरों से चलते और अपने कोटों के लाल गुलूबन्द के ऊपर से मुस्कुराते हुए अक्सर कहा करते : यह छोटा-सा आदमी मानो दीखता ही नहीं, लेकिन वह है, और है ख़ूब···

और ज़ेको एक के बाद एक फ़रमान और विज्ञप्ति पर अलंकृत सुलिपि में अक्षर लिखता हुआ मानो एक सपने में अपनी क़लम की बारीक रेखाओं का अनुसरण करता हुआ चला जा रहा था। उसे यह कभी ध्यान भी नहीं होता था कि यही किसी आदमी का एक मात्र पेशा या कि अच्छी आमदनी का साधन भी हो सकता है। लेकिन उसके मामले में ठीक ऐसा ही होता जा रहा था।

अप्रैल में बहुत दिनों के अनिश्चय के बाद मार्गरीटा ने अंत में उसका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। बूढ़े मिल-मालिक ने अच्छा-ख़ासा दहेज दिया और पितावत् आशीर्वाद भी, लेकिन इसीडोर कटानिच को दोनों में से किसी चीज़ का खास मोह नहीं था। उसने मिल-मालिक का हाथ चूमा, लेकिन उन दिनों तो वह सारी दुनिया का हाथ उसी तरह चूम ले सकता था।

फिर उसके बाद से वह स्थिति आ गयी जिसकी चर्चा लोग बहुत कम करते हैं लेकिन जिससे कष्ट वे सबसे अधिक पाते हैं। शुरू से ही शादी का सच्चा रूप उनके सामने आ गया : एक तरफ़ से बड़ा भारी भ्रम और दूसरी तरफ़ से बड़ा भारी धोखा।

लेकिन तभी एक और भी घटना घटी जिसकी बात ज़ेको ने कभी नहीं सोची थी। सन् १९१४ का महायुद्ध।

अपनी पीढ़ी के लोगों के साथ ही उसे भी सेना में भर्ती होना पड़ा।

निर्वासन के तीन वर्षों में ज़ेको तारान्तो, कार्फ़ू और तूलौन में रहा—एक तूफ़ानी और डरावने युग में एक उपेक्षित छोटी-सी इकाई। उसने बेलगराद में अपनी पत्नी से सम्पर्क करने की बहुत कोशिशें कीं किन्तु सब व्यर्थ हुईं। बाप की सिर्फ़ एक चिट्ठी उसे मिली लेकिन इसमें न तो ज़ेको की स्त्री का कोई उल्लेख था न उनकी संतान का। जब उसने दुबारा इनके बारे में पूछा तो उसे

कोई जवाब नहीं मिला; इसके बदले पिता के पड़ोसियों से, जिनसे उसके परिवार का परिचय भी बहुत नहीं था, एक चिट्ठी यह सूचना लायी कि बूढ़े कटानिच की मृत्यु उसी तरह चुपचाप अकेले में हो गयी जिस तरह उसका सारा जीवन बीता था। १९१८ की गर्मियों में जाकर ही ज़ेको को पत्नी की एक चिट्ठी मिली जिसके अनेक आँसू भरे और पढ़े न जा सकने वाले शब्दों में से किसी तरह वह इतना अर्थ पा सका कि 'बेटा मिहाइलो पिता को बहुत-सा प्यार भेजता है।'

जनवरी १९१९ में बेलगराद लौटने पर ज़ेको ने पुरानी मार्गरीटा का खंडहर ही पाया, और उसके साथ एक हृष्ट-पुष्ट पिंगल केशी चार बरस का लड़का भी। ऐसे समय में भी, जब इतनी बहुत असाधारण अचरज भरी अविश्वसनीय घटनाएँ हो रही थीं, ज़ेको को यह परिवर्तित स्थिति स्वीकार करने में बड़ा कष्ट हुआ। बात सिर्फ़ बढ़ती हुई उम्र या शारीरिक परिवर्त्तन की ही नहीं थी; मार्गरीटा ढीली हुई और बिखरी हुई जान पड़ती थी और उसकी हरकतों में एक अजीब तेज़ी और तीखापन आ गया था और एक खतरनाक बड़बोलापन भी उसमें आ गया था।

जो लड़की मार्गरीटा वह छोड़ कर गया था उसके बदले यह औरत मार्गरीटा उसे मिली, और उसके साथ मिली मार्गरीटा की कहानी जिसमें दुश्मन के अधिकार के समय की दूसरी कहानियों की तरह दुःखद सच्चाइयों और घटिया झूठों की ऐसी खिचड़ी थी जिसके दाने अलग नहीं किये जा सकते थे। पतिविहीन होकर मार्गरीटा को बड़ा कष्ट भोगना पड़ा और फिर यह जान कर कि वह गर्भवती है उसका कष्ट और भी बढ़ गया। बूढ़े मिल-मालिक को आस्ट्रियनों ने उन दिनों नज़रबन्द कर रखा था। सूने बेलगराद में अपने को अकेला पाकर वह सावा नदी के पार ज़ेमून में अपने एक रिश्ते के भाई के पास रहने चली गयी। वहीं लड़के का जन्म हुआ। वह तो यही समझ रही थी कि बेटा अनाथ है, क्योंकि पति का कोई पत्र उसे बहुत दिनों से नहीं मिला था। संयोग से कुछ समय बाद ही मिल-मालिक को नज़रबंदी से छोड़ दिया गया और उसी की कृपा से बच्चे को साथ लिये वह जीवित रह सकी। इसके कोई सालभर बाद वह बेलगराद लौटी और उसके बाद कहीं जाकर उसे पति का कुछ समाचार मिला।

यह सारी कथा मार्गरीटा ने सुनाई जिसके साथ बहुत-सी उपकथायें भी

जुड़ी हुई थीं। उसी ने अब युद्ध की समाप्ति के बाद ज़िन्दगी बिताने की कई योजनाएँ भी पति के सामने रखीं।

सच बात यह थी कि ज़ेको को मार्गरीटा के युद्धकालीन जीवन के और भी कई समाचार मिलते रहे थे। पांचेवो से उसकी दो बूढ़ी चचेरी बहिनों ने मार्गरीटा के युद्धकालीन जीवन का कुछ दूसरा ही चित्र प्रस्तुत किया था। उनका कहना था कि आस्ट्रियाई अधिकार के दौरान मार्गरीटा का आचरण 'ऐसा नहीं था कि उससे हमारे खानदान की प्रतिष्ठा बढ़े।' उन्होंने ज़ेमून स्थित एक सैनिक पूर्त्ति अधिकारी का उल्लेख करते हुए इस पर भी संदेह प्रकट किया था कि बच्चे का वास्तविक पिता कौन है, क्योंकि उसका बपतिस्मा तो १६१५ के जून महीने में ही हुआ था और जन्मों के खाते में उसका जन्म इसके बाद ही १६१५ की जनवरी के नीचे दर्ज कराया गया था। बूढ़ा कटानिच जीवित होता तो शायद कुछ और विश्वसनीय समाचार दे सकता लेकिन वह तो यों भी बहुत कम बोलता था।

पांचेवो वाली कथा पर मार्गरीटा की बड़ी ज़बरदस्त प्रतिक्रिया हुई, लेकिन उसमें कोई संकोच नहीं था मानो इस संघर्ष में उसे मज़ा आ रहा हो। उसका दावा था कि वो सचमुच एक उत्पीड़िता है, कि बच्चे का जन्म सचमुच १६१५ की जनवरी में हुआ था जिसका लिखित प्रमाण मौजूद है, कि जन्म के बाद महीनों तक वह खुद जीवन और मरण के बीच मँडराती रही और यों भी उस काल में किसी को होश नहीं था कि कब क्या करना चाहिए, कि बपतिस्मा इसीलिए जून में कराया गया। लेकिन अक्सर तो अपनी सफ़ाई में वह ऐसे ही या इससे भी कहीं भयानक आरोप पंचेवो वाली अपनी अविवाहित प्रौढ़ा ननदों पर लगा दिया करती थी।

दोनों ओर से आकर उस पर टूटती हुई इन भयानक लहरों के बीच खड़ा ज़ेको न साँस ले पाता था न कुछ साफ़ देख पाता था। और इसके अलावा और भी कई दिशाओं से और किनारों से कई लहरें आकर उस पर टूट रही थीं। उसके आसपास सब कुछ बदल गया था, टूट गया था और उथल-पुथल में था; पहले ही बहुत बड़ी दुनिया से घबराकर लौटे हुए आदमियों के लिए यह सब और भी घबरा देने वाला था। शरणार्थी जीवन ने उसके सामने का क्षितिज तंग और धुँधला कर दिया था और उसकी विवेक-शक्ति नष्ट कर दी थी। ज़ेको में अभि-

मान या संकल्पशक्ति और अधिक होती तो वह पांचेवो वाली बहनों के आरोप की सच्चाई की पुष्टि दूसरी जगह से भी कर सकता था। लेकिन यह ज़माना थकान का और अर्धसत्यों के स्वीकार का ही था; ऐसा जमाना जिसमें सत्य का आग्रह, जो कि मनुष्य की जीवनी शक्ति की सर्वोत्तम अभिव्यक्ति है और आत्म-सम्मान का एक विशेष रूप है, ज़ेको जैसे आदमियों में अक्सर शिथिल हो जाता है।

शुरू में तो उसे यह अकल्पनीय लगा कि यह स्त्री उसकी पत्नी और यह स्थान उसका घर हो सकता है, कि वह अब से यहीं बसेगा, यहीं खाये-पीयेगा, और अपनी बाक़ी ज़िन्दगी यहीं गुज़ारेगा। लेकिन हुआ ठीक यही।

बूढ़े मिल-मालिक ने भी कुछ सहायता की। वह मानो युद्ध से बिल्कुल नहीं बदला था, वैसा ही शांत और अविचल दीखता था मानो अपने कारोबार और सम्पर्क की ऊँचाई से सब पर करुणापूर्वक मुस्कुरा रहा हो।

लेकिन मार्गरीटा की बहन मारिया से और भी आत्मीयता पाई। युद्ध से पहले मारिया एक शर्मीली बल्कि डरपोक छोटी लड़की थी, अब वह बहुत विकसित हो गयी थी—केवल शरीर से उतना नहीं जितना अपने बर्ताव और ढंग में। घने और नमी के कारण हमेशा चमकते रहने वाले काले बालों से घिरे हुए पीले चेहरे में जड़ी हुई गहरी पर चमकीली आँखों वाली यह युवती सदा प्रसन्न रहती थी। उसकी शांत मुस्कुराहट और सद्भावना भरा युवा उत्साह उसके स्वभाव को उसकी बहन से बिल्कुल अलग कर देता था। युद्ध के बाद के पहले वर्ष में जो सबसे अधिक संकट और यंत्रणा का वर्ष था मारिया उन्हीं के साथ रही। मारिया की दोस्ती से ज़ेको को अपने पारिवारिक जीवन में ऐसा कुछ मिला जिसे सुख कहा जा सके।

लौटने के कुछ दिन बाद ही ज़ेको ने शाही फ़रमानों वाले दफ़्तर में अपना पुराना वाला काम फिर शुरू कर दिया। सब कुछ अब पहले से कहीं बड़ा हो गया था—काम, पद, वेतन, सब। जैसे बेलग्राद नगर बढ़ और फैल रहा था, वैसे ही सब कुछ बढ़ और फैल रहा था – बड़ी तेज़ी से और बिना किसी प्रकार की व्यवस्था के।

दो वर्ष बाद बुड्ढा कारखानेदार चल बसा और मार्गरीटा के लिए और चीज़ों के साथ रहने को वह पँचमंजिला मकान भी छोड़ गया जिस पर उस वक्त

जुड़ी हुई थीं। उसी ने अब युद्ध की समाप्ति के बाद ज़िन्दगी बिताने की कई योजनाएँ भी पति के सामने रखीं।

सच बात यह थी कि ज़ेको को मार्गरीटा के युद्धकालीन जीवन के और भी कई समाचार मिलते रहे थे। पांचेवो से उसकी दो बूढ़ी चचेरी बहिनों ने मार्गरीटा के युद्धकालीन जीवन का कुछ दूसरा ही चित्र प्रस्तुत किया था। उनका कहना था कि आस्ट्रियाई अधिकार के दौरान मार्गरीटा का आचरण 'ऐसा नहीं था कि उससे हमारे खानदान की प्रतिष्ठा बढ़े।' उन्होंने ज़ेमून स्थित एक सैनिक पूर्त्ति अधिकारी का उल्लेख करते हुए इस पर भी संदेह प्रकट किया था कि बच्चे का वास्तविक पिता कौन है, क्योंकि उसका बपतिस्मा तो १९१५ के जून महीने में ही हुआ था और जन्मों के खाते में उसका जन्म इसके बाद ही १९१५ की जनवरी के नीचे दर्ज कराया गया था। बूढ़ा कटानिच जीवित होता तो शायद कुछ और विश्वसनीय समाचार दे सकता लेकिन वह तो यों भी बहुत कम बोलता था।

पांचेवो वाली कथा पर मार्गरीटा की बड़ी ज़बरदस्त प्रतिक्रिया हुई, लेकिन उसमें कोई संकोच नहीं था मानो इस संघर्ष में उसे मज़ा आ रहा हो। उसका दावा था कि वो सचमुच एक उत्पीड़िता है, कि बच्चे का जन्म सचमुच १९१५ की जनवरी में हुआ था जिसका लिखित प्रमाण मौजूद है, कि जन्म के बाद महीनों तक वह ख़ुद जीवन और मरण के बीच मँडराती रही और यों भी उस काल में किसी को होश नहीं था कि कब क्या करना चाहिए, कि बपतिस्मा इसीलिए जून में कराया गया। लेकिन अक्सर तो अपनी सफ़ाई में वह ऐसे ही या इससे भी कहीं भयानक आरोप पंचेवो वाली अपनी अविवाहित प्रौढ़ा ननदों पर लगा दिया करती थी।

दोनों ओर से आकर उस पर टूटती हुई इन भयानक लहरों के बीच खड़ा ज़ेको न साँस ले पाता था न कुछ साफ़ देख पाता था। और इसके अलावा और भी कई दिशाओं से और किनारों से कई लहरें आकर उस पर टूट रही थीं। उसके आसपास सब कुछ बदल गया था, टूट गया था और उथल-पुथल में था; पहले ही बहुत बड़ी दुनिया से घबराकर लौटे हुए आदमियों के लिए यह सब और भी घबरा देने वाला था। शरणार्थी जीवन ने उसके सामने का क्षितिज तंग और धुँधला कर दिया था और उसकी विवेक-शक्ति नष्ट कर दी थी। ज़ेको में अभि-

मान या संकल्पशक्ति और अधिक होती तो वह पांचेवो वाली बहनों के आरोप की सच्चाई की पुष्टि दूसरी जगह से भी कर सकता था। लेकिन यह ज़माना थकान का और अर्धसत्यों के स्वीकार का ही था; ऐसा ज़माना जिसमें सत्य का आग्रह, जो कि मनुष्य की जीवनी शक्ति की सर्वोत्तम अभिव्यक्ति है और आत्म-सम्मान का एक विशेष रूप है, ज़ेको जैसे आदमियों में अक्सर शिथिल हो जाता है।

शुरू में तो उसे यह अकल्पनीय लगा कि यह स्त्री उसकी पत्नी और यह स्थान उसका घर हो सकता है, कि वह अब से यहीं बसेगा, यहीं खाये-पीयेगा, और अपनी बाक़ी ज़िन्दगी यहीं गुज़ारेगा। लेकिन हुआ ठीक यही।

बूढ़े मिल-मालिक ने भी कुछ सहायता की। वह मानो युद्ध से बिल्कुल नहीं बदला था, वैसा ही शांत और अविचल दीखता था मानो अपने कारोबार और सम्पर्क की ऊँचाई से सब पर करुणापूर्वक मुस्कुरा रहा हो।

लेकिन मार्गरीटा की बहन मारिया से और भी आत्मीयता पाई। युद्ध से पहले मारिया एक शर्मीली बल्कि डरपोक छोटी लड़की थी, अब वह बहुत विकसित हो गयी थी—केवल शरीर से उतना नहीं जितना अपने बर्ताव और ढंग में। घने और नमी के कारण हमेशा चमकते रहने वाले काले बालों से घिरे हुए पीले चेहरे में जड़ी हुई गहरी पर चमकीली आँखों वाली यह युवती सदा प्रसन्न रहती थी। उसकी शांत मुस्कुराहट और सद्भावना भरा युवा उत्साह उसके स्वभाव को उसकी बहन से बिल्कुल अलग कर देता था। युद्ध के बाद के पहले वर्ष में जो सबसे अधिक संकट और यंत्रणा का वर्ष था मारिया उन्हीं के साथ रही। मारिया की दोस्ती से ज़ेको को अपने पारिवारिक जीवन में ऐसा कुछ मिला जिसे सुख कहा जा सके।

लौटने के कुछ दिन बाद ही ज़ेको ने शाही फ़रमानों वाले दफ़्तर में अपना पुराना वाला काम फिर शुरू कर दिया। सब कुछ अब पहले से कहीं बड़ा हो गया था—काम, पद, वेतन, सब। जैसे बेलगराद नगर बढ़ और फैल रहा था, वैसे ही सब कुछ बढ़ और फैल रहा था – बड़ी तेज़ी से और बिना किसी प्रकार की व्यवस्था के।

दो वर्ष बाद बुड्ढा कारख़ानेदार चल बसा और मार्गरीटा के लिए और चीज़ों के साथ रहने को वह पँचमंज़िला मकान भी छोड़ गया जिस पर उस वक्त

काम जारी था, काम पर लगे इंजीनियरों में से एक को मारिया भा गयी और उसने तुरन्त उससे विवाह का प्रस्ताव कर दिया।

वह वश्का का रहनेवाला सीधा-सादा भलामानस था, सीधा इतना कि बुद्धू कहा जाए, लहीम-शहीम इतना कि जैसे दैत्य हो। लम्बाई में वह दो मीटर से सिर्फ़ दो सेंटीमीटर कम था मगर यह कसर उसके चौड़े विशाल कंधों, फुर्तीले डगों और चौड़े मेहनती हाथों से पूरी हो जाती थी। वह कोई असाधारण शिल्पी न था, संसार उसका सीमित था। नाम था युवान डोरोश्की और डोरोश-डोरोश कह कर पुकारा जाता था।

मारिया जब अपने पति के साथ शबात्स जाने लगी तो ज़ेको सचमुच दुःखी हुआ किन्तु वह प्रसन्न भी था।

अब वह मार्गरीटा और उस अपने लड़के के मध्य अकेला रह गया जिसकी वल्दियत अब भी उसे स्पष्ट नहीं थी।

युद्धोत्तर दारिद्र्य से उबर कर, अच्छी आय देने वाले विशाल भवन की मालकिन बन कर और कतर-व्योंत और दुआ-सलाम के सहारे अपनी पूँजी बढ़ाकर मार्गरीटा ख़ुद भी पसरने और गरुआने लगी। वह दबंग और रोबीली होती गयी और अंततः उस रूप को प्राप्त हो गयी जो इमारत भर में और पड़ोस में काला साँप के नाम से विख्यात था।

उसके अलँग उसका लड़का भी बड़ा हो रहा था और माँ-बाप, संगी-साथी और पढ़ाई-लिखाई सहित सारी दुनिया की तरफ़ से अजब तरह की लापरवाही दिखा रहा था। पहले तो वह फ़ुटबाल का खिलाड़ी बना, फिर टेनिस का चैंपियन हो गया और आख़िरकार एक पक्का आधुनिक बेलगरादि छैला बनकर ही माना।

इस बीस बरस में बेलगराद बढ़कर एक विशाल असाधारण नगर हो गया और ज़ेको का घर एक 'चिड़ियाघर' बन गया। उधर ख़ुद उसने अपना मन घर और समाज के प्रति ऐसा विचित्र कर लिया जैसा हम पहले बता चुके हैं।

उन दिनों के जीवन पर कुछ कहना आसान काम नहीं है. विशेष रूप से ज़ेको की तरह के व्यक्ति के विषय में, जिसने ज़िंदगी को दिया भी बहुत कम और उससे पाया भी बहुत कम हो। उन दिनों बेलगराद में—सम्मान और संस्कार से हीन जीवन की व्यर्थता को न पहचानते हुए उसके जैसे बहुत-से लोग रहते थे।

इनमें से बहुतेरे कभी संकट में नहीं पड़े; लेकिन इसीडोर कदाचित पड़ा।

स्वभाव का दब्बू, ज़ेको जाने कब तक इन्हीं परिस्थितियों में पड़ा रहता लेकिन समय बीतने के साथ मार्गरीटा अपने पर और अपने लड़के के उद्वेगों पर नियन्त्रण में काफ़ी असमर्थ हो गयी। ज़ेको के मन में अनेक उपाय आये। उसने तरह-तरह के अकरणीय हल और असम्भव रास्ते सोचे। उसने सोचा, सब कुछ छोड़ चलूँ और शहर के छोर पर कहीं अकेला रहने लगूँ; भाग कर इतनी बड़ी दुनिया में खो जाऊँ; कोई हंगामा खड़ा करके विवाह-विच्छेद कर दूँ। हर उपाय उसने तोला फिर परे सरका दिया और उसके लिए यह गुत्थी बनी ही रही कि ऐसा परिवार कैसे हो सकता है जिसमें न माँ में कोई सभ्य मानवीय लक्षण हों न बेटे में—कम से कम उस पहलू में तो नहीं ही जो वे ज़ेको को दिखाते थे।

दफ़्तर में भी उसकी दशा कुछ बेहतर न थी। ज़ेको उस प्रकार का व्यक्ति था जिसका घर में जैसी जगह होती है वैसा ही बाहर बन जाती है। दफ़्तरवाले उसके शिल्प-कौशल का उपयोग करते पर मनुष्य के रूप में उसकी अनदेखी कर जाते। शाही फ़रमान विभाग का बुड्ढा चपरासी कुछ आश्चर्य, कुछ दया से कहता, "इन ज़ेको महाशय को कोई कुछ नहीं समझता—कोई भी नहीं," और जब इस शहर में कहा जाता है कि कोई कुछ नहीं समझा जाता तो बहुधा उसका अर्थ होता है कि वह हर किसी के पाँवों से रौंदा जाता है।

दफ़्तर के बाहर भी यही हालत थी। अपने घर में अकेला और अपमानित वह कोई वस्तु, कोई व्यक्ति, कुछ भी ढूंढ़ रहा था जिससे अपना नाता जोड़ सके। वह क़हवाघर जाने लगा जहाँ उसके सहकर्मी प्रतिदिन विशिष्ट मेज़ों पर इकट्ठे हुआ करते थे, परन्तु उसने पाया कि वह वहाँ का भी नहीं है। यह अनुभव उसे सालने लगा कि वे कभी उससे बोलते नहीं—मज़ाक़ तक नहीं करते, यह भी कि उसे स्वयं कुछ नहीं कहना था और अगर उसने कभी कुछ कहा भी तो किसी ने सुना नहीं: अकेलेपन के क्षणों में उसने याद किया कि किसी समय वह चित्र आँका करता था: अपनी कविताएँ तक उसे याद आयीं और भी सब याद आया—उसका वह दिव्य स्वर भी। मगर कला का यह संसार उसके लिए मुद्दत हुई बंद हो चुका था; और जगहों की तरह यहाँ से भी वह निकाल फेंका गया था।

उसकी युवावस्था की एक ही चीज़ उसके पास बच रही थी—पढ़ने की लत। किंतु उसका पढ़ना भी बहुत समय से अस्थिर और आकस्मिक रूप में ही हो रहा था। बहुत-से लोग शांति और एकांत की खोज में ही पढ़ते हैं उन्हीं की भांति वह भी खास-खास किताबें ही पढ़ना चाहता और बड़ी मुश्किल से उसे ऐसा साहित्य मिल पाता जो उसके अपने वास्तविक जीवन से उसे दूर ले जा सके।

इस प्रकार यह अंतिम द्वार भी मानो अपने सामने उसे बंद होता दिखायी देने लगा।

२

१९३० के आसपास एक वक्त आया कि ज़ेको की दशा हीन से हीनतर हो गयी। मार्गरीटा की शक्ति का उस समय चरमोत्कर्ष था। उसका पुत्र लूमड़, तगड़ा टिगार वक्त से पहले जवान होने के लक्षण दिखाने लगा था और उसकी बढ़ती हुई उद्दण्डता से जीवन का दुःख और भी दुःसह हो चला था। उस समय ज़ेको का वज़न सिर्फ़ एक सौ दस पौंड रह गया था। बात करता तो आँखें पनीली हो जातीं, हाथ काँपने लगते। उसकी बदहवासी उसकी किताबत में भी झलकने लगी। वह समाज से भागने और काम से डरने लगा। मार्गरीटा और टिगार उसे जीवन से काँछ कर फेंक देना चाहते हैं। ज़ेको के मन में आत्महत्या का विचार जागा।

यह कलुषित विचार जो तीसरे दशाब्द के समृद्ध बेलगराद को विषाक्त कर रहा था, ज़ेको का सतत सहचर और एकमात्र संतोष बन गया। उसमें स्वास्थ्य और विवेक का जो भी अंश था वह आत्महत्या का विरोध और इस विचार की निश्चित रूप से भर्त्सना करता। परन्तु उसकी दुर्बलता और निराशा गुरुतर थी और वह उसे आत्महत्या की ओर खींचे ही लिए जाती। इस आदमी में स्वाभिमान और संतुलन की जो अक्षय भावना थी वह उसे संसार से पलायन

की कोई शालीन युक्ति खोजने को विवश कर रही थी—ऐसी युक्ति हो जिससे न फ़ज़ीहत हो न तमाशा बने, वह अपने पागलपन में अपने आप से कहता।

यह जीवन समाप्त कर देने की धुन में डूबा हुआ मृत्यु के सबसे सुगम और निराडम्बर उपाय की खोज में वह सावा नदी के तट पर रेल पटरी के किनारे-किनारे घूमने लगा। उसे मृत्यु नहीं मिली, नदी मिली और मिली नदी की अद्भुत जीवन-लीला।

मई के एक दिन उस ऊबड़-खाबड़ नदी तट पर जहाँ आड़े-तिरछे घरों और झोपड़ों, बेड़ों और बजरों की बेतरतीब क़तार लगी हुई थी घनी निराशा के क्षणों में घूमते-घूमते उसे एक पुराना परिचित एक जर्जर उलटी डोंगी पर बैठा हुआ दिखायी दिया। उसका नाम था माइका जार्जेविच,—सेना-कप्तान—प्रथम श्रेणी—अवकाश प्राप्त। ज़ेको ने उसे १९१२ के युद्ध में युवा सेकण्ड लेफ़्टिनेंट देखा था और फिर एक बार १९१५ में तूलौन में उससे भेंट हुई थी। युद्धान्त के बाद भी एक-दो बार ज़ेको ने उसे देखा था पर इतना ही जान पाया था कि वह न जाने क्यों सेना छोड़ गया है। अब देखा कि वह धूप में तपी नंगी पीठ लिए सावा में मछली मार रहा है। ज़ेको उसकी बग़ल में बैठ गया और दोनों में बातें होने लगीं।

कप्तान माइका ठिगना हृष्ट-पुष्ट आदमी था, उसकी गोल खोपड़ी हमेशा घुटी रहती थी और उसकी काली आँखों में एक अजब तरह की चमक पायी जाती थी। सेना में लड़ाकू प्रथम श्रेणी का कप्तान रह कर और साठ प्रतिशत अपाहिज होकर वह युद्ध के बाद तुरंत अवकाश प्राप्त सूची में रख दिया गया था। अब वह सेन्याक में किसी जगह एक कोठरी में रहा करता था।

"सच पूछो तो यार, मैं सावा के बूते जीता हूँ—इसी पानी और इन्हीं लोगों के साथ।"

ज़ेको ने, जो अब तक अपने ही ख़्यालों में डूबा हुआ था और कुछ और देख नहीं पाया था, चारों तरफ़ आँखें खोलकर निहारा। वाक़ई नदी-तट पर स्नान करनेवालों, मज़दूरों, मछुओं, आवारों, और न जाने कहाँ से आये और न जाने क्या करनेवालों की चहल-पहल थी।

ज़ेको दूसरे दिन फिर आया और कप्तान माइका वैसी ही दरियादिली के

ग्रालम में उसी जगह बैठा हुग्रा था जैसे कोई बुत कहीं बिठा दिया जाये।

"भइया, मैं बादशाह की तरह रहता हूँ।" कप्तान माइका उससे कहने लगा; 'बादशाह' पर उसने मसखरेपन के साथ ज़ोर दिया ग्रौर हाथों से बादशाहत का खाका खींचा। "कोई मुझे नहीं छेड़ता। कैसा भी मौसम हो मैं यहीं सावा पर, मछली फँसाता मिलूँगा। इससे न तो मछलियों का कुछ बिगड़ता है न मेरा ही कुछ भला होता है ग्रौर यों यह कारोबार जारी रहता है। लेकिन इन लोगों से, नटी तट के इन लोगों से मेल-जोल हो जाता है। इस तट पर मैं एक-एक बजरा, एक-एक घाट, एक-एक बेड़ा, एक एक झोंपड़ी ग्रौर एक-एक ढाबा पहचानता हूँ। यहाँ खाना खाया, वहाँ ताश की बाज़ी खेली ग्रौर एक ग्रौर जगह झपकी ले ली। शाम को खाने को मछली रहती है ग्रौर उसके साथ थोड़ी-सी दाल। इसमें कोई फ़र्क नहीं ग्राने दे सकता। हर साल सात-ग्राठ महीने यों ही गुज़ारता हूँ। पतझड़ ग्राता है तो कुछ दिन के लिए गाँव हो ग्राता हूँ। वहाँ भी ऐश है। वसंत में वेल्गराद लौट ग्राये ग्रौर इसी सावा के हो लिये। बस फिर पतझड़ तक की फ़ुरसत।"

यों कप्तान माइका बोलता रहा, कभी कभी ज़ोर-ज़ोर से तमाम ब्योरा बताकर ग्रपने निठल्लेपन ग्रौर बेफ़िक्री का गुन गाता रहा मगर ज़ेको का ध्यान इसपर नहीं गया लेकिन एक पुराने साथी पाने पर उसे ख़ुशी थी जो उससे हँसने-बोलने को तैयार था ग्रौर जो जीवन का ज़िक्र उमंग के साथ करता था। वह न तो ठीक-ठीक जानता था कि यह जीवन किस प्रकार का है न वह समझ पाया था कि सावा में ऐसा क्या जादू है। वह इतना ही जान रहा था कि वह एक स्वस्थ ग्रौर संतुष्ट दीखनेवाले व्यक्ति के ग्रामने-सामने है। उसे एकाएक ग्रपनी ज़िंदगी की ग्रौर जो चीज़ उसे यहाँ खींच लायी थी उसकी याद ग्रायी ग्रौर कप्तान माइका ने मानो उसे ताड़ लिया; उसने उसके कंधे पकड़कर उसे झकझोर दिया।

"ग्रौर तुम तो भाई, बहुत ही घट गये। मोटे तो ख़ैर कभी नहीं थे लेकिन ग्रब तो ग्रधिया गये हो" कप्तान माइका ऊँचे स्वर में बोला (शायद ज़ोर से बोले बग़ैर वह कुछ कह ही नहीं सकता था।)

ज़ेको का गला रुँध गया, ग्राँखें छलछला ग्रायीं ग्रौर पहली बार उसका जी हुग्रा कि ग्रपने जीवन के बारे में खुल कर बोले मगर उसके ग्रंदर का संकोच इस इच्छा से ज़्यादा बड़ा साबित हुग्रा ग्रौर वह भुनभुना कर रह गया :

"तुम तो खुद ही समझते हो…मेहनत, परेशानियाँ…हर एक की यही…"

"बस रहने भी दो यार, यह हर एक की न कहो, गोया कि तुम हर एक में हो। जाने दो उनको जहाँ जाते हों और तुम एक डगैन ले आओ, साथ में कई काँटे लाना। और यह कलफ़दार कालर और चारजामा उतार फेंको और यहाँ मेरे पास बैठ जाओ—बल्कि पास नहीं कुछ खिसक के बैठो नहीं तो इन गधों की तरह तुम भी मेरी मछलियाँ हँका दोगे। बैठो तो यहाँ और मैं कहता हूँ कि हफ़्ते भर में देखना यह धूप और यह पानी तुम्हें क्या से क्या बना देगा—आदमी बन जाओगे आदमी, समझे। अक़्लमंद जो हैं वे सावा पर ही रहते हैं; मेरा कहा मानो! और वह वहाँ…" यह कहकर उसने एक पर एक गँजे हुए अजब से ख़ाकी रंग के मकानों के ढेर की तरफ़ ऊँगली उठायी, जो बेलग-राद का केंद्र था, पर वह बोला कुछ नहीं, उसने सिर्फ़ नदी में थूक दिया।

ज़ेको लौटकर फिर नदी पर आया, इसलिए नहीं कि कप्तान माइका ने कहा था—वह तो ज़ेको को हमेशा अजब-सा लगता था—बल्कि इसलिए कि उसके भीतर जो भी था नदी की तरफ़ उसे खींचे ला रहा था। तभी जब वह उस दिन बेड़े पर माइका के पास बैठा था तो वह अपने को इस सावा नामक पागलपन से अलग नहीं कर पा रहा था।

कहने की ज़रूरत नहीं कि मार्गरीटा ने उसका विरोध किया।

"तुम्हें हो क्या गया है! बुढ़ापे में मछुओं की संगत करोगे? सठिया गये हो।" फुंकारती हुई मार्गरीटा बोली जो किसी की ख़ुशी नहीं देख सकती थी। "जुआरियों और लफंगों के बीच किसी शरीफ़ आदमी को सावा पर जाते देखा है तुमने?"

यह औरत हर चीज़ में किस तरह खुरपेंच करती है और कैसे ज़बान चलाती है? जाने कहाँ से इसमें यह मर्ज़ आया? ज़ेको सोचने लगा। लेकिन यही तो वह बरसों से सोच रहा था और किसी नतीजे पर पहुँच नहीं पा रहा था। फिर उन दोनों में डगैन ख़रीदने और नदी तट के लायक़ कपड़े बनवाने पर 'तू-तू' 'मैं-मैं' हुई। उसके दिल में शक था कि ज़ेको ने अपने लिए कोई शग़ल ढूँढ़ लिया है जिसे मैं रद नहीं कर सकती और वह मेरे हाथ से निकला जा रहा है। यह सोचकर वह आग-बबूला हो गयी। फिर उसने बरसना शुरू किया तो कमर

पर हाथ रखकर वाही-तबाही बकती गई मगर आश्चर्य कि ज़ेको टस से मस न हुआ। बड़े धीरज से वह अपने अभीष्ट से चिपका रहा मानो कोई अपने जीवन के एकमात्र संकल्प के लिए अनंत यातना भोगने को तैयार हो जाये।

इतने पर भी हो सकता था कि अंततः ज़ेको हार मान लेता किंतु मार्गरीटा स्वयं न जाने क्यों अचानक ढीली पड़ गयी। ज़ेको और सावा दोनों के लिए गालियाँ उसकी ज़बान पर अब भी आ रही थीं लेकिन अब उसका विरोध उतना अविकल न था। स्पष्ट था कि ज़ेको के जाने में उसे कोई फ़ायदा दीख गया था। किसी को नहीं मालूम हो सका कि क्या फ़ायदा था। वस्तुतः मार्गरीटा उन औरतों में से थी जो अपनी इच्छा और अपने हित के प्रतिकूल कुछ भी होने पर तो आसमान सिर पर उठा लेती हैं लेकिन कहीं अपना फ़ायदा दीख जाये तो ऐसे बन जाती है जैसे इनको कोई ख़ुशी नहीं है।

सबसे बड़ी बात तो यह थी कि ज़ेको अब सावा का आदमी हो गया था, उसने मछली पकड़ने का 'क ख ग' कप्तान माइका से सीखा। यह शिक्षा बहुत संक्षिप्त थी। सनकी कप्तान ने अपने छात्र को जिस भाषण से विषय-प्रवेश कराया उसमें और सबका उल्लेख था केवल विषय का नहीं था।

"मैं कोई उपदेशक तो हूँ नहीं और तुम मछली मारना क्या सीखोगे। मछली मारने में रखा ही क्या है। यहाँ बैठो, पानी को निहारो और अपने विचारों को सोचो। (यह वाक्य उसने रूसी में कहा क्योंकि वह सैनिक अकादेमी में कुछ समय पहले सीखी रूसी के अपभ्रंश अवशेष दोहराना पसंद करता था) और जब जी भर जाये तो पानी में कूद पड़ो, तरो-ताज़ा होकर फिर सोचना शुरू कर दो।"

असमंजस में पड़कर ज़ेको ने स्वीकार किया कि वह तैरना नहीं जानता। "वाह" कप्तान माइका ने डगैन पर से नज़र उठाये बिना मुलायमियत से कहा, "तुम भी अच्छे आदमी हो। स्कूल पास कर लिया, इधर-उधर की विद्या सीख ली, लेकिन तैरना नहीं जानते। वाह री विद्या की पढ़ाई। असल बातें तो तुमने सीखी ही नहीं। कोई तुम्हें पानी में उठाकर फेंक दे तो सिल की तरह अपनी विद्या और बुद्धि लिये-दिये डूब जाओगे।"

खैर, इससे कुछ बिगड़ा नहीं। ज़ेको सावा पर जाकर जम गया—धूप में

तपता हुआ और पहले से अधिक आश्वस्त और उस भयंकर कल्पना से मुक्त जो उसे कुछ समय पहले ढकेल कर नदी-तट पर लायी थी।

माना कि घर पर हालत इतनी ख़राब थी लेकिन उसका बोझ अब उतना दुस्सह न था क्योंकि अप्रैल और नवंबर के मध्य ज़ेको के पास सावा का संसार उपस्थित हो गया था।

सावा पर पहली गर्मियों के दौरान ज़ेको ने बहुत-से दोस्त बनाये। लेकिन इस विशिष्ट और विचित्र संसार के मर्म तक घुस पाने में उसे काफ़ी समय लगा। आरंभ में वह जहाँ जाता कप्तान माइका के साथ जाता।

तटवासी कहने लगे, "कप्तान माइका को एक डिप्टी मिल गया है।"

बेलग्राद के बहुत-से रहने वालों को इस तटवासी समाज का, जो कि रेलवे पुल से लेकर चुकारित्सा तक फैला हुआ था, शायद पता ही न था। इस खड़े दलदली और बंजर पुश्ते पर, जो कहीं उजाड़ तो कहीं हरियाला था, एक पूरा राष्ट्र नदी के आसरे जन्म लेता, जीता और मृत्यु को प्राप्त होता है।

सावा तट पर का यह जल-संकुल, जो छह-सात महीने के मेले के लिए जमा होता है, दो वर्गों में विभाजित है। बड़े वर्ग में बेलग्राद के नागरिक हैं—नहाने, मछली पकड़ने, नाव खेने की इच्छा से वे यहाँ मनोरंजन के लिए, औरत के लिए, व्यायाम के लिए या महज़ कपड़े उतार देने के लिए और कपड़ों के साथ नागर जीवन का सबसे भारी बोझ उतार देने के लिए आते हैं! दूसरे वर्ग में सावा के स्थायी या मौसमी निवासी हैं: मछुए, मल्लाह, और कारीगर—अधिकतर लोहार, बढ़ई, गाड़ीवान, बेड़ों और गुसलखानों के ठेकेदार और छोटे-छोटे चायघरों के मैनेजर, जो कि एक जगह गड्डमड्ड थे और आपस में जुड़े और चिपके जैसे एक तरफ़ को झुके हुए दीखते थे। इन सबके अतिरिक्त यहाँ क़िस्म-क़िस्म के धंधे करने वाले आवारा और कोई धंधा न करने वाले आलसी भी पाये जाते हैं।

विचित्र संकलन है इन सब लोगों का। इनमें मज़दूर भी थे और गृहस्थ भी और चुप्पे और शर्मीले बिन ब्याहे भी, और थे पेशेवर तस्कर, जुआरी, गवैये, छैले और ठग और वे भी थे जिन्होंने कभी पी ही नहीं और वे भी जो कभी नशे से बाहर निकले ही नहीं; हुल्लड़बाज़ और दंगाई भी थे और भेड़ की तरह मधुर स्वभाव वाले भी। किंतु इन सबमें एक समान वृत्ति थी: शहर ने

इन सबको चुपचाप न जाने कैसे चुन-चुन कर निष्कासित कर दिया था और वे सावा के तट पर आ गये थे। हर एक का जीवन के साथ कुछ हिसाब चुकता होना बाक़ी रह गया था। कुल मिलाकर ये सब लोग बेलग्राद में एक दूसरे छोर पर रहने वाले इन जैसे लोगों के मुक़ाबले अधिक जीवंत, अधिक रोचक और संभवत: अधिक अच्छे और अधिक निर्दोष लोग थे। शायद इसलिए कि ये पानी के प्रवाह के किनारे रहते थे जो कि सब कुछ धोकर बहा ले जाता है और इसलिए कि ये लोग सूर्य के शुद्ध आलोक में रहते थे जैसे उष्ण प्रदेशों में रहते हैं। इस समाज में केवल सीज़न के दौरान जान पड़ती थी। जाड़ों में शहर का यह हिस्सा राजधानी के नक़्शे पर से ग़ायब हो जाता था और इसके अधिकांश निवासी अपने छोटे-छोटे घरों में दुबक रहते थे या इधर-उधर चले जाते थे।

सावा तट पर कर्म का प्रभाव, स्वभाव और समय भी कुछ अलग ही था; और कुकर्म का भी। क्योंकि यहाँ सीज़न की धूप में बहते पानी की तरल तरंगित सतह पर, सरकती बालू पर और नदी-द्वीपों के हरे-भरे सरों के झुरमुटों में सब कुछ होता था; सब कुछ खुले में होता था।

जब ज़ेको ने सावा-जनों की तुलना मार्गरीटा और अपने साथियों से की तो हमेशा नदी का पलड़ा भारी रहा। उसकी पत्नी अक्सर पियक्कड़ों और घुमक्कड़ों से उसके मिलने-जुलने पर फटकार भेजती लेकिन ज़ेको कोई जवाब न देता। वह अपने परिचितों की याद करने लगता जो कि भले ही पानी में खखारते, एक-दूसरे पर हँसते, क़र्ज़ चुकाना भूलते और अक्सर और लंबी-चौड़ी गालियाँ ज़ुबान पर लाते थे लेकिन जो मार्गरीटा की तरह भयंकर नहीं थे, न उतने पतित और क्षुद्र थे। यह सच है कि ज़िंदगी ने उनको भी कभी-कभी कमीनपन और दुष्टता दिखाने पर मजबूर किया था, लेकिन यह भी सच है कि उनमें निःस्वार्थ, निष्प्रयोजन करुणा और उदारता जब-तब जाग्रत् हुआ करती थी।

ज़ेको हर साल सावा जाने लगा; पहले वह कप्तान माइका के साथ जाता था फिर अकेले जाने लगा और उसने इन लोगों को और उनके जीवन को अच्छी तरह पहचान लिया। यह कोई अविकल आविष्ट समाज न था बल्कि नदी की तरह चंचल और प्रवहमान था। हर साल इसमें नये लोग आते। हर साल कुछ वहाँ चले जाते जहाँ लोग चले जाया करते हैं—दुनिया में काम की

तलाश में, क़ब्रिस्तान में या जेलखाने में। बिछुड़े साथियों का नाम इज़्ज़त से लिया जाता और आगंतुकों को कम से कम पहले सीज़न भर अविश्वास की नज़र से देखा जाता।

गर्मियों में जहाँ हज़ारों की भीड़ लगती थी उस तोपोला के अनेक आधुनिक तट-विहारों के अलावा नदी तट का एक प्रिय स्थान एक स्नानघर था। इसका कोई नाम न था। हरे रंग के तख़्तों से यह बना था; इसी के पास नदी में पैठा हुआ एक नीचा, तनिक तिरछा छोटा चायघर था जिसके ऊपर आइवी बेतहासा उगी हुई थी और ऊपर से एक विराट बबूल जातीय वृक्ष छाया किये हुए था। यह कप्तान माइका का प्रधान कार्यालय और ज़ेको के तट-विचरण का आरंभ-स्थल था।

इसका मैनेजर था स्टाँको मेशिच। यह एक भारी-भरकम, लंबा-तड़ंगा, पतली टाँगों और विशाल उदर वाला आदमी था जिसका रोएँदार सीना था और बाँहें तगड़ी थीं। उसका ठस सिर, दाढ़ी बढ़ा चेहरा और हँसती हुई दुष्ट आँखें थीं। हर कोई उसे मास्टर स्टाँको कहता था, न मालूम क्यों। उसकी पत्नी और लड़की बारी-बारी से ग़ल्ले के पास बैठतीं, नौकर स्नान-कोठरियों की देख-भाल करता और वह ख़ुद तट पर यह कहकर सैर किया करता कि वह काम कर रहा है। सीज़न भर मास्टर स्टाँको एक ही क़िस्म के कपड़े चढ़ाये रहता। उसकी पोशाक थी चौड़ी मोहरी का नीचा, काला जाँघिया जो बिल्कुल सुथन्ना मालूम होता और एक बूचा टोप जो कि तुर्की टोपी जैसा दीखता। मुँह में सिगरेट स्थायी रहती, बस यही उसका साज़ था। इसी धज से वह बेड़ों, घरों, चायघरों और दूसरे स्नानघरों के चक्कर काटा करता। नहाकर पेड़ के नीचे नाश्ता करने वालों से गप लड़ाता और नावों में उधर से गुज़रने वाले मछुओं से मोल-तोल और भिक-भिक करता रहता।

वह नदी तट की इस छोटी-सी नगरपालिका का अनिर्वाचित, अघोषित परन्तु सर्वसम्मत प्रधान था; अतः वही विवादों का विचारक और जन-साधारण का दिग्दर्शक था।

स्टाँको का धंधा था नावें, मोटर, रेफ़्रीज़रेटर, स्टोव, अलमारियाँ और तरह-तरह का लोहा-लक्कड़ और काठ-कबाड़ ख़रीदना और मरम्मत कर के बेचना। उसका बही-खाता उसकी खोपड़ी के भीतर था। उसका गणित अचूक

था। उसने कभी किसी काम में कोई ग़लती नहीं की; फिर भी उसके पास कभी पैसा नहीं रहा। अगर उसकी भली बीवी लड़-झगड़ कर, कतर-ब्योंत कर कुछ रुपये अलग दबा कर न रख देती तो उन लोगों के पास सावा के किनारे का वह छोटा-सा कठघर भी न होता। कभी-कभी मौज में आकर स्टाँको अपने हाल का वर्णन यों करता :

"उस लखपती पीरो स्टेबविच को जानते हो न ? हम दोनों हाई स्कूल के पहले दर्जे से साथ-साथ लताड़े रहते और हम दोनों ने साथ ही साथ काम शुरू किया था। आज वह बेलगराद का बहुत बड़ा ठेकेदार है। उसके तीन मकान हैं। एक तो आब्लजाँस्का मार्ग पर है। छह मंज़िला है। लोग पूछते हैं, कैसे बनाया। मुझसे पूछो। पहली बात तो यह है कि वह लंबा हाथ मारता है और मैं छोटी-मोटी हेरा-फेरी करता हूँ। दूसरे—तुमसे क्या छिपाना—मुझे पीने का शौक़ है और मैं मज़ा लेता हूँ। तो वह एक ईंट उठाता है और मैं बियर का गिलास; वह ईंट और मैं बियर; मुझे दारू और सब कुछ भी पसंद है। बस इसी तरह एक-एक करके दिन गुज़रते जाते हैं। यह है असल बात। ईश्वर तो हम दोनों के साथ है। मेरे साथ खर्च में, उसके साथ बचत में। और फिर भी मुझे लोग कहते हैं मालिक और उसे कहते हैं, माफ़ कीजियेगा, दोग़ला कंजूस। यही है दुनिया का हाल।"

स्टाँको को दार्शनिकता का रोग नहीं था लेकिन उसने अपना एक दर्शन बना रखा था। उसके स्नानघर की दीवार पर दरवाज़े के पास एक तख़्ती लटकी रहती थी :

'यह भी न रहेगा।'

पहले तो मामूली दफ़्ती पर ये शब्द लिखकर टाँगे गये थे लेकिन नहानेवालों और हवा और धूप ने मिल कर दफ़्ती को सड़ा-गला डाला। फिर स्टाँको ने एक नयी तख़्ती बनवा कर सफ़ेद रोग़न की जमीन पर काले से लिखवाया। नये गाहक अक्सर उससे पूछते कि इस वाक्य का मतलब क्या है। आम तौर से स्टाँको कोई जवाब ही न देता, खाली पूछने वाले को अपनी भूरी आँखों से घूर लेता जो कि हँसने पर शैतानी के मारे अधमुँदी हो जातीं लेकिन अचरज या ग़ुस्से से फैलकर गोल हो जाया करती थीं। जवाब न देना तो ग़नीमत थी; जब वह जवाब देता तो और भी सख़्ती से देता। एक दिन एक दुबले-पतले

ललमुँहे आदमी ने लगातार चेक लहज़े में यह पूछ कर उसे तंग कर दिया कि इस विचित्र वाक्य का मतलब क्या है और इससे फ़ायदा क्या है।

आजिज़ आकर मास्टर स्टाँको ने कहा कि यह लोगों को चेताने के लिए है कि सभी पदार्थ क्षणभंगुर हैं।

"हर समझदार आदमी जानता है।"

"हर समझदार आदमी जानता तो है लेकिन यह लिखा उन मूर्खों के लिए गया है जिन्हें पूछे बिना कल नहीं पड़ती।"

स्टाँको का पड़ोसी था नऊम चायवाला। वह मेसीडोनिया का रहनेवाला, दोहरे बदन का काम-काजी आदमी था। ज़्यादा बातचीत उसे पसंद न थी। उसका कठघर रंग-बिरंगे पत्तों से बना था। दरवाज़े पर मखमली फूल और आइवी की बहार थी। सामने की तरफ़ कोई दस-बारह मेजें हर एतवार को बुर्राक सफ़ेद मेज़पोशों से ढकी-बिछी रहतीं। नऊम सीज़न भर यहाँ रहता और अच्छी-खासी कमाई करता। उसकी बीवी-बच्चे जिन्हें वह 'यहाँ सानना नहीं चाहता' शहर में रहते थे। यों तो वह मितभाषी था लेकिन ज़िक्र आने पर वह यह ज़रूर बताता कि उसका एक लड़का वकील है और एक लड़की हाई स्कूल में पढ़ती है।

स्टाँको का एक और पड़ोसी और नदी तट का स्थायी निवासी था मिलान स्ट्रैगराट्स। यह लंबा, खिचड़ी बालों वाला, लंबी मूँछों और तीखे नाक-नक़्श वाला आदमी था। यह भी बोलता कम था और चलता भी दिक़्क़त से था क्योंकि बहुत दिन बीते (मालूम नहीं कब और कैसे) उसका दाहिना पैर कट गया था और अब एक नक़ली टाँग लगी हुई थी। वह अपनी लंबी, लाल बालों वाली पत्नी को लेकर एक अधगिरे घर में रहता था। वह नदी परिवहन विभाग का कर्मचारी, मछुआ, मल्लाह और हरफ़न मौला रह चुका था। अब वह जाल सीने, औज़ार सुधारने का काम अपने घर के ठीक सामने घर से कहीं बड़े एक अखरोट वृक्ष के नीचे किया करता था। लोग कहते थे, मगर कोई प्रमाण न था, कि मिलान पुलिस का मुख़बिर रह चुका है, बल्कि शायद इसी चक्कर में अपनी टाँग भी गँवा चुका है। अब उसे मुआवज़े के तौर पर कुछ पेंशन मिल रही है। यह बात खुल्लम-खुल्ला न कही जाती, हाँ, किसी भिश्ती या मछुए के साथ कई राकिया पीने के बाद आपको बताया जाता :

"मिलान का क़िस्सा किसको नहीं मालूम है..."

अगर आप पूछते कि क़िस्सा क्या है तो जवाब आता :

"कौन-सा क़िस्सा ? मैं क्या जानूँ।"

और फिर कहने वाला हाथ की भंगिमा से कहीं दूर किसी स्थान की ओर इशारा करता जहाँ न तो अच्छा है न सुंदर है और जहाँ के बारे में बोलना भी उचित नहीं है।

मिलान चिड़चिड़ा, घुन्नहा आदमी था जो बोलता था तो गुर्राता जान पड़ता था हालाँ कि वह लँगड़ा कर चलता था और चुप ही रहता था फिर भी हर कोई उससे डरता था और चाहता था कि चाहे चार पैसे गँवाने पड़ें लेकिन उससे टकराना न पड़े; हर कोई उसे ख़ुश रखना चाहता था, स्टाँको भी, जो कि दूसरों के मुक़ाबले उससे अधिक मुलायमियत से बात करता था। यह ठीक-ठीक बताना बहुत मुश्किल है कि यह धाकड़ आदमी अपनी सत्ता का प्रयोग कैसे करता था किंतु यह कहा जा सकता है कि वह इतने इत्मीनान से दूसरों पर रोआब जमाता था कि हर एक ने उसके उद्दंड व्यवहार को अनिवार्य मान कर स्वीकार कर लिया था। उसके ग़ुस्से से बचने के लिए लोग छोटी-मोटी तकलीफ़ गवारा कर लेते लेकिन उसे नाराज़ न करते हालाँ कि इससे न तो वह उनका कृतज्ञ होता न उसके अंतर की अटल और अपार घृणा कम होती।

हमारे मध्य में ऐसे लोग होते ही हैं। पुलिस प्रधान कार्यालय में ही नहीं क़स्बे के दुकानदारों, सरकारी मंत्रियों और समाचारपत्र के संपादकीय विभागों और स्कूलों में ऐसे लोग मिल जायेंगे। अपने देश में ऐसे हेकड़ीबाज़ों और परोपजीवियों को कौन नहीं जानता जिनके शानियल, ग़ुस्सैल मुखड़ों के पीछे केवल खोखला शून्य है और कौन है जिसका आत्म-गौरव और आत्म-हित ऐसे लोगों के हाथों नष्ट न हुआ हो। कौन है जिसके हृदय में ऐसे लोगों के स्वैराचार का डंक न गड़ा हो। ये लोग कभी पूरे प्रदेश में व्याप्त हो जाते हैं, कभी एक पलटन या एक कक्षा में सीमित रहते हैं। कभी-कभी एक व्यक्ति को ही शिकार बना पाते हैं और कभी मिलान की तरह नदी तट के सौ वर्गगज़ निर्धन मोहल्ले पर छा जाते हैं।

मिलान से ही ज़ेको को एक दिन कप्तान माइका के बारे में कुछ नयी बातें मालूम हुईं।

ऊमस भरे दिन के बाद शाम हो चली थी। मिलान रोज़ की तरह अख़रोट के नीचे घास पर बैठा था और सावा के कुछ लोग उसके चारों ओर घेरा बनाये खड़े थे। वे सब वालयेवो की राकिया (कच्ची शराब) पी रहे थे जो कोई चखने के लिए ले आया था। ज़ेको चुपचाप घेरे के बाहर खड़ा हो गया।

मिलान ने गिलास ख़ाली करके ओठ चाबे जिससे कि उसकी सफ़ेद मूँछ बाहर को उभर आयी और किसी पिछले तर्क का विस्तार करते हुए उसने बिना किसी की ओर देखे सख़्ती से कहा—

"क्या, कौन, माइका को कह रहे हो ? वह एक विदूषक है जो सारी ज़िंदगी अपने को बुद्धू साबित करता घूमा है। वह कम्युनिस्ट है और नहीं तो उनका आदमी तो ज़रूर है। वह १९२१ में सेना से ख़ारिज किया गया था। उसके पास दफ़्तर की मशीन पर टाइप की हुई कम्युनिस्ट पर्चियाँ मिली थीं। बात बिल्कुल साफ़ है। उसे तो जेल जाना था। लेकिन बस कुछ ऐसे ही हो गया···फिर उसे पेंशन मिलने लगी। अब वह दब कर रहता है और ऐसे बनता है जैसे कभी कुछ हुआ ही न हो लेकिन मैं उसका एतबार नहीं करता।"

कहकर मिलान स्ट्रैगराट्स ने एक ओर थूक दिया।

बिना किसी को जताये ज़ेको भीड़ से निकल आया।

उसके ऊपर एक डर हावी हो गया था। वह डर जो शहर के रहनेवालों के मन में हमेशा मँडराया करता है, निरे शब्दों का डर, अपने भीतर छिपे अचरजों का डर, वह डर जो हर विचार के पहले आकर खड़ा हो जाता है और शब्द के यथार्थ और सत्य की जाँच नहीं होने देता।

उस दिन से वह कप्तान माइका को बड़े ग़ौर से ताकने लगा। उसकी दृष्टि में कौतूहल, स्नेह, आदर और भय मिल-जुल कर एक हो गये थे। इस व्यक्ति के हँसोड़पने का मतलब क्या है। इस सबका मतलब क्या है ? क्या यह सिर्फ़ दिखावे का मुखौटा है ? यदि हाँ, तो मुख कहाँ है और कैसा है ?

एक मर्तबा उसने एक दर्दभरा सपना देखा। कप्तान माइका और मिलान स्ट्रैगराट्स उसके सामने खड़े उसकी वफ़ादारी का सबूत माँग रहे हैं। स्ट्रैगराट्स उदास है, उसकी खिचड़ी दाढ़ी खसखसी है, उसकी मुस्कुराहट अगम्य है जैसे विदेशी भाषा होती है। और माइका बैठा, पाँव हिलाता मुस्कुरा रहा है। और उसी दिन की तरह बोल रहा है जब वह पहले मिला था।

'समझदार आदमी सावा के किनारे रहते हैं...'

उसने सीधे-सादे ढंग से हँस कर यह कहा था लेकिन मानो ज़ेको के पीछे दूर कहीं किसी को ताड़कर वह अजब तरह से आँख मार देता था। इस हरकत से ज़ेको चक्कर में पड़ जाता; वह अशोभन थी और कुछ अपमानजनक भी। तो भी उसे माइका अच्छा लगता था और वह उससे जैसे भी हो कुछ कहना और सुनना चाहता था, लेकिन स्ट्रैगराट्स के रहते यह हो नहीं सकता था।

ज़ेको किसी चीज़ से उलझ रहा था। वह उसे पलटता और मोड़ता लेकिन वह उसे सुलझा न पाया यहाँ तक कि आखिर में सब कुछ कष्टकर और अद्भुत हो गया और जब वह जगा तो उसे बड़ी राहत मिली।

कप्तान माइका की जो कहानी मिलान ने सुनाई थी वह कुछ दिनों तक उसको बार-बार याद आती रही। फिर वह सब कुछ भूल गया। कहानी भी और कहानी से उपजा भय भी। लेकिन अक्सर जब वह माइका के साथ नऊम के चायघर के दरवाज़े बैठा धूप सेंकता होता तो उसकी नज़र माइका के गोल घुटी खोपड़ी पर जा टिकती और तब उसे मालूम होता कि वह न जाने क्यों माइका को बहुत अधिक चाहता है और इसमें कोई जोखम हो तो उठायेगा। और हो भी तो कितना बड़ा जोखम होगा। असल में स्ट्रैगराट्स जैसे आदमी हमारे जीवन में एक बड़ी विडंबना हैं और उसके बारे में सोचने से ही परेशानी होने लगती है।

स्टाँको का एक और पड़ोसी था आइवान इस्त्रानिन। यह पेशे से बढ़ई था। नाव बनाने में सिद्धहस्त था और अपनी पत्नी मारियेटा को लेकर वहीं रहता था।

यह स्टाँको की भाषा में पेचीदा मामला था। दोनों इस्त्रिया से आये शरणार्थी थे। मारियेटा आइवान से उम्र में बड़ी, अधिक अनुभवी और निरंकुश स्त्री थी। आइवान भूरे बालों और आसमानी आँखों वाला छरहरा व्यक्ति था। उसे देखकर लगता था कि कोई कमज़ोर दिमाग़ लड़का शरीर से बड़ा हो गया है। वह कस कर मेहनत करता। रविवार की शाम को नशा करने का शौक़ीन था लेकिन सवेरे वह बराबर कुँस्का मार्ग के कैथोलिक गिर्जाघर में जाया करता था।

× × ×

गर्मियों भर आइवान नावें और डोंगियाँ मरम्मत करता और नये बजरे बनाता रहा। चौड़ी मोहरी का सूती पतलून और फटही कमीज़ पहने, नंगे पाँव, बालों में बुरादा भरे वह अपने दो शिष्यों के साथ दिन भर जुटा रहता मगर काम पूरा होने को ही न आता। मारियेटा की अपनी अलग ज़िन्दगी थी : वह आँख मूँद कर पैसा बरबाद करती, हर मौसम में नया प्रेमी करती और हर प्रेमी के बदलने के साथ अपने को कुछ और गिरा लेती। तट पर इस दम्पती का जीवन गपशप का खास मसाला और तिरस्कार का प्रमुख विषय था। आइवान पत्नी से कुछ कह न पाता। बस सब कुछ अपनी आँखों से देखता और सहता रहता। अच्छा होता कि वह शांति से सहता, मगर नहीं वह कभी हर एक से, खास करके ज़ेको और चाय वाले नऊम से अपना रोना रोता और कभी उँगली उठाने वाले पड़ोसियों से अपनी पत्नी का पक्ष ले कर तर्क करता। इस तरह इस युगल ने सावा किनारे की शांति हर ली थी मगर उसकी रोज़-रोज की 'तू-तू', 'मैं-मैं' झाँय-झाँय, रोवा-रोहट, गाली-गुफ़्ता, ले-दे और अंत में निर्लज्ज सुलह देखकर लोगों का दिल बहलता रहता था।

एक बार की गर्मियों में, जो सावा किनारे ज़ेको की चौथी थी, ऐसा कुछ हुआ जिससे आइवान के दोस्त भौंचक रह गये। रविवार को सवेरे-सवेरे जब ढाबे में कोई न था आइवान वहाँ आया, दो-चार गिलास राकिया चढ़ाये और वेदना से त्रस्त व्यक्ति जैसा विकृत मुँह बनाकर नऊम से अपने मन की कथा कहने लगा।

"ईश्वर जाने क्या होने वाला है, कुछ समझ नहीं पा रहा हूँ। मेरी औरत ने अब पैसे चुराना शुरू कर दिया है। मुझे लगता है, भगवान क़सम, नऊम, कुछ बहुत बुरा हो कर रहेगा।"

"जाने भी दो," नऊम बोला। उसका यह तटस्थ और संयत 'जाने भी दो' इस लहज़े में कहा गया था कि कहना कठिन था कि वह मारियेटा की निन्दा कर रहा है या आइवान पर तरस खा रहा है या दोनों की निंदा कर रहा है और दोनों के साथ इस सारे संसार की भी, जो "बुरा है, बहुत बुरा है।"

उसी दिन बड़ी देर ताक में बैठे रहकर शाम होते-होते आइवान ने मारियेटा को उसका बक्स खोलते पकड़ लिया। इसमें वह पैसा रखता था और मारियेटा

ने इसकी दूसरी चाबी बनवा ली थी। जब वह पकड़ी गयी तो उसके हाथ में सौ दीनार का नोट था। श्राइवान ने एक श्रधबनी नाव के पास पड़ा एक भारी बसूला उठा लिया श्रौर फुर्ती से सधे वढ़ई की तरह उस श्रौरत को हनने लगा; यहाँ तक कि उसके लम्बे-चौड़े कारखाने के उस श्रँधेरे कोने में वह ख़ून से लथपथ ढेर हो गयी।

तब वह रुका, स्ट्रैगराट्स के घर की श्रोर चला जहाँ श्रख़रोट के तले दर्ज़न भर श्रादमी, कुछ रविवारीय सज-धज में, कुछ तैरने के जाँघिये पहने जमा थे। ख़ून से सने हाथ ऊपर उठा कर श्राइवान रोते-रोते चीख़ा :

"पुलिस को बुलाश्रो, पुलिस को बुलाश्रो !"

हाथ में गिलास थामे श्रवाक् भौंचक श्रादमी उसे देखते रह गये।

यों तो नदी किनारे कोई बात बड़ी बात नहीं मानी जाती पर इस घटना को श्रसाधारण माना ही गया। पड़ोसियों को मुंसिफ़ के सामने गवाही के लिए बुलवाया गया श्रौर श्रधिकांश सावा-बिरादरी मुक़दमा देखने गयी। लोग घर लौट कर बेचारे श्राइवान पर तरस खाते, "वह मर्द बच्चा नहीं," लेकिन बयान सबने उसके पक्ष में दर्ज किये। ऊपर से उसके स्लोवेनी वकील की होशियारी काम श्रायी श्रौर वह सिर्फ़ दो साल की क़ैद पाकर रह गया।

श्रन्यथा सावा-बिरादरी को ऐसी दुर्घटनाश्रों का श्रनुभव न था। स्त्रियाँ बच्चों को लेकर लड़तीं श्रौर पुरुष धन्धे की छोटी-मोटी बातों को। वे काम करते-करते लड़ पड़ते श्रौर फिर राकिया पीते-पीते सुलह हो जाती। या फिर राकिया पीते-पीते लड़ पड़ते श्रौर काम के वक्त सुलह हो जाती।

श्रभागे श्राइवान इस्त्रानिन के मकान से कुछ क़दम पर सड़क के किनारे जोका लोहार की छोटी-सी दूकान थी : यह लकड़ी की बनी थी; तंग, श्रँधेरी, धुश्राँभरी। इस दूकान में चिनगारियों की चमक श्रौर बुझाये हुए फ़ौलाद की सिसियाइंध भरी रहती।

रोज़ इधर से गुज़रते हुए ज़ेको ठहर कर देखता, उसका दोस्त जोका लाल लोहे को हथौड़ा लेकर इस तरह कूट रहा है जैसे किसी दुश्मन पर पिल पड़ा हो। काम करते वक्त वह श्रौर कुछ नहीं देख पाता था—साथ जुटे सहायक को भी नहीं। कुछ काम बताता तो दाँत भींचे-भींचे ही बोलता था। पर जब धीरे-धीरे ठंडा होकर काला पड़ता हुश्रा इस्पात हथौड़े के तले मनचाहा रूप ग्रहण

करने लगता तो लोहार की समाधि टूटती और उसे आसपास खड़े लोग दिखने लगते, उनकी बात सुनायी पड़ने लगती और उनको अपने सवाल का जवाब भी मिलने लगता।

लोहारी से कुछ दूर घर था, लोहारी से न बड़ा न बहुत बेहतर, बच्चों से खचा जो तर-ऊपर के थे और एक दूसरे की कान-खिचाई किया करते थे। उसकी लम्बी सुथरी पत्नी मिलेना घर और बच्चे सहेज कर रखती थी।

और जब दिन ढलने पर नऊम के ढाबे के दरवाज़े बैठे चार आदमी लोहार की लगन और संतान-संख्या के बहाने से उसे छेड़ते तो वह खिसियाने लगता :

"ठीक है, ठीक है, बच्चे तो जितने हों थोड़े हैं।"

लोहारी से कुछ उतर कर मिस्त्री कार्लो ज़ेमुनाट्स की, जिसे सब ड्रागी, ड्रागी कहते थे, दूकान थी। यह भी पटरों की बनी थी और जोका की दूकान से कुछ बहुत बड़ी न थी अलबत्ता इसके भीतर रोशनी और सुघराई कहीं अधिक थी। फ़र्श यहाँ भी कच्चा, सीला, ऊँचा-नीचा था। दीवारें रंदा किये पटरों की बनी और मशीनी तेल और धूल के मैले पलस्तर से भूरी हो रही थीं। एक दीवार पर ज़ेको की नज़र हमेशा दो चीज़ों पर जा टिकती। एक तो फ़ोटो थी जिसमें गोद में बच्चा लिये एक औरत बैठी थी और दूसरी थी तस्वीर के नीचे खुँसा काग़ज़ का सस्ता नक़ली लाल गुलाब।

कार्लो का परिवार ज़ेमुन रहता था। वह बेहद चुप्पा आदमी था। बोलता तो सिर्फ़ माइका से और वह भी अकेले में।

इन दोनों संसारों का अंतर ज़ेको के मन में निरंतर हलचल पैदा किया करता। वह कुछ कहना चाहता तो कप्तान माइका से ही कह सकता था। खुद माइका की बातों में लच्छेदार कहावतों और ऊटपटांग मुहावरों के सिवाय कुछ न होता लेकिन ज़ेको को वह बोलने का मौक़ा देता था और ध्यान से सुनता भी था।

ज़ेको तटवासियों को ही नहीं, उनमें से भी बहुतों को पहचानने लगा था जो बेड़े पर या झाड़ियों में बैठे मछली मारते थे। इनमें लगन के पक्के शिकारी थे, दिल के भले थे और टिर्रहे थे और फिर निरे झक्की थे जो घंटों पानी में बंसी डाले बैठे रहते। वह रंग-बिरंगे, हल्ला-गुल्ला करते नहानेवालों के मजमे देखा

करता जिनमें कुछ सचमुच खिलाड़ी थे, कुछ महज़ वक्त काटने वाले थे और ये सब सावा की सतह पर तैरते-तैरते आराम-आमोद या नये-नये शग़ल की खोज में या फिर सिर्फ़ फ़ैशन के मारे तितर-बितर हो जाते। उसने बहुत-से दिन और बहुत-सी गर्मियाँ यों ही दृश्य देखते-देखते गुज़ार दीं।

बहुधा वह तट पर कुछ आगे जा कर एक छोटे-से बेड़े तक जा पहुँचता जो बेलगराद की किसी परिवहन कंपनी का था और जब लदान न हो रहा हो तो सूना पड़ा रहता था।

ज़ेको बेड़े पर जा बैठता। वह धातु के छोटे-छोटे पीपों पर टिका हुआ निरन्तर आगे-पीछे डोलता रहता और उसके नीचे पानी की लगातार कलकल सुनायी दिया करती। कभी-कभी ज़ेको को लगता कि सब कुछ तैर रहा है, सामने नदी, नीचे बेड़ा, दूर पर द्वीप जो विराट हरी नौका जैसा दिखता है और ऊँचे पर शहर जो विचित्र जलयान-सा खड़ा है और काले मेगडान का क़िला उसकी चोंच है। वह बैठा पानी का प्रवाह निहारा करता। वह तेज़ धूप में सुरमई और सिलवटदार होकर ऐसे चमकता जैसे इस्पात का बना हो लेकिन था वह इतना रेशमी कि मछुआ नावें, किश्तियाँ और डोंगियाँ उस पर से निःशब्द फिसलती चली जाती थीं। आँख आधी मूंदकर देखो तो लगता कि सब चीजें एक दूसरे से बराबर टकराती जा रही हैं मगर टूटतीं-फूटतीं नहीं।

इतने में काना मछुआ स्वेटा एक बेढंगी कोलतार पुती नाव में आता दिखाई दिया। था तो वह उस पार का मगर शायद ही कोई दिन जाता हो जब वह इस पार न आये। वह पुट्ठे पर बैठा एक ही पतवार से खेया करता। उसके पाँव के पास नाव में लगाने वाला एक मोटरइंजिन पड़ा था — ज़ंग खाया हुआ उसका बायलर ऊपर को खड़ा था। यह यंत्र स्वेटा को किसी के झोंपड़े में या सरकारी गोदाम में कहीं मिल गया होगा और अब वह उसे चुकारित्सा के किसी लोहार के पास ले जा रहा था जो उसे कौड़ियों के मोल ख़रीदकर साफ़ कर जलक्रीड़ा के असंख्य शौक़ीनों में से किसी के हाथ बेच दे। स्वेटा सैकड़ों अधनंगे नहाने वालों के बीच अकेला आदमी था जो पूरा लिबास पहने था।

सर पर काली टोपी थी : कोट के नीचे गले तक बटनबंद वास्कट, टाँगों में सूती पतलून और पाँवों में बिना मोज़े के सलीपर थे। यही कपड़े वह क्रिसमस पर भी पहनता और हमेशा वह कालिख पोते रहता। जब उससे कोई कहता कि क्या

धुँआरे से गिर पड़े थे तो वह अपनी अकेली आँख झपकाकर अपने काले चिमड़े हाथ से ठुड्डी खुजलाने लगता; ध्यान उसका अपने धंधे पर ही रहता जिसमें चोरी-चमारी ही अधिक कर के शामिल थी। स्टाँको, जिसे सावा पर चलने, तैरने या तिरने वाली हर वस्तु की अचूक पहचान थी, कहता था कि इस संसार की जो चीज़ ईश्वर के खूँटे में बँधी हो वही स्वेटा के हाथ से बच सकती है। कभी किसी ने स्वेटा को दूर तक दौड़ाया था तभी उसकी दायीं आँख गयी थी।

यह तो सब जानते थे। स्टाँको का नौकर शाम के वक्त स्वेटा को कोठरियों के चक्कर काटते देखता तो फ़ब्ती कसता, "ज़रा सँभल के रहना, बताये देता हूँ, अबकी गयी तो फिर न मिलेगी।" मनहूस और उदास स्वेटा अपने शिकार के पीछे पनिया कीड़े की तरह रेंगा करता। बेचारा! उसकी क़िस्मत में लिखा था कि चाहे भले इरादे से ही आये, उसकी सूरत देखकर लोग चौकन्ने हो जायेंगे।

स्वेटा की नाव सफ़ेद धुएँ की लकीर पीछे छोड़ती जा रही थी: यह स्वेटा के मुँह से बुझे-अनबुझे हरदम लगे रहने वाले छोटे काले पाइप से निकल रहा था। स्टाँको का कहना था अगर स्वेटा यह पाइप दाँत से न चाबे रहे तो सावा में गिर ही पड़े।

अब ज़ेको की अधमुंदी आँखों के झरोखे से एक रंग-बिरंगी नाव दिखायी दी। एक पुरुष खे रहा था: वह कपड़े का टोप लगाये था, उसकी बाँहें और कंधे धूप में तपते-तपते तँबिया गये थे। एक सुन्दर स्त्री नीला स्नानखण्ड पहने छाता खोले नाव के सिरे पर बैठी थी; वह अवश्य रूसी प्रवासिनी रही होगी।

ज़ेको ने सोचा, इस अधेड़ नाविक का सम्पूर्ण शक्ति लगा कर अपना यह बोझ खेना कितना करुण है किन्तु यह विचार पल भर में निरोहित हो गया। स्वेटा के पीछे छूटते धुँए की लकीर-सा।

अब ज़ेको का दृष्टिपथ एक छोटे काले जहाज़ 'क्राइना' ने अवरुद्ध कर लिया था जिसके धुँआरे-से उगला हुआ गाढ़ा काला धुआँ बादल जैसा बन गया था और पानी की चमकीली सतह पर अपनी परछाईं डाल रहा था। यह छोटा मगर ताक़तवर जहाज़ दो बड़े लदे-लदाये बजरे खींचता जा रहा था। दूसरे बजरे की छत पर सफ़ेद रंग का एक कठघर बना था जिसकी खिड़की में फूलदान रखा दीखता था। कठघर के पीछे से निकलकर एक जवान औरत नंगे पैर हाथ में

एक बड़ा-सा बरतन लिये हुए आयी और बरतन का पानी सावा में फेंककर चली गयी : उसके पीछे-पीछे एक छोटा-सा सफ़ेद कुत्ता आकर उछलने-कूदने लगा ।

फिर कुछ क्षरण के लिए नदी सूनी हो गयी । केवल पानी की वह उथल-पुथल, जो बजरों के गुज़रने से हुई थी, आलोक-धारा को विश्रृंखल करके दृष्टि आकृष्ट करती रही।

किंतु पानी स्थिर न हो पाया था कि एक गोल डोंगी, सुन्दर जापानी काठ की बनी, आठ आदमियों को लिये दृष्टिगत हुई : यह छिछली थी और कुल-चिह्न से अंकित सफ़ेद बनयाइन पहने खेवनहारों के बोझ से पानी में दबकर प्राय: अदृश्य हो गयी थी। डोंगी तालबद्ध लय से पतवारें बाहर निकालती और समेटती और खनखजूरों की तरह सरकती चली जाती थी। शिक्षक सुकान पर बैठा दिशायंत्र दोनों हाथों से साधे था, उसके गले में लटके भोंपू से उसकी भोंडी आवाज़ 'एक-दो, एक-दो...' आदेश देती गूँज रही थी (ज़ेको को एकाएक टिगार, अपने घर और मार्गरीटा की दु:खद स्मृति हो आयी)। जेको को खेलने-कूदने वाले नापसंद थे और नापसंद इसलिए थे कि वह उन्हें जानता नहीं था बल्कि जानता था तो केवल अपने लड़के और उसके दोस्तों के माध्यम से ।

खेलकूद आदमी का दिल मज़बूत और दिमाग़ कमज़ोर कर देता है, ज़ेको ने सोचा, और पौरुष और साहस की जगह वह उजड्डपन और आक्रामकता सिखाता है, तिकड़म और जुआ तो सिखाता ही है। इन चीजों से हमें वास्ता ही क्यों हो ? आक्रामकता तो यों ही बहुत काफ़ी है। और लालच भी।

बिजली की तेजी से एक शिकारा गुज़र गया और वह इतना लम्बा और छिछला था कि खेने वाला पानी पर बैठा मालूम होता था। दो लम्बी पतवारें उठीं और डैनों की तरह फड़फड़ायीं। आदमी की आँखों पर धूप का चश्मा था। उसकी भूरी चमड़ी पर तेल की मालिश हुई थी जिससे उसके पुट्ठे धूप में ऐसे चमकते थे जैसे भीगा काँसा हो। शायद यह कोई स्लोवेनी है, व्यापारी होगा, ज़ेको ने सोचा।

तब एक मामूली सफ़ेद नाव रेंगती हुई निकली, जिसमें दो जोड़ पतवार लगे थे और एक पूरा परिवार सवार था। पति-पत्नी खे रहे थे। दो औरतें सिरे पर बैठी थीं और दो लड़के एक तरफ़ झुककर कभी पानी अपने ऊपर

छिड़क रहे थे, कभी उसमें अपना मुँह देख रहे थे। एक भारी-भरकम झबिया खाने के सामान से भरी रखी थी जिसमें से एक बड़ा-सा तरबूज़ झाँक रहा था; क़रीब ही एक बेंत की टोकनी में शराब की बोतल थी। यह है नये ज़माने की तसवीर: पति नौजवान और नौबढ़ है, पत्नी घमंडिन और फ़ैशनपरस्त; लड़के दोनों स्कूल में हैं, सास है, जिससे बुढ़ापे में धूप बर्दाश्त नहीं होती और साली है जिसके लिए नदी पर वर की खोज हो रही है क्योंकि थल पर खोज कर हार चुके हैं। ये लोग द्वीप के परले सिरे पर कहीं ठहर कर सरों की छाँह में भोजन करेंगे, फिर मच्छर मारते-मारते सो जायेंगे।

इस तरह ज़ेको की आँखों के सामने से बेलगराद के जीवन की प्रत्येक संभव झाँकी गुज़रती रही। यह कभी विचित्र, कभी अद्भुत और अक्सर ऊटपटांग दिखायी देती मगर होती हमेशा जानदार थी। सावा जीवनमयी है, ज़ेको ने सोचा, और जीवन संगठित होना चाहिए, आकस्मिक, अतार्किक, अव्यवस्थित नहीं। ख़ुद तो वह नहीं जानता था कि कैसे हो लेकिन उसने एक ऐसी व्यवस्था की कल्पना की, जिससे जीनेवाले हर एक को अपनी सही जगह मिली हुई हो।

और ज़ेको सोचने लगा: कौन-सी जगह स्टाँको को दी जाये जो कि इसी वक्त मेरे पास से गुज़र रहा है, उसकी छाया अभी क्षण भर को मेरे ऊपर पड़ी थी। विशालकाय, जीवन्त, होशियार स्टाँको को ऐसे तो नहीं रहना चाहिए। उसे धूप में छाया खोजते हुए घूमते नहीं रहना चाहिए और न जब-तब छिटपुट काम करना चाहिए, जैसे वह करता है। बड़ी मुश्किल से घर भर के खाने को और गाहे-बगाहे एक गिलास दाल या तम्बाकू खरीदने को वह पैसा जुटा पाता है। बहुत-सी बातें हैं जो नहीं होनी चाहिए।

ज़ेको को ख़ुद यहाँ तेज़ धूप में बेड़े पर पड़े-पड़े ऊँघते और जागते फ़ैसला नहीं करना चाहिए कि जीवन में क्या हो और क्यों हो।

तो भी वह एक व्यवस्था की परिकल्पना करता रहा—उस अनुशासन की नहीं जिसकी हमारे यहाँ लोग बहुत बात करते हैं बल्कि एक समुचित रचनात्मक व्यवस्था की जिसमें प्रत्येक को अपना अभीष्ट प्रायः प्राप्त हो जाये। और तब उसने सावा किनारे की वह शक्ल अपने मन में देखी जो सचमुच होनी चाहिए थी। सब लोग अधिक अच्छा काम कर रहे हैं और अधिक आराम से रह रहे हैं, स्टाँको और आइवान इस्तानिन और उसकी अभागी मारियेटा और

स्वेटा और मिलान स्ट्रागराट्स भी—सब नये आदमी बन गये हैं और संसार में उनके लिए निश्चित स्थान है, सब···

सहसा बेड़ा हिला, ज़ेको की विचारधारा टूटी, उसका स्वप्नलोक विश्रृंखल हो गया। धातु के पीपे विशाल घंटों की तरह बज उठे और पानी उछल कर पटरों पर आ रहा : एक तेज़ मोटरबोट गरजती हुई चली आ रही थी। चौंक कर ज़ेको ने इस वेगवती तन्वंगी नौका पर दृष्टि स्थिर कर दी। वह इस नौका, आरिज़ोना, को पहचानता था और इसके मालिक को भी। वह एक वेल्ज़ ठेकेदार और दलाल था। इस गठीले युवा की बग़ल में दो लड़कियाँ दोनों प्रोफ़ेसर क्राल्येविच की पुत्रियाँ थीं। वे उसी समूह की थीं जिसका ज़ेको का पुत्र टिगार था। ये सुन्दर, स्वस्थ स्त्रियाँ, जिनके गले में सुर और शरीर में प्रसन्नता और स्फूर्ति थी बेलगराद का स्वच्छन्द स्वर्णिम तरुण जीवन बितातीं, बनकर सर्बियाई शब्दों को खींच कर बोलतीं कि 'र' कुछ मन्द और कोमल हो जाये : न तो उनकी पढ़ाई ख़त्म होने को आती और न उनका विवाह होता और एक महीने में वह उतना फूंक डालतीं जितना उनके बाप दो में कमायें।

सशक्त सुन्दर नाव पानी को बड़े मजे में काट रही थी और जब वह ज़ेको के सामने से सनसनाती गुज़री तो उसने देखा : एक जवान लड़की की सुडौल बादामी बाँह फैली हुई है और उसके सिरे पर मानो वही खिले फूल की तरह एक शोख़, रंगबिरंगा पेरिसी रूमाल फड़फड़ा रहा है।

३

सावा का परिचय पाये ज़ेको को सात वर्ष हो चुके थे और आठवाँ सीज़न चालू था कि एक और परिवर्तन घटा; और उसका व्याकुल जीवन कुछ और सह्य हो गया।

उसकी साली का परिवार डोरोश्की-परिवार शबात्स से बेलगराद आकर रहने लगा।

प्रथम महायुद्ध के शेष होने पर जब इंजीनियर डोरोश्की और मारिया शबात्स चले गये थे तो कुछ दिन तक ज़ेको के पास चिट्ठी-पत्री आती-जाती रही। पर यह सिलसिला अधिक दिन नहीं चला। जब इंजीनियर काम से बेल्गराद आता तो मार्गरीटा और ज़ेको क यहाँ मिलने आता और अपनी संक्षिप्त भाषा में शबात्स का हालचाल बता जाता। उनके पास चार बच्चे थे। आमदनी भरपूर थी। कारखाने के पास ही एक मकान में, जिसमें बाग़ भी था, वे रहते, अच्छा खाते और अच्छा पहनते। बाग़ की सेवा डोरोश्की अपने हाथों करता।

शबात्स के सत्रह साल के प्रवास में मारिया को ज़ेको ने सिर्फ़ एक बार देखा। एक साल सर्दियों में डोरोश्क कम्पनी की गाड़ी में बेलगराद आया था और लौटते हुए ज़ेको को अपने साथ लिवा ले गया था। जब उनका सबसे बड़ा लड़का फ़िलिप हाई स्कूल कर चुका तो उन्होंने बेल्गराद आकर रहना तय किया। यह १९३८ के शरद की बात है।

उन्होंने टापचाइडर पहाड़ी पर मकान ढूंढ निकाला : यह उन अनाम खड़ी गलियों में से एक पर था जो टाल्सटाय मार्ग को जगह-जगह से काटती हैं। पुराने ढर्रे का छोटा-सा मकान था; उस पर अटारी बनी थी और बाग़ भी था जिसे सँवारने में इंजीनियर छछूंदर की तरह जुटा रहता। दोनों पार्श्व में शानदार अट्टालिकाएँ थीं जिन्हें प्रसिद्ध वास्तुकारों ने बनाया था और इनके चारों ओर प्रशस्त उपवन थे जिनमें ख़ूबसूरती के साथ क्यारियाँ काढ़ी गयी थीं—सिल्वर फ़र, मैगनोलिया और न जाने कौन-कौन-सी जापानी झाड़ियाँ लगी हुई थीं।

मारिया बहुत नहीं बदली थी, सिर्फ़ ज़रा दुबली हो गयी लगती थी मगर दुबली भी वह अनुपात से हुई थी। उसका चेहरा झुर्रियों से भर गया था। जब वह हँसती या बोलती तो ये कभी मिट जातीं, कभी झलकने लगतीं। दोनों कनपटियों पर सफ़ेदी आ चली थी मगर माथे पर का गुच्छा अब भी काला और चमकदार था जैसे नम हो। वह वैसी ही प्रफुल्ल और जीवंत थी जैसे पहले थी। बच्चों को वह समर्पित थी किंतु उसकी ममता में उस दिखावट-बनावट की झलक भी न थी जो बहुधा बाहर की दबी-ढँकी भली स्त्रियों में पायी जाती है, जैसे कि उनकी दबी हुई शोख़ी इस रूप से फूट निकली हो।

डोरोश में भी कोई परिवर्तन नहीं दिखा सिवाय इसके कि उसकी शरीरिक ग्रौर मानसिक विशेषताएँ कुछ ग्रौर उजागर हो गयी थीं—वह ग्रौर भी ग्रधिक चुप्पा हो गया था ग्रौर उसकी कमर कुछ ग्रौर भुक गयी थी।

ज़ेको को सबसे ज़्यादा ख़ुशी बच्चों को देखकर हुई। कई साल बीते जब वह शबात्स गया था तो वे सब ढेर भर नन्हे-मुन्ने थे ग्रौर उसके लाये उपहारों के लिए ग्रापस में भगड़ रहे थे। खैंची भर ग्ररतन-बरतन की तरह वह कमरे में भरे हुए थे। हर एक बढ़ रहा था ग्रौर बाढ़ के एक दौर में था—जैसे नयी दूब के ग्रँखुए फूट रहे हों ग्रौर उन्होंने धरती को ग्रपनी हरियाली से ढँक लिया हो। उनके भीतर-बाहर कहीं कुछ ऐसा नहीं था जो स्थिर हो।

ग्रब सब बच्चे स्कूल जाने वाले हो गये थे। सबसे बड़ा फ़िलिप ग्रपने पिता की तरह लम्बा, भुका ग्रौर शान्त था पर उसके चेहरे पर ग्रक़लमंदी की भलक थी जो डोरोश के नहीं थी। उसके बाद थी लड़की येलित्सा, फ़िलिप से दो बरस छोटी। भूरे बाल, भूरी ग्राँखों वाली यह छरहरी तगड़ी लड़की ग्रपनी कक्षा में लैटिन में सबसे तेज़ ग्रौर मारिया के शब्दों में 'मेरे बच्चों में सबसे ग्रधिक रोचक' थी। छुटपन से ही इस लड़की में ईश्वरदत्त प्रतिभा थी। येलित्सा से छोटी थी दानित्सा; गुड़िया जैसी गोलमटोल ग्रौर पढ़ने से ज़्यादा खेलने की शौक़ीन। सबसे छोटा था ड्रागान जो ग्रभी प्राथमिक स्कूल से निकला था। मारिया इस 'चौक़ड़ी' की सेवा में ग्रथक भाव से रात-दिन उनकी इच्छाएँ पूरी करती रहती।

डोरोश-परिवार बेलग्राद क्या ग्राया कि ज़ेको को एक ग्रौर घनी छाँह मिल गयी, जहाँ वह सर्दियों में सावा के 'बाजार बंद' होने पर जा सकता था।

उनके घर में निश्चितता ग्रौर शांति रहती सिवाय तब-जब बच्चे बीमार पड़े हों या नम्बर कम ग्राने से उदास हो रहे हों या फिर डोरोश के वेतन के भीतर कोई ग्रप्रत्याशित खर्च निकालना कठिन हो रहा हो। यह उन घरों में से था जहाँ चिंताएँ-बाधाएँ क्षण भर में परे कर दी जाती हैं ग्रौर हँसते-खेलते वक्त काटना जहाँ का नियम होता है।

कैसा ही मौसम हो, ज़ेको इनके यहाँ सप्ताह में कम से कम एक फेरा ज़रूर लगाता, ग्राम तौर से शाम को जब डोरोश काम से वापस ग्रा गया हो। उसकी

यात्रा का सब कुछ सुखद होता : उनके घर तक पैदल जाना, मिलना और लौटना भी।

चेसनट के वृक्षों तले ज्वेज़्दा जाने वाली खड़ी चढ़ाई चढ़ते हुए वह देखता, सावा अपने द्वीपों सहित फैली हुई है। दूसरी तरफ़ दीखता ज़ेमून नगर, स्रेम का मैदान, डेन्यूब का चौड़ा पंजा और उसका ऊँचा आलोकित उत्तरी तट उसे अपार विश्व के खुले कपाट-सा लगता। चारों ओर निहार कर उसे कैसी तृप्ति मिलती : यथार्थ से पलायन की वह संतुष्टि, क्षण भर की वह आत्म-विस्मृति, ज़ेको जैसी प्रकृति और परिस्थिति के मनुष्य के लिए कितनी प्राणप्रद थी। और जब टाल्सटाय मार्ग से चलता हुआ वह अन्ततः उस पतली नामहीन गली में पहुँचता जहाँ डोरोश रहता था तो यह तृप्ति उल्लास बन जाती।

सर्दियों में रसोई घर में और गर्मी में दहलीज़ में वह मारिया और डोरोश के साथ चाय पीने बैठता। इस मकान में उसके अपने घर से कहीं कम सामान था और यहाँ न जाने क्यों हर चीज़ सहज और सुगम जान पड़ती। चाय ज़्यादा स्वादिष्ट थी, केक ज़्यादा मज़ेदार, बातें ज़्यादा खुशमज़ाक़ और बातों और ख़्यालों के बीच होते थे क़हक़हे जो मार्गरीटा के घर में कोई जानता न था। बच्चे घर आते तो स्कूल की समस्याएँ बताने लगते। नन्ही-सी चौकन्नी मारिया अपने लहीम-शहीम पति के पास बैठती और अपने छोटे मेहनती हाथ मेज़ पर रख लेती।

सब बच्चों में येलित्सा ज़ेको को बहुत अच्छी लगती थी : मारिया को भी हालाँ कि वह कभी कहती न थी। लेकिन येलित्सा में बेलग्राद आने के एक वर्ष के भीतर परिवर्तन दिखायी देने लगा। हाई स्कूल का छठा दर्जा पास करके गर्मियों की छुट्टी में वह अपनी कक्षा के साथ समुद्र तट की सैर को गयी। वहाँ से लौटी तो उसका रंग धूप में तप गया था और वह कुछ बड़ी-बड़ी लगने लगी थी; चेहरे पर एक स्थिर तीखापन आ गया था और आँखों का दुर्लभ भूरापन, जो पहले हर समय विविध प्रकार की छटा बिखेरता रहता था, अब स्फटिक के समान कठोर हो गया था। उसके भरे-भरे ओठ पतले और गुलाबी हो गये थे। डोरोश जैसी उसकी चौड़ी मुसकान, जिसमें उसके मज़बूत सुन्दर दाँत चमक उठते, अब नहीं थी; उसका बालसुलभ चापल्य और सहज विश्वास लोप हो गया था; केवल कभी-कभी, छुट्टियों की तरह, प्रकट होता था। अब वह हरेक से

आँखें मिला कर बात करती थी। ओठ कसे बंद रहते और चेहरा सधा रहता। जब-तब जो कुछ अब नहीं था उसके अंतिम अवशेष जैसी हँसुली के ऊपर कण्ठ के मर्मस्थल में कोई चीज़ मानो एकाएक उभर आया करती।

ये सब परिवर्तन निश्चय ही अकस्मात् नहीं हो गये थे, एक-एक करके उन दिनों हुए थे जब वह पाँचवीं कक्षा में पढ़ रही थी। ज़ेको ने इन्हें लक्ष्य भी नहीं किया, मारिया ने उसे दिखाया। उस बच्ची ने, जिसे वह अपना जैसा मानता था, बड़े होकर अपने आपको उसी से नहीं, अपने घर भर से एकदम अलग कर लिया था और वह हर चीज़ निर्मम-तटस्थ दृष्टि से देखने-परखने लगी थी। सिर्फ़ बड़े भाई से उसका कुछ अपनापा बचा था किंतु उससे भी वह दो-टूक, खरा व्यवहार करती। इस तरुण प्राणी का मानस-केंद्र किसी अन्य अव्यक्त अज्ञात स्थल पर पहुँच गया था। सहसा यह स्पष्ट हो गया कि ऐसा कुछ हो चुका था जो ज़ेको की आँखें देख ही न पायी थीं—जैसे कि बंद रही हों।

वह क्रिसमस में उसके लिए एक विख्यात समकालीन कवि का चमड़े की जिल्द बँधा संकलन ले आया। पुस्तक उसे लौटाते हुए येलित्सा ने रूखे स्वर में कहा :

"आपको धन्यवाद, ज़ेको काका। देखिये बुरा न मानियेगा लेकिन बात यह है कि मैं न तो क्रिसमस का उपहार लेती हूँ न इस तरह की किताब पढ़ना चाहती हूँ।"

अपना अचरज और असमंजस छिपाने की कोशिश में ज़ेको ने बात हँसी में उड़ा देनी चाही लेकिन नहीं उड़ा सका।

"अच्छा, तो क्या हुआ···किताब तो रख लो···"

"'रख लो' क्या माने ? मैंने आपसे कहा नहीं कि मैं नहीं रख सकती।"

और उसने किताब मेज़ पर इस तरह रख दी जैसे कि सड़क पर पड़ी मिली कोई अनजान चीज़ हो।

ऐसी घटनाएँ और बातचीत डोरोश्की के यहाँ आये दिन होने लगीं। जब माता-पिता बात करते तो येलित्सा पहले चुप रहती फिर उनका एक वाक्य चुनकर उसके दो खण्ड करके दो परस्पर विरोधी बातें तर-ऊपर रख देती, उनसे निष्कर्ष निकालती और तब उन्हें इतमीनान से खारिज कर देती जैसे वे टूटे काँच के टुकड़े हों।

× × ×

हमारे घरों में ज़्यादातर लोग इस तरह बोलते रहते हैं जैसे कि सोच रहे हों। यह वार्तालाप विक्षुब्ध जल की भाँति बहता जाता है और बोलने वालों के जीवन में जो कुछ भी अस्पष्ट, असुरक्षित और अनगढ़ होता है उसे साथ बहाये लिये जाता है; यही सब निथर कर और छन कर वार्तालाप में बच रहता है। बहुत करके इससे कभी कोई हल नहीं निकलता। यह जारी रहता है और साथ ही समय, परिस्थिति और संयोग जिसे कहते हैं, उसकी प्रक्रिया जारी रहती है; हल अपने आप निकल आता है।

मेज पर येलित्सा निर्मम और निराकार भाव से इस पारिवारिक वार्तालाप की धज्जियाँ उड़ा देती। भाई से ज़ोर-ज़ोर से बहसें होतीं और छोटी बहन दानित्सा को तो वह रुला कर ही छोड़ती।

"चलूँ अपनी सफ़ेद कमीज धो डालूँ," दानित्सा जमुहाई लेकर कहती।

"जाओ, धोओ जा कर," येलित्सा का जवाब आता।

"लेकिन मेरा उठने को जी नहीं चाहता, कल मुझे कक्षा के साथ संगीत-सभा में जाना होगा और मेरा मन नहीं हो रहा।"

"मन नहीं हो रहा है तो न जाओ।"

'लेकिन जाना होगा; प्रधाना जी, मेरे मित्र···"

"संगीत-सभा में होगा क्या ?"

दानित्सा घबरा कर रह जाती।

"मुझे क्या मालूम क्या होगा।"

"यह बिल्कुल ग़लत तरीक़ा है। प्रधाना जी और मित्रों से तुम्हें क्या मतलब ? मतलब तो यह है कि तुम्हें संगीत-सभा में जाना है या नहीं। इसको अपने मन में तय कर लेना चाहिए कि संगीत-सभा तुम्हें पसंद है या नहीं और तब जाने या न जाने का फ़ैसला हो जायेगा।"

"अच्छा, बस अब आप रहने दीजिये···"

दानित्सा घबरा कर, लाल हो कर मुँह दूसरी तरफ़ घुमा लेती और तमतमायी हुई मेज छोड़कर चली जाती।

पिता येलित्सा को बरजती हुई दृष्टि से देखते।

"इस बच्ची को उपदेश सुनाकर सताने की तुम्हें क्या ज़रूरत थी ?"

"ये उपदेश नहीं हैं। उपदेश के ठीक उल्टे हैं।"

डोरोश में भी कोई परिवर्तन नहीं दिखा सिवाय इसके कि उसकी शरीरिक और मानसिक विशेषताएँ कुछ और उजागर हो गयी थीं—वह और भी अधिक चुप्पा हो गया था और उसकी कमर कुछ और झुक गयी थी।

ज़ेको को सबसे ज़्यादा ख़ुशी बच्चों को देखकर हुई। कई साल बीते जब वह शबात्स गया था तो वे सब ढेर भर नन्हे-मुन्ने थे और उसके लाये उपहारों के लिए आपस में झगड़ रहे थे। खैंची भर अरतन-बरतन की तरह वह कमरे में भरे हुए थे। हर एक बढ़ रहा था और बाढ़ के एक दौर में था—जैसे नयी दूब के अँखुए फूट रहे हों और उन्होंने धरती को अपनी हरियाली से ढँक लिया हो। उनके भीतर-बाहर कहीं कुछ ऐसा नहीं था जो स्थिर हो।

अब सब बच्चे स्कूल जाने वाले हो गये थे। सबसे बड़ा फ़िलिप अपने पिता की तरह लम्बा, झुका और शान्त था पर उसके चेहरे पर अक़लमंदी की झलक थी जो डोरोश के नहीं थी। उसके बाद थी लड़की येलित्सा, फ़िलिप से दो बरस छोटी। भूरे बाल, भूरी आँखों वाली यह छरहरी तगड़ी लड़की अपनी कक्षा में लैटिन में सबसे तेज़ और मारिया के शब्दों में 'मेरे बच्चों में सबसे अधिक रोचक' थी। छुटपन से ही इस लड़की में ईश्वरदत्त प्रतिभा थी। येलित्सा से छोटी थी दानित्सा; गुड़िया जैसी गोलमटोल और पढ़ने से ज़्यादा खेलने की शौक़ीन। सबसे छोटा था ड्रागान जो अभी प्राथमिक स्कूल से निकला था। मारिया इस 'चौक़ड़ी' की सेवा में अथक भाव से रात-दिन उनकी इच्छाएँ पूरी करती रहती।

डोरोश-परिवार बेलगराद क्या आया कि ज़ेको को एक और घनी छाँह मिल गयी, जहाँ वह सर्दियों में सावा के 'बाजार बंद' होने पर जा सकता था।

उनके घर में निश्चितता और शांति रहती सिवाय तब-जब बच्चे बीमार पड़े हों या नम्बर कम आने से उदास हो रहे हों या फिर डोरोश के वेतन के भीतर कोई अप्रत्याशित खर्च निकालना कठिन हो रहा हो। यह उन घरों में से था जहाँ चिंताएँ-बाधाएँ क्षण भर में परे कर दी जाती हैं और हँसते-खेलते वक्त काटना जहाँ का नियम होता है।

कैसा ही मौसम हो, ज़ेको इनके यहाँ सप्ताह में कम से कम एक फेरा ज़रूर लगाता, आम तौर से शाम को जब डोरोश काम से वापस आ गया हो। उसकी

यात्रा का सब कुछ सुखद होता : उनके घर तक पैदल जाना, मिलना और लौटना भी।

चेसनट के वृक्षों तले ज्वेज़्दा जाने वाली खड़ी चढ़ाई चढ़ते हुए वह देखता, सावा अपने द्वीपों सहित फैली हुई है। दूसरी तरफ़ दीखता ज़ेमून नगर, स्त्रेम का मैदान, डेन्यूब का चौड़ा पंजा और उसका ऊँचा आलोकित उत्तरी तट उसे अपार विश्व के खुले कपाट-सा लगता। चारों ओर निहार कर उसे कैसी तृप्ति मिलती : यथार्थ से पलायन की वह संतुष्टि, क्षण भर की वह आत्म-विस्मृति, ज़ेको जैसी प्रकृति और परिस्थिति के मनुष्य के लिए कितनी प्राणप्रद थी। और जब टाल्सटाय मार्ग से चलता हुआ वह अन्ततः उस पतली नामहीन गली में पहुँचता जहाँ डोरोश रहता था तो यह तृप्ति उल्लास बन जाती।

सर्दियों में रसोई घर में और गर्मी में दहलीज़ में वह मारिया और डोरोश के साथ चाय पीने बैठता। इस मकान में उसके अपने घर से कहीं कम सामान था और यहाँ न जाने क्यों हर चीज़ सहज और सुगम जान पड़ती। चाय ज़्यादा स्वादिष्ट थी, केक ज़्यादा मज़ेदार, बातें ज़्यादा ख़ुशमज़ाक़ और बातों और ख़्यालों के बीच होते थे क़हक़हे जो मार्गरीटा के घर में कोई जानता न था। बच्चे घर आते तो स्कूल की समस्याएँ बताने लगते। नन्ही-सी चौकन्नी मारिया अपने लहीम-शहीम पति के पास बैठती और अपने छोटे मेहनती हाथ मेज़ पर रख लेती।

सब बच्चों में येलित्सा ज़ेको को बहुत अच्छी लगती थी : मारिया को भी हालाँ कि वह कभी कहती न थी। लेकिन येलित्सा में बेलग्राद आने के एक वर्ष के भीतर परिवर्तन दिखायी देने लगा। हाई स्कूल का छठा दर्जा पास करके गर्मियों की छुट्टी में वह अपनी कक्षा के साथ समुद्र तट की सैर को गयी। वहाँ से लौटी तो उसका रंग धूप में तप गया था और वह कुछ बड़ी-बड़ी लगने लगी थी; चेहरे पर एक स्थिर तीखापन आ गया था और आँखों का दुर्लभ भूरापन, जो पहले हर समय विविध प्रकार की छटा बिखेरता रहता था, अब स्फटिक के समान कठोर हो गया था। उसके भरे-भरे ओठ पतले और गुलाबी हो गये थे। डोरोश जैसी उसकी चौड़ी मुसकान, जिसमें उसके मज़बूत सुन्दर दाँत चमक उठते, अब नहीं थी; उसका बालसुलभ चापल्य और सहज विश्वास लोप हो गया था; केवल कभी-कभी, छुट्टियों की तरह, प्रकट होता था। अब वह हरेक से

आँखें मिला कर बात करती थी। ओठ कसे बंद रहते और चेहरा सधा रहता। जब-तब जो कुछ अब नहीं था उसके अंतिम अवशेष जैसी हँसुली के ऊपर कण्ठ के मर्मस्थल में कोई चीज़ मानो एकाएक उभर आया करती।

ये सब परिवर्तन निश्चय ही अकस्मात् नहीं हो गये थे, एक-एक करके उन दिनों हुए थे जब वह पाँचवीं कक्षा में पढ़ रही थी। ज़ेको ने इन्हें लक्ष्य भी नहीं किया, मारिया ने उसे दिखाया। उस बच्ची ने, जिसे वह अपना जैसा मानता था, बड़े होकर अपने आपको उसी से नहीं, अपने घर भर से एकदम अलग कर लिया था और वह हर चीज़ निर्मम-तटस्थ दृष्टि से देखने-परखने लगी थी। सिर्फ़ बड़े भाई से उसका कुछ अपनापा बचा था किंतु उससे भी वह दो-टूक, खरा व्यवहार करती। इस तरुण प्राणी का मानस-केंद्र किसी अन्य अव्यक्त अज्ञात स्थल पर पहुँच गया था। सहसा यह स्पष्ट हो गया कि ऐसा कुछ हो चुका था जो ज़ेको की आँखें देख ही न पायी थीं—जैसे कि बंद रही हों।

वह क्रिसमस में उसके लिए एक विख्यात समकालीन कवि का चमड़े की जिल्द बँधा संकलन ले आया। पुस्तक उसे लौटाते हुए येलित्सा ने रूखे स्वर में कहा :

"आपको धन्यवाद, ज़ेको काका। देखिये बुरा न मानियेगा लेकिन बात यह है कि मैं न तो क्रिसमस का उपहार लेती हूँ न इस तरह की किताब पढ़ना चाहती हूँ।"

अपना अचरज और असमंजस छिपाने की कोशिश में ज़ेको ने बात हँसी में उड़ा देनी चाही लेकिन नहीं उड़ा सका।

"अच्छा, तो क्या हुआ··· किताब तो रख लो···"

"'रख लो' क्या माने ? मैंने आपसे कहा नहीं कि मैं नहीं रख सकती।"

और उसने किताब मेज़ पर इस तरह रख दी जैसे कि सड़क पर पड़ी मिली कोई अनजान चीज़ हो।

ऐसी घटनाएँ और बातचीत डोरोश्की के यहाँ आये दिन होने लगीं। जब माता-पिता बात करते तो येलित्सा पहले चुप रहती फिर उनका एक वाक्य चुनकर उसके दो खण्ड करके दो परस्पर विरोधी बातें तर-ऊपर रख देती, उनसे निष्कर्ष निकालती और तब उन्हें इतमीनान से ख़ारिज कर देती जैसे वे टूटे काँच के टुकड़े हों।

× × ×

हमारे घरों में ज़्यादातर लोग इस तरह बोलते रहते हैं जैसे कि सोच रहे हों। यह वार्तालाप विक्षुब्ध जल की भाँति बहता जाता है और बोलने वालों के जीवन में जो कुछ भी अस्पष्ट, असुरक्षित और अनगढ़ होता है उसे साथ बहाये लिये जाता है; यही सब निथर कर और छन कर वार्तालाप में बच रहता है। बहुत करके इससे कभी कोई हल नहीं निकलता। यह जारी रहता है और साथ ही समय, परिस्थिति और संयोग जिसे कहते हैं, उसकी प्रक्रिया जारी रहती है; हल अपने आप निकल आता है।

मेज़ पर येलित्सा निर्मम और निराकार भाव से इस पारिवारिक वार्तालाप की धज्जियाँ उड़ा देती। भाई से ज़ोर-ज़ोर से बहसें होतीं और छोटी बहन दानित्सा को तो वह रुला कर ही छोड़ती।

"चलूँ अपनी सफ़ेद कमीज़ धो डालूँ," दानित्सा जमुहाई लेकर कहती।

"जाओ, धोओ जा कर," येलित्सा का जवाब आता।

"लेकिन मेरा उठने को जी नहीं चाहता, कल मुझे कक्षा के साथ संगीत-सभा में जाना होगा और मेरा मन नहीं हो रहा।"

"मन नहीं हो रहा है तो न जाओ।"

"लेकिन जाना होगा; प्रधाना जी, मेरे मित्र···"

"संगीत-सभा में होगा क्या ?"

दानित्सा घबरा कर रह जाती।

"मुझे क्या मालूम क्या होगा।"

"यह बिल्कुल ग़लत तरीक़ा है। प्रधाना जी और मित्रों से तुम्हें क्या मतलब ? मतलब तो यह है कि तुम्हें संगीत-सभा में जाना है या नहीं। इसको अपने मन में तय कर लेना चाहिए कि संगीत-सभा तुम्हें पसंद है या नहीं और तब जाने या न जाने का फ़ैसला हो जायेगा।"

"अच्छा, बस अब आप रहने दीजिये···"

दानित्सा घबरा कर, लाल हो कर मुँह दूसरी तरफ़ घुमा लेती और तमतमायी हुई मेज़ छोड़कर चली जाती।

पिता येलित्सा को वरजती हुई दृष्टि से देखते।

"इस बच्ची को उपदेश सुनाकर सताने की तुम्हें क्या ज़रूरत थी ?"

"ये उपदेश नहीं हैं। उपदेश के ठीक उल्टे हैं।"

एक क्षण के लिए अप्रीतिकर शांति छा जाती है, एक-एक करके वे लोग मेज़ छोड़कर उठ जाते।

यह दृश्य कभी इससे भी तीखा और कभी इससे कुछ नम्र होकर डोरोश-परिवार की दिनचर्या में नियम से घटित होता रहता। घर में माँ ही एक व्यक्ति थी जिसके प्रति येलित्सा ने तनिक भी अधैर्य कभी नहीं दिखाया यद्यपि उससे भी एक वह प्रकार से उदासीन और विमुख ही रहती। मारिया चुप रहती। बस सिर्फ़ परिवार के तर्क-वितर्क सुनती रहती।

येलित्सा के स्वभाव में परिवर्तन के ये बाहरी लक्षण थे। उसके भीतर क्या हो चुका था, यह न तो स्पष्ट था और न बताया जा सकता था।

किंतु वर्ष शेष होते-होते रहस्य खुल गया। इसका आविष्कार करने वाली थी मार्गरीटा।

"बहन के यहाँ जाने का मेरा जी नहीं करता।" वह एक दोपहर को खाने पर बोली। "मारिया खब्ती है, एकदम खब्ती है; और डोरोश दब्बू है। वह हमेशा दबा रहा है; और बच्चे, उन्हें साम्यवाद का रोग लग गया है। डोरोश का भतीजा सिकुट्टी सिनीशा यह रोग लगाने वाला है। और वह दुष्ट कुतिया येलित्सा, उसने भाई और माँ दोनों का दिमाग़ खराब कर दिया है। लोग अँगुली उठाते हैं कि सारा घर कम्युनिस्ट हो गया।" निवाला ज़ेको के गले में अटक गया और वह एकाएक मारिया और उसके घर को ख़ास तौर से बच्चों को एक अनजान खतरे से बचाने के लिये, उनका साथ देने के लिए, उन के साथ एक होने के लिए छटपटाने लगा हालाँ कि वह बिल्कुल नहीं जानता था कि मामला क्या है।

तमतमाया हुआ, हकलाता हुआ उसने मार्गरीटा के आक्षेपों का विरोध किया। और दावा किया कि मारिया एक समझदार औरत और धनी माँ है और येलित्सा एक बहुत ही होनहार संतान है जो लड़कपन की उस दशा से गुज़र रही है जिसमें किशोर मन उद्विग्न रहता है।

"और फिर यह बताओ कि लड़के अगर अपने वक़्त के हिसाब से न चलें तो क्या करें?"

"अच्छा, तुम भी कम्युनिस्ट हो गये हो क्या? मालूम होता है कम्युनिस्टों के पीछे-पीछे चलने वाले बेवकूफ़ों में तुम्हारा भी नाम लिख लिया गया है।"

"मैं नहीं हूँ मगर···"

"अगर-मगर कुछ नहीं···तुम ज़रा वहाँ आना-जाना कम करो, उस घर पर शक किया जाता है। उस दिन पार्टी में महापौर की पत्नी ने साफ़-साफ़ कहा।"

"बस करो मार्गरीटा, ईश्वर के वास्ते बस करो।"

"ईश्वर की दुहाई मेरे सामने न दो। क्या नाम है कि 'अड्डे' पकड़े गये हैं और 'कम्युनिस्ट कोष' का भेद मिला है और मिला कहाँ, रुमस्काँ मार्ग के बड़े-बड़े घरों में। अमीरों के बच्चों को खाने की कमी नहीं और काम ऐसे हैं जैसे भिखमंगों के होते हैं। और उनके माँ-बाप की आँखों को दीखता नहीं। मेरी बेवक़ूफ़ बहन की तरह।"

टिगार ने जमुहाई ली और लम्बी अँगड़ाई लेकर कलाई की घड़ी पर नज़र डाली। ज़ेको को लगा कि उसने जो कुछ खाया है गले में लौटा आ रहा है और उसका दिल किसी प्रबल अशुभ उद्वेग से धड़क रहा है जिसमें आक्रोश भी है, भय भी और सबसे अधिक यह इच्छा है कि वह जहाँ है, वहाँ से चला जाये।

४

जो अंतर्राष्ट्रीय युद्ध अगस्त १९३९ में पोलैंड पर जर्मन आक्रमण से आरम्भ हुआ वह ज़ेको के घर के लिए किसी महत्त्व का न था। बहुत-से और घरों की तरह वहाँ भी अखबार कभी-कभार सरसरी नज़र से देखे जाते। ज़ेको शीर्षकों पर दृष्टि डालता, टिगार खेल-कूद का पृष्ठ खोल कर बैठा रहता और मार्गरीटा विज्ञापनों और विवाह और अंत्येष्टि की सूचना पढ़ लिया करती। 'राजनीति से लगाव' किसी को न था। जो हो, उस शरद में मार्गरीटा ने आटा, शक्कर और 'रहनेवाली' तमाम जिन्स खरीद डाली और ज़ेको रेडियो पर विदेशी स्टेशन सुनने लगा जो पहले कभी सुनता न था। नतीजा यह हुआ कि वह बिना यह चिंता किये कि कब और कैसे यह सब आरम्भ हुआ, पोलैंड के भविष्य के प्रति अत्यंत

सतर्क हो गया।

यहाँ भी मार्गरीटा उसके आड़े आयी। झल्लाकर वह रेडियो बंद कर देती, ज़ेको को घूरती और फ़रमाती :

"तुम फ़िज़ूल बिजली ख़र्च कर रहे हो। पोलों के लिए बड़ा दर्द है तो वहीं जाओ और उनके साथ बैठकर रोओ। मैं तो खुश हूँ कि हिटलर ने उनको दुरुस्त कर दिया।"

इतना कहकर वह कुहनी तक उघरी बाँह झटक कर बताती कि लोग और राष्ट्र किस तरह 'दुरुस्त' किये जाते हैं।

और ज़ेको अपने सामने उसकी वह थुलथुल सलोतर बाँह देखता रह जाता। वे मार्गरीटा की नृशंस पीली बाँहे हैं—मगर वे भारी और तगड़ी भी हैं—बाँहें जो शासन करती हैं, लेती, लूटती हैं पर श्रम कभी नहीं करतीं और देतीं शायद ही कभी हैं, उनकी आकृति में मानुषिक प्रायः कुछ नहीं है। कोहनियों पर घिसे पैबंदों जैसे तेलौस, मैले काले दाग़ हैं जिन्हें देखकर ऊँट या बंदर की खाल की याद आती है।

अन्ततः ज़ेको उस बाँह पर से दृष्टि हटा लेता, उठ पड़ता और बिना बोले कमरे से बाहर हो जाता।

फिर कई दिन तक पोलैंड, जर्मनी या युद्ध का कोई उल्लेख न होता। युद्ध का असर हुआ था तो यही कि मार्गरीटा दिन-रात पेंचीदा मंसूबे बाँधा करती और ज़ेको के मन में गोपन विचार आया करते जिनका अर्थ उसे स्वयं स्पष्ट नहीं था। लेकिन सावा का हाल और था। सितम्बर की कड़ी धूप में, सीज़न के आख़िरी सैलानी खुले आम पोलैंड के दुर्भाग्य पर दुःख प्रकट कर रहे थे। सावा-वासी यह बातचीत कान लगाकर सुनते हालाँ कि ख़ुद वह इतने होशियार थे कि अपने मुँह से कुछ कहना उन्हें कठिन जान पड़ता।

जब जर्मनों की विजय का प्रसंग होता तो स्टाँको दारू के घूँट ज़रा जल्दी-जल्दी लेता और मूँछें पोंछकर कहता, "ठीक है, भाई ठीक है···"

यह 'ठीक है' वह इस तरह खींचकर एक विशेष अर्थ के साथ कहता जो शायद स्वयं उसे स्पष्ट न था किंतु इतना निस्संदेह प्रकट करता था कि वह वर्तमान स्थिति से प्रसन्न नहीं है और कोई बेहतर हल चाहता है।

स्टाँको का नौकर इससे कहीं अधिक मुखर था और जिन अलंकारों से अपनी

बात कहता था उन्हें दोहराना आसान नहीं है; उसके वक्तव्य से गालियाँ निकाल दें तो राजनीतिकों और राष्ट्रों के नाम के अतिरिक्त कुछ न बचेगा।

जो लोग नऊम के ढावे के सामने या अख़रोट वृक्ष के नीचे एकत्र होते, उनका अभिमत निर्विवाद होता; हाँ, उसे अभिव्यक्त वे विविध प्रकार से करते।

कप्तान माइका बाक़ी सबसे अधिक मौन और शांत रहता और हर समय गहरे विचार में मग्न लगता : बार-बार वह भाँति-भाँति के स्वर में एक ही बात कहता, "देख लेंगे,...सब देख लेंगे।"

चिढ़कर मिलान स्ट्रैगराट्स ने पूछा, "क्या देख लेंगे ?"

"देख लेंगे...गाना नहीं सुना...

बेटे का होगा बपतिस्मा
तो बाप को पता चल जायेगा"

"हूँ" गुर्राकर स्ट्रैगराट्स ने कहा। सबके सब ठठाकर हँस पड़े।

टापचाइडर पहाड़ी पर मारिया के घर में भी युद्ध पर बहस हो रही थी। फ़िलिप और येलित्सा संसार के घटनाचक्र में गहरी दिलचस्पी दिखा रहे थे मगर वे अपने मन की या तो मन ही में रखते या अपने स्कूल के साथियों से कहते; बड़े उनका भेद न पाकर आशंकित हुआ करते। मारिया चिंतित थी, यह उसकी सायास मुस्कान से जाना जाता था। किंतु, वह कहती कुछ न थी।

घर लौटकर ज़ेको को मार्गरीटा से मालूम हुआ कि 'युद्ध-भंडार' की अभिवृद्धि में उसने कौन-सा नया तीर मारा है।

"अब मेरे पास अट्ठाईस पौंड धोबिया साबुन हो गया। कितना उम्दा साबुन है। बिल्कुल मलाई, बाज़ार भर में इससे बढ़िया न मिलेगा। चले लड़ाई, चाहे तीन साल चले, हमको कमी नहीं होने की।"

यह बखान वह अपने लड़के से कर रही थी मगर वह दो क्या एक कान से भी नहीं सुन रहा था।

और ज़ेको सोच रहा था, जाने कितने लोग हैं जो मार्गरीटा की तरह ऐसे रहते हैं। जैसे कुछ लोगों का काम है कि ज़िंदगी भर युद्ध करते रहे और हमारा काम यह है कि हम इतनी रसद जमा कर लें कि जब तक दूसरे लड़ते रहें और युद्ध के पहले वाले दिन न लौट आयें तब तक चलती रहे।

अतएव युद्ध का पहला वर्ष और बहुत-से घरों की तरह इस घर में भी 'युद्ध' की नहीं 'भंडार' की चिंता में गुज़र गया।

इस तैयारी की दशा में बेलगराद रविवार ६ अप्रैल, १९४१ को दूर से आती साइरन-ध्वनि के शोर से जग पड़ा : तुरंत बाद बम के धमाके सुनायी पड़े जो जर्मन वायुसेना, युद्ध की घोषणा के बिना बेलगराद के अरक्षित नगर पर गिरा रही थी।

और उस दिन अपने ही घर में पहली बार ज़ेको ने गृहस्वामी और कर्त्ता की सम्मान्य भूमिका ग्रहण की। उसके निर्देश सुने ही नहीं माने भी गये।

साइरन तड़के ही बजने लगा था पर ज़ेको की आँख उससे नहीं मार्गरीटा की चीख़-पुकार और कोठे पर के घर में भगदड़ के शोर से खुली थी। आँख खोलते ही उसने एक अद्भुत दृश्य देखा। उसका लड़का रात का पाजामा और ऊपर से गरम कोट पहने न जाने कहाँ से आया सैनिक टोप सर पर रखे खड़ा था। टिगार की आस्तीन पकड़ कर मार्गरीटा फ़र्श पर घुटने टेके बैठी विलाप कर रही थी। वह भी रात का अंगरखा पहने थी, कंधे पर दुशाला पड़ा था मगर पाँव खाली थे। घिघियाते हुए वह अपने लड़के से गैस मास्क खोज लाने को कह रही थी और लड़का ग़ुस्से से जवाब दे रहा था।

"क्या मास्क-मास्क लगा रखी है! कपड़े पहनो और नीचे जाओ।"

नवयुवक ने अपने को माँ से छुड़ा लिया और रफ़ूचक्कर हो गया। मार्गरीटा रेंगकर ज़ेको के पलंग के नज़दीक आयी। उसके पाँव उसके लम्बे अंगरखे में अरझ रहे थे और वह बेहाल थी।

"यह रहे···ज़ेको, दैया रे, कहाँ गये मास्क?"

ज़ेको उठ पड़ा। झटपट उसने कपड़े पहने और मार्गरीटा को भी पहनवाये। तेज़ बुख़ार की तरह थरथर काँपते हुए मार्गरीटा अपना सारा वज़न लिये-दिये उस पर टिक गयी और बार-बार कहने लगी :

"ज़ेको, जल्दी करो, जल्दी करो!"

फिर वह एकाएक चीख़ पड़ी :

"बटुआ, ज़ेको, मेरा बटुआ!"

ज़ेको ने खोज कर उसका भारी चमड़े का बटुआ दिया और अपनी पत्नी को फिर से सँभालकर तहख़ाने की ओर ले चला।

"डरो मत; देखो, अब शांति हो गयी, समझीं। घबराओ मत, घबराओ मत।"

इस प्रकार उस बदहवास औरत को सँभाले हुए उसे ले जाना पड़ा। यह मोटा अपरिचित शरीर कितना निष्प्राण, कितना लिद्दड़ है, उसने सोचा।

तहखाने में हाय-तोबा मची हुई थी। औरत-मर्द आपस में बमचख कर रहे थे और बच्चे वक्त से पहले जग जाने से रोये चले जा रहे थे।

मार्गरीटा ने जैसे ही अपने लड़के के सर पर टोप देखा उसने ज़ेको की बाँह छोड़ दी और फिर चीखने लगी।

"माइकेल, माइकेल," वह चिल्लायी मगर टिगार ने बिना उसकी ओर मुँह किये टका-सा जवाब दिया

"बैठ जाओ और मुँह बंद रखो।"

ठीक उसी समय पहला बम फटा; पीछे ताबड़-तोड़ कई धमाके सुनायी पड़े, इतने कि एक से दूसरे में फ़र्क करना मुश्किल था। लगता था कि धरती उबलते ज्वालामुखी की भाँति उफना रही है और कुल इमारत भहरा कर ढेर हुई जा रही है।

एक धमाका बहुत निकट था और उसने मकान को मानो हुमासकर झक-झोर डाला। उसने दिल दहला दिया। भय के मारे लोगों के दाँत बजने लगे।

'मार दिया स्टेशन को' मकान के चौकीदार ने अविकल, लगभग हास्या-स्पद स्वर में कहा।

दारोग़ा वहाँ मार खाये आदमी की तरह खड़ा आँसू पोंछ रहा था और बन-बनकर उसाँस ले रहा था। ज़ेको ने ज़रा ध्यान से देखा तो समझ में आया कि वह नशे में धुत है। उसने उसे अपने औज़ार लाकर अपने साथ छत पर चलने को कहा।

आगे-आगे ज़ेको कंधे पर बेलचा रखे चला। काँपते और लड़खड़ाते क़दमों से दारोग़ा पीछे हो लिया।

जब वे बरसाती पर पहुँचे तो दारोग़ा ठहर गया; हकलाकर बोला:

"कहीं···कहीं वे फिर न आ जायें ?"

ज़ेको ने उस पर ज़ीने के ऊपर से निगाह फेंकी और अकेला ही ऊपर चढ़ गया।

बरसाती का दरवाज़ा खोलते ही उसे सूखी वसंती हवा में धूल का अनु-

भव हुआ। छत पर निकल कर उसने शहर पर नज़र दौड़ायी तो मालूम हुआ कि किसी अजनबी देश में है। जानी-पहचानी छतों की जगह उसके सामने पीली गर्द की पारदर्शी धुंध फैली हुई थी; ऊँचे पर गहरा नीला आकाश तो दीखता था पर नीचे धरती कहीं नज़र न आती थी। आँख को कुछ सूझता न था और कानों में विचित्र ध्वनियाँ, छोटे-मोटे धड़ाके और दबे-दबे धमाके गूँज रहे थे मानो दैत्याकार मनुष्य भीमाकार औज़ारों से चारों ओर के धुंधभरे शून्य में कोई चीज़ ठोंक-पीट रहे हों।

ज़ेको ने अटारी का मुआयना किया; विस्फोट से उड़कर वहाँ चिन्गारियाँ और गुम्मे आ गिरे थे पर किसी अनफूटे बम का या किसी ख़तरनाक चीज़ का कोई चिह्न नहीं था। ज़ीने से उतरते हुए ज़ेको को दारोग़ा सीढ़ियों पर ठीक वहीं खड़ा मिला जहाँ वह उसे सुबकते हुए छोड़ गया था; जैसे रोते बच्चे पर ध्यान नहीं दिया जाता ऐसे ही वह उसकी अनदेखी करके आगे बढ़ा और तहख़ाने में उतर गया।

प्रकाश की धारा ने उसको घेर लिया। सबकी नज़रें उस पर आ टिकीं और चारों तरफ़ से सवाल पर सवाल पूछे जाने लगे। उसी क्षण प्रसिद्ध हो गया कि ज़ेको वह आदमी है जो डरना नहीं जानता।

प्रारम्भिक आक्रमणों में किसी समय संक्षिप्त विराम आने पर ज़ेको अपने सैनिक कमान में हाज़िरी देने तमाम रास्ता पैदल चलकर ज्वेज़्दा पहुँचा। मगर वहाँ कोई न था। स्पष्ट ही कमान पलायन कर गयी थी।

और भी आक्रमण होते रहे तथा बदहवास लोग तहख़ाने की ओर भागते रहे और घर में चिल्ल-पों मचती रही, किन्तु स्वयं ज़ेको फिर कभी तहख़ाने में नहीं छिपा। वह अपने निर्जन घर में, भूख-प्यास भूलकर अपने मन के नये विचारों में अकेले डूबा बैठा रहता। वह इतना अभिभूत था कि उन क्षणों में जिनमें शायद भय उसे आप्लावित कर तहख़ाने को खदेड़ ले जाता, चिन्तन का आवेग ही उसे रोक कर रखे रहा।

इस प्रकार जले-झुलसे-उजड़े बेलगराद में जर्मन आधिपत्य के अंतर्गत जीवन का एक नया चरण आरम्भ हुआ।

मार्गरीटा को अपने भय और उन अनेक रोगों से पार पाते बहुत समय लगा

जो उसके कथनानुसार तहखाने में बीते कुछ दिनों के मध्य उसको लग गये थे। और टिगार भी अब निरीह और निष्क्रिय हो गया था। परन्तु एक दिन मार्गरीटा का चचेरा भाई ज़ेमून से आ टपका और बड़े जोश के साथ जर्मनों के गुणों का और क्रोशिया के तथाकथित स्वतंत्र राज्य के सुखों का जिसमें ज़ेमून स्थित था, बखान करने लगा। कालान्तर में, मार्गरीटा और टिगार का बेलगराद के बाहर आना-जाना शुरू हो गया और तरह-तरह का सामान, विशेष कर के खाद्य ख़रीदने अक़्सर ज़ेमून की यात्रा होने लगी।

वर्दीधारी लोगों ने उनके घर आना शुरू कर दिया (ऐसे अवसरों पर ज़ेको अपने कमरे का द्वार अंदर से बंद कर लेता)। टिगार नगरपालिका में व्यस्त हो गया। वह दायीं बाँह पर सम्मानसूचक हरा पट्टा बाँधे रहता। मार्गरीटा अपने दीनारों से, जिनका मूल्य गिरता जा रहा था पिंड छुड़ाने के लिए क़िस्म-क़िस्म की चीज़ें खरीद रही थी जो निश्चित रूप से संदिग्ध थीं।

एक दिन ज़ेको सावा किनारे भी गया, पर जिस जीवन का रस उसने कभी वहाँ लिया था उसका अब कहीं लेशमात्र न था। सब न जाने कहाँ लोप हो गये थे; केवल मिलान स्ट्रैंगराट्स उसी तरह हर चीज़ पर वही दर्पपूर्ण दृष्टि डालता उसी अख़रोट तले बैठा था। कप्तान माइका का नाम पहले उसी ने लिया और बताया कि संकट के दिनों में शायद वह कहीं बिला गया था। उसकी तिरस्कार भरी हँसी जनहीन तट पर गूंज गयी। सब कुछ अजनबी और अनजाना लग रहा था जैसे मकान सचमुच उठा कर कहीं से कहीं रख दिये गये हों। अगले ग्रीष्म में तट पर जीवन फिर जागा पर इस बार कारख़ानों में काम करने वाले कारीगर और मज़दूर नये ही लोग थे और बालू पर और बेड़ों पर धूप सेंकने वाले जर्मन थे।

घर से जितना हो सके मुक्त रहने के लिए ज़ेको टाल्सटाय मार्ग के फेरे अक्सर लगाने लगा। किन्तु वहाँ भी विभ्रम और मौन से ही उसका साक्षात हुआ। येलित्सा और फ़िलिप या तो घर से नदारद मिलते या बरसाती में होते और जब उनसे सामना होता भी तो अनमनी रूखी नमस्ते करके वे निकल जाते। उनका बाप, जो बोलने-बतलाने में कभी तेज़ न था, डर के मारे गूंगा ही हो गया था और नहीं समझ पा रहा था कि किधर जाये। मारिया अपने बच्चों के लिए चिंताकुल थी। कहती वह कुछ न थी पर उसकी निष्प्रभ आँखों में उसकी चिंता का प्रतिबिम्ब स्पष्ट था।

किसी से बोलने की इतनी उत्कंठा ज़ेको ने कभी नहीं जानी थी, और लोग थे कि बोलना ही नहीं चाहते थे।

जब उसे कोई पुराना परिचित मिलता उससे यही पूछता :

"वाह रे ईश्वर, कैसा वक्त आया है भइया।"

यही तो बात है, ज़ेको मन में कहता। हम सब एक दूसरे से प्रश्न पूछते रहेंगे। उत्तर देना कोई नहीं चाहेगा, देगा नहीं, देने का साहस नहीं करेगा।

एक रविवार को भोर के समय साराजेव्स्का मार्ग पर उसे एक मित्र जाता मिला तो वह पूछ बैठा, "क्या खबर है ?" मित्र ने अचरज से आँखें फाड़ कर कहा, "बहुत बुरा हाल है दोस्त, यही खबर है। तेराज़िए चौक जाकर अपनी आँखों से देख लो।" मित्र ने तो अपनी राह ली पर ज़ेको घर का रास्ता छोड़ शहर के बड़े चौक तेराज़िए की ओर मुड़ गया। वह नहीं जानता था कि वहाँ उसे क्या देखने को मिलेगा पर उसका समस्त अंतर उसे ठेल कर लिये वहीं जा रहा था।

बालकाँस्का मार्ग पर आकर ज़ेको उस भीड़ में शामिल हो गया जो तेराज़िए जा रही थी। भीड़ में उत्तेजना थी पर प्रदर्शन नहीं था। उनमें बहुलांश पुरुष थे, उनमें से अनेक युवा थे। उस दिन असाधारण गरमी थी इसलिए वे कोट नहीं पहने थे और उनकी उजली कमीज़ों की आस्तीनें कुहनी तक चढ़ी हुई थीं।

जब ज़ेको तेराज़िए पहुँचा तो चौक पर मनुष्यों की नदी उफना रही थी। जलूस देखकर लगता था मानो यह किसी विशाल शवयात्रा का अंश हो। अपने इर्द-गिर्द के लोगों की दृष्टि का अनुसरण करने पर ज़ेको ने देखा : लोहे के लालटेन के खम्भे के सिरे से जहाँ दो शाखाएँ फूटती हैं एक रस्सी टँगी हुई है और उससे एक आदमी लटक रहा है; उसके पीछे दूसरे खम्भे से दूसरी रस्सी और दूसरा आदमी और फिर कुल चौक में इसी तरह एक के बाद एक। उसने आँखें झुका लीं और सोचा कि उलटे पाँव लौट जाये, मगर फिर उसने जाना कि यह सम्भव नहीं है और उसे जलूस के साथ चलते रहना ही होगा, सब कुछ देखना होगा। और वह चलता गया और उसने सब कुछ देखा यद्यपि उन क्षणों में वह नहीं जानता था कि वह कहाँ जा रहा है और क्या देख रहा

है। उसे लग रहा था कि पैरों के नीचे पक्की सड़क उसे हुमास रही है और उसे और इस जनसंकुल भीड़ को बरबस आगे लिये जा रही है। उसकी दृष्टि एक खम्भे से दूसरे पर, एक आदमी से दूसरे पर घूमती चल रही थी : उसने देखा, उनके तन पर किसानों का पहिनावा था...तो यह था जो तेराज़िए में हुआ था।

गर्मियों की खुली धूप में ठहरी हवा में टँगे हुए मुर्दे सर से पाँव तक साफ़ दिखायी दे रहे थे। फन्दे के ऊपर उनके रक्तहीन सिर छोटे मालूम होते थे और पाँव ऐसे लटक रहे थे जैसे ज़मीन टोहना चाहते हों। उतना ही स्पष्ट ज़ेको ने देखा कि अंतीना क़हवाघर के सामने मेज़ें बिछी हुई हैं और उन पर बियर और चुंगिए सजे हुए हैं और मेहमान—जर्मन सैनिक और कुछ नागरिक बैठे हुए हैं। खम्भों के नीचे पूरी सैनिक वर्दी पहने दृढ़ जर्मन सैनिक संतरी खड़े थे मानो इस्पात के, पत्थर के या उससे भी कठोर किसी धातु के बने हों। और ज़ेको को लगा कि वह चलता हुआ कालीन जिस पर वह तेराज़िए पहुँचने पर क़दम रख चुका था उसे अनायास उन विदेशी संतरियों में से एक तक ले जायेगा और वह उससे जाने-अनजाने टकरा जायेगा। यह टकराव तेराज़िए में वाक़ई हंगामा पैदा कर देता। वह संतरी के बिलकुल पास आ गया था, और पास और पास···और फिर उसने उस सशस्त्र व्यक्ति की समस्त कठोरता और अपनी समस्त दुर्बलता एक क्षण के लिए एक साथ अनुभव की और उसने देखा कि भीड़ के साथ वह भी उससे आगे निकल गया है। गुज़रते वक्त उन दोनों के बीच कुछ इंच का ही अंतर था पर वह गुज़र तो गया ही था।

वही भीड़ जो धकेल कर उसे संतरी के भयंकर निकट ले गयी थी अब उसे दूर लिये चली जा रही थी। अब जाकर उसे मालूम हुआ कि उसने दाँत भींच रखे हैं और मुट्ठियाँ कस ली हैं। वह तेज़ चलना चाहता था पर जलूस से अपने को अलग करना मुश्किल था क्योंकि लोग सामने से भी चले आ रहे थे; एक दुःखद कर्तव्य जैसे किसी दुर्निवार आग्रह ने उसे विवश किया कि वह फाँसी पर झूलती लाशों पर एक नज़र और डाले। चलते-चलते सिर घुमाकर उसने देखा—दो लाशें दिखीं जिनकी पीठ उसकी ओर थी और जो इमारतों के अगवाड़ों और भीड़ भरी सड़कों के चौखटे में जड़ी-सी जान पड़ती थीं।

वह और तेज़ चलने लगा। भीड़ छँटने लगी। बिना चाहे वह टापचाइडर पहाड़ी की ओर चल पड़ा। किसी से बोलने की उत्कण्ठा प्यास की तरह उसको

किसी से बोलने की इतनी उत्कंठा ज़ेको ने कभी नहीं जानी थी, ग्रौर लोग थे कि बोलना ही नहीं चाहते थे।

जब उसे कोई पुराना परिचित मिलता उससे यही पूछता :

"वाह रे ईश्वर, कैसा वक्त ग्राया है भइया।"

यही तो बात है, ज़ेको मन में कहता। हम सब एक दूसरे से प्रश्न पूछते रहेंगे। उत्तर देना कोई नहीं चाहेगा, देगा नहीं, देने का साहस नहीं करेगा।

एक रविवार को भोर के समय साराजेव्स्का मार्ग पर उसे एक मित्र जाता मिला तो वह पूछ बैठा, "क्या खबर है ?" मित्र ने ग्रचरज से ग्राँखें फाड़ कर कहा, "बहुत बुरा हाल है दोस्त, यही खबर है। तेराज़िए चौक जाकर ग्रपनी ग्राँखों से देख लो।" मित्र ने तो ग्रपनी राह ली पर ज़ेको घर का रास्ता छोड़ शहर के बड़े चौक तेराज़िए की ग्रोर मुड़ गया। वह नहीं जानता था कि वहाँ उसे क्या देखने को मिलेगा पर उसका समस्त ग्रंतर उसे ठेल कर लिये वहीं जा रहा था।

बालकाँस्का मार्ग पर ग्राकर ज़ेको उस भीड़ में शामिल हो गया जो तेराज़िए जा रही थी। भीड़ में उत्तेजना थी पर प्रदर्शन नहीं था। उनमें बहुलांश पुरुष थे, उनमें से ग्रनेक युवा थे। उस दिन ग्रसाधारण गरमी थी इसलिए वे कोट नहीं पहने थे ग्रौर उनकी उजली कमीज़ों की ग्रास्तीनें कुहनी तक चढ़ी हुई थीं।

जब ज़ेको तेराज़िए पहुँचा तो चौक पर मनुष्यों की नदी उफना रही थी। जलूस देखकर लगता था मानो यह किसी विशाल शवयात्रा का ग्रंश हो। ग्रपने इर्द-गिर्द के लोगों की दृष्टि का ग्रनुसरण करने पर ज़ेको ने देखा : लोहे के लालटेन के खम्भे के सिरे से जहाँ दो शाखाएँ फूटती हैं एक रस्सी टँगी हुई है ग्रौर उससे एक ग्रादमी लटक रहा है; उसके पीछे दूसरे खम्भे से दूसरी रस्सी ग्रौर दूसरा ग्रादमी ग्रौर फिर कुल चौक में इसी तरह एक के बाद एक। उसने ग्राँखें झुका लीं ग्रौर सोचा कि उलटे पाँव लौट जाये, मगर फिर उसने जाना कि यह सम्भव नहीं है ग्रौर उसे जलूस के साथ चलते रहना ही होगा, सब कुछ देखना होगा। ग्रौर वह चलता गया ग्रौर उसने सब कुछ देखा यद्यपि उन क्षणों में वह नहीं जानता था कि वह कहाँ जा रहा है ग्रौर क्या देख रहा

है। उसे लग रहा था कि पैरों के नीचे पक्की सड़क उसे हुमास रही है और उसे और इस जनसंकुल भीड़ को बरबस आगे लिये जा रही है। उसकी दृष्टि एक खम्भे से दूसरे पर, एक आदमी से दूसरे पर घूमती चल रही थी : उसने देखा, उनके तन पर किसानों का पहिनावा था...तो यह था जो तेराज़िए में हुआ था।

गर्मियों की खुली धूप में ठहरी हवा में टँगे हुए मुर्दे सर से पाँव तक साफ़ दिखायी दे रहे थे। फन्दे के ऊपर उनके रक्तहीन सिर छोटे मालूम होते थे और पाँव ऐसे लटक रहे थे जैसे ज़मीन टोहना चाहते हों। उतना ही स्पष्ट ज़ेको ने देखा कि अंतीना क़हवाघर के सामने मेज़ें बिछी हुई हैं और उन पर बियर और चुंगिए सजे हुए हैं और मेहमान—जर्मन सैनिक और कुछ नागरिक बैठे हुए हैं। खम्भों के नीचे पूरी सैनिक वर्दी पहने दृढ़ जर्मन सैनिक संतरी खड़े थे मानो इस्पात के, पत्थर के या उससे भी कठोर किसी धातु के बने हों। और ज़ेको को लगा कि वह चलता हुआ कालीन जिस पर वह तेराज़िए पहुँचने पर क़दम रख चुका था उसे अनायास उन विदेशी संतरियों में से एक तक ले जायेगा और वह उससे जाने-अनजाने टकरा जायेगा। यह टकराव तेराज़िए में वाक़ई हंगामा पैदा कर देता। वह संतरी के बिलकुल पास आ गया था, और पास और पास···और फिर उसने उस सशस्त्र व्यक्ति की समस्त कठोरता और अपनी समस्त दुर्बलता एक क्षण के लिए एक साथ अनुभव की और उसने देखा कि भीड़ के साथ वह भी उससे आगे निकल गया है। गुज़रते वक्त उन दोनों के बीच कुछ इंच का ही अंतर था पर वह गुज़र तो गया ही था।

वही भीड़ जो धकेल कर उसे संतरी के भयंकर निकट ले गयी थी अब उसे दूर लिये चली जा रही थी। अब जाकर उसे मालूम हुआ कि उसने दाँत भींच रखे हैं और मुट्ठियाँ कस ली हैं। वह तेज़ चलना चाहता था पर जलूस से अपने को अलग करना मुश्किल था क्योंकि लोग सामने से भी चले आ रहे थे; एक दुःखद कर्तव्य जैसे किसी दुर्निवार आग्रह ने उसे विवश किया कि वह फाँसी पर झूलती लाशों पर एक नज़र और डाले। चलते-चलते सिर घुमाकर उसने देखा—दो लाशें दिखीं जिनकी पीठ उसकी ओर थी और जो इमारतों के अगवाड़ों और भीड़ भरी सड़कों के चौखटे में जड़ी-सी जान पड़ती थीं।

वह और तेज़ चलने लगा। भीड़ छँटने लगी। बिना चाहे वह टापचाइडर पहाड़ी की ओर चल पड़ा। किसी से बोलने की उत्कण्ठा प्यास की तरह उसको

जला रही थी। और जब उसने सड़क पर से गुज़रते लोगों को देखा तो उसने सोचा, क्यों न ये सब यहीं घास पर बैठ जायें और जो देखकर आये हैं उसकी बात करें।

उसने मारिया को रसोईघर में खाना पकाते और दो किसान औरतों से, जो रविवार की छुट्टी मना रही थीं, गप लड़ाते पाया। बच्चे घर पर नहीं थे और डोरोश अपने हरे-भरे बैंगनों की सेवा में पसीने से लथपथ चुपचाप इस तरह जुटा हुआ था जैसे अपने डीलडौल को लिये-दिये उन्हीं में खो जाना चाहता हो।

जैसा बहुधा रविवार को होता था, मार्गरीटा दिन भर के वास्ते लड़के के साथ ज़ेमून चली गयी थी और खाना रख गयी थी कि ज़ेको गरम करके खा लेगा। आज के दिन अकेले खाने से बचने के लिए ज़ेको सब कुछ करने को तैयार था मगर आज ही मारिया ने उससे खाने को न पूछा और स्वयं कहने की ज़ेको को हिम्मत न पड़ी। उसने विदा ली और पहाड़ी से उतर चला।

प्रत्यक्ष था कि कोई बातचीत करना नहीं चाहता। सहानुभूति के अस्फुट शब्द और निराशा की छटपटाहट—बस।

और ज़ेको ने मन में कहा, जब किसी समाज पर घोर विपत्ति आ पड़ती है, जब वह सबसे अधिक व्याकुल होता है और जब परस्पर आश्रय और सम-वेदना सबसे अधिक आवश्यक होती है तभी उसी व्याकुलता के वश लोग एक दूसरे को सहारा देने और धीरज बँधाने में सबसे अधिक असमर्थ हो जाते हैं।

ज़ेको के खाली घर में अजब तरह का सन्नाटा छाया था। उसकी दीवारों के भीतर आकर उसे पूरी तरह समझ में आया कि उसने आज सवेरे तेराज़िए पर सपने जैसा क्या देखा था। वह दृश्य फिर साकार हो उठा और वह व्यथा फिर जाग उठी जो उसने पहले अनुभव की थी।

मार्गरीटा जो खाना रख गयी थी उसमें से उसने केवल कुछ पनीर, फल और रोटी ले ली। उसका उद्वेग बढ़ता गया। गर्मियों के तीसरे पहर का एकांत उस शीतल निर्जन घर में अनन्त असह्य हो उठा। कलाइयों में, गरदन में वह रक्त का स्पंदन अनुभव कर रहा था; मानो समस्त देह को, बाह्य जगत् को यह आंदोलन मथे डाल रहा था। श्लथ होकर वह लेट रहा। पीठ के बल पड़े-पड़े वह आँखें

फाड़कर सफ़ेद छत की ओर ताकता रहा; उसे लगा कि वह भी निरंतर कँप रही है—बहुत धीरे-धीरे मगर स्पष्ट रूप से; उसके नीचे सोफ़ा भी उसी लय से डोल रहा है।

ज़ेको कूद कर उठ खड़ा हुआ और कमरों में घूमने लगा। उसके चारों ओर का सभी कुछ अस्थिर हो उठा था और एक ही उद्वेग से स्पंदित हो रहा था।

वह रसोईघर में गया जहाँ खिड़की से वह पहाड़ी दीखती थी जिस पर पड़ोस का मकान खड़ा था। पहाड़ी की सीधी उजाड़ ढलान पर उसने नज़रें गड़ा दीं, वहाँ भी वही स्पंदन था।

ज़ेको ने सोचा, तेराज़िए लौट जाऊँ; जैसे कि वहीं जहाँ से यह संताप मिला है जा कर वह हिसाब चुकता कर सकता है। परंतु यह विचार उसकी उत्तेजना से उपजा था, व्यावहारिक उपाय न था। वह वहाँ जाता भी तो अकेले, इस क्षोभ को लेकर जो उसे यहाँ से वहाँ भटका रहा है, कैसे जाता।

नहीं; कोई उपाय नहीं है, कोई राह नहीं है। वे हत्या कर रहे हैं। आदमियों की जान ली जा रही है और कुछ लोग चायघरों में बैठे हैं। ठीक फाँसी के नीचे खा-पी रहे हैं और कुछ लोग घर में घुसकर बैठ रहे हैं कि देखना, सुनना, जानना न पड़े। उसने भी वही किया था पर अब वह अपने को उससे छुड़ा नहीं पा रहा था जो उसने देखा था। वह सब उसके अंतर में पैठ चुका था। उपाय की खोज में डूबा हुआ वह रसोईघर की खिड़की से नीचे बहती नाली को और सामने खड़ी सीधी पहाड़ी को देख रहा था जिसने रसोईघर में रोशनी छेंक रखी थी।

उसने देखा कि खिड़की के नीचे उसकी इमारत की दीवाल से एक पतली कगर निकली हुई है। न मालूम क्यों किस कारीगर ने इसे बनाया होगा। इस कगर के बाद थोड़ा अंतर दे कर सामने की पहाड़ी पर एक अधबना चबूतरा निकला हुआ था—बीच में नीचे नाली थी। चबूतरा ज़मीन से कोई पंद्रह फ़ुट ऊँचा था और धूप के अभाव में बौनी झाड़ियों और काई से ढका रहता था।

यह उन अनेक विचित्र वस्तुओं में से थी जो प्रारम्भिक बीसवें दशक के हमारे बेलग्रादी वास्तुकार बना गये हैं: तब हर एक को जल्दी से जल्दी जो भी मिले वह सामान लेकर बिना बहुत सोचे-समझे अपनी निजी इमारत खड़ी कर लेने की जल्दी रहा करती थी। उस ज़माने में संग्रह की प्रबल उतावली थी, दायित्व

की भावना का समग्र विकास नहीं हुआ था और श्रम और पूंजी का मुक्त अपव्यय करना साधारण बात थी।

ज़ेको सहसा खिड़की पर चढ़कर बाहर उसका पटरा पकड़ कर लटका और कगर पर उतर आया। उस पर सरकते-सरकते वह बरसाती पानी के पाइप तक जा पहुँचा और उसे एक हाथ से पकड़ कर कगर से पहाड़ी पर एक पाँव रख दिया। 'मुश्किल नहीं है, कुछ भी मुश्किल नहीं है।' मन में यह कहते हुए उसने पूरी ताक़त से छलांग लगायी और वह पहाड़ी के चबूतरे पर था। यहाँ वह चाहे तो बैठ भी सकता था।

उसने चबूतरे पर बरसों की ज़मा बरसाती मिट्टी और बजरी साफ़ की और बैठ गया। उसका दिल धड़क रहा था और आँखों के सामने गरमी और परिश्रम के कारण, जिसकी उसे आदत न थी, अँधेरा छा रहा था। मगर कंकरीट का यह चबतरा जो गोरैया के घोंसले की तरह नाले के ऊपर टँगा हुआ था उसके घर की छतों और दीवालों की तरह थरथरा नहीं रहा था। शायद ज़ेको भी उस स्थिति को पहुँच गया था जहाँ वह स्थिर हो जाना चाहता था।

सशंक भाव से उसने अपनी परिस्थिति का निरीक्षण किया। पड़ोसी का अखरोट उसके सर पर छा रहा था और साराजेव्स्का मार्ग के पुराने नीचे-नीचे मकानों की छतों के ऊपर से दूर तक का संकीर्ण दृश्य झलक रहा था—उसे सावा और डेन्यूब का संगम और उसके पीछे काले मेगडन का तीखा उभार दिखायी दिया। यह एक अभिनव दृश्य था। पहले उसने नगर को इस विचित्र कोण से कभी नहीं देखा था। इस घर में रहते उसे कई वर्ष हो गये थे किंतु इस सुन्दर सुरक्षित एकान्त स्थल में पैठ सकने की सम्भावना उसे कभी सूझी ही न थी। और इसे सम्भव करने में उसने और कुछ नहीं अपने को केवल भय से और क्षुद्र संकोच से मुक्त किया था और दोनों कगरों के व्यवधान को फँलागने का साहस किया था। ऐसे संकल्प बहुत बड़े नहीं होते किंतु ठीक समय पर किये जायें तो कभी-कभी आत्मा को बचा लेते हैं।

ज़ेको अपनी नयी परिस्थिति को विचारता वहाँ देर तक बैठा रहा। परन्तु उसके असामान्य अनुभव की ताज़गी भी उसे बहुत देर तक शान्ति नहीं दे सकी। उतनी ही देर तक दे सकी जब तक उसकी असाधारण चेष्टा से उत्पन्न थकान और उत्तेजना बनी रही और फिर सवेरे का दृश्य उसकी स्मृति में हहराता हुआ

लौट आया। उसी के साथ लौटी वह व्याकुलता जिससे वह बच कर भाग आया था और फिर निर्मम आत्म-ग्लानि : कितना बचकाना था यह विचार कि कोई लड़कों की तरह नाला फाँद कर इस पीड़ा से त्राण पा सकता है !

उसका त्रास उसके पीछे लग गया। हाँ, वह उसके पीछे पड़ गया ! और उसका नाम लेकर पुकारने लगा। दूर से आता एक धीमा स्वर निकटतर और स्पष्टतर हो रहा था : "ज़ेको, ज़ेको..."

तब उसने रसोईघर का द्वार खुलते सुना और साक्षात् मार्गरीटा का सुपरिचित कर्कश स्वर नाले के पार से गूंजता सुनायी दिया :

"ज़ेको !"

तत्क्षण तेराज़िए का दृश्य, अपने एक-एक नृशंस चित्र सहित इस छोटे-से चौतरे पर अवतरित हो गया। ज़ेको सीधा खड़ा हो गया। शरीर काँप रहा था। मार्गरीटा रसोईघर की खिड़की में तीसरे पहर के प्रखर आलोक में प्रकट हुई। उसके सर पर टोप था और मुँह और आँखों के चौगिर्द झुर्रियों से उखड़ कर नाक और कानों के पास एकत्र पाउडर से उसका चेहरा सफ़ेद हो रहा था।

"ज़ेक..."

और वह औरत अटक गयी, अधूरा शब्द उसके मुँह में ही रह गया, आँखें अचरज से निकल पड़ीं, बाँहें उठी रह गयीं। दाहिने हाथ से उसने अपने सीने पर सलीब का चिह्न खींचने का दिखावा किया।

"ईश्वर के नाम पर...ज़ेको !"

वह उग्र रूप देखकर और यह तेज़-तर्रार बोली सुनकर ज़ेको का रहा-सहा धीरज भी जाता रहा और एक बार फिर आवेश ने उसे झकझोर डाला।

उसके सीने में तेराज़िए की प्रतीतियाँ उतर आयीं : ट्रामगाड़ियों की गड़-गड़ाहट, लटकी हुई लाशों के नीचे जमा होती भीड़ की सुगबुगाहट और अंतीना क़हवाघर के सामने की मेज़ों पर सजी रोटियाँ और छुरी-काँटे। और अब बौखलायी हुई मार्गरीटा—सम्पूर्ण दृश्य को रौंदती प्रकट हुई और उसका नाम पुकारने लगी।

रसोईघर की खिड़की पर वह औरत बिफर रही थी और बक रही थी :

"घत्तेरे की...तुम वहाँ पहुँच कैसे गये, तुम वहाँ कर क्या रहे हो ?"

सिर से पाँव तक काँपते ज़ेको ने अनुभव किया : वह जवाब देना भी चाहता है और देने में असमर्थ भी है। यह अनुभव कुछ ऐसा था जैसे वह स्वप्न में दुष्ट-अधम लोगों से भीषण तर्क में उलझा अपनी सच्ची आशंका और अवज्ञा को यथाशक्ति ऊँचे स्वर में जी-जान से अभिव्यक्त करना चाह रहा है किंतु उसे न तो चीख़ने के लिए स्वर मिल रहा है न मारने के लिए शक्ति। वह रसोईघर की खिड़की की ओर झुका और ज़ोरों से हाथ हिला कर मार्गरीटा पर दबे-बैठे गले से चीखा :

"छोड़ दो मुझे तुम सबके सब ! जाओ, फाँसी को देखो जाकर, छोड़ दो मुझे, मैं कहता हूँ तुम सबके सब !"

उसका स्वर मुश्किल से सुनायी दे रहा था पर उसका चेहरा लाल हो आया था, आँखें जल रही थीं और उसके हाथ ऐसे चल रहे थे जैसे हमला कर बैठेंगे।

मार्गरीटा खिड़की पर से थोड़ा-सा पीछे हट गयी और चबूतरे पर का आदमी एक पाँव पर से दूसरे पर उछलने लगा क्योंकि अपने क्लेशकर उद्वेग की निवृत्ति के लिए जिस चहलक़दमी की उसे जरूरत थी उसके लिए वहाँ जगह न थी। कहीं कोई शांति न पा कर उसका स्वर एकदम रुँध गया। उसने अपने शब्दों में शक्ति भरने के लिए आवाज़ कुछ तीखी का, लहजा बदलना चाहा।

"छोड़ दो मुझे, मैंने कह दिया। तुम ज़ेमून भर में मक्खन और कोको जमा करती फिरती हो, यहाँ बेलगराद के अन्दर लोग फाँसी चढ़ाये जा रहे हैं। शर्म करो, शर्म ! अगर हम इन्सान होते तो तेराज़िए जाकर चीखते 'फाँसी का सत्यानाश हो, ख़ूनी हिटलर का सत्यानाश हो!'..."

"ज़े...ज़ेको !" मार्गरीटा ने चीत्कार किया और वाद्यवृन्द-निर्देशक जैसे किसी तुरही की बोली धीमी कराने के लिए हवा में हाथ मारे, ऐसे परेशान होने लगी, मगर वह आदमी कातर उद्धत स्वर में चिल्लाता गया :

" 'निकल जाओ, आततायी, हत्यारों का नाश हो'—ये नारे लगाने चाहिए हमें, समझे, ये नहीं कि..."

औरत खिड़की से मुड़कर भागी और रसोईघर का द्वार भड़ाक से बंद होता सुनायी दिया। ज़ेको मौन था क्योंकि उसका गला रुँध गया था। उत्तेजना से

क्लान्त होकर वह बैठ रहा और बीमार की तरह पीछे ढलान से टेक लगा ली। आँखें मूँद लीं। उसकी साँस फूल रही थी और शरीर थरथरा रहा था।

इस सँकरे स्थल पर, जो चारों ओर से घिरा था, अँधेरा छाने लगा था एक-, दम सन्नाटा था, ग्रीष्म के दिनों में रविवार की सन्ध्या का सन्नाटा।

मार्गरीटा रसोईघर में फिर प्रकट हुई, मगर इस बार झिझकती हुई आयी। उसका मुख भय से विकृत था और ओंठ काँप रहे थे।

"ज़ेको, ज़ेको !"

उसने दबे स्वर में पुकारा जैसे दुलार से किसी डरे हुए जानवर को पुचकार रही हो। ज़ेको ने उत्तर नहीं दिया मगर जब वह पुकारना बंद कर चुकी तो वह सहसा उठा, पैर बढ़ाकर नाले के पार रखा और एक छलांग में इधर की कगर पर पहुँच कर खिड़की से होता हुआ रसोईघर में आ रहा। मार्गरीटा उसे ऐसे देख रही थी जैसे वह कोई राक्षस हो परंतु तत्काल खिड़की बंद करना वह नहीं भूली।

उस रात उनके घर में क्या हुआ, यह न तो कोई देख पाया न सुन पाया। वे दिन ही ऐसे थे कि ज़ेको, काला साँप और टिगार में कोई भी बहस हो जाती तो यकीन करना पड़ता।

ज़ेको और मार्गरीटा के मध्य चबूतरे पर क्या हुआ था इसकी शायद ही किसी को खबर लगी हो, तो भी मार्गरीटा को इतना अधिक खतरा मालूम हुआ कि उसने यह सोच कर कि क्या जाने किसी ने देख ही लिया हो सब आवश्यक उपाय कर डाले।

उसने ज़रा भी वक्त नहीं गँवाया। अगले दिन सवेरा होते ही दारोग़ा को आदेश दिया गया कि इमारत के प्रत्येक खंड पर एक-एक किरायेदार को बता दे कि श्री ज़ेको 'सख्त बीमार' हैं। उससे कहा गया कि कोई पूछे, बीमारी क्या है तो बताये 'दिमाग़ ...'। यह शब्द दारोग़ा ने ऐसे कहा जैसे किसी विदेशी शब्द का उच्चारण कर रहा हो। और अच्छी तरह समझाने के लिए वह अपनी ओर से इतना और करता कि दाहिने हाथ की तर्जनी से माथे के मध्य में वृत्त खींच कर बताता। तरस खा कर किरायेदार हाथ हिलाते।

ज़ेको को तेज़ बुखार चढ़ आया और तीन दिन रहा। मार्गरीटा ने मारे

डर के डाक्टर नहीं बुलाया कि कहीं ज़ेको को फिर क्रोध का दौरा न पड़ जाये और वह प्रलाप करने लगे। बल्कि उसने अपनी बहन मारिया से सलाह माँगी जिससे वह अरसे से नहीं मिली थी। उसने उसे सारा क़िस्सा सुनाया और कहा कि ज़ेको को समझाओ कि फिर ऐसा तमाशा न खड़ा करे क्योंकि आजकल इससे भी छोटी बात पर घर का घर गोली से उड़ा दिया जाता है।

मारिया अत्यन्त चिंतित हो उठी और उसने तुरंत ड़ाक्टर बुलाने की राय दी मगर मार्गरीटा राज़ी न हुई। किंतु जब ज़ेको से बात की तो मारिया इस नतीज़े पर आयी कि अब डाक्टर की कोई ज़रूरत नहीं रही है।

सब कुछ ठीक ही रहा। ज़ेको फिर चलने-फिरने लगा। कभी कोई किराये-दार सामने पड़ जाता तो वह कुछ तरस, कुछ कौतूहल से उसे नमस्कार करता; फिर तो यह भी गयी-गुज़री बात हो गयी।

ज़ेको के असाधारण दौरे और उसके तीव्र ज्वर ने अपना कोई असर कहीं नहीं छोड़ा था और घर का ढर्रा भी कोई विशेष नहीं बदला था। तो भी चबूतरे पर का विचित्र कांड अपने ढंग से मार्गरीटा की स्थिति निर्बल और ज़ेको की सुदृढ़ कर गया। परिणामत: पत्नी और पुत्र दोनों ज़ेको से कुछ और अदब से पेश आने लगे हालाँ कि इसका मतलब यह नहीं कि उनके दिल में उसके लिए कोई प्यार पैदा हो गया था; उनका व्यवहार ऐसा ही था जैसे कहीं बिना फूटा बम पड़ा हो तो उसके पास से गुज़रने वालों का होता है।

ज़ेको अब नौकरी नहीं कर रहा था। मार्गरीटा बार-बार उसे समझाने की कोशिश कर चुकी थी कि उसकी पेंशन से पूरा नहीं पड़ता और उसे अधिकारी सत्ता के यहाँ काम ढूंढ़ लेना चाहिए पर उसने यह सुझाव इतनी दृढ़ता से ठुकरा दिया था कि अब वह फिर इसका ज़िक्र करते डरने लगी थी।

वह परिवार के खाद्य-संग्रह में और भी बझी रहने लगी थी। उसके मन में सम्भव-असम्भव, यथार्थ-काल्पनिक, वास्तविक, अवास्तविक सभी प्रकार की आशं-काएँ बढ़ती जा रही थीं। टिगार, जिसे बदन बनाने और आराम करने के अलावा किसी चीज़ से मतलब न था, और भी निकम्मा और खाऊ साबित होता जा रहा था। ऊपर से वह इतना डरपोक और बेशऊर था कि उसकी माँ को मजबू-रन उसे बच्चे की तरह पालना पड़ता था।

ज़ेको उन दोनों के मध्य था। अब उसे किसी का डर न था। उसकी ज़रूरतें कम थीं; वह इन दोनों को ऐसी नज़र से देखता जैसे ये कच्ची उमर के लड़के हों। वे जो कुछ कहते उस पर वह मुस्कुरा देता। और जब वह ऊबता या घुटता तो रसोईघर की खिड़की से फाँद कर अपने राज्य में पहुँच जाता। यह स्थल ज़ेको का युद्धकालीन आविष्कार था। वहाँ बैठकर वह सोच-सोचकर प्रसन्न होता कि मार्गरीटा की सत्ता कैसे क्षीण हुई और वह कैसे बन्धनमुक्त हुआ। यद्यपि उसके और मार्गरीटा के मध्य केवल गज़-दो गज़ की दूरी रहती थी, वास्तव में दोनों को विभाजित करने वाला इससे बड़ा कुछ और था—ज़ेको का उस अंतर को लाँघने का साहस और कौशल। इस साधारण करतब और उसमें छिपे सूक्ष्म जोखम ने ज़ेको को इतना प्रेरित किया कि वह खतरे और साहस के विषय पर विचार करने लगा। ख़तरा खोजो, उसे भेदो और मुक्त हो आओ। इसमें इतना जोखम नहीं जितना दीखता है क्योंकि मानो या न मानो, ख़तरा तो घात में रहता ही है और हमला करता ही है चाहे कोई उससे भागने वाला हो चाहे चिपका रहने वाला हो।

भय पर वश करने की सामर्थ्य अच्छी चीज़ है किन्तु मूलतः वह व्यर्थ का धन्धा है और हारते की लड़ाई है क्योंकि वस्तुतः हमारे अन्तर में भय अधिक होता है, बल उतना नहीं और वह भी अन्ततः शेष हो जाता है—बच रहता है केवल भय। और हम मनुष्यों के भय भी क्या होते हैं—महामारी, रोग, कोई नयी खोज़, पुलिस-क़ानून (वे भी जिन्हें हमसे न मतलब है न हो सकता है), रात के अँधेरे में हमारी अपनी भावनाएँ जिनकी जड़ें किसी यथार्थ में नहीं—हमारे दुर्बल स्नायु में होती हैं।

अतएव ज़ेको ने स्पष्ट जान लिया कि भय का सर्वनाश केवल उसे निर्मूल कर के हो सकता है। मनुष्य में भय की अनुभूति ही नष्ट करनी होगी जैसे विकृत टांसिल ग्रंथियाँ गले से निकाल फेंकी जाती हैं।

ये भावनाएँ इतनी विकीरित और अभिनव थीं कि अपने चबूतरे की बाट पर बैठे ज़ेको को चक्कर-सा आने लगा, उसे एक नया भय हो रहा था—भय न होने का भय—मानो ख़तरे के उन्मूलन का विचार अपने में ही एक ख़तरा हो—कम से कम उसके जैसे छोटे आदमी के लिए तो हो ही। सचमुच यह बोध, उस पर एक ऐसे बोझ की तरह बैठ गया जिसे उसे ढोना ही है और उसके तले उसका कुल

शरीर लड़खड़ा रहा है। समय-समय पर वह भयातुर हो उठता था किन्तु वह रुका नहीं, हारा नहीं। क्यों कि जब कोई संकल्प स्थिर हो जाता है और चरित्र का बल उसे प्राप्त होता है तो वही मनुष्य का स्वरूप निर्धारित करता है। ज़ेको का भय छोटा हो गया और वह स्वयं बड़ा हो गया।

५

चबूतरे से ज़ेको ने ज़ेमून शहर की रोशनियाँ देखीं जो अब उस्ताशी के हाथों में एक 'शत्रु विदेश' का अंग बन गया था। उसने सावा नदी देखी जिसे कप्तान माइका दिव्य कहा करता था और जो अब महाबली फ़ाशी शक्तियों की कृपा पर आश्रित घृणा, अज्ञान और विषाक्त भावनाओं से पोषित 'सर्बियाई' और 'क्रोशियाई' सरकारों के अधीनस्थ दो अभागे राज्यों की परस्पर सीमा बन गयी थी। वह आकाश में उड़ते अनेक विमानों को और सावा में खींचे जाते बजरों को एक-एक करके ताकता रहा जो शत्रु की अधिकार सेना की सेवा में लगे हुए थे।

वह अपने में डूबा ख़ाली-खाली आँखों से चारों ओर हेरता बैठा था कि मार्गरीटा फिर एक बार उसकी विचार-शृंखला तोड़ कर घुस आयी और उसे चौंका कर मजबूर कर दिया कि वह उस पर और उससे सम्बद्ध विषयों पर सोचे।

दासी से झगड़ती हुई उसकी पत्नी का विक्षिप्त स्वर रसोईघर से उसके कानों में आ रहा था। आह, मार्गरीटा और उसकी नौकरानियाँ यही रिश्ता उसके व्यक्तित्व की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति करता था और इसी में निर्बल पर शासन और अत्याचार करने की उसकी अदम्य अपरिमित वर्गगत लालसा तुष्टि पाती थी।

कई वर्ष से वह मार्गरीटा और उसकी नौकरानियों को देख रहा था। कभी-कभार उसने दख़ल देने की कोशिश भी की थी मगर आख़िरकार उसे हमेशा [illegible]रना पड़ा था।

यह सच है कि कुछ छोकरियाँ कामचोर थीं और कुछ चीज़ें उठा ले जाती थीं और पेशगी पैसे दो तो उसे ले कर चम्पत हो जाती थीं। मगर और भी नौकरानियाँ थीं : मेहनती लड़कियाँ, और वे मार्गरीटा के घर कुछ ही दिन काम कर के छोड़ देतीं, उसे धोखा देने की नीयत से नहीं बल्कि इसलिए कि उस घर में जीना और साँस लेना दूभर था; चार पैसों और मार्गरीटा की रोटियों के लिए खटना और बातें सुनना तो दूर की बात है।

और ज़ेको ख़ूब समझता था कि मार्गरीटा के आश्रय में रहना, उसके अधीन काम करना क्या होता है। पूरा काम कर डालने से ही उसे संतुष्ट कर देना सम्भव न था, वह भोर से रात तक फ़िज़ूल बक-बक कर के नौकरानियों की जान खा लेती; गिद्ध की-सी आँखों से वह उनको घूरती जैसे वह जानना चाहती हो कि वे क्या सोच रही हैं, किससे मिलती-जुलती हैं, कौन-कौन रिश्तेदार इनके हैं। वह उनकी चिट्ठियाँ खोल लेती, उनके असबाब खँखोल डालती और बिस्तर-गद्दे झार लेती। अठारह बरस की लड़कियों को तो वह कभी नहीं बख़्श सकती थी क्यों कि वे शाम को अपने युवा मित्रों के साथ टहलती थीं, रात को बासी तरकारी नहीं खाती थीं, क्यों कि वे गाती थीं, हँसती थी या उदास होती थीं, क्यों कि घटिया सलूकों पर वे अपना नाम कढ़वाती थीं, क्यों कि दाँत मढ़वाती थीं, क्यों कि किसी से प्यार करती थीं या सुन्दर लगती थीं और कुल मिला कर अपने काम के घंटों से और मार्गरीटा की आवश्यकताओं से परे एक अपनी ज़िंदगी जीती थीं।

मार्गरीटा घंटों इस विषय पर बोलती रह सकती थी कि नौकर जितने होते हैं सब कितने दुष्ट, अकृतज्ञ और निकृष्ट होते हैं। उसे अपने घर में बीस एक साल में आने और जाने वाली सब नौकरानियों की सूची याद थी। कुछ तो ऐसी थीं जिन्हें वह कभी भूल नहीं सकती थी।

एक मर्तबा उसके यहाँ एक नाटी-दुबली लड़की स्त्रेम से आयी थी जो सिर्फ़ तीन दिन रही। तीसरे दिन वह गलियारा बुहार रही थी तो मार्गरीटा उसके पीछे लग गयी और फ़र्श की एक-एक दरार दिखाकर लगी नुक़्स निकालने और हुक्म जताने। सहसा लड़की ने बुहारी रोक दी, बोली कि मैं ऐसे घर में काम नहीं करती और मेरा हिसाब चुकता कर दिया जाये। मार्गरीटा ने गरम होकर पैसे देने से इनकार किया क्योंकि नौकरानी ने काम छोड़ने की बाक़ायदा

सूचना नहीं दी थी और तमाम बातें सुनाते हुए उसे 'रंडी' बना डाला।

"अच्छी बात, मैं रंडी भली, पर तुम कैसी बीवी हो जो ऐसे बोल बोलती हो। भूखों मर जाऊँगी पर मैं तुम्हारी जैसी नागिन की नौकरी न करूँगी..."

मार्गरीटा ने पुलिस बुलाने की धमकी दी, बकते-झकते गलियारा सर पर उठा लिया। आखिरकार लड़की ऐसे चीख़ी जैसे दौरा पड़ा हो और जो झाड़ू उठाकर मार्गरीटा पर लपकी तो उससे भाग कर रसोईघर में छिपते ही बना। झाड़ू फेंक कर लड़की बोली :

"झाड़ू से तुम्हारा भला न होगा, तुम तो पिस्तौल से ठीक होगी। देख लेना किसी दिन वह भी होकर रहेगा।"

लड़की चली गयी और मार्गरीटा तत्काल पुलिस में रपट लिखा आयी। दस वर्ष पहले की यह घटना मार्गरीटा जब-तब सुनाया करती थी और जब सुनाती तो गुस्से से काँपने लगती और आँखें तरेर कर उसे कोसती :

"देखो तो चुड़ैल को, मुझे पिस्तौल मारने आयी थी—पिस्तौल मारेगी! ऊपर से जब पुलिस में रपट लिखायी तो वहाँ उनको हँसी आने लगी, देखो तो ज़रा।"

ज़ेको को एक अन्य घटना स्पष्ट याद आ रही थी। वह लड़की लम्बी और गोरी थी। उदास उसकी आँखें थीं और सुघर चाल थी। जब वह काम करने आयी तो उसके पास एक चौड़ा काला दुपट्टा था। एक दिन तो उसने मार्गरीटा को भुगता और दूसरे दिन काला दुपट्टा छोड़-छाड़ घर को चल दी। फिर उसने उधर झाँका तक नहीं। उस एक दिन में उस पर क्या गुज़री होगी कि वह ऐसे भागी जैसे कोई ताऊन से भागे और पलट कर न देखे। वह अपनी मालकिन को भेंट में एक दिन की अपनी मेहनत ही नहीं एक दुपट्टा भी दे गयी थी।

और मार्गरीटा यह क़िस्सा भी हर एक को सुनाती। वह कभी नहीं समझ पायी कि सुननेवाला नौकरानी को तो जो समझे, उसे क्या समझता होगा।

कई बरस गुज़र चुके थे। कई नौकरानियाँ आ-जा चुकी थीं। यही ढर्रा चला आ रहा था।

आज फिर वह एक लड़की पर बिगड़ रही थी जिसे घर से आये दो-चार दिन ही हुए थे और उस बिचारी को डरा रही थी कि युद्ध के दिनों में लोग सीधे बेगार टोली में भेज दिये जाते हैं क्योंकि लड़ाई चल रही है और जर्मनों

से निपटना कोई हँसी-ठट्ठा नहीं है। यह धमकी नयी थी मगर झगड़ा वही था जैसा बीस साल से चला आ रहा था।

और ज़ेको इसी अपनी औरत के विषय में सोच रहा था जो हर दृष्टि को कुंठित और हर विचार को विशृंखल कर रही थी। कर्कशा, ततैया ! उसके हाथ हर वक्त मानो खुजलाया करते, वह कुछ न कुछ सीया किया करती चाहे अपने तन पर चाहे कहीं और। जितना वह बोलती नहीं उतना हाथ नचाती। उसके चेहरे पर दोनों भाव रहते—हत्या के पात्र के भी और हत्यारे के भी।

यह झुँझलाहट, यह हिंस्र भाव उसके मुख पर सारे दिन रहता; वही सूरत लिये हुए वह सो जाती और चूँकि नींद से न तो वह मृदु होती न बदलती सवेरे उठ कर वह नया दिन फिर उसी बर्बर चेहरे से शुरू करती जिसमें पीड़ा तो थी परंतु शालीनता नहीं थी। उसमें विकृति थी जिसमें सहानुभूति और करुणा की गुंजाइश न थी। किन्तु उसकी मनहूसियत से भी घिनौनी और दुखदायी थी उसकी मुस्कान जो धुंध में बिजली की चमक जैसी आती और चली जाती, सिकुड़े हुए निर्जीव-से ओठ फड़क उठते, झुर्रियाँ—जिन्हें देखकर आदर नहीं उपजता था। बन कर मुस्कुराने की यह विफल कोशिश देख कर ज़ेको को रविवार की दोपहर को मुस्कराती किसान-बालाओं की या सीधे-सादे पुरनिया लोगों की धूप जैसी मुस्कुराहट की या फिर हँसती आँखों के गिर्द सैकड़ों झुर्रियों वाली बुड्ढी की याद आयी।

ज़ेको ने अपनी पत्नी की ओर देखा और उसके उस रूप से तुलना की जब वह एक मज़बूत लड़की थी जिसे ज़ेको चाहता था और जिसे उसने किसी बुरी घड़ी में एक साथ और सदा के लिए प्राप्त कर लिया था।

ज़ेको ने अपने विवाहित मित्रों और उनके घरों की याद की। उसने जाना कि उसका अपना मामला विशेष रूप से कठिन है परन्तु विशिष्ट नहीं है। ऐसे ही चक्र में फँसे परिवारों की संख्या बहुत बड़ी है और मार्गरीटा जैसी चरित्र वाली स्त्रियाँ भी कम नहीं हैं; हाँ, मार्गरीटा की हरकतों का आकार-प्रकार भयंकर हो गया है। यह सब सोचते-सोचते वह अक्सर अपने से पूछता कि अपने को स्त्रियाँ कहने वाले इन जंतुओं की सृष्टि का क्या उद्देश्य है। ज़ेको पूछता, ये औरतें जो अपने को गृहिणी कहती हैं अपना काम हँस कर क्यों नहीं करतीं, चिड़चिड़ाती और कुड़कुड़ाती क्यों हैं। क्या वजह है कि अच्छा पति हो, स्वस्थ

बच्चे हों श्रौर खाता-पीता घर हो फिर भी तमाम श्रौरतें घर में फुफकारती फिरती हैं, दासियों को गरियाती हैं, बच्चों को धुनकती हैं, पति को काटने दौड़ती हैं, टेलीफ़ोन पर घुड़कती हैं श्रौर बाज़ार में मछेरियों की तरह भिकभिक करती हैं।

श्रौर ज़ेको श्रपने से पूछता : समाज में ऐसा क्या कारण है जिसने इन युवतियों को इतनी जल्दी तिक्त, नीरस घरैतिन बना दिया जिसके दिल में दया श्रौर दिमाग़ में श्रक़्ल नहीं; ज़बान में ज़हर श्रौर नज़रों में श्रविश्वास है—संक्षेप में वह सब है जो सुशीलता श्रौर सुन्दरता का काल है। निश्चय ही वह कारण बीमारी नहीं है, क्योंकि विकृत भले ही हो ये स्त्रियाँ श्रपने पीड़ितों से कहीं श्रधिक उम्र पाती श्रौर बुढ़ापे का सुख भोगती हैं। ग़रीबी भी कारण नहीं है। केवल एक ही सम्भावना बच रहती है। यह एक सामाजिक श्रभिशाप है : मनुष्य के सबसे शुद्ध श्रौर स्वार्थी तत्त्व को श्रौर जीवन के सबसे हीन, तुच्छ श्रौर घटिया तत्त्व को मान्यता दी जाती है। वही कारण है। यह श्रभिशाप इस समाज-व्यवस्था की श्रौर स्त्रियों की मिथ्या शिक्षा की स्वाभाविक उपज है।

उफ़, ज़ेको के विचारों का कोई श्रंत न था। वह श्रपनी पत्नी को वर्षों से देखता चला श्राया था श्रौर वह हमेशा बाक़ी दुनिया को छा लेती रही थी जैसे कि ठीक इसी समय रसोईघर में उस वाहियात श्रौर फ़िज़ूल बहस ने उसके ध्यान का सूत्र तोड़ दिया था जो कि कुछ दिनों से उसके लिए परम श्रावश्यक हो उठा था। मार्गरीटा के सामने पड़ते ही ज़ेको की चंचल कल्पना—जिससे वह विश्व के राज्यों श्रौर युद्धों को, परिवारों श्रौर समाजतंत्रों को, श्रपने ढंग से जोड़ता श्रौर तोड़ता था—भीड़ में छोटे-से श्रादमी की तरह खो जाती।

श्रौर श्रंततः जब उसने मार्गरीटा का स्वर ही नहीं उसका श्रस्तित्व भी श्रपने जीवन से निकाल बाहर किया तो उसने श्रपने से पूछा कि इस समाज में इतने सारे लोग निरुद्देश्य-निसम्मान क्यों जीते हैं। क्यों वे एक दूसरे को जीवन में ठगते श्रौर निदराते हैं श्रौर युद्ध में नोचते श्रौर खाते हैं ?

इन प्रश्नों का उत्तर ज़ेको को नहीं मिला श्रौर उसकी समझ में श्राया कि एक निर्जन चबूतरे पर बैठे श्रादमी को जवाब मिलना श्रसम्भव है वैसे ही जैसे कि कुछ समय पहले सावा से किनारे श्रकेले पड़े रहने पर श्रसम्भव सिद्ध हुश्रा था। किन्तु ज़ेको इन प्रश्नों को टाल भी नहीं पाया। उलझे प्रश्नों श्रौर मार्गरीटा की

बोली के बीच वैषम्य दिन-प्रति दिन तीखा होता गया और ज़ेको ने घर छोड़कर टालसटाय मार्ग की शरण लेना शुरू कर दिया।

वास्तव में ज़ेको के उग्र विस्फोट और अनन्तर बीमारी का एक ठोस योग-दान तो यह हुआ कि उससे बहुधा टापचाइडर जाने से मार्गरीटा का विरोध कम हो गया; यही नहीं वह स्वयं ज़ेको को वहाँ भेजती ताकि उसका 'भेजा' शांति और हरियाली में रह कर ठंडा हो जाये। परन्तु वास्तव में वह भेजती उसे इस-लिए थी कि वह फिर कहीं चबूतरे पर दिखायी न दे। यह ख़तरा बराबर उसे बना रहता।

और ज़ेको जाता।

पहली बार जब बीमारी से उठ कर वह टालसटाय मार्ग गया तो येलित्सा उससे कुछ और दिल खोल कर मिली और ऐसे बोली जैसे बहुत समय से नहीं बोली थी। बात करते हुए वह रह-रह कर आँखें झपकाती मानो तेज़ धूप में कहीं दूर की कोई चीज़ वह पहचानने की कोशिश कर रही हो।

ज़ेको विस्मित और प्रसन्न था।

और फ़िलिप ने आकर अल्हड़पन से उससे हाथ मिलाया।

किन्तु दूसरे ही दिन वे संक्षिप्त-सा नमस्कार करके ही रह गये—या शायद ज़ेको को ऐसा लगा ही था। जो हो, ज़ेको को यह स्पष्ट रूप से मालूम हो गया था कि पहाड़ पर खड़े इस छोटे-से घर में उसकी जगह है और यदि कोई हल कहीं है तो वह उसे यहीं ढूँढ निकालेगा। और वह अक्सर टापचाइडर पहाड़ी जाया करता और मारिया और डोरोश और बच्चों से बातें किया करता। वह उन्हें पसंद ही नहीं करता था उन्हें समझने भी लगा था

६

यह दावा सोलह आने सही नहीं है कि १६४१ और १६४४ के मध्य बेलग-राद 'यूरोप का सबसे अभागा नगर' था, परन्तु सच यह है कि उसमें बेमि-

साल पाप श्रौर नीचता मिलती थी श्रौर साथ ही मिलती थी उतनी ही महानता श्रौर उतनी ही सहिष्णुता । ये सब टाल्सटाय मार्ग वाले मकान के हिस्से में भी पड़ी थी ।

स्वभाव से सदाशय, इंजीनियर डोरोश श्रधिकाधिक श्रात्म-लीन होते गये थे। वह तेज़ी से बूढ़े होते जा रहे थे मानो उनका विशाल शरीर संसार पर घटित श्रत्याचारों की मार सह रहा हो ।

मारिया नहीं बदली थी, हाँ, उसकी दृष्टि शायद श्रब पहले से श्रधिक श्रस्थिर हो गयी थी श्रौर उस घनीभूत श्राकुल श्राशंका की झलक देती थी जिसका कारण केवल वही श्रपने मन में जानती थी ।

श्रौर बच्चे घर की सबसे बड़ी पहेली श्रौर सबसे महत्त्वपूर्ण लोग बन गये थे ।

फ़िलिप क़ानून के दूसरे वर्ष में पढ़ रहा था; वह पिता की तरह शान्त श्रौर माँ की तरह धुनी श्रौर उद्यमी था । विश्वविद्यालय में पढ़ाई हो नहीं रही थी इससे वह घर पर रहता श्रौर हर समय कुछ ऐसे काम में व्यस्त दीखता जिसका जहाँ तक ज़ेको की श्रक़्ल काम करती, न तो रूप ही स्पष्ट था न परिणाम ही प्रकट था । येलित्सा बढ़कर भरी-पूरी लड़की बन गयी थी, बहुत लंबी न थी; उसने हाई स्कूल पास कर लिया था श्रौर श्रब उसे 'कोई काम न था' हालाँ कि भाई की तरह वह भी सारे दिन व्यस्त रहा करती थी । तीन वर्ष पूर्व उसके स्वभाव श्रौर श्राचरण में जो परुष श्रौर निषेध श्रकस्मात् प्रकट हुश्रा था वह मृदु हो श्राया, फिर लुप्त हो गया । श्रब वह बात करती तो मुख पर मुस्कान श्रा जाती, पर यह एक सुरक्षित मन की नयी मुस्कान थी, उसकी श्राँखों में स्नेह था, उसकी चाल-ढाल कुछ श्रौर सहज थी ।

दानित्सा भी बड़ी हो गयी थी श्रौर श्रब वह नाज़ुक नख़रे वाली बिटिया नहीं रह गयी थी जिसे बेलगराद स्कूल के नाम से बुख़ार श्राता था । ड्रागान छोटा ही था—साँवला श्रौर चंचल श्रौर श्रपनी माँ पर पड़ा था । स्कूल बंद थे इसलिए उसका बचपन कुछ श्रजब क़िस्म से गुज़र रहा था । जब उसकी माँ श्रौर बहनें उसको कह-सुनकर पढ़ने बिठातीं तो वह कुढ़कर श्रपने से पूछता, यह कैसा ज़माना है कि 'स्कूल नहीं है मगर पढ़ाई स्कूल से भी सख़्त हो रही है ।'

घर में श्राने-जाने वाले बच्चों की संख्या बढ़ गयी । रोज़ाना श्राने वालों में था क़ानून का विद्यार्थी सिनिशा नामक एक लड़का । शरीर से दुबला, लम्बा श्रौर श्राँख

से कमज़ोर —इसके लम्बोतरे चेहरे पह हमेशा एक प्रौढ़ दृढ़ भाव रहता। अन्य एक क़ानून का विद्यार्थी जो अक्सर आता-जाता था चुकारितसा के एक लोहार का धर्मपुत्र था। उसका नाम था मिलान मगर उसके फ़ुटबाल खेलने की उम्र में कभी उसका नाम 'रिज़र्वा' (फ़ालतू) पड़ चुका था और अब यही नाम उसके गले मढ़ गया था।

और भी नवयुवक आते थे; कुछ विद्यार्थी थे, कुछ को देखने से लगता था कि श्रमिक हैं। परन्तु वे ज़्यादा देर के लिए नहीं, बहुधा दरवाज़े तक ही आते थे और परिवार से कभी उनका परिचय नहीं हुआ।

आक्रमण के वर्ष के पहले ग्रीष्म में ज़ेको ने बच्चों से अपना संबंध नये सिरे से स्थापित किया। इन तरुणों और उस वयोवृद्ध के बीच संबंध कहीं कम, कहीं अधिक घनिष्ठ था परंतु वह निरंतर बढ़ा और विकसित हुआ।

वे साथ-साथ कोठे पर जाकर रेडियो सुनते और विदेशी स्टेशन लगाते हुए आवश्यक सावधानी बरतते। किंतु बच्चे ज़ेको के सामने ज़्यादा बोलते नहीं थे। रेडियो मास्को सुनने के बाद फ़िलिप और रिज़र्वा में दो-चार बातें होतीं। ज़ेको चुप ही रहता। खबरें खत्म होते ही वह बाग़ में या रसोईघर में मारिया के पास पहुँच जाता और उसे थोड़े में बताता कि मोर्चे पर और दुनिया में क्या हो रहा है। होते-करते यह एक नियम ही बन गया। लेकिन डोरोश इतना सतर्क और भीरु था कि उसने ब्योरा छोड़कर संक्षेप में इतना ही सुनने की इच्छा प्रकट की कि 'हमारी जीत हो रही है या हार', बस। फिर तो यह तरीक़ा बन गया कि उसे हर बार यही बताया जाता कि 'सब ठीक है'।

डोरोश अपनी पतली-लंबी बाँहें सर से ऊँची उठा लेता जिसका मतलब था कि वह भी 'अपने लोगों की' जीत चाहता है परंतु मुसीबत में पड़ने से अब भी डरता है।

महीने, दिन, रातें, घंटे और मिनट बीतते गये, सब अपने में अनंत और असह्य। ज़ेको का अधिक से अधिक समय टापचाइडर में और कम से कम उस मकान में बीतने लगा जिसे वह अपना कहता था। वास्तव में, समय बीतने के साथ-साथ, ज़ेको को इस घर में ऐसा लगने लगा कि वह घर में है और अपने घर में ऐसा कि वह कोई मेहमान है। जैसे-जैसे ज़माना और बिगड़ा ज़ेको की दोस्ती बच्चों से और भी घनी हुई।

कोठे पर रेडियो सुनने जाते हुए ज़ेको के कान में अक्सर उनकी बहस के कुछ अंतिम शब्द पड़ जाते या कोई मज़ाक़ या कोई हवाला ऐसा सुनाई पड़ जाता जिसे वह समझ न पाता। उसके सामने कोई बात खुलकर नहीं होती थी पर अब उससे पहले की अपेक्षा कम छिपाया जाता था।

एक बार फ़िलिप ने बहस के दौरान हँसकर कहा : "चिंता नहीं, ज़ेको चाचा से हम खुलकर बोल सकते हैं···"

इन शब्दों ने ज़ेको में एक उदात्त और अभिनव सुख का संचार किया।

मारिया से वार्तालाप में ज़ेको अक्सर बच्चों का ज़िक्र ले आता परंतु, मारिया उनकी गतिविधि और योजनाओं पर कभी कुछ न बोलती। हाँ, किसी बच्चे का नाम आने पर ज़रा-सा सिर उठाकर बैठ जाती मानो अच्छी तरह सुन पाना चाहती हो। बस। और ज़ेको उसे बताने को व्यग्र हो उठता कि वह इन नौजवानों को कितना चाहता और मानता है, कि जिससे इन्हें घृणा है उसीसे उसे भी कितनी घृणा है, कि जो इन्हें प्रिय है वही उसे भी प्रिय है और यह कि वह उनके प्रति चिंतित है, उनकी सहायता करना चाहता है—जानता नहीं कैसे करेगा—हाँ, कुछ ऐसा है जो शायद ये कर न पायेंगे या जानते नहीं कैसे कर पायेंगे, वह चाहता है इनकी बला अपने ऊपर ले ले या···उफ़, जब वह अपनी भावनाएँ ढंग से एकत्र भी नहीं कर सकता तो उन्हें अभिव्यक्त कैसे करे?

समय के इस अमानुषिक किंतु संकल्पमय दौर ने ज़ेको को वह दे दिया जो बंजर जीवन के कई दशक नहीं दे सके थे। इसने जीवन में गति भर कर वह काम पूरा कर दिया जो ज़ेको ने स्वयं कई वर्ष हुए सावा के किनारे आरम्भ किया था। बहुत-सी बातों का बोध उसे कुछ समय पूर्व हो चुका था परंतु यह उसने इसी वर्ष जाना कि उसका जीवन कितना निष्पौरुष रहा है और मनुष्य के कितने कम दायित्व उसने निबाहे हैं। इस युद्ध में मोर्चे सभी जगह थे : रण में थे ही, संपूर्ण समाज में थे, उस घर में थे, जिसमें वह रहता था, और उसके अंतरतम में थे। इस द्वैत के सामने पड़ने पर निर्णय करना कठिन न रह गया। परन्तु उसे यह कहीं अधिक स्पष्ट था कि वह किसके विरुद्ध है, यह उतना नहीं कि किसके पक्ष में है। वह घटनाओं पर विचार करना ही नहीं, उन पर कुछ असर डालना, कोई ऐसा काम करना चाहता था जिसमें उसका कुछ उपयोग हो, जो किसी सार्थक दिशा में ले जाये। उसे बोध हुआ कि छिट-पुट विद्रोह, चाहे पिछले

गर्मियों के तेराज़िए फाँसी कांड के पहले वाले विस्फोट जैसे उग्र ही क्यों न हों, निजी यत्रंणा और व्यर्थ छटपटाहट से अधिक कुछ नहीं हैं। उसने जाना कि उस बोध का प्रतिफल होना चाहिए कर्म और कर्म का होना चाहिए एक सुनिश्चित लक्ष्य, कि साहस तभी साहस है जब उसका कोई उद्देश्य हो और यह कि साहस का वास्तविक महत्त्व और अर्थ निश्चित होगा उस कर्म से जिसके लिए साहस उद्दिष्ट हो।

संकल्प और निर्णय उस व्यक्ति के लिए बहुत आसान न था जिसने इतने दिन तक जीवन में जो पाया हो, कुढ कर, खीझकर वैसे ही स्वीकार किया हो। परंतु युद्ध का ताप सबको कुछ और जल्दी पुष्पित, परिपक्व और फलीभूत करता है। ज़ेको अपना भविष्य बच्चों की, उन नौजवानों की आँखों से देखने लगा जो उसके लड़के की उम्र के थे। पर इसमें बुरा क्या था ? इस समय तो सबसे पहले उसे सदा के लिए अपने पतित निष्फल जीवन से निष्कृत होकर पुरुष की तरह खड़े होना और जीना चाहिए था।

ज़ेको मारिया से बहुत कुछ बताना चाहता था क्योंकि वह उसके इतने क़रीब थी। पर वह कभी कुछ बता न पाया क्योंकि जब भी वह कुछ कहनाशुरू करता, वह झेंप कर अटक जाता—क्योंकि यह मानव-मन की एक विचित्रता है कि बहुधा लोग अपने भीतर के सुंदरतम को प्रकट करते झिझकते हैं। तो भी ज़ेको की अभिव्यक्ति संपूर्ण हो जाती थी चाहे अटपटे अधूरे संकेतों से ही हो, क्योंकि खुद कम बोलनेवाली मारिया में एक असामान्य गुण था : वह दूसरे को सुनना और समझना जानती थी।

अपने को सदा असफल और ग़लतफ़हमी का शिकार समझनेवाला, अपने में असंगत, दूसरों के लिए दुरूह, ज़ेको समय पा कर विशद और सुगम हो गया और इस तरह उनके और निकट आ गया जिनका हित वह सबसे अधिक चाहता था। १९४२ के वसंत में ज़ेको बच्चों के काम में हाथ बटाने लगा पर उसने यह कभी न पूछा कि उनका उद्देश्य क्या है, या काम कितना है या यही कि उससे अन्त में होगा क्या।

स्वेतोसाव्स्का मार्ग पर अपने पेंशनयाफ़्ता स्कूल-अध्यक्ष पिता के साथ रहने वाले सिनिशा से उसकी जान-पहचान कुछ और बढ़ी। निस्संदेह सिनिशा इन सब 'बच्चों' का, और शायद किसी अधिक बड़े दल का भी नेता था परंतु उसकी

गतिविधि की ख़बर दूसरों से कुछ मालूम नहीं हो सकती थी और खुद वह कुछ बताता न था।

दुबला और लम्बा, वह असाधारण रूप से विनम्र और सौम्य था, हमेशा ऐसा दीखता जैसे अभी आया हो और अभी जा रहा हो। और ज़ेको की नज़र में सिनिशा का हर काम आकस्मिक होता। उसकी हरी मंददृष्टि आँखें प्राय: झुकी रहतीं और वह किसी को देखता तो मानो आँख से नहीं संपूर्ण शरीर से देखता; और वह सब कुछ देख लेता, बल्कि कहना चाहिए, जान लेता जो वह जानना चाहता हो। वह जितने आहिस्ते उठता-बैठता था उतने ही आहिस्ते बोलता भी था मानो शब्दों को महत्त्व न दे रहा है और मानो जो कह रहा है वह अभी उसके मन में आया है : और उसका व्यवहार कुछ ऐसे व्यंग्य से मंडित था कि ज़ेको को तनिक घबराहट होती पर यही उसे बहुत अधिक आकृष्ट भी करता।

इसीलिए जब अंततः उसने ज़ेको का अहसान लेना ठीक समझा तो हस्ब-मामूल कह दिया :

"ज़ेको चाचा, अगर आप राज़ी हों तो…और अगर आपको दिक़्क़त न हो तो…"

और ज़ेको ने कहा, "यह सोचना ही ग़लत है कि मुझे दिक़्क़त होगी।

ज़ेको का ख़ुशख़त यहाँ काम का साबित हुआ। वह कमाल के साथ पहचान-पत्रों और प्रमाण-पत्रों के हस्ताक्षरों और दस्तावेज़ों की नक़ल करने लगा और यह काम भी उसने अपनी स्वाभाविक निष्ठा और धीरज से किया।

उसने लग्गा लगाया उन प्रमाण-पत्रों से जिन्हें दिखाकर लोग अनिवार्य कार्य से मुक्ति पाया करते थे। जब समझौता-सरकार ने यह कार्यक्रम आयोजित किया तो नवयुवकों के इससे छूट निकलने के उपाय आविष्कृत किये गये। वितोल्स्का मार्ग पर केन्द्रीय दमकल घर में जहाँ भरती होती थी, शरीर-परीक्षा के लिए लोगों की लंबी क़तारें लगी रहतीं। कुछ ही दिन में पता चल गया कि स्वस्थ शरीर के कोरे प्रमाणप-त्रक परीक्षकों की मेज़ों पर से उड़ाये जा सकते हैं। इन पत्रकों में युवकों के नाम भर दिये गये कि वे इन्हें लेकर बेखटके शहर में आयें-जायें और श्रमकार्य-दस्तावेज़ के बिना घूमने वाले लड़कों की टोह में लगी पुलिस उनका कुछ बिगाड़ न सके।

सिनिशा की पहली सेवा ज़ेको ने इन्हीं पत्रकों में मुख्य परीक्षक और वैद्य के मूल हस्ताक्षर उतार कर की।

इस प्रकार का पहला काम करते हुए ज़रा देर को ज़ेको ने क़लम रख दिया और अविचल विचारमग्न जाली दस्तावेज़ को निहारता बैठा रह गया। उसने अपने हाथ को निरखा मानो उसने हाथ को पहली मर्तबा देखा हो जो जाने कितने वर्ष से और कितना निरुद्देश्य लिखता और आँकता चला आ रहा है। आज इस तरह बैठ कर इस ज़रा-से काम में हाथ बझाना कितना सुखद है; जब तक दम है तब तक वह ऐसी चाहे कितनी शुद्ध और श्रेष्ठ जालसाज़ियाँ करता रह सकता है।

यों ज़ेको ने शुरुआत की और फिर उसने अन्य कई तरह के दस्तावेज़ों की नक़लें कीं और नोक-पलक सुधारी जो इंजीनियर के घर से भाँति-भाँति से चुरा लाये जाते थे और एक सिरे से बदल कर पक्की मोहर और हस्ताक्षर सहित वापस ले जाये जाते थे। इन दस्तावेज़ों की संख्या ही से ज़ेको को अन्दाज़ा मिल गया कि एक ही उद्देश्य को समर्पित व्यक्तियों की संख्या कितनी बड़ी थी।

अनंतर ज़ेको को और काम सौंपे गये। शक्ल-सूरत से वह शरीफ़-भला नागरिक था ही, उसे चीज़ें और चिट्ठियाँ पहुँचाने का काम अक्सर दिया जा सकता था। उसके घर में जो टेलीफ़ोन मार्गरीटा के नाम से लगा था, ख़बरें और संदेश देने के काम आता।

ये काम कितने ही छोटे और अकिंचन क्यों न रहे हों, ज़ेको के लिए बड़े गौरव के थे क्योंकि इनसे उसे बोध होता था कि वह जीवित है, सही दिशा में अग्रसर है, कुछ कर रहा है और किसी काम आ रहा है। यह सावा की तरह न था, जहाँ उसे कप्तान माइका की मित्रता मिली थी और जहाँ उसने जावन को जीवन की तमाम समस्याओं सहित वैसा ही पाया था जैसा वह है। और यह उसकी चौतरिया भी नहीं थी जहाँ से उसने छूछे विद्रोह के नारे बुलंद किये थे और जहाँ घंटों उन मसलों पर चिंतन में मग्न रहा था जिनका ज़िंदगी से कोई ख़ास मतलब नहीं।

ज़ेको का मन शांति और स्वाभिमान से भर गया यद्यपि न यह शांति अवि-कल थी न वह स्वाभिमान निस्संशय था।

टालसटाय मार्ग से पहाड़ी उतरते हुए, नगर के अँधेरे और आकाश के

बड़े-बड़े उजले तारों को निहारते हुए, जो चेसनट की हिलती डालियों में से ऐसे झलकते मानो हवा में लौक रहे हों, वह बहुधा शंका और कायरता से विह्वल हो उठता : वही तुच्छता, नगण्यता की पुरानी विश्रृंखल भावना जो कभी-कभी सम्पूर्ण निस्सहायता और निराशा का रूप धर लिया करती थी।

तब उसे याद आता कि कभी-कभी उसके आते ही कमरे में बच्चे और मारिया तक मौन से उसका स्वागत करते हैं, बातचीत थम जाती है और सिनिशा की आँखों में रूखा उपहास झलकता है।

इनकी याद से उसका अहं चोट खा जाता जैसा कि उस वक्त होता है जब किसी का मन टूटा हुआ होता है : उसे लगता कि वह कभी इनका अपना नहीं हो सकता, कि वह कोई नहीं और कुछ नहीं है जो कि वह हमेशा रहा है, एक निरुद्देश्य व्यक्ति जिसके लिए समाज में कहीं स्थान नहीं क्यों कि वह समाज के तकाज़े पूरे नहीं कर सकता, क्यों कि उसमें अपनी सदाशयता को साकार करने योग्य न आत्मबल है न चरित्र है।

उसे भय लगता; पुलिस का उतना नहीं जितना असाधारण का, गति का और परिवर्तन का भय। भय के क्षण में व्याकुल प्रश्नों का अनवरत क्रम आरम्भ हो जाता। ये जो कुछ कर रहे हैं, क्या है वह ? क्या यह कोई फुटकर युवा-हलचल है जिसके पीछे वास्तव में कोई है नहीं ? वे चाहते क्या हैं ? वे जा किधर रहे हैं ?

इन प्रश्नों का उत्तर वह सब समय नहीं दे पाता तो भी वह जानता था कि जो भी हो वह उनके साथ है। और वह समझता था कि इस प्रकार के काम में यदि कोई सभी शंकाएँ निवारित होने की प्रतीक्षा करने लगे तो बहुत लम्बी प्रतीक्षा करनी होगी।

किन्तु ऐसी भी शामें आतीं जब शहर लौटते हुए उसमें एक अस्पष्ट किंतु दुर्दम आत्मविश्वास जाग उठता : वह एक अच्छे काम में लगा कार्यकर्त्ता था, मित्रों के बीच एक उपयोगी मित्र था और इन बच्चों से ही नहीं उन सबसे संपृक्त था जो उनके पीछे अदृश्य खड़े थे।

मौसम बदलते रहे और पहाड़ी पर उजाला घटता-बढ़ता रहा और उसे ऐसे विविध द्वन्द्व मन में लिये बेलगराद के उत्तरी आकाश के उसी तारापुंज पर दृष्टि ज़माये पहाड़ी से उतर कर बार-बार नीचे आते हुए सप्ताह, मास और

वर्ष बीत गये। और जैसे-जैसे वर्ष बीतते गये, क्लांति और शंका के क्षण भी विरल होते गये। साथ ही साथ उसे विश्व-घटनाओं का और अपने कार्य से उनके संबंध का परिचय गहरा होता गया और उसे अपने निज की और मनो-भावों की चिन्ता उतनी नहीं रह गयी। वह अँधेरे शहर के छिटपुट दूधिया उजालों को देखता और ऊपर जगमगाते आकाश को निहारता जिसमें सप्तर्षि नन्हे-नन्हे तारकों के समूह के मध्य ऊर्ध्व में भुजा उठाये खड़े थे।

लोग कुछ कर रहे हैं, ज़ेको अपने से कहता : वह उनमें से कुछ को जानता है और उनका हाथ बँटा रहा है। यह विचार उसे एक नयी तुष्टि देता और वह उसी को लिये सो जाता और गहरी नींद सोता।

यह निराकुलता अखंडित नहीं रहने वाली थी।

१६४२ के ग्रीष्म में फ़िलिप बेलगराद के आसपास कहीं लापता हो गया। वह कंधे पर थैला डाले पड़ोस के गाँवों में 'भोजन की खोज़ में', जैसा कि उन दिनों श्लेष में कहा जाता था, जाया करता था। एक बार वह गया तो लौट कर नहीं आया। शीघ्र ही विशेष पुलिस के कारिंदे के साथ डोरोश के घर आकर दो सिपाहियों ने खानातलाशी ली। कारिंदे ने घुड़क कर कहा कि वह ऐसे 'लापता' होने का मतलब खूब जानता है, कि इस घर पर दलगत गतिविधि की तह-कीक़ात के लिए नज़र रखी जायेगी और माँ-बाप लड़के के ज़िम्मेदार होंगे। वे रात के दो बजे आये, दोबारा आये और एक बार फिर तलाशी ले गये। किंतु फिर कुछ नहीं हुआ।

ज़ेको ने कभी नहीं पूछा कि फ़िलिप को क्या हुआ या कि वह कहाँ गया। मारिया ने इसका ज़िक्र नहीं छेड़ा और बच्चे वैसे ही रहते रहे जैसे थे, परन्तु उनके मित्र कुछ और सावधानी से और कम आने-जाने लगे। उनका 'स्वतंत्र युगोस्लाविया' रेडियो सुनना और ज़ेको की 'सेवा' करना जारी रहा। 'सामग्री' अब डोरोश के मकान में नहीं बल्कि सड़क से कुछ उतर कर एक काठ की झोंपड़ी में तैयार की जाने लगी जहाँ एक बुढ़िया रहती थी। पड़ोस के दो अंगूरबाग़ और उनके बीच की बाड़ की वस्तुतः अदृश्य फाँकों से होकर इस झोपड़ी में चुपचाप टालसटाय मार्ग से किसी के देखे बिना आया जा सकता था।

दूसरा अड्डा था रिज़र्वा के धर्मपिता का मकान, परन्तु ज़ेको वहाँ कम ही

भेजा जाता था और जब जाता भी था तो घर में प्रवेश नहीं करता था, नीचे के कारख़ाने में ही जाता था।

ज़ेको को एक और अड्डे का पता था; सुना-सुनाया; वह सावा के तट पर एक गोदामघर में था। इस संपर्क-सूत्र का रखवाला था चिट्टे बालों वाला, उज़ित्से के आसपास का निवासी वूल नामक एक फुरतीला नवयुवक; हमेशा मुस्कुराने वाला वह उतावला दिखता, सरपट बोलता और तेज़ चलता। ज़ेको को वह भला किन्तु कुछ भयंकर भी लगता और जब भी वह मिलता ज़ेको सोचता : यह उन लोगों में से है जो न अपने को बख़्शते हैं न किसी और को।

इस प्रकार टाल्सटाय मार्ग का मकान 'छुट्टी' पा गया और जैसा ज़ेको ने समझा पुलिस उसे एक वर्ष तक भूले रही। किन्तु अगले नवंबर में उस घर और ज़ेको दोनों को एक करारा झटका लगा।

एक दिन सवेरे दानित्सा ने किसी पड़ोसी के घर से ज़ेको को फ़ोन किया और उससे टाल्सटाय मार्ग पर आने को कहा। जब वह पहुँचा तो घर में उथल-पुथल हुई पड़ी थी। पहले दानित्सा ने ही बताया, "वे लोग येलित्सा को कल रात ले गये।"

ज़ेको को लगा जैसे सब कुछ अकस्मात् जड़ होकर जम गया है; हवा, समय, आवाज़ें और ख़ून, सब कुछ। क्या कहा जा रहा है, वह कुछ सुन ही नहीं पा रहा था।

तीन जर्मन और विशेष पुलिस का एक कारिन्दा तीन बजे रात को आये थे और उन्होंने मकान की तलाशी ली थी और येलित्सा से तैयार हो जाने को कहा था। उन्होंने टेलीफ़ोन का तार काट दिया, टेलीफ़ोन और कोठे से रेडियो भी साथ ले गये। अलबत्ता उन्होंने घर वालों को येलित्सा के लिए कुछ कपड़े और खाने की एक पोटली बाँध देने दी।

येलित्सा ने हरेक को चूमा मानो स्टेशन जा रही हो, और गेस्टापो की मोटर में बैठ गयी। उसमें असाधारण रूप से तेज़ रोशनी वाली बत्तियाँ लगी थीं और चालक की सीट के बग़ल में एक चोरबत्ती भी थी।

ज़ेको ने घर का मुआयना किया जिसमें तलाशी के प्रमाण स्पष्ट दिख रहे थे। वह उस चौकी के पास ठहरा जिस पर रेडियो रहता था और जिस कोने में टेलीफ़ोन रहता था वहाँ उसने वह तार देखा जो पिलास से धर के काट दिया

गया था। ज़ेको इन चीज़ों को इतने ग़ौर से देख रहा था जैसे जो कुछ हुआ है उसका अर्थ इन्हीं में कहीं दिखाई दे जायेगा।

वह सिनिशा को कुछ संदेसे देने घर से बाहर निकल गया। आख़िरकार शाम हुई और घर में अकेले उसने इस घटना के आतंक से साक्षात् करके एक ऐसी पीड़ा अनुभव की जो उसने कभी जानी नहीं थी। "वे उस बच्ची को ले गये हैं" वह अपने से निस्तेज यंत्रवत् बार-बार कहता रहा और उसके भीतर एक दर्द घुमड़-घुमड़ कर ऐसी व्यथा उपजाता रहा जो उसके जीवन भर झेले तमाम कष्टों से भिन्न थी।

कई दिन तक उसे न भूख लगी न नींद आयी और उसने देखा कि मार्गरीटा और टिगार के प्रति उसकी जुगुप्सा मानो साकार हो उठी है। सिनिशा ने उसे होशियार कर दिया था कि टालसटाय मार्ग पर जो कुछ देखा या सुना था उसे कहीं प्रकट न करे किन्तु यह चेतावनी अनावश्यक ही थी क्योंकि वह यों भी न करता।

उसे उस दिन की याद ही न रह गयी थी जब उसने मार्गरीटा के शब्दों पर ध्यान दिया था और अपने व्यवहार पर उसकी प्रतिक्रिया जानने को उसके चेहरे की ओर निहारा था। अब उसके लिए सब कुछ का मापदंड था युद्ध, या ठीक-ठीक कहें तो वह युद्ध जो बेलगराद के इस आश्चर्यजनक रूप से छोटे मगर महत्त्वपूर्ण अंश—टालसटाय मार्ग के बच्चों की आँखों से दीखता था। और पिछले कुछ दिनों में तो उसके सब विचार सिमट कर येलित्सा और उसके भविष्य तक सीमित रह गये थे।

ज़ेको को मति-विभ्रम होने लगा। उसे येलित्सा का स्वर सुन पड़ता; वह नींद से जाग कर उठ बैठता और उसके दिल में वही आशंसा, वही स्नेह होता जो इस लड़की के प्रति उसने सदा सहेजा था। 'ठोस आदमी है', 'स' के उच्चारण में दाँत भींचकर येलित्सा ने कहा था, आधी रात को ऐसे वाक्य बार-बार ज़ेको को याद आते और तुरन्त एक टीस उठती।

"साथी लड़ रहे हैं" न जाने कितनी बार 'लड़ाई' शब्द उसके भीतर गूँज कर उसे आमूल हिला चुका था। उसने यह शब्द वैसे ही सुना जैसे येलित्सा उसे सहज और गम्भीर स्वर से बच्चों की तरह बोलती थी—अगर अपनी शक्ति की इतनी चेतना होने पर भी कोई बच्चा कहला सकता है, तो! उसके मुँह

से यह शब्द सुनकर ज़ेको ने उसका अर्थ पा लिया। यह अभिवृद्ध हुआ ज़ेको की इस कल्पना से कि फ़िलिप और रिज़र्वा रेलगाड़ी में बैठे चले जा रहे हैं मानो वे बेलगराद के कोई सामान्य नागरिक की तरह खाद्य की खोज़ में निकले हों, जैसा कि वे पुलिस को बताते थे। और उसे यह सोच कर सांत्वना मिली कि वह संघर्ष के इतने निकट है।

रात को वह अचानक इस आशंका से त्रस्त होकर उठ बैठता कि शायद वे इस समय लड़की को यंत्रणा दे रहे हों: ठंड से जमे अपने शयन-घर में वह पसीना पोंछने लगता मानो उसी को यंत्रणा दी जा रही हो। ऐसा क्यों है कि यह युवती जो कम्युनिस्ट, है भली और सुन्दर है एक गन्दी अँधेरी कोठरी में, ठूँस दी जाती है, भूखी रखी जाती है और पीटी जाती है जब कि मार्गरीटाएँ और टिगार खुली धूप में घूमते-फिरते हैं, ताज़ी हवा में साँस लेते हैं और आराम की ज़िंदगी बसर करते हैं। यह निर्मम भेद ही यथेष्ट प्रमाण है कि विश्व के आज के द्वन्द्व में कौन-सा पक्ष सत्य है।

और येलित्सा की क़ैद जितनी लंबी खिचती गयी ज़ेको को उतना ही ज्ञान होता गया कि समस्या शुद्ध व्यक्ति की, लड़की और उसके माँ-बाप की समस्या नहीं है। उसके विचारों का उत्स व्यक्तियों से हटकर व्यापक मुद्दों में जा रहा था।

अपनी आत्मव्यथा में, और युद्धजन्य दुःखों में ज़ेको को टाल्सटाय मार्ग के परिवार के बीच रह कर सांत्वना मिलती, जो कि इस समय उसी की भाँति सांत्वना का भूखा था।

अब उसे मारिया के चरित्र की गहराई की थाह मिली। आँसू नहीं, छटपटाहट नहीं, फ़िज़ूल के शब्द नहीं। उसके पीले चेहरे का रंग कुछ और पक आया और आँखें पहले से ज़्यादा खोयी-खोयी रहने लगीं—बस येलित्सा का नाम सुनकर वह चौंक पड़ती।

परन्तु सबसे बड़ा आश्चर्य तो यह था कि ऐसे मौक़ों पर वह विनम्र, भीम, डोरोश अत्यंत शालीनता और तत्काल बुद्धि से काम लेता।

दानित्सा ने भी साहस का परिचय दिया, उसके भाई ड्रागान ने भी, जो अपने चारों ओर की सब चीज़ों को अपनी काली आँखों से निहारता रहता था—वे उसकी माँ को पड़ी थी। ये दोनों सहमे हुए और गम्भीर दीखते थे।

वे सब येलित्सा की गिरफ़्तारी से बहुत घबरा गये थे परन्तु मानो सबमें समझौता था कि रत्ती भर कमज़ोरी नहीं दिखायेंगे। और यही उस लड़की से उन्हें जोड़े हुए था जिसे वे इतना प्यार करते थे और जिसके लिए वे दुःखी थे।

वे येलित्सा की बात तभी करते जब बहुत जरूरी होता और वह भी काम की बात होती। सप्ताह में एक बार वे उसके लिए खाने और धुले कपड़े की पोटली बाँध देते। डोरोश और बच्चों का ज़िम्मा था कि खाना तैयार रहे परन्तु, पोटली बाँधना और पहुँचाना मारिया का काम था और वह इसमें कोई दूसरा हाथ नहीं लगने देती थी। यह काम उसने ख़ास तौर से अपने सिर लिया था और बिलकुल अपने हाथों से ही वह उसे करना चाहती थी ठीक वैसे ही जैसे कभी उसने अपने शरीर से ही येलित्सा को जना था और अपने स्तनों से ही दूध पिलाया था। बच्चे पोटली लाद कर बानित्सा के बंदी-शिविर तक ले जाने में उसका साथ देते : एक-दो बार कभी मौसम बेहद ठंडा हुआ तो उसने ज़ेको को भी साथ आने दिया था।

सर्दियाँ तेज़ हवा और कड़ाके का जाड़ा लेकर आयीं। मारिया छोटे-छोटे मगर सधे हुए डग भरती चल रही थी, अपना काला दुशाला उसने एक ओर से लपेट लिया था कि हवा से बच सके और वह हवा के मुक़ाबले तन गयी थी। बग़ल में ज़ेको लाल रंग का थर्मस और सेब की टोकरी लिये चल रहा था और मारिया ने खाने की पोटली अपने हाथ में रखी थी। ज़ेको के पाँव से बड़े बूट बरफ़ पर फिसल जाते, उसकी पदचाप से एक खोखली गूँज उठती और वह मानो मारिया के क़दमों की नपी-तुली-सधी लय पर ताल देती चलती।

ज़ेको बतकही शुरू करना चाहता, पर बेकार। उसके शब्द फ़ौरन तेज हवा में खो जाते और मारिया पहले कुछ बतलाती भी पर फिर सन्नाटा खींच जाती। यह स्पष्ट था कि बानित्सा के रास्ते में उसका मन बोलने को नहीं करता था। ज़ेको अपने को फ़ालतू और उलझा हुआ पाता।

बानित्सा से कुछ दूर रह जाने पर उन्हें उसका बड़ा-सा फाटक और उसके सामने लम्बी क़तारों में लोग, अधिकांश में औरतें, पोटलियाँ लिये इंतज़ार करते दिखाई दिये। वे सर्दी के मारे पाँव पटकते और मुट्ठी में फूंक मारते थे और अपने बंडल और डब्बे कभी इधर कभी उधर रख-उठा रहे थे।

मारिया ने ज़ेको से थर्मस ले लिया, उसे धन्यवाद किया और कहा कि घर

जाये। वह पल भर ठिठका, पर मारिया ने कड़े स्वर में आदेश की तरह अपना कथन दोहरा दिया। उसने पोटली सँभाली और निःशब्द आगे बढ़ गयी। वह एक क्षण निश्चल खड़ा रह गया।

बड़ा फाटक बंद था और उसके दोनों पार्श्व में छोटे-सँकरे सींखचेदार दरवाज़े थे और उनके बग़ल में गारद के लिए ताकें बनी थीं। इन दरवाज़ों के आगे दो लंबी पंक्तियाँ खड़ी थीं। दाहिने हाथ के दरवाज़े के आगे की पंक्ति ज़्यादा लम्बी थी, और सड़क के पार तक चली गयी थी। मारिया इसी में खड़ी हो गयी।

पोटलियों की जाँच और स्वीकृति अभी आरम्भ नहीं हुई थी।

दर्द भरी उलझन लिए ज़ेको आखिरकार इस दृश्य से अपने को विलग कर घर की ओर चल पड़ा। चलते-चलाते उसे बायें दरवाज़े की पंक्ति से आती हुई कुछ आवाज़ें हवा में बिखरी हुई सुनायी दीं। कुछ औरतें एक बूढ़े से झगड़ रही थीं कि उसने उनके सामने क्यों थूका। औरतें सब एक साथ बोल रही थीं और उनके शब्द पल्ले नहीं पड़ रहे थे। नाटे बूढ़े ने जिसके तन पर किसान जैसे कपड़े और निरी कालिख थी, डपट कर औरतों को जवाब दिया। केवल कुछ कड़ुवे कर्कश शब्द ज़ेको के कान तक पहुँचे, "अब तो जानो मैं ईश्वर पर थूकूँगा।"

ज़ेको पलटा और सड़क के सहारे चल दिया जो बरफ़ की सफ़ेदी से प्रायः छिप गयी थी, सिर्फ़ स्ले और गाड़ियों की लीकें उस पर ज़ख़्मों की तरह पहचान में आती थीं।

वापसी में उसके पास कोई सामान न था पर वह मारे बोझ के झुका जा रहा था मानो पंक्ति में प्रतीक्षा करते-करते लोगों की सब गठरियाँ, पोटलियाँ, पीड़ाएँ, क्लेश उसने लाद लिये हों।

जाड़ा बीत चला। फ़रवरी में वसन्त के छलावे, दखिनी बयार और वेजानिस्का कोसा पर लाल सूर्यास्त दिखायी देने लगे और मौसम गरम हो उठा।

एक दिन मारिया बानित्सा से वापस आयी तो उसके हाथ में पोटली थी। पहरेदारों ने उसे लेने से इनकार कर दिया था और यह तक नहीं बताया था कि येलित्सा कहाँ है। और पहली बार ज़ेको ने मारिया की आँखों में आँसू बल्कि आँसू नहीं आँसुओं की एक हल्की-सी झलक देखी जो पल में आयी और

पल में चली गयी।

अगली बार मारिया गयी तो उसकी पोटली ले ली गयी और फिर हर बार ले ली जाती रही मगर एक दिन उसे कोरा वापस कर दिया गया।

रेडक्रास में किसी ने मारिया को बताया कि बानित्सा से अट्ठारह औरतें एक रात रेलवे स्टेशन ले जायी गयी थीं और वहाँ से जर्मनी में किसी बंदी-शिविर को भेज दी गयीं। नाम केवल पंद्रह के मालूम हुए। येलित्सा का नाम उनमें नहीं था जिससे यह धुँधली-सी उम्मीद बनी रह गयी कि शायद उन तीन नामहीन यात्रियों में वह भी रही हो।

७

फ़रवरी में युद्ध का एक नया दौर शुरू हुआ जिसमें दिखाई दिया कि शायद मित्र विमान बेलगराद पर जल्द ही बमबारी शुरू करें और शहर में हवाई हमले से बचाव की बे-हिसाब तैयारियाँ होती नज़र आयीं। महीनों तक अखबारों में नियम छपते रहे और जनता को आवश्यक एहतियाती कार्रवाइयाँ समझायी जाती रहीं। सार्वजनिक शरणालय चौड़े किये गये; पुराने तहख़ानों की जाँच और सफ़ाई और मरम्मत होने लगी, नये तहख़ाने ख़ास तौर से जर्मनों के लिए बनने लगे। बाज़ारों में लोग काला कागज़ खरीदते दिखायी देते जिससे कि घर के शीशे मढ़ सकें क्यों कि इसका आदेश अधिकारियों ने यह कह कर दिया था कि उल्लंघन की कड़ी से कड़ी सज़ा मिलेगी।

एक दिन सिनिशा ज़ेको से यों ही पूछ बैठा कि हवाई हमला हुआ तो वह क्या करेगा। सवाल से ज़ेको चौंका।

"क्या करूँगा ? वही जो करना चाहिए।"

"तुम बेलगराद छोड़ने की तो नहीं सोच रहे ज़ेको चचा ?" सिनिशा ने अपनी मंद आँखें झुकाकर पूछा।

"नहीं," ज़ेको का जवाब था और उसने इतना और कहना चाहा : 'नहीं,

मेरी यहाँ ज़रूरत हो तो नहीं' पर वह सकुचा गया और चुप रह गया।

"यानी मुसीबत आ पड़े तब भी नहीं ?'' सिनिशा ने अपने खास व्यंग्यात्मक अंदाज़ में पूछा।

''नहीं, मैं समझता हूँ तब भी नहीं,'' ज़ेको धीरे से बोला।

''तुम बहादुर हो ज़ेको चचा।''

सिनिशा ने फ़ौरन विषय बदल दिया और कुछ हँसने-हँसाने की बातें करने लगा, इतना ही हुआ। पर ज़ेको समझ गया कि हवाई हमला होने पर उस पर कुछ ज़िम्मेदारी आ पड़ेगी और इस विचार ने उसमें एक प्रकार का स्निग्ध आत्म-संतोष भर दिया।

मार्गरीटा झाँय-झाँय करती हुई घर भर में आ-जा रही थी और हर चीज़ से टकरा रही थी, ज़ेको से और नौकरानी से और उनका नाम लेकर ऐसे पुकार रही थी जैसे उन्हें देख नहीं रही हो। वह चीज़ें तो ज़रूरी-ग़ैरज़रूरी सब इकट्ठा किये ले रही थी पर जो चिल्ला रही थी वह बिल्कुल ग़ैर-जरूरी था।

ज़ेको ने उसे शांत करने की और समझाने की कोशिश की कि ये साइरन केवल चेतावनी के हैं। किन्तु वह यह समझा ही रहा था कि साइरन फिर रम्भाया और इस बार उसने आसन्न संकट की घोषणा की। डर के मारे मार्गरीटा के होश-हवास फाख़्ता हो गये मगर ज़बान उसकी कतरनी की तरह चलती रही।

''आ गये हत्यारे, हाय ! माइकेल, मेरा बेटा, कहाँ गया माइकेल ! बकसिया की चाबी किधर गयी, फिन्का, वहाँ खड़ी क्या कर रही है ? उजबक की तरह घूरती क्या है ?''

इसी उथल-पुथल के, दौड़-भाग, चीख़-पुकार के बीच ज़ेको ने किसी तरह उस बदहवास औरत को तहख़ाने में दाखिल कर दिया। टिगार पहले से ही वहीं मौजूद था। वह टेबिल टेनिस खेल रहा था और वहीं से सीधा तहख़ाने में चला गया था। उसे न किसी व्यक्ति की चिंता हुई थी न किसी वस्तु की। उसकी माँ ने रोते-रोते उसकी तरफ़ प्यार से देखा। माँ ने उसकी पीठ पर हाथ रखना चाहा मगर उसने उसे झटक कर परे कर दिया और निश्चल, नि:शब्द अपनी ही चिंताओं में डूबा, झुका बैठा रहा। ऐसे क्षणों में टिगार से कोई कुछ करा नहीं सकता था; उसका हिलना-डुलना, बोलना-चालना, किसी को देखना तक बंद हो जाता मानो आत्म-रक्षा के लिए उसे एक-एक बूंद शक्ति

की ज़रूरत हो।

फ़रवरी और मार्च में एकाएक बिजली कटी। दो-तीन बार साइरन भी सुन पड़ा—एक लंबी खिची हुई आवाज़ जिसका मतलब 'प्रथम चेतावनी' होता था और जो छोटी-छोटी उन चीत्कारों से भिन्न थी जिन्हें लोग कुत्ते का रोना कहते थे और जिनका मतलब होता था 'आसन्न संकट।'

जैसे ही रोशनी गयी, ज़ेको के मकान में हंगामा मच गया। मार्गरीटा ने चीख़ना, पुकारना और कराहना शुरू कर दिया और वह एकदम ऊल-जलूल सवाल पूछने तथा फ़िज़ूल की रायें देने लगी। हबड़-हबड़ कर के वह चोरबत्ती खोजने लगी जो उसकी जेब में रखी थी और अपने साथ तहख़ाने में ले जाने के लिए सामान जमा करने लगी।

ऐसे मौक़ों पर टिगार जान के डर से घबराये हुए जानवर की तरह हो जाता और पहले तो माँ को जल्दी करने और चुप रहने को कहता रहता फिर ख़ुद चिल्लाने लगता।

तहख़ाने में जाने को तैयार हो चुकती तो मार्गरीटा ज़ेको को ज़ोर-ज़ोर से हुक्म देना शुरू करती कि आग बुझा दो, खिड़कियाँ खोल दो।

और माँ-बेटे जब आख़िरकार तहख़ाने में चले जाते तो ज़ेको अँधेरे में ब्यालू पूरा करता और रसोई में चूल्हा ठंडा करके झटपट अपनी छत पर कूद आता। वहाँ से ज़ेको काले आकाश को निहारता और अंधकार को काटती हुई जर्मन सर्चलाइटों की रोशनियाँ किसी बड़ी घड़ी की सुइयों की तरह घूमती हुई और विराट आकाश को मनहूसियत से मापती हुई ऊँचे बादलों में विलीन हो जातीं।

समय-समय पर ज़ेको को पास की सड़कों पर सिपाहियों की पदचाप और गाड़ियों की गरज और उनका रास्ता छोड़ कर हटते हुए सिपाहियों की आहट सुनायी पड़ती।

ये ज़ेको के लिए गम्भीर अर्थमय क्षण होते, उसे भय, साहस के साथ युद्ध पर सोचने का फिर अवसर मिलता।

अगर चेतावनी की अवधि लम्बी होती तो ज़ेको अपने कमरे में लौट कर अँधेरे में ही कपड़े बदल कर सो रहता। दूसरे दिन उसे मार्गरीटा से झिड़कियाँ सुननी पड़तीं जो उसकी अधिकांश अन्य बातों की तरह लाचारगी और

निराशा से भरी होतीं। यह लाचारगी मार्गरीटा की ही नहीं उसके सम्पूर्ण वर्ग की आँतरिक विशृंखलता का स्पष्टतया प्रमाण थी। उस वर्ग को बदलती दुनिया में दिशा खोजना अधिकाधिक कठिन हो रहा था।

हवाई हमले शुरू हुए १६ अप्रैल, १९४४ को ईस्टर के दिन सवेरे क़रीब दस बजे। उस वक़्त ज़ेको बाहर निकल रहा था, काम से नहीं बल्कि मार्गरीटा से दूर भागने के लिए जो कि उस समय अपनी नयी नौकरानी, फ़िलोमिना नाम की एक छोटी गुलाबी लड़की को फटकार रही थी।

बेलगराद के गिरजाघरों में घंटियाँ बज रही थीं। घंटियों की आवाज़ शहर पर मँडराते हुए शुरू गरमियों के विराट आकाश के अनंत में खो गयी।

तब साइरन सुन पड़े जिन्होंने गिरजाघरों की घंटियों की बुझती हुई कराह को ढक लिया और रविवार की तल्लीनता तोड़ दी। ये 'प्रथम चेतावनी' के साइरन थे—कई लंबी और खिची हुई सीटियाँ, जिनके आरम्भ और अन्त में एक झनझनाती-सी आह निकलती थी। उधर साइरन बजा इधर मार्गरीटा प्रकट हुई, चेहरा डर से बिगड़ा हुआ था।

ज़ेको मार्गरीटा के बैठने के लिए कोई और कैसी भी जगह ढूँढ़ रहा था क्योंकि उसकी टाँगें जवाब दे रही थीं, मगर टिगार अपनी जगह से टस से मस न हुआ मानो किसी को वह जानता ही न हो।

अपनी पत्नी के लिए जगह खोज पाते ही ज़ेको ने तहख़ाना छोड़ दिया। ज़ीना चढ़ते हुए उसे मार्गरीटा मरी-मरी घायल आवाज़ से मिन्नत करती हुई सुनायी दे रही थी कि होशियार रहना। हालाँ कि उस वक़्त तक उसे ख़ुद इतना होश न रह गया था कि वह ज़ेको से क्या चाहती है।

खाली मकान में पहुँचकर उसने सब खिड़कियाँ खोल दीं और रसोईघर से होकर अपने चबूतरे पर जा कूदा। रेडियो बता रहा था कि "शत्रु के प्रबल विमान दल मांटेनिग्रो और सर्बिया के ऊपर उड़ रहे हैं।"

नीचे रेलवे स्टेशन से किसी इंजिन की तीखी और लंबी सीटी सुनायी दे रही थी परंतु वह भी हठात् बंद हो गयी और फिर वह संपूर्ण शांति छा गयी जो आक्रमण की प्रतीक्षा करते नगरों में पायी जाती है।

ज़ेको ने अपने चौतरे पर से सामने फैले दृश्य पर दृष्टि डाली। एक ओर का दृश्य डेन्यूब के द्वीपों पर ठहरी धुंध में विलीन हो गया था। दूसरी ओर

उसके सीमांत पर मकानों का पुंज था और उनके सम्मुख ज़ेमून स्टेशन की छायाकृति नज़र आ रही थी। ज़ेको के ठीक सामने था बेलगराद स्टेशन जिसके आगे रेलगाड़ियों की एक क़तार खड़ी थी, फिर सावा नदी का तट और फिर सिर उठाकर देखने से दीखता काले मेगडान का शिखर और सावा और डेन्यूब का संगम और वहाँ संगम पर द्वीप, पिछोला, खाड़ियाँ जो दर्पण के टूटे टुकड़ों की तरह धूप में चमक रही थीं।

सन्नाटा तो विचित्र था ही, उससे भी विचित्र था नगर का क्षितिज जो स्पष्टतर और प्रखरतर हो उठा था मानो आसन्न संकट के भय से उसने एक नयी शक़ल बना ली हो।

सन्नाटा विमानभेदी तोपों की दबी-दबी आवाज़ों से टूटने लगा जो शहर के पूर्व एक उपनगर में लगी हुई थीं। तोपों की ऊँची-नीची गरज वर्तुलाकार होकर फैलती और अंत में इस क्षेत्र में सुनायी पड़ती जो कि अभी तक मौन और अचल खड़ा हुआ था।

इस प्रकंपित गम्भीर वातावरण को चीरता इंजनों का निरंतर और मंद शोर कहीं से आने लगा। ज़ेको ने अपने दाहिने हाथ से आँखों पर छाँह करके ऊपर ताका पर कुछ देख नहीं सका। उसने आँखें नीचे कर लीं, वे सीधे सूरज को देखने से चौंधिया गयी थीं और उनमें पानी आ गया था। तब उसने काफ़ी नीचे उड़ते हुए कई छोटे सफ़ेद विमान देखे। पश्चिम से आ कर ये स्टेशन के ऊपर सावा पुल के निकट से गुज़रे और जैसे समुद्री पक्षी पानी की सतह के पास-पास उड़ते हुए अचानक ऊपर को उड़ान भरते हैं, वैसे ही आकाश में उठ गये। जेक़ो ने उन्हें गिना : आठ थे और नवाँ पीछे-पीछे अकेला उड़ रहा था। पहले तो ज़ेको ने सोचा कि ये जर्मन हवाई जहाज़ होंगे किन्तु एकाएक उसने देखा कि दूर पर रेल के दो डब्बे ज़मीन से ऐसे उठ गये जैसे जानवर पिछली टाँगों पर खड़े हो जाते हैं। साथ में काली मिट्टी और गर्द का एक ग़ुबार भी उठा। जेक़ो तुरन्त समझ गया कि ये मित्र-विमान हैं जर्मनों के नहीं और यह सोच कर कि एक स्वप्न सच हो रहा है उसकी देह कंटकित हो उठी। रेल के डब्बे ज़मीन पर आ गिरे; उनमें से काला धुआँ उठ चला और ऊँचे ही ऊँचे उठता और फैलता गया। चमचमाते सफ़ेद विमान सावा पर हो कर उड़े और ऊपर को दौड़ लगा कर ज़ेको के दृष्टिपथ से बाहर हो गये।

अब अंतिम विमान दिख पड़ा। उस पर एक लाल दाग़ चमक रहा था जैसे कोई फूल सजा हुआ हो। और जब वह नदी के ऊपर पहुँचा उसमें से छोटे-छोटे गोले, रुई के विशाल फाहे जैसे, निकल पड़े; पहले दो और फिर तीसरा। यह विमान भी दृष्टि से ओझल हो गया, वे सफ़ेद फाहे आकाश में डोलते-फिरते रहे फिर हवा के बहाव में पड़कर धीरे-धीरे उस दिशा के विपरीत तैर गये जिसमें विमान जा रहे थे।

रेल के डब्बों से धुआँ और ऊँचा और ऊँचा उठता गया और उसके मूल को लपटों ने लाल रंग दे दिया। उत्तेजना से तना हुआ ज़ेको बिलकुल भूल गया कि वह कहाँ है, कौन है और उसे केवल एक चीज याद रह गयी : यह कि अंततः शत्रु को मारा और मिटाया जा रहा है—शत्रु जो कि उसके सब विचारों का और सब घृणा का केन्द्र बन गया था।

आकाश के तीनों सफ़ेद गोले धीरे-धीरे नीचे आने लगे, खुल कर वे पैराशूट बन गये, और वेज़ानिया के पीछे कहीं गिर कर ज़ेको की आँख से एक-एक कर के ओझल हो गए।

ज़ेको अचरज में पड़ा सोच रहा था कि यह सब कुछ गर्मियों के किसी खाली दोपहर के किसी खेल की तरह क्यों लग रहा है कि प्रतिरक्षा-तोपें एकाएक सब की सब गरज उठीं। लगभग उसी क्षण ताबड़-तोड़ कई बम फटे—५ या ६ होंगे और उनके फटने के साथ उनकी विचित्र गूँज और इमारतों के भहराने की गड़गड़ाहट सुनाई दी। परन्तु इन सब आवाज़ों को दबा लिया ज़ेको के सर पर से लगातार अंधड़ की तरह गुज़रते हुए हवाई जहाज़ों के शोर ने।

कुल मिला कर ऐसा लगता था मानो दो बनैले जंतु एक दूसरे से टकरा गये हों और एक में गुँथकर धूल और रौंदी हुई बनस्पति के बवडर में फुर्ती से दाँव-पेंच दिखाते हुए तीखी से तीखी और भयंकर से भयंकर आवाज़ें पैदा कर रहे हों।

इतने में ज़ेको अचेत हो गया किंतु बस क्षण भर के लिए और फिर चौकन्ना होकर उत्सुकता से भरा उठ बैठा।

उसने गरदन पीछे लटका कर आँखों पर हाथ से छाँह कर ऊपर निर्मल आकाश को ताका। हवा मानो थरथरा रही थी और नीचे धरती बम के विस्फोटों और गिरती इमारतों के धमाकों के मिले-जुले असर से काँप रही

थी। और ज़ेको के भीतर भी सब कुछ थरथरा रहा था जैसे वह किसी कंकरीली पथरीली सड़क पर लढ़िया में बैठा जा रहा हो।

ऊपर ऊँचाई पर जिसे ज़ेको ने न जाने क्यों तेरह हज़ार फ़ुट से अधिक आँका, कई काले बमबार टेढ़ी-तिरछी क़तारों में ऐसी गति से उड़ते जा रहे थे जो धीमी और कालातीत जान पड़ती थी। ज़ेको गिनने लगा : चार, सात, ग्यारह, सोलह, बाईस और तभी क़तारों के दोनों पार्श्व में नये विमान निकल आये जिससे उसका हिसाब बिगड़ गया और वह चकरा गया। आकाश चारों ओर से घिरे आते विमानों से छा गया। इस काले चँदोवे के ऊपर पानी में नन्हीं मछलियों जैसे लड़ाकू विमानों की चमचमाती झलक आँख-मिचौनी खेल रही थी।

नये बम-विस्फोटों के धमाकों ने ज़ेको का ध्यान तोड़ा : इस बार वे सावा के ज़ेमून वाले किनारे से आ रहे थे। ज़ेमून हवाई अड्डे पर मिट्टी के स्तम्भ हवा में खड़े लहरा रहे थे और उन्हीं में हवाई पट्टों से टूटे ककरीट के खंड भी थे।

और इसके बाद तत्काल विमान-संपुजन पश्चिमोत्तर की ओर बढ़े और आकाश में विलीन हो गये। केवल उनका शोर सुनायी देता रह गया, फिर शोर की गूँज रह गयी और फिर मौन छा गया। दूर कहीं से पहले तीन बार, फिर दो, और फिर एक बार तोपों की गरज आयी जैसे वर्षा के बाद बूँदें एक-एक कर टपकती हैं। फिर जो सन्नाटा छाया वह सर्वव्यापी और संपूर्ण था। ज़ेमून हवाई अड्डे से काले ग़ुबार की एक दीवार उठ कर खड़ी हो गयी।

तब ज़ेको ने देखा कि धूल उस तक पहुँच रही है, और वह उसे अपनी आँखों में और जीभ के तले अनुभव कर रहा है। पहली बार वह भयातुर हो उठा और उस संकट से भाग कर, जो गुज़र चुका था, वह चबूतरे पर से झटपट वापस लौट आया।

वह अपने घर में भरती हुई धूल में से होता हुआ तहख़ाने की ओर बढ़ा। रास्ते में अकस्मात् उसने उस भय पर काबू पा लिया जो उसे चबूतरे पर से खदेड़ लाया था।

सबसे ऊपर के ज़ीने पर खड़े होकर उसे नीचे तहख़ाने में तरह-तरह से सिकुड़े-फैले पड़े मनुष्यों का समूह बहुत अच्छी तरह दिखायी दे रहा था।

एक बार कई वर्ष पहले वह अपने एक रिश्ते के विद्यार्थी भाई को, जो विक्षिप्त था, देखने बेलगराद पागलख़ाने में गया था। अस्पताल के चिकित्सक उसे उस आम बैठक में ले गये थे जहाँ मरीज़ दिन के वक़्त रहते थे।

तहख़ाने की धुंधली रोशनी में ठसाठस भरे मनुष्य देखकर उसे वही भूला हुआ दृश्य याद हो आया।

उसने देखा, दर्जनों तरह की विचित्र मुद्राओं में लोग लेटे, बैठे और खड़े हैं, स्त्रियाँ मुर्दा पीले चेहरे लिए माथे पर गीले चीथड़े लपेटे, औंधी पड़ी हैं। उसने देखा, कुछ पुरुष घुटनों पर कोहनियाँ टिकाये और हाथों से चेहरे छिपाये बैठे हैं, तो कुछ दीवार से पीठ लगाकर चिपके हुए सर को ऐसे पीछे डाले खड़े हैं जैसे ज़ंजीर से बाँध दिये गये हों। उसने कुछ जोड़ों को कातर आलिंगन में बँधे देखा और कुछ को एक दूसरे से कतई मुँह फिराये बैठा पाया। विकृत चेहरों और सूरतों का वहाँ अंबार लगा था जैसे वे छटपटा कर जड़ हो गये हों।

चेहरों के इस जंगल में से ज़ेको की तरफ़ दो बाँहें उठीं और उनके पीछे दिखा मार्गरीटा का चेहरा जिस पर कोई रंग न था; उसकी आवाज़ लड़-खड़ाती, रिरियाती मगर फिर भी हुक्म चलाती हुई थी :

"जेको……हे ईश्वर, यह क्या हो रहा है ?"

इस विचित्र स्थिति में ज़ेको अचकचा गया पर कुछ कहना था इसलिए बोला, "सब ठीक है, सब शांत हो गया है……"

उसी वक़्त एक अकेला मगर ज़ोरदार धड़ाका हुआ, शायद कोई नियत कालिक बम था, और फिर तुरन्त शांति छा गयी। उस मौन में तहख़ाने के ज़ीने पर खड़े व्यक्ति को नफ़रत भरी नज़रें, हाथ और घूँसे संबोधित करने लगे :

'बंद कर दरवाजा…… बेवकूफ़ !"

"गधा कहीं का—ये हम सबकी जान ले लेगा।"

"सब शांत ही तो है।" किसी ने बदहवास विद्रोह का यह सिलसिला ख़त्म करते हुए व्यंग्य भरे षडज स्वर में कहा, जिसके दौरान स्त्रियों ने वह-बह बातें कही थीं जो अभी तक वे सिर्फ़ मन में रखती थीं।

औरतें अब और भी ज़ोरों से सिसकने लगीं और उन सब सिसकियों के

ऊपर मार्गरीटा की शहीदाना लंबी ग्राह सुनायी पड़ने लगी।

ज़ेको भागा। गलियारे में वह तीसरी मंज़िल के किरायेदार एक इंजीनियर से टकरागया जो ग्रपने कमरे से उत्तेजित ग्रौर एक तरह से खुश-खुश सीढ़ियाँ उतरता ग्रा रहा था। वह खुद सवाल पूछता ग्रौर खुद जवाब देता।

"देखा तुमने ? मैंने तो सब देखा। मैं जानता हूँ कि ग्रोब्ल्यास्काँ मार्ग पर खूब पड़ी ग्रौर वेलन बाज़ार पर तो कोई शक ही नहीं।"

इंजीनियर ने ज़ेको की बाँह में हाथ डाल दिया। ग्रनजाने ही दोनों सड़क पर निकल ग्राये।

कहीं चिड़िया तक पर न मार रही थी। सन्नाटा पहाड़-सा खड़ा था। ऊँचे कहीं से एक भनभनाहट, एक पतली निरंतर एकरस ग्रावाज़ ग्रा रही थी जैसे वह भी सन्नाटे का ग्रंश हो।

दोनों नेज़ा मिलोशा चौराहे तक गये ग्रौर वहाँ खड़े देखते रहे कि एक फैला-फैला पीला-पीला ग़ुबार शहर के दक्षिण-पूर्व भाग के ऊपर उठ रहा है।

तभी ग्रलबानिया मीनार पर से एक लंबा ग्रटूट साइरन बजा, फिर चुकारित्सा से एक ग्रौर ग्रौर फिर डेन्यूब से एक ग्रौर।

खतरा टल गया था।

ज़ेको तत्क्षण टाल्सटाय मार्ग की ग्रोर चल पड़ा। चिंता से विह्वल वह चढ़ाई पर दौड़ता गया। लोग शरणालयों से निकल-निकलकर उसके। पास से गुज़रते जा रहे थे। वे सब उत्तेजना के मारे ज़ोर-ज़ोर मे बोल रहे थे उनमें से कुछ हँस रहे थे पर यह हँसी न स्वस्थ थी न भली थी। कई के मुँह से शराब महक रही थी।

पहाड़ी पर से साफ़ दिखायी देता था कि स्टेशन पर चार ठिकानों पर रेल के डिब्बे खड़े जल रहे थे। ज़ेमून धुएँ ग्रौर धूल के बादल में विलीन हो गया था ग्रौर दक्षिण-पूर्व वेलगराद भी।

टापचादडर पहाड़ी पर कोई बम नहीं गिरे थे मगर फिर भी जब तक ज़ेको ने ग्रपना परिचित वह छोटा-सा मकान वसंत की ग्रंकुरित हरियाली के मध्य ग्रछूता खड़ा नहीं देख लिया तब तक उसे चैन नहीं ग्राया।

डोरोश के घर में सब कुछ उलट-पुलट पड़ा था। इंजीनियर ग्रौर दानित्सा

हवाई हमले से दहशत खा गये थे। लड़की की ग्राँखों में डर समा गया था ग्रौर समय-समय पर उसकी पूरी देह थरथराती थी जैसे कँपकँपी छूट रही हो। ग्रौर डोरोश, पीला ग्रौर मौन, ऊटपटांग चीजें जमा कर रहा था, काग़-ज़ात पलट रहा था ग्रौर समय-समय पर बर्रा उठता था जैसे किसी को सुना कर कह रहा हो "मुझसे नहीं होगा, मैं यहाँ नहीं रहने का बमों के वास्ते, नँह"।

मारिया ग्रौर ड्रागान शांत ग्रौर संयत थे।

पहाड़ी से ज़ेको स्वेतोसाव्स्का पहाड़ी गया कि सिनिशा की ख़ैरियत पूछ ग्राये ग्रौर यह भी मालूम कर ले कि कोई काम तो नहीं है। सिनिशा ने उससे ग्रपने ढंग का संक्षिप्त ग्रौर दुरूह परिहास किया ग्रौर वह हमेशा से ग्रधिक चंचल दिखायी दिया। जब ज़ेको ने उसे हवाई हमले का ग्रपना देखा हाल सुनाया तो उसके मुँह से बार-बार निकला :

'मित्रों ने काम कर दिखाया, ज़ेको चाचा, कर दिखाया।"

उसने ज़ेको से पूछा कि क्या वह ग्राज ही नगर का दौरा करके ग्रौर यह देखने जायेगा कि कितना नुकसान हुग्रा है ग्रौर यह भी कि कुछ ख़ास-ख़ास मकानों पर बम गिरे हैं या नहीं ग्रौर ग्रगर गिरे हैं तो उनमें कौन-कौन मरा है। उसने ज़ेको से कहा कि खबर लाकर मुझे मत देना, टापचाइडर पहाड़ी दे ग्राना, वहाँ से वूल या कोई एक बच्चा उसे ले ग्रायेगा।

ज़ेको बम-ध्वस्त नगर में घूमा, खँडहरों ग्रौर उनके भीतर दारुण दृश्यों को उसने देखा ग्रौर दिया जलने तक ग्रपने घर थका-हारा लौट ग्राया।

वहाँ मार्गरीटा ग्रौर टिगार बहस करके तय कर रहे थे कि यहाँ से ग्रच्छा ग्रौर सुरक्षित शरणालय कहाँ मिल सकता है। उसने ज़ेको को उसे छोड़ कर जाने पर जली-कटी सुनायी कि वह उसे छोड़ कर चला गया, घर-बार की उसे फ़िक्र नहीं ग्रौर वह टापचाइडर पहाड़ी पर घूमता रहता है। उसने कहा, "मुझे पक्की खबर है कि ग्राज रात को बेलगराद मिट्टी में मिला दिया जायेगा।" ग्रौर फिर एक क्षण पहले की ग्रपनी बोली भूल कर ज़ेको से पूछने लगी कि हम भाग कर कहाँ जायें।

"कहीं नहीं।"

उसने नफ़रत ग्रौर भय से जड़ ग्रौर गूँगी होकर उसकी तरफ़ देखा ग्रौर

फिर रुआँसी आवाज़ में न जाने क्या कहा और फिर एकाएक उसका बचा-खुचा क्रोध जाग्रत् हो आया, वह उसके सामने खड़ी उछलने लगी और मेज़ पर घूँसा मार-मार कर चीखने लगी :

"कहीं नहीं' का क्या मतलब ? हाय दैया, मैं तो कहो सातों समुन्दर पार चली जाऊँ। तुम्हें मरना हो तो मरो, बेवकूफ़ दास, तुम जनम के मूरख हो, मेरी जान मुझे प्यारी है, दुनिया भर से प्यारी है, मैं" मैं......

वह फिर लाचार हो कर फूट-फूट कर रोने लगी।

अंततः ज़ेको किसी तरह खिसक गया और उसने अपना कमरा अंदर से बंद कर लिया। कुछ देर वह आँखें बंद किये सुनता रहा कि घर के अंदर हंगामा मचा हुआ है और कल्पना में देखता रहा कि ध्वस्त मकानों के अंदर से चीथड़ों में लपेटी लाशें निकाली जा रही हैं। आखिरकार उसे नींद आ गयी क्योंकि वह बहुत पैदल चलने और जाने क्या-क्या देखते रहने से थक गया था।

तड़के वह घर में चीख-पुकार और झन्न-पटक सुन कर जग पड़ा। वह बिस्तर से निकल आया। मार्गरीटा गरज रही थी और एक साथ तमाम से सवाल पूछे डाल रही थी— "हम कहाँ जायेंगे ? किस सवारी से जायेंगे ? क्या ले जायेंगे ? और जो चीज़ें घर में छोड़ जायेंगे उनका क्या होगा ?"

पिछले दिन के दृश्य और ध्वनियों से अभी तक बोझिल ज़ेको ने औरत की तरफ़ बिलकुल ध्यान नहीं दिया जो कि स्वस्थ और साबुत अपने सजे-धजे ठीक-ठाक घर में उन लोगों से अधिक दुःख मना रही थी जिन्हें कल ज़ेको ने खँडहरों के पास अपना सब कुछ खोकर खड़े देखा था।

" ज़ेको, ज़ेको" मार्गरीटा रह-रह कर चीख़ती मगर ज़ेको कोई जवाब न देता जैसे ज़ेको किसी और का नाम हो, वह पागल की तरह अपना असबाब बाँध रही थी और आँख मूँद कर जो हाथ आता उसे झपट कर रखे ले रही थी। सहसा उसके हाथ शिथिल हो गये, आँखें आँसुओं से भर आयीं और वह फ़र्श पर धम से बैठ गयी ; बैठ गयी तो फिर वहीं की वहीं एक खुले बक्स के पास बैठी ही रही। पर फिर वह उठी, ज़ेको को पुकारा और फिर उससे कोई जवाब नहीं मिला और वह सामान बाँधने लगी। वह कभी किसी दुःखी छोटी लड़की की तरह सिसकती, कभी छिनाल की तरह गरियाती।

टिगार उसके पीछे डरा, दबा, दुम की तरह लगा हुआ था। पिछले दिन

की तरह वह ज़्यादा बोल नहीं रहा था। उसकी ग्राँखों से डर झाँक रहा था ग्रौर जब माँ से उसकी ग्राँखें चार होतीं तो वे दोनों जड़वत् एक दूसरे को दो हताश जानवरों की तरह घूरने लगते। जब टिगार ग्राँखें नीची कर लेता तो वह सिसकना शुरू कर देती ग्रौर झूठमूठ सामान बाँधती रहती।

उनकी 'कार्यकुशलता' का, उस सदर्प ग्रात्म-विश्वास का कहीं नाम-निशान तक न बाक़ी रह गया था जिससे वे कभी महाशक्तिशाली दिखायी दिया करते थे।

जब दिन निकल ग्राया तो टिगार हार कर किसी मोटर ठेला या घोड़ागाड़ी की तलाश में निकला, उसे दरवाज़े तक पहुँचा कर ग्राँखों में ग्राँसू भरे काँपती ग्रावाज़ में वह चिल्लायी :

"कहीं से लाग्रो, चाहे जर्मनों से लाग्रो, जो माँगे वह दो मगर यहाँ से निकलने के लिए सवारी लिये बिना न ग्राग्रो।"

उस दिन घर में एक क्षण को शांति नहीं थी। मार्गरीटा ग्रसबाब बाँधती, क्लेश करती, दुनिया भर का रोना एक ही साथ रोती—मकान का, मेज़-कुरसी का, ग्रपनी सुरक्षा का ग्रौर जो मन में ग्राता कभी कुछ, कभी कुछ बोलती जाती। वह जहाँ-जहाँ से मदद की उम्मीद हो सकती थी वहाँ टेलीफ़ोन कर रही थी ग्रौर जब कहीं से जवाब न ग्राता—क्योंकि बम-ध्वस्त नगर में तार टूट गये थे—तो फिर रोने लगती ग्रौर टेलीफ़ोन पटक कर बंद कर देती।

ज़ेको बीचों-बीच कमरे में बैठा नाश्ता कर रहा था। उसकी पत्नी ने जिसका मिज़ाज ठिकाने ग्रा गया था उसकी तरफ़ घूर कर गुस्से से मगर भय ग्रौर ग्रादर से देखा :

"तुम क़िस्मतवाले हो जो तुम्हारा दिल इतना सख्त है" ग्रौर ज़ेको शांति से खाता रहा ग्रौर उसे लगा कि बीस बरस से भी ग्रधिक समय में पहली बार वह ग्रपने घर में ग्रपनी मेज़ पर बैठ कर मज़े ले कर खा रहा है ग्रौर उसे न मार्गरीटा की कोई फ़िक्र है न उससे कोई डर है।

ग्रौर जब वह ऊटपटांग वाक्य जोड़कर बकने-झकने लगी ग्रौर उसकी भारी-भरकम देह ग्रौर उसकी क्षुद्र संपत्ति का इस लोक में ग्रौर परलोक में भी महत्त्व जीवन से भी ग्रधिक हो गया तो ज़ेको ने उसे ग्राहिस्ता से टोक

दिया :

"तुम कोई चीज़ नहीं हो।"

श्रौर जब वह उसकी भावनाश्रों के प्रति निर्मम हो कर परन्तु क्रोध से नहीं, उसे श्रपने विचार बतलाने लगा तो उसने उसकी श्राँखों में श्राँखें डाल दीं श्रौर श्रनुभव किया कि वे श्राँखें, जिनसे उसकी श्रनुपस्थिति में भी वह वर्षों श्रातंकित रहा, श्रसाधारण किसी तरह न थीं। उनमें कभी भी कुछ नहीं था श्रौर श्राज तो कुछ था ही नहीं श्रौर उसने यह श्रनुभव किया तो उसे यह एक ही साथ हास्यास्पद श्रौर करुण लगा परन्तु, न वह हंसा न दुःखी हुश्रा क्योंकि श्रब वह मुक्त हो चुका था।

टिगार एक घोड़ागाड़ी लेकर श्रा पहुँचा श्रौर उसकी श्रपनी माँ से निरर्थक बकबक शुरू हो गयी। ज़ेको ने कई सुझाव दे कर उनकी मदद करनी चाही श्रौर वे सुझाव मान भी लिये गये जैसा कि पहले कभी हुआ ही नहीं था।

तय हुश्रा कि वे लोग जेलेज़निक जा कर उस ग्वाले के यहाँ ठहरेंगे जो रोज़ दूध दे जाता था। जब ज़ेको ने कहा कि मैं शहर में ही रहूँगा श्रौर मकान की चौकसी करूँगा तो वे बहुत ख़ुश हुए।

श्रब सब काम फुर्ती से क़ायदे से होने लगा। फिर भी मार्गरीटा घर में हर कमरे के दरवाज़े पर ठहरती, सीने पर सलीब का निशान बनाती श्रौर दारोग़ा को घुड़कती जो श्रसबाब बँधवाने में हाथ बँटा रहा था। ज़ेको को पुकार कर वह चिल्लायी :

"सब चीज़ों का ध्यान रखना···खिड़कियाँ बंद कर देना···हरे बक्स में कुछ पकवान है। दूसरे बक्से मत खोलना······"

श्राख़िरकार वे चले। ज़ेको उन्हें गाड़ी में बिठाने लगा। रह-रह कर मार्गरीटा को याद श्राता कि वह कुछ भूल श्रायी है श्रौर वह चीख़ पड़ती, फिर वह चीज़ उसकी जेब से ही बरामद होती। ले-दे कर वह गाड़ी में तरह-तरह के बक्सों श्रौर बंडलों से घिरी बैठ गयी। वह गाड़ीवान के पास बैठी थी श्रौर वह उसे ऐसे बता रहा था कि पाँव कहाँ रखो जिससे लटके नहीं जैसे किसी नासमझ बच्चे को बताया जाय। टिगार गाड़ी में सब सामान के ऊपर श्रोढ़ाये हुए एक गद्दे के ऊपर चढ़ा बैठा था। उसके चेहरे पर वही हमेशा की

उलझन थी, वह अपनी ही समस्याओं में डूबा हुआ था।

ज़ेको सदा दरवाज़े पर खड़ा उन्हें देखता रहा और जब गाड़ी चल दी तो उसने हाथ हिला कर ऐसे बिदा दी जैसे कोई बच्चे मई दिवस का मेला देखने जा रहे हों।

मकान में लौट कर, जहाँ सब सामान यों बिखरा पड़ा था मानो डाका पड़ा हो, ज़ेको ने कुछ वक़्त उसे समेटने में लगाया, फाटक जैसी खुली अलमारियों के कपाट बंद किये, हर चीज़ अपनी जगह पर सहेजी।

जब वह इससे निबटा तो उसने हाथ धोये और आरामकुर्सी में पसर कर चैन की साँस ली और अपनी नयी आज़ादी का सुख चुपचाप उसके मन में भर गया। सहसा उसे याद आया कि उसे टापचाइडर एक संदेश ले जाना था। उसने घड़ी देखी तो चौंक पड़ा, दस बज गये थे।

जब वह नेज़ा मिलोशा मार्ग के छोर पर पहुँचा उसने देखा कि सब सवारियाँ शहर के बाहर जा रही हैं और शहर के अंदर कोई नहीं आ रहीं। दादीन्ये की सड़क पर पहुँचते-पहुँचते उसे पहला साइरन सुनायी दे गया। उसके बाद तुरन्त ख़तरा टलने का भोंपू बजा। ज़ेको ने चाल तेज़ की, सारे शरीर से पसीना छूटने लगा। जर्मनों भरी से मोटर गाड़ियाँ उसके पास से भयंकर रफ़्तार से गुज़र रही थीं और सब दादीन्ये और टापचाइडर की बस्तियों की ओर जा रही थीं।

ज्वेज़्दा चौराहे के पास एक युवती देहातिन उसके बराबर हो ली। उसके कंधे पर एक बहँगी थी जिसके एक सिरे पर दूध के ख़ाली टीन और दूसरे पर एक गठरी थी। इस प्रदेश की किसान औरतों की अपनी ख़ास तेज़ चाल से चलती हुई वह मारे घबराहट के तमतमायी जा रही थी : वह आगे को तनिक-सा झुक कर चल रही थी, पाँव उठाती तो जाँघों पर ज़ोर डाल कर और कंधे के बोझ से कभी दायें झुकती कभी बायें। उसने ज़ेको से पूछा कि भोंपू जो बजा है सचमुच खतरे वाला है कि ख़ाली होशियार करने वाला।

"जल्दी कर, जल्दी कर, सड़क से हट कर किसी झुरमुट में चली जा" ज़ेको ने ऐसे आश्वस्त भाव से कहा जैसे उसे मालूम हो कि क्या होने जा रहा है।

"हे ईश्वर, सबके सब मर जायें, सब के सब..."

हालाँ कि वह घबरायी हुई थी पर बह मुसकराती दीखती थी। पता

नहीं असलियत क्या थी। उसका स्वस्थ, भरा-पूरा मुँह और सुडौल सफ़ेद दाँतों की गठन अपने आप ऐसी थी कि जो अनायास मुस्कुराहट जैसी जान पड़ती।

डेन्यूब के पास कहीं से विमानभेदी तोपें गरज उठीं। और भी तेज़ चलते हुए ज़ेको टालसटाय मार्ग की ओर मुड़ गया। देहातिन उसके पीछे-पीछे आयी और टांपचाइडर सड़क के मोड़ पर भी साथ लगी रही। डोरोश्की-निवास तक आते-आते उसने आगे बढ़कर पूछा कि क्या मुझे यहाँ शरण मिल जायेगी क्योंकि अकेले मुझसे चलते नहीं बनेगा।

मकान और बाग़ीचा ख़ाली पड़ा था। ज़ेको ने आवाज़ दी तो मारिया ने तहख़ाने से जवाब दिया।

वह ड्रागान को लिये मोमबत्ती की रोशनी में तहख़ाने में बैठी थी। डोरोश और दानित्सा उन असंख्य लोगों के समान आज सवेरे ही घर से चले गये थे जो नये हवाई हमले के भय से कोशुतन्याक और बानोवो पहाड़ियों में कहीं छिप रहना चाहते थे।

वे दोनों ज़ेको को देख कर प्रसन्न हुए और उन्होंने देहातिन से भी बैठ जाने को कहा। चैन की साँस लेकर उसने बहँगी उतार रखी और रूमाल से अपने माथे का पसीना पोंछने लगी।

तहख़ाने में शांति और शीतलता थी। मोमबत्ती की लौ सीधी उठ रही थी। विमानभेदी तोपों की गरज दूर पर धीमी और दबी-सी सुनायी पड़ी। तत्काल वह तेज़ हो आयी और इस बार उसमें पास आते हवाई जहाज़ों की पिछली बार से भी तेज़ घड़घड़ाहट शामिल थी। लगभग इसी समय धड़ाके सुन पड़े। साथ में एक अजब तरह की सीटी बजी और धमाका हुआ जिससे तहख़ाने का फ़र्श और घर की दीवालें हिल उठीं। तहख़ाने का दरवाज़ा ऐसे खड़खड़ाया जैसे कोई उसे ज़बर्दस्ती खोले डाल रहा हो।

ज़ेको ज़ीने की पहली सीढ़ी पर खड़ा था, उसके बग़ल में ड्रागान उसका हाथ थामे हुए था। जैसे ही गरज-धमक शुरू हुई मारिया अपनी कुर्सी से कूद कर बच्चे के पार्श्व में आ खड़ी हुई।

दाँत भींचे, आँखें फाड़े ज़ेको ने अपने आसपास सब कुछ साफ़-साफ़ देखा, हालाँ कि मोमबत्ती की लौ उन्मत्त हो कर काँप रही थी।

देहातिन हाय-हाय करने लगी और फिर ठुड्डी के नीचे हथेलियाँ बाँध कर घुटनों में सर दे कर बैठ रही। गर्भस्थ शिशु की तरह इसी अवस्था में बैठी वह सिसकने लगी तो सिसकती ही गयी।

मारिया सीधी खड़ी थी; उसका हाथ लड़के के कंधे पर था और वह रह-रह कर ज़ेको की ओर देखती थी मानो अपने भावों की पुष्टि चाहती हो। जब मोमबत्ती की रौशनी स्थिर होती तो ज़ेको को मारिया के अचंचल चेहरे पर, उसकी आँखों में एक तेज़ नीली चमक दिखायी देती जैसी कि उसने उसमें या किसी में भी पहले नहीं देखी थी। और जब लड़का नज़रें उठा कर उसकी ओर देखता तो उसकी गम्भीर और विस्मित आँखों में भी ज़ेको को उसी गहरी नीली ज्योति की झलक दिखायी देती—हाँ, वह अपेक्षया क्षीण और मंद होती।

ज़ेको को एक तीखा अहसास—मृत्यु का, अपनी समाप्ति की संभावना का हुआ; जो इतने निकट जान पड़ रही थी और यह जानते हुए कि एक कमज़ोर मकान के नीचे एक उथला तहख़ाना छोटे-से धमाके से भी कितनी रक्षा कर सकता है उसने व्याकुल हो कर चाहा कि सर के ऊपर इंजिनों की मंद गरज को, धमाकों की गूँज को, दरवाज़े के भड़भड़ाने और तहखाने में तथा खोपड़ी के ऊपर के घर में सब ढीली चीज़ों के चरमराने और खड़खड़ाने को एकदम बंद कर दे। लड़के का हाथ पकड़े हुए उसे लगा कि वह एक से बहुत हो गया है और जीवन और मृत्यु के मध्य कुछ क्षणों और कुछ इंचों के अंतराल में अनंत संघर्षरत जिन बच्चों को तीन वर्ष में उसने जाना था उन सबके हाथ वह पकड़े हुए है।

उस दिन मित्र-वायुसेना ने जर्मन सेना पर, जो बेलगराद के नगर और क़िले में जमी हुई थी, तीन हमले किये।

तीसरा सबसे भारी था। बंद दरवाज़े से हवा का रेला ऐसे आया जैसे महीन परदे से विचित्र ठंडी हवा आये। उनके कपड़े फड़फड़ाये और शरीर कंटकित हो उठा। मोमबत्ती बुझ गयी। हवा गर्द से बोझिल हो गयी। किसान औरत रोने लगी।

परंतु तभी एकाएक सब शांत हो गया। उन्होंने मोमबत्ती फिर जलायी, तहख़ाने में ताज़ी हवा आने के लिए दरवाज़ा खोल दिया और बाहर चले आये। देहातिन वहीं की वहीं वैसे ही विचित्र ढंग से बैठी रही।

अंत में 'सब ठीक' का साइरन सुनायी दिया। दिन तीन पहर से अधिक चढ़ आया था।

अब वे दहलीज़ से धूप में आकर खड़े हुए तो वे धूल से भरे पीले दिख रहे थे। देहातिन आँखें झुकाए मौन थी मानो अपने पर शर्मिंदा हो। धीरे-धीरे वह स्वस्थ हो रही थी और मुँह धोने और पानी पीने के बाद फिर उसकी असली सूरत, बोली और चाल लौट आयी। स्वस्थ आरक्त मुस्कुराहट के साथ उसने अपनी बहँगी कंधे पर तौली और ज़ोर-शोर से सबको धन्यवाद करती यह चिल्लाती विदा हो गयी कि 'ईश्वर उनको एक-एक को समझे...'

जेको ने दहलीज़ में ही ड्रागान और मारिया के साथ खाना खाया। लड़के ने मन भर कर खाया और जी खोल कर बातें करता रहा। ज़रा देर में दिन-भर की बमबारी की खबरें लेकर वूल हाज़िर हुआ। वह हमेशा से ज़्यादा उत्तेजित और उतावला हो रहा था। ज़ेको ने उसे वह जानकारी दी जो वूल को सिनिशा तक पहुँचानी थी, उससे अपने मकान में मिलने का समय तय किया और ड्रागान को 'मेरा जंगी दोस्त' का संबोधन करता हुआ विदा हो गया।

जब वह ज्वेज़्दा पहुँचा तो उसने शहर को लपटों और धुएँ से घिरा पाया। नीचे सावा के तट पर सेन्याक से लेकर चुकारित्सा तक झोंपड़े सुलग रहे थे। उसने देखा कि आग की लपेट में आकर स्टाँको का हरा स्नानालय छिन्न-भिन्न हो गया है और नदी उसे बीच धारा में बहा ले गयी है: 'यह भी नहीं रहेगा!'

जब वह नेज़ा मिलोशा मार्ग पर पहुँचा तो वहाँ बमबारी के प्रथम प्रमाण उसे दिखे। ज़ेको का मकान अछूता बच गया था परन्तु उसके आगे साराजेव्स्का मार्ग पर भारी क्षति हुई थी और सड़क के बीचोंबीच मुँह बाये बड़े-बड़े गड्ढे टूटे हुए जलकलों के पानी से भरे पड़े थे।

ज़ेको का मकान विस्फोटों से उड़ी धूल, मिट्टी, चिंगारियों और पत्थरों से भरा था। जलकल, टेलीफ़ोन और बिजली कट गयी थी। जीवन पीछे लौट गया था मानो देश-काल का अतिक्रमण कर गया हो, सब कुछ ऊबड़-खाबड़ और आदिम हो गया था। पानी की खोज करनी होगी, रोशनी का कुछ बंदोबस्त करना होगा: उन चीजों का जो कभी अपने आप आया करती थीं।

झाड़ू-बुहारू करते-करते शाम हो गयी। उसने एक मोमबत्ती जलायी और गुसलख़ाने में चला गया। वह सहेज कर रखे बरतनों से किफ़ायत के साथ पानी लेकर मुँह धो रहा था कि दरवाजे पर खड़खड़ाहट सुन कर चौंक पड़ा। मकान का दारोग़ा आया था। उसे खड़ा होना मुश्किल हो रहा था और उसकी घिग्घी बँधी हुई थी।

"श्रीमान जेको जी, अब मुझसे नहीं होगा। मेरी औरत कल कुमोद्राथ जा रही है। क्या करूँ समझ में नहीं आता। मैं कहता हूँ कि ये भोंपू दुनिया की सबसे बड़ी अलामत हैं। बम का डर मुझे नहीं। भोंपू जब शुरू होता है तो मेरी टाँगें जवाब दे जाती हैं और जब ख़त्म होता है तो मैं अधमरा ही होता हूँ। मुसीबत है! मेरी तो समझ में नहीं आता क्या करूँ।"

जेको उसे विदा तो बड़ी मुश्किल से ही कर पाया परंतु फैसला कल तक स्थगित करने पर उसे राज़ी करा लिया।

उस रात वह घोड़े बेच कर सोया। जगा तो दिन चढ़ आया था। कपड़े पहने और नीचे आ कर दारोग़ा को देखा तो वह जा चुका था। ज़ीने पर हाथ में बक्से और कंधे पर कंबल लिये मकान छोड़ कर जाने वालों की भीड़ थी।

बाहर सड़कें भी आदमियों से भरी थीं—पैदल और सवारी पर वे सब एक ही दिशा में टापचाइडर की ओर जा रहे थे।

जेको यह अनंत जन-प्रवाह देर तक देखता रहा। लोग झुंड बना कर धक्कम-धक्का करते हुए भेड़ों की तरह किसी ऐसी जगह की खोज में जा रहे थे जहाँ बम न गिरते हों। बुड्ढे आदमी और पुरनिया औरतें थीं जो घिसट रही थीं, स्वस्थ नौजवान लोग थे जो गाड़ियों पर लदे थे, हाथ में एक-एक राकिया की बोतल और बग़ल में एक-एक गठरी थी, माएँ थीं जो बच्चों की उँगली पकड़े उन्हें जल्दी चलने को झिड़कती हुई खींचती चल रही थीं। मानो चींटियों की एक व्याकुल बांबी थी जिसमें क़तारें उभरतीं, मिलतीं और फिर खो जातीं।

और इस मजमे में से जर्मन सैनिक मोटरों और मोटरसाइकिलों पर चढ़े अनायास रास्ता बनाते सीधे गुज़रते जा रहे थे मानो छिछले पानी को पार कर रहे हों।

दिन के दस बजे तक सब सड़कें सूनी हो गयीं। ख़ाली मकानों की ऊपरी

मंज़िलों की खिड़कियाँ पूरी खुली पड़ी थीं।

एक चौक के बीचोंबीच खड़ा अकेला ज़ेको बारी-बारी से चारों तरफ़ देख रहा था, और जान रहा था कि यह असाधारण गरम दिन विचित्र और अनंत लग रहा है और इसका कोई नाम नहीं है।

और तब वह सड़क पर अपने नीचे घर की ओर उतर चला। सदर दरवाज़े में घुसने के पहले उसने सड़क के पार की एक सुन्दर एकमंज़िली पुरानी चाल की इमारत पर नज़र डाली जिसमें एक प्रशासन अधिकारी की विधवा स्त्री अपने बेटे और बहू को लेकर रहती थी। उस विधवा की टाँगों को लकवा मार गया था और कई बरस से वह खिड़की के पास बैठी ही रहा करती थी। ज़ेको को जब उसका निस्तेज चेहरा खिड़की के शीशों के पीछे धूप से आलोकित दिखा तो वह चौंक पड़ा। उसका बेटा और उसकी बहू और शायद महरी भी जा चुके थे और उसे अकेला छोड़ गये थे।

ज़ेको असमंजस में खड़ा रह गया और फिर न जाने क्यों उसने अपनी टोपी उतार कर इस स्त्री को जिसे वह केवल चेहरे से पहचानता था सलाम किया। धँसी आँखों वाले उस पीले बूढ़े चेहरे पर एक उदास मुस्कान हल्के से आयी और चली गयी जैसे वह बहुत दूर से मुस्करा रही हो। और ज़ेको लपक कर अपने निर्जन घर में विलीन हो गया।

अनेक दिन तक फिर हवाई हमले नहीं हुए। जीवन फिर से जागने लगा। तीन दिन बाद आक्रमण-सेना के अख़बार फिर छपने लगे। टेलीफ़ोन बजने लगा और फिर बिजली भी आ गयी। कुछ बाद में जलकल की मरम्मत भी हो गयी। तो भी जीवन असाधारण और सीमित ही रहा। तड़के लोग गोल बना कर निकल जाते और नौ बजते-बजते शहर से बाहर डेरा डाल देते। शहर चौथे पहर तक प्रायः सुनसान पड़ा रहता।

८

एक के बाद एक काम ज़ेको को सौंपा जाने लगा। एक दिन सिनिशा ज़ेको

से मिलने पहली बार उसके घर आया। अपनी मंद आँखों से उसने मकान का चारों तरफ़ सावधानी से निरीक्षण किया।

चहलक़दमी करते-करते वह सहसा ज़ेको से पूछ बैठा, "क्या तुम माइका जार्जेविच नाम के किसी आदमी को जानते हो जिसे कप्तान माइका कहते हैं ?"

ज़ेको को अचरज भी हुआ, खुशी भी। उसके मन पर एकाएक एक तस्वीर खिंच आयी : कई वर्ष पहले की सावा और मिलान स्ट्रैंगराट्स के मुँह से कप्तान माइका का ज़िक्र ("कम्युनिस्ट कहीं का") और फिर उसका घास पर थूक देना।

"हाँ, हाँ, मैं उसे जानता हूँ," इसके बाद क्या कहना चाहिए यह न समझ पाकर ज़ेको ने हँस कर इतना और जोड़ दिया, "भला मानस है।"

"भला··· ? बुरा नहीं है। मतलब तो इससे है कि तुम उसे ख़ुद जानते हो।"

हमेशा की तरह ज़ेको सिनिशा के व्यंग्य से कुछ बिदका, परन्तु सिनिशा को इसकी परवाह कहाँ। वह बोलता गया : "वूल तुम्हें लेने आयेगा और आ कर जहाँ ज़रूरी है ले जायेगा और बाक़ी बात जब ज़रूरी होगा मालूम हो जायेगी।"

बाहर जाते हुए सिनिशा ने ज़ेको की ओर ऐसे हाथ बढ़ाया जैसे उससे गले मिल रहा हो पर उसे छुआ नहीं बल्कि कमरे में चारों ओर नज़र डाल कर आहिस्ता से पूछ लिया :

"तुम हवाई हमले के समय यहीं रहते हो ?"

"यहीं,"

"और तुम झेल लेते हो ?"

"झेल लेता हूँ—हाँ" ज़ेको ने दबी जबान से कहा क्योंकि उसे सिनिशा का व्यंग्य याद था।

"मुझसे तो नहीं होता," सिनिशा चट से बोला।

"तुमसे नहीं होता ?"

"हाँ, नहीं होता। पर तुम बहादुर ठहरे, ज़ेको चाचा।"

उसके चेहरे पर मुसकान थी पर उससे आँखों का वास्ता न था। वह ओठ और ठोड़ी तक ही थी जिससे चेहरा बच्चों-सा भोला लगता था।

इस तरह उन्होंने एक दूसरे से विदा ली।

दो दिन बाद सवेरे सात बजे के आसपास वूल आया तो वह तगड़ा और

लाल दिख रहा था। उसका चेहरा ताज़ा धुला हुआ था और बाल अभी तक भीगे थे। उसने ज़ेको से पूछा कि "क्या कोई और व्यक्ति मकान में है ?" ज़ेको ने कहा, कोई नहीं है। तब वूल ने पूछा कि क्या शाम को भी तुम अकेले होगे और ज़ेको ने जवाब दिया कि हाँ। वूल बोला, मैं अँधेरा होते ही आऊँगा और तुम्हें ले जाऊँगा। उसने यह भी कहा कि मैं नगर-अधिकारियों से एक-दो परमिट ले आने की कोशिश करूँगा जो शाम की रेलगाड़ियों से करफ़्यू के बाद आने वालों को दिए जाते हैं। ज़ेको कुछ और ब्यौरा जानना चाहता था, ताकि कुछ और जाने और उसके साथ वह भी कुछ प्रबंध करे परन्तु वूल ने, जो तेज़ी और तपाक से मुस्कुरा रहा था—कहा, नहीं सब ठीक है और वह जैसे दन से आया था वैसे दन से चला गया और जब वह चला गया तो उसकी कुछ बेचैनी ज़ेको के मकान में मानो मंडराती हुई रह गयी।

दिन चढ़ता गया और ज़ेको बार-बार यह बातचीत याद करता रहा और हर बार जब वह याद करता कि उसे शाम को वूल के साथ शामिल होना है तो वह विह्वल हो उठता।

तीसरे पहर बादल घिर आये और भयंकर आँधी-पानी का प्रकोप हुआ। इतने ज़ोर की झड़ी लगी कि ज़ेको के मकान से चारों तरफ़ दिखायी नहीं देता था। और जब वर्षा थमी तो आकाश ऊदा और उदास रह गया और रोज़ से बहुत पहले ही सारे शहर में अँधेरा छा गया।

ज़ेको अपने घर के चौड़े दीवानखाने में बैठा पढ़ रहा था, हालाँ कि रोशनी इतनी कम हो गयी थी कि वह पढ़ नहीं पा रहा था। वह बत्ती जलाने उठा ही था कि सदर दरवाज़े के ताले में बाहर से किसी के चाबी लगाने की आवाज़ आयी। वह चौंक पड़ा। धुंधलके में उसके सामने टिगार खड़ा था।

वह एक लंबी बरसाती ओढ़े, सर पर फ्रांसीसी बेरे टोपी लगाये और हाथ में चमड़े का थैला लिये था।

अपने पिता से नमस्कार किये बिना वह बताने लगा कि ज़रा देर हुई मैं जेलेज़निक से एक दोस्त की मोटरसाइकिल के पीछे बैठ कर चला था और वह कुछ चीज़ें लेने आया है जो उसे और उसकी माँ को चाहिए।

उसने अपना कोट नहीं उतारा बल्कि अलमारियों में कपाट भड़ाभड़ बंद करता हुआ एक कमरे से दूसरे में जाने लगा। उसने दरवाज़े खोले और जो

चीज़ें लेनी थीं लेकर अपने चमड़े के थैले में डाल लीं।

हवा में घुटन थी। ज़ेको अंदर ही अंदर थरथरा रहा था, अपने बेटे की उपस्थिति और उसकी हरकतों से उसका जी जल रहा था। पर टिगार को कोई जल्दी न थी। ज़ेको का धीरज छूटने लगा। सहसा उसे ख़्याल आया कि अभी वूल न आ जाये और टिगार को देखे जब कि ज़ेको ने आज सवेरे ही उसे विश्वास दिलाया था कि घर में कोई और न होगा। वूल कहीं टिगार के होने से कुछ और न समझे और सिनिशा कहीं उसकी विश्वसनीयता पर संदेह न करे।—इस आशंका से व्याकुल हो कर ज़ेको दरवाज़े से टिका खड़ा रह गया।

टिगार दीवानखाने में घुसा और बिना बोले-चाले बाप के सामने से हो कर उसके कमरे को चला। ज़ेको ने दरवाज़े के दस्ते पर हाथ रख कर बाँह से दरवाज़ा छेक लिया। तब जा कर टिगार के मुँह से बोल फूटा कि उसे ज़ेको के कमरे से बिजली का बल्ब चाहिए। ज़ेको को एक शब्द भी सुन न पड़ा : उसके सर में ख़ून चढ़ रहा था और आँखें लाल हो रही थीं। उसने नवयुवक का हाथ दरवाज़े से परे धकेल दिया और फटी हुई उखड़ी आवाज़ में कहा :

"तुम्हें यहाँ आने की कोई ज़रूरत नहीं !"

"क्या बकते हो !"

"हट जाओ", ज़ेको गरजा और टिगार के सीने पर सारी ताकत से एक धक्का दिया।

ज़ेको को लगा कि सब कुछ नींव से हिल गया है—घर, असबाब, वे दोनों —और सब कुछ ज़मीन पर आ कर चकनाचूर हो जायेगा—परंतु कुछ नहीं हुआ।

"क्या···क्यों···" टिगार सर नीचा किये घबराहट के मारे हकलाने लगा।

ज़ेको के साँस फिर आ गयी। उसके चारों ओर हर चीज़ अपनी जगह आ गयी और उसने आश्चर्य से जाना कि हर व्यक्ति मारने और अपने को बचाने में समर्थ है।

उसने अपने फैले हुए हाथों को देखा जैसे पहले कभी नहीं देखा था। उसने मेज पर से कोई सख्त चीज़ उठा लेनी चाही परंतु कुछ मिला नहीं : वह सिर्फ़ गरज सका :

"निकल जाओ, निकल जाओ बदमाश कहीं के !"

टिगार की आँखें फटी-फटी रह गयीं जैसे उसको भूत दिख गया हो। उसकी सारी ताक़त एकाएक न जाने कहाँ चली गयी थी। और वह डरा हुआ दरवाज़ा खोल कर चुपचाप बाहर निकल गया। ज़ेको के चारों ओर घूमता हुआ दीवान-ख़ाना थम गया और शाम के धुंधले प्रकाश में वह पहले-सा शांत हो गया। सड़क से बार-बार फटफट करके मोटरसाइकल चालू होने की आवाज़ आयी।

आधे घंटे बाद वूल आ पहुँचा। उसके हाथ में एक पिचका-पिचकाया काले बाज़ार से ख़रीदा हुआ बक्सा था जिसे ज़ेको ने देखते ही पहचान लिया। इसी बक्से में तीन महीने हुए, वह देसपोतोवाश्का मार्ग से चुकारित्सा को नौ पौंड शक्कर ले गया था और शक्कर के अंदर कोई चीज़ थी जो उसके लिए बिलकुल नयी थी। वूल ने झटपट एक साँस में उसे आज शाम के काम का पूर्वांश समझा डाला। उन्हें तत्काल चल देना होगा पर साथ-साथ नहीं। पहले वूल जायेगा। वे गोस्पोदार्का सराय के पीछे सुरंग के पास मिलेंगे। अगर अँधेरा इतना हुआ कि चेहरा न पहचाना जाये तो वूल 'किसानों की-सी' धुन पर सीटी बजायेगा (वह सीटी बजाने लगा और अपनी उजित्से धुन की वेसुरी नक़ल पर हँस पड़ा) तब फिर उन रास्तों से होकर जिन्हें ज़ेको अच्छी तरह जानता है वे नऊम के चायघर के सामने नदी तट पहुँच जायेंगे जो कि ज़ेको को अच्छी तरह याद है। वहाँ उन्हें जिससे मिलना है उससे मिलेंगे, जो चीज़ लेनी है वह लेंगे और तुरंत विभिन्न रास्तों से लौट आयेंगे। वूल का परमिट तो नहीं मिल पाया था परंतु न मिलने से कोई हर्ज नहीं था क्योंकि यह निश्चित ही था कि वे कर्फ़्यू लगने के पहले ही लौट आयेंगे।

ज़ेको को परमिट न मिलने से घबराहट हो रही थी; वह वूल के निश्चिंत व्यवहार से उलझन में पड़ गया था। यही नहीं, वह सोच रहा था कि उसके इस अभियान और कप्तान माइका में क्या संबंध है जिसके बारे में सिनिशा ने पूछा था और क्या वास्तव में ज़ेको की उससे उस शाम को भेंट होने वाली है। परंतु उसने कुछ पूछना उचित नहीं समझा।

वूल पहले रवाना हुआ और साराजेव्स्का मार्ग पर चल पड़ा। थोड़ी देर पीछे ज़ेको भी निकला और उसने नेज़ा मिलोशा मार्ग की तरफ़ जाने वाला रास्ता पकड़ लिया।

रात घुप अँधेरी थी। बाक़ी बेलगराद की तरह सड़कों पर रोशनी नहीं थी

ग्रौर खिड़कियाँ ढकी हुई थीं। विशेष छादनों से ढके लैंपों से सड़क के घिसे पत्थरों पर थोड़ी-थोड़ी मद्धिम रोशनी पड़ रही थी। तीसरे पहर की वर्षा के बाद भी ग्राकाश मेघाच्छन्न था जिससे युद्धकालीन प्रकाश-व्यवस्था से ग्रालोकित सड़क ऐसी दिखती थी जैसे नीची छत वाला कोई लंबा ग्रँधेरा तहखाना हो।

थोड़ी-थोड़ी देर पर कोई सैनिक गाड़ी सड़क पर से गुज़र जाती। उसकी मद्धिम बत्तियों की फाँक से रोशनी के दो बिंदु ऐसे झलकते जैसे ग्रँधेरे कमरे में लाश के सिरहाने मोमबत्तियाँ जलती हों। पैदल चलनेवाले इक्का-दुक्का ही थे ग्रौर उनकी पहचान उनकी पदचाप से होती थी। दो तरह की ग्राहटें थीं, जर्मन ग्राततायी सैनिक की सधी पदचाप ग्रौर ग्राक्रांत राष्ट्र के नागरिक की डरी, थकी-हारी, तेज़ ग्रौर सावधान पदचाप।

भुतही रात थी। घड़ी में ठंड हो जाती, घड़ी में ऊमस के मारे दम घुटने लगता। कितना ग्रच्छा ग्रौर कितना ग्रासान होता ग्रगर रात के वक्त यहाँ ख़तरा उठाते चलने के बजाय कोई ग्रपने कमरे में ही सुरक्षित ग्रौर शांत बैठा रहना। ज़ेको ने ग्रपने मन में ऐसे विचार ग्राते देखे, पर केवल एक क्षण के लिए; वे जैसे ग्रनजाने फुर्ती से ग्राये थे वैसे ही चले गये।

उसकी पहली जैसी ग्राशंकाएँ फिर उसके मन में नहीं उठीं। ग्रँधेरे में जर्मन सैनिक के क़दम उसे डरा नहीं पाये बल्कि ग्रौर ग्राश्वस्त कर गये कि यही एक मात्र सही ग्रौर सम्भव रास्ता है। वह इस सड़क पर चलते हुए इतना ख़ुश था कि उसका जी चाहा गा उठे; वह उन मूर्ख, दम्भी, सधे क़दमों पर हँसना चाहता था, उन क़दमों पर जो वह जानता था कि सर्वनाश ग्रौर पतन की ही ग्रोर ले जायेंगे।

ग्रँधेरे चौकों में ग्रक्सर ज़ेको को घबरायी हुई ग्रौरतें पीठ पर चुरा कर ले जाती बोरियाँ लादे दिखायी देतीं। क्या ये माएँ हैं जो जारकोवो ग्रौर जेलेज़निक गेहूँ ग्रौर चरबी ले जा रही हैं जिससे उनके बच्चे ग्रौर वे जिंदा रह सकें? या ये काले बाज़ार में बेचने जा रही हैं? जातीं हो तो जायें ग्रगर वे ग्रमानुषिक फ़ौलादी क़दमों से उस तरह के झूठे ग्रात्म-विश्वास के साथ नहीं चलती जिससे काली सेना ने पराजीत राष्ट्र को ग्रातंकित ग्रौर ग्रपने को उत्साहित करना चाहा है, तो बाक़ी सब ठीक है। ग्रौर कौन जाने इस ग्रँधेरे में मेरे जैसे ग्रौर वूल जैसे लोग भी हैं जो सड़क पर किसी सौंपे हुए कर्तव्य के पालन के लिए भटक रहे हैं। इस ख़्याल

ने ज़ेको को चैतन्य कर दिया : उसे लगा कि अँधेरे में वह और वे, सबके सब अपने कर्तव्य लिए एक दूसरे की उपस्थिति का बोध कर रहे हैं।

न कोई डर रह गया न कोई हिचकिचाहट रही। और फिर जर्मन सैनिकों के क़दम सुनायी पड़े—कभी अकेले संतरी के, कभी दल के दल के : टप-टप टापा-टुपा, टप-टप···परन्तु, अब उनसे ज़ेको विचलित नहीं हुआ क्योंकि उनके बावजूद अपने भीतर वह एक पूरी सेना की पदचाप सुन रहा था जो इस अँधेरे में मूक और अदृश्य थी और इसी कारण अजेय भी, जो समस्त भय से मुक्त कर देगी, समस्त बत्तीगुल समाप्त कर देगी। और उन क़दमों का इस धरती को रौंदना बंद कर देगी जो कि सब मनुष्यों की धरर्ता है।

और ज़ेको आहिस्ता-आहिस्ता मगर जमा-जमा कर पाँव उठाता गया मानो दिन निकला हुआ हो और वह जाने-पहचाने प्रिय-परिचितों के साथ जलूस में चल रहा हो। जहाँ-तहाँ सड़क बमबारी से फटी-उखड़ी पड़ी थी और गड्ढे थे जिनके चारों तरफ़ बोर्ड लगा दिये गये थे। अँधेरा इतना घना था कि ज़ेको को हाथ से टटोल कर रास्ता बनाना पड़ा।

गोस्पोदार्स्का सराय पहुँचकर वह ठहर गया। अँधेरा घटाटोप था जैसे कोई दीवार हो जिसके पीछे जीवन नहीं है। और फिर एक बार उसे घबराहट मालूम हुई, परन्तु इस बार वह बिलकुल अकारण और अनायास थी। बस क्षण भर को रुक कर उसने तुरंत अपने को सँभाला और पहले से कुछ धीमी चाल से चुकारित्सा की ओर चल दिया।

रेल की पटरी के तले से जानेवाली सुरंग से गुज़रते हुए ज़ेको ने वूल की सीटी की प्रतीक्षा की परन्तु कहीं कोई आवाज़ न थी। सुरंग से निकल कर वह दाहिने मुड़ा और अपने पहचाने सँकरे रास्ते पर चल दिया।

वह फिर क्षण भर रुका और फिर एक बार ठहर कर कोई आवाज़ सुनने को कान लगाया। कुछ नहीं सुनायी पड़ा। उसने तय किया कि लौट कर चौराहे पर चला जाये। तभी सुनायी पड़ी—सीटी की धीमी लहरियाती हुई धुन। ज़ेको ने वैसी ही सीटी बजा कर जवाब देने को ओठ काढ़े ही थे कि किसी पुरुष की अँधेरे में कड़कती ललकार सुन पड़ी।

"ठहर जाओ।"

कोई सड़क पर से पुकार रहा था और सुरंग उसके आदेश से प्रतिध्वनित हो

कर ऐसे गूँज रही थी कि जेको को न तो आदेश सुनायी पड़ा न उसकी गूँज बल्कि केवल एक गड़गड़ाहट सुन पड़ी मानो समूची सुरंग टूटकर भहरा रही हो।

अँधेरे में एक चोरबत्ती चमकी और सुरंग का दायरा नापने लगी। उसी वक्त एक गोली दगी—फिर दो और फिर तीन। और फिर कई एक। जेको गिन न सका क्यों कि वह सावा की दिशा में कच्चे रास्ते पर भाग चला था। उसके पीछे गोलियाँ सनसनाती आ रही थीं और जो विचित्र आवाज पैदा कर रही थीं वह बाल्कन युद्ध के किसी भूले-बिसरे कांड की याद दिलाती थी। ज़ेको के चारों ओर घोर अंधकार था परन्तु उसे यह अजब-सी फ़िक्र थी कि सारी दुनिया उसे देख रही है। एक बार फिर गोलियों की गूँज आयी साथ में सीटी बजने की तीखी आवाज़ भी, पहले कहीं दाहिने हाथ और फिर दूर कहीं आगे। दौड़ते हुए ज़ेको की साँस फूल रही थी और वह बराबर अपने पिछवाने वालों से किनारा काटने की तरकीब करता गोलीकांड के स्थल से ही नहीं उस चायघर से भी दूर पहुँच जाने की फ़िराक में था जिसमें उसके जाने की बात हुई थी। (कप्तान माइका की तस्वीर उसके मन में कौंध गयी) और अगर गश्ती दस्ता उसके पीछे लगा ही रहा तो वह उसे नऊम के चायघर से जितनी दूर हो सके ले जायेगा।

उसने अंदाज़ से समझा कि वह कच्चे रास्ते की झाड़ियाँ पीछे छोड़ आया है और अब नदी तट के सामानान्तर की परिचित सड़क पर है जो ठेलों और लढ़ियों के लिए थी। उसने यह सड़क पार कर ली।

केवल दो गोलियाँ और दगीं पर वे बहुत दूर पर थीं और फिर सन्नाटा छा गया। ज़ेको का दिल उत्तेजना से धड़कने लगा और साँस उखड़ने लगी। उस सड़क पर से हट कर जहाँ वे उसे आसानी से खोज लेते, उसने तय किया कि नदी के तट पर उत्तर जाये वहाँ से एक के बाद एक और बेड़े और झोंपड़ियाँ लाँघता हुआ रेल की पटरी तक पहुँच जाये और उसे किसी स्थल पर पार कर नेज़ा मिलोशा मार्ग जा पहुँचे। सब बातें उसके दिमाग़ में आयीं, कर्फ़्यू लगाने की बेला का नगिचाना, गोलीकांड के स्थल पर उसका कोई चिह्न न होना, वूल और उसका बक्स; और साथ ही वह आँखों से अँधेरा चीरता और पैरों से धरती टटोलता पगडंडी खोजता चला जो उसे तट के किनारे-किनारे ले जाये। उसने सोचा, शायद वह पुराना बेड़ा अभी वहीं हो जो धातु के पीपों पर

18

खड़ा था, हुआ तो वह सीधे वहीं जायेगा।

दूर कहीं फिर संतरियों की सीटियाँ बोलीं—तीखी धमकी की तरह। कहीं पगडंडी मिल जाती! नदी से जितने निकट और चायघर से जितनी दूर हो उतना अच्छा। जूते की नोक से टटोल कर आखिरकार उसे नदी का छोर मिल गया परन्तु तभी उसने यह भी जाना कि उसके पाँव तले की ज़मीन बैठने लगी है और वह धँसती मिट्टी के साथ-साथ डूबने लगा है। वह नदी का तल टोहने के लिए छटपटा रहा था और चाह रहा था कि ऊपर कोई चीज हो तो हाथ से पकड़ ले। वह डूबता जा रहा था हालाँ कि समझ यही रहा था कि वह डूब नहीं रहा है। परन्तु हर चीज़ उसे तल की ओर खींचे लिये जा रही थी—अँधेरा, मिट्टी और पानी जो हाल की वर्षा में किनारों पर चढ़ आया था और उस स्थल पर असाधारण गहरा हो गया था। और वह डूब गया। न कोई आवाज़ हुई, न कोई निशान बचा।

कुछ दिन बाद 'नोवो व्रेमा' अखबार में यह संवाद छपा :

"मेरा विक्षिप्त पति आइसोडोर कटानिच हमारे घर से इस मास की २३ तारीख को निकल गया और तब से नहीं लौटा है। वह एक सुरमई सूट, पतला काला हैट और भूरे जूते पहने हैं। कोई उसका अता-पता जानता हो तो इस समाचारपत्र के कार्यालय से सम्पर्क करे।—मार्गरीटा कटानिच

इस विज्ञापन का उत्तर किसी ने नहीं दिया और ज़ेको की कोई खबर किसी को नहीं हुई। उन दिनों सावा बहुत सारी लाशें बहा कर ले जाती थी जिनमें से अधिकांश झुरमुटों और छिछले पानी में खो जाती थीं या फिर लहरों द्वारा डेन्यूब के तट पर पटक दी जाती थीं। उनकी अन्त्येष्टि किसान लोग कर दिया करते थे और न वे कोई एलान करते थे न लिख कर रपट भेजते थे।"

वूल उस रात किसी तरह निकल भागा। दो दिन बाद उसने देसपोतोवाश्का मार्ग पर अपने साथियों से सम्पर्क किया और उन्होंने भरसक खोज की कि ज़ेको का क्या हुआ। उन्हीं गर्मियों में उनकी गतिविधियाँ और विस्तृत हो गयीं और उनमें नयी शक्ति, गति और स्फूर्ति आयी जिसने तेज़ी से निकट आते मुक्तिपर्व को सम्भव बना दिया। वे अक्सर ज़ेको का ज़िक्र करते रहे और उसे अपने बीच का-सा समझ कर उसका शोक मनाते रहे।

◈ ◈ ◈

1189

